

किया हुआ करने वालों को प्रतिमान होता है ॥११७॥ ज्ञान और भ्रजान में-
प्रिय और अप्रिय में विरक्त और अतिरिक्त-वर्ष एवं अवर्ष-सुख-दुःख-मृत्यु-
अमृत-ऊर्ध्व-तियंक् और अधोभाग ये सब उसी ब्रह्म का कारण होता है
॥११८॥ ज्येष्ठ परमेश्वर ब्रह्मा का स्वायम्भुव यहाँ जेताओं में पुन-पुन प्रत्येक
विद्य वाला होता है ॥११९॥

व्यस्यते ह्येकविद्यन्तद्वापरेषु पुनः पुनः ।

ब्रह्मा चैतदुवाचादौ तस्मिन् वैवस्वतेऽन्तरे ॥१२०॥

भावर्त्तमाना ऋषयो युगाख्यासु पुनः पुनः ।

कुर्वन्ति सहिता ह्येते जायमाना, परस्परम् ॥१२१॥

अष्टाशीतिसहस्राणि श्रुतर्षीणा स्मृतानि वै ।

ता एव सहिता ह्येते भावर्त्तन्ते पुन पुनः ॥१२२॥

श्रिता वक्षिणपन्थान ये श्मशानानि भेजिरे ।

युगे युगे तु ताः शाखा व्यस्यन्ते तैः पुन पुनः ॥१२३॥

द्वापरेष्विव सर्वेषु सहिताश्च श्रुतर्षिभिः ।

तेषा गोत्रेष्विमाः शाखा भवन्तीह पुनः पुनः ।

ताः शाखास्तत्र कर्त्तारो भवन्तीह युगक्षयात् ॥१२४॥

एवमेव तु विज्ञेय व्यतीतानामतेष्विह ।

मन्वन्तरेषु सर्वेषु शाखाप्रणयनानि वै ॥१२५॥

अतीतेषु अतीतानि वर्त्तन्ते साम्प्रतेषु च ।

भविष्याणि च यानि स्युर्बर्ण्यन्तेऽजागतेष्वपि ॥१२६॥

द्वापरो में बार-बार एक विद्य वाला व्यवस्यमान होता है । आदि में
वैवस्वत मन्वन्तर में ब्रह्माजी ने यह बोला था ॥१२०॥ ऋषिगण बार-बार
युगाख्याओं में भावर्त्तमान होते हैं और परस्पर में जायमान होते हुए इन
सहितों को किया करते हैं ॥१२१॥ अष्टासी हजार श्रुतर्षि कहे गए हैं और वे
ही सहिताएँ बार-बार भावर्त्तमान हुआ करती हैं ॥१२२॥

वक्षिण मार्गों का आश्रय होने वाले जिन्होंने श्मशानों का सेवन किया
या युग-युग में पुन पुन वे ही शाखाओं को किया करते हैं ॥१२३॥ यहाँ सब

वायु-पुराण (दूसरा खण्ड)

सम्पादक —
वेदभूति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारो वेद, १०८ उपनिषद् षट् दर्शन
२० स्मृतियाँ श्रीर अठारह पुराणों के
भाष्यकार

●
प्रकाशक :

संस्कृति-संस्थान, बरेली
(उत्तर-प्रदेश)

प्रथम बार] सन् १९६७ ई० [मू० ७) रुपया

प्रकाशक —

संस्कृति-संस्थान

बरेली (उ० प्र०)

★

सम्पादक

प० श्रीराम शर्मा आचार्य

★

सर्वाधिकार सुरक्षित

सन् १९६७

✠

मुद्रक

कृष्णानन्द शर्मा

जनजागरण प्रेस, गणपुरा ।

★

मूल्य ७) रु

दो शब्द

‘वायु पुराण’ की विशेषताओं का वर्णन प्रथम भाग की भूमिका में विस्तारपूर्वक किया जा चुका है। इस दूसरे खण्ड में जो महत्वपूर्ण विषय पाठकों को मिलेंगे उनसे [पूर्ववर्ती धारणाओं की] और अधिक पुष्टि हो सकेगी। सृष्टि, प्रलय, जड़-चेतन पदार्थों का क्रमशः आविर्भाव, मानव-समाज का विकास, अनेकानेक राजवंशों तथा उनकी शाखाओं का वर्णन आदि जो पुराणों का मुख्य उद्देश्य माना गया है, वह इसमें पूर्ण रूप से पाया जाता है। पाठक जैसे-जैसे इस पुराण का अध्ययन करते जाएंगे उनको यह प्रतीत होता चला जायगा कि वास्तव में इस दृष्टि से इस पुराण का स्थान अधिकांश पुराण और उपपुराणों से बहुत ऊँचा है।

इस पुराण के प्रतिपादित विषय को अन्त तक देख जाने और विशेष कर इस दूसरे खण्ड के राज्य-वंशों के विस्तृत वर्णन और सृष्टि तथा प्रलय के बुद्धिसंगत विवेचन को पढ़ने पर हमको उन लोगों की बातों पर कुछ आश्चर्य होता है जो इस पुराण को अठारह पुराणों में न मानकर ‘शिवपुराण’ का एक अंश मात्र बतलाते हैं। हमको तो इस पुराण को सम्पादन करने पर यह मालूम हुआ कि जहाँ अधिकांश पुराणों के कलेवर का एक बड़ा भाग साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से लिखी गई कथाओं अथवा तीर्थ, व्रत, दान आदि के विधानों से भरा पड़ा है, वहाँ ‘वायु-पुराण’ में इन बातों को कम से कम स्थान देकर उन बातों का ही दिग्दर्शन कराया है जो वास्तव में पुराणों के वर्ण्य विषय माने गये हैं। सृष्टि, जगत और मानव जाति के विकास पर विचार करना ही पुराण रचना का मुख्य उद्देश्य बतलाया गया

है और वह हमको वायु-पुराण में शय पुराणा की अपेक्षा कहीं अधिक और सम-व्यापक रूप से दिखाई पड़ता है।

यद्यपि सभी पुराणों में अलङ्कार रूपक उपमा दृष्टांत आदि की लेखन शली पूरा माना में अपनाई गई है जिससे कथा के रूप में अथवा जनता को आकर्षित करके घम सत्वों की शिक्षा दी जासके तो भी इस दृष्टि से विभिन्न पुराणों के स्तर में बहुत अन्तर दिखलाइ पड़ता है। अन्य पुराणों ने जहाँ लोगों की इच्छा और आकर्षण पर हा अधिक ध्यान दिया है वायुपुराण में तथ्यों को प्रकट करने और प्राचीनता की एक प्रभावशाली मूलक पाठकों को दिखाने की चेष्टा की है। इसमें विभिन्न राजवंशों की वशावतियाँ का जितने विस्तार के साथ वर्णन किया गया है वह इतिहास की दृष्टि से भी बहुत कुछ महत्व रखता है और अनेक इतिहास लेखकों ने उसके आधार पर प्राचीन ऐतिहासिक युगों का निरूपण करने में पर्याप्त सहायता प्राप्त की है। इसी प्रकार लोक परलोक नर स्वर्ग भुवन आदि का वर्णन इसमें कथा और रूपको के बजाय विवेचनात्मक ढङ्ग से ही किया है जिससे इसकी गम्भीरता और प्रामाणिकता की वृद्धि हो गई है। जो पाठक ध्यान पूर्वक इसका अध्ययन करेंगे वे हमारा विश्वास है कि उपर्युक्त निष्कर्षों पर पहुँचे बिना न रहेंगे।

—सम्पादक



विषय-सूची

अध्याय

पृष्ठ संख्या

४३ प्रजापतिवश कीर्तन—

संहिताओं के निर्माता ऋषियों के नाम, याज्ञवल्क्य का नवीन संहिता निर्माण, धाम्यवेद, वनुर्वेद, गान्धर्वशास्त्र, अथर्वशास्त्र, और चौदह विद्याओं का विकास ।

२

४४ पृथ्वी दोहन—

स्वायम्भुव, स्वारीक्षिण आदि-आदि १४ मन्वन्तरो का वर्णन, राजा पृथु द्वारा यज्ञ की कृषि का आरम्भ ।

३८

४५ पृथुवश कीर्तन—

विभिन्न मन्वन्तरो में पृथ्वी का दाहन करने वाले मनुष्यों का वर्णन, वश प्रजापति द्वारा सृष्टि की वृद्धि ।

६७

४६ वैवस्वत-सर्ग वर्णन—

मरीचि, कदम्ब से देवों तथा परमात्मियों की उत्पत्ति ।

७६

४७ प्रजापति वशानुकीर्तन—

वैवस्वत-मनवन्तर में देव, ऋषि, दानव, पितर, गन्धर्व, यक्ष आदि की सृष्टि और वृद्धि ।

८१

४८ ऋषि वशानुकीर्तन—

द्विज, विश्वेदेव, प्रजापति, यक्ष, दानव, यक्ष, राक्षस, पितृ, भूत, पशु, पक्षी, नाग, अप्सरा आदि के अविपत्तियों का वर्णन ।

१०५

अध्याय

शुद्ध-सरया

४९ गन्धर्व मुखना लक्षण—

नाशन क्षुद्र करपत्र मस्त राक्षसधन वृणवि दु, रैवत आदि
राजाओं का वंश ।

११९

५० गीतालङ्कार निर्देश—

वाक्य घष आरोहण अवहोरण वाद्य आदि का परिचय ।

१२०

५१ वनस्वत मनुवश वंश—

राजा इक्ष्वाकु के वंश में युवनाश्र मान्धाता धर्मवीर पुरुकुल
मुनकुन्द हरिश्चन्द्र सगर दिवीय आदि राजाओं का वंश ।

१२५

५२ सोमोत्पत्ति वंश—

निमि के वंश के राजाओं का नाम 'विक' कहा जाना ।
छीताबी के पिता छीरम्ब का उल्लेख । (२) ब्रह्मा द्वारा बुध
की उत्पत्ति और महर्षि अग्नि द्वारा उसकी रोम मुक्ति आदि ।

१६७

५३ चन्द्रवधकीर्तन—(१)

राजा पुरुरवा और त्वंशी की कथा । राजा एन द्वारा तीन
अग्निश की विनाशन बहनु का मङ्गाधान विश्वामित्र
का वंश ।

१७०

५४ रजिमुद्ध वर्णन—

धन्वन्तरि की उत्पत्ति रजि द्वारा दानवों का पराजय ।

१८५

५५ चन्द्रवध कीर्तन—(२)

राजा मस्त भृष ययाति की कथा । पुष द्वारा ययाति
की बुद्धावस्था बहाल करने का उपायान ।

२१

अध्याय

पृष्ठ-संख्या

५६ कार्तवीर्य अर्जुन उत्पत्ति—

कार्तवीर्य अर्जुन द्वारा साखी द्वीपों की विजय, रावण को
बोधलाना, वशिष्ठ द्वारा शाप दिया जाना । २२६

५७ ज्यामघ वृत्तान्त कथन—

कार्तवीर्य द्वारा यज्ञों का ब्रह्मसाधना जाना । २३४

५८ विष्णुवक्ष वर्णन—

स्वयन्तक मणि की कथा । भीष्मका के वक्ष का वर्णन । २४१

५९ धर्मभूतय वर्णन—

महर्षियों द्वारा विष्णु की विशेषताओं का वर्णन और कुण्डल प्र-
सार लेने पर आश्चर्य । भृगु के शाप की कथा । बृहस्पति और
मुद्रावाच का विवाह । २७१

६० विष्णु माहात्म्य कीर्तन—

सुभाचार्य और जयन्ती का समागम, बृहस्पति का वानरों को
छन पूर्वक बहका देना । दश अवतारों का रहस्य । ३०१

६१ अनुपगपाद समाप्ति—

गुरंग के बधधरो का वर्णन, अर्जुन-वृद्ध-पृथ्वी-कलिङ्ग के
राजागण, सङ्गन्तला पुत्र भरत, पाण्डव, जनमेजय और भविष्य
के राजाओं का वर्णन । ३२६

६२ मन्वन्तर कथन—

देव दलियों द्वारा मृष्टि रत्ना का प्रारम्भ और उतका क्रम
विनाश, सब प्रकार के देव, ऋषि, तथा अन्य जीवों की
उत्पत्ति, कास गणना आदि । ३७६

अध्याय

ष्टु सख्या

६३ शिवपुर वर्णन—

मू मूद आदि सात लोकों का वर्णन बराबर कल्प वाले
अमुत कोटि अमुद निमुद आदि की गणना महालोक जन
लोक आदि का विवरण नरक वर्णन अमुष्यद द्विपद त्रियक
आदि की गणना शिवपुर का परम ऐश्वर्य ।

१२५

६४ प्रलयादि पुन सृष्टि वर्णन

सप्त द्वीप समुद्र पर्वत आदि का नष्ट होकर पृथ्वी, जल तेज
वायु आदि पञ्चतत्त्वों का एक एक करके दूसरे में लीन होते
जाना । पंच भवर्ष और तीनों गुणों की स्थिति ।

४४८

६५ सृष्टि वर्णन—

प्रलय के पश्चात् सृष्टि की फिर से विकास कैसे होता है ? सप्त
विषय—व्यक्त अव्यक्त का कथन । ब्रह्मा की उत्पत्ति । वायु
पुराण का महत्त्व ।

४६८

६६ व्यास सहाय वर्णन—

निराकार ब्रह्म प्रकृति तथा भक्ति-मार्ग और ज्ञान मार्ग का
निरूपण । अक्षर ब्रह्म से परे और कोई नहीं है वही सब कारणों
कारण है ।

४८

६७ गया महात्म्य—

श्री सनत्कुमार द्वारा गया तीर्थ की प्रशंसा और महात्म्य । गया
यात्रा द्वारा पितरों के उद्धार की कथा ।

४२५

वायु-पुराण

[दूसरा खण्ड]



॥ प्रकरण ४३—प्रजापति वंश कीर्तन ॥

भारद्वाजो याज्ञवल्क्यो गालकि सालकिस्तथा ।
धीमान् शतबलाकश्च नैगमश्च द्विजोत्तम ॥१॥
वाष्कलिश्च भरद्वाजस्तिष्ठ प्रोवाच सहिता ।
रथीतरो निरुक्तञ्च पुनश्चक्रं चतुर्थकम् ॥२॥
त्रयस्तस्याभवञ्छिस्था महात्मानो गुणान्विता ।
धीमान्नन्दायनीयश्च पन्नगारिश्च बुद्धिमान् ।
तृतीयश्चार्यवस्ते च तपसा शसितव्रता ॥३॥
वीतरामा महातेजा- सहिताज्ञानपारगा ।
इत्येते बह्वृचा प्रोक्ता सहिता यं प्रवर्त्तिता ॥४॥
वीशम्पानगोत्रोऽसौ यजुर्गेद व्यकल्पयत् ।
षडशीतिस्तु येनोक्ता सहिता यजुषा शुभा ॥५॥
शिष्येभ्य प्रददौ ताश्च जगृह्वस्ते विधानतः ।
एकस्तत्र परित्यक्तो याज्ञवल्क्यो महातपा ।
षडशीतिश्च तस्यापि सहिताना विकल्पका ॥६॥
सर्वेषामेव तेषां वै त्रिधा भेदा प्रकीर्त्तिताः ।
त्रिधा भेदास्तु ते प्रोक्ता भेदेऽस्मिन्नवमे शुभे ॥७॥

अपियो ने कहा—भारद्वाज—याज्ञवल्क्य—गालकि—सालकि—धीमान् शत-
बलाक—नैगम जो द्विजो मे श्रेष्ठ थे—वाष्कलि—भरद्वाज—इनने तीन सहिता
कही फिर रथीसर ने चतुर्थ निरुक्त किया था ॥१॥२॥ उसके गुरो से

मन्वायनीय-ममगारि और बुद्धिमान् तृतीय प्राचाय था । व तप स क्षमित व्रत
 वाले थे ॥३॥ ये सब वीतराग महान् तप व युक्त और सहितामा क नान व
 पारतामी थे । ये सब बहुवृत्त रहे गये हैं बिहान सहितामा का प्रवृत्त किया
 था ॥४॥ यह वक्ष्यमाण वीर बाना था जिसने मनुर्वेद की विद्वत् वक्ष्णा
 की थी । जिसने मनुवद की शुभ क्षमाही सहिताए रही थी ॥५॥ उनको
 शिष्यो के लिए दिया था और उन्होंने विद्वत्पूवक उह ग्रहण किया था । वही
 पर एक महा तपस्वी याज्ञवल्क्य परिपक्व थे । उसका भा द्वासी सहितामा
 के विद्वत् थे ॥६॥ उन सबके तीन प्रकार के भेद प्रकाशित किए गए हैं । इस
 शुभ वक्ष्य भेद में तीन प्रकार के भेद रहे गये हैं ॥७॥

उदीच्या मध्यदेशाश्च प्राच्याश्चैव पृथग्विधा ।

श्यामाय नक्षीच्याना प्रधान सम्बन्ध ह ॥८

मध्यदेशप्रतिष्ठानामारुणि प्रथम स्तुत ।

प्रागम्बिरादि प्राच्यानात्रयोदश्यावयस्तु त ॥९

इत्येते चरका प्रोक्ता सहितावादिनो द्विजा ।

शुष्यस्तद्वच्च श्रुत्वा सूत जिज्ञासवोऽत्र वन्द ॥१०

चरकाम्बयव केन कारणं ब्रूहि तत्त्वत ।

किञ्चीण कस्य हेतोश्च वाचकस्त्वय्य भेजिरे ।

इत्युक्तं प्राह तेषां च चरकत्वममूषथा ॥११

कायमासीदृपोऽस्त्राश्च किञ्चिन्द्वाह्यासत्तमा ।

मेरुपृष्ठ समासाच्च तत्त्वदा त्विति मन्त्रितम् ॥१२

यो नोऽत्र सप्तरात्रेण नागन्धेद्विजसत्तमा ।

स कुर्याद्विज्ञावध्या व समवो न प्रकीर्तित ॥१३

ततस्ते सगणा सर्वे वक्ष्यमाण नृवजिता ।

प्रययु सप्तरात्रेण यत्र सन्धि कुतोऽभवत् ॥१४

उदीच्या मध्यदेश और प्राच्या पृथक् विधे थे । उदीच्या में श्यामायनि
 प्रधान हुआ था ॥८॥ मध्यदेश के प्रतिष्ठानों में अरुणि प्रथम कहा गया है ।

प्राच्यो मे यादि अन्विष्य वे वे त्रयोदशी आदि वे ॥६॥ ये सब द्विज जो कि गहिनाओ के बादी वे चरक कहे गए थे । ऋषियों ने उनके वचन जो सुनकर जिनासु होते हुये वे सूतजी से बोले ॥१०॥ चरक यौर आध्ययव किस से हुए ? इसका कारण तत्त्वपूर्वक बतलाइये । किसके हेतु से क्या चीखें और वाचकत्व का भेदन किया था ? इस प्रकार से बहे हुए उनमे जैसे चरकत्व उनका हुआ था कहा । ॥११॥ श्री सूतजी ने कहा—हे ब्राह्मण श्रेष्ठो । ऋषियों का क्या कार्य था यह मेरे के पृष्ठ पर आकर उन्होंने मन्त्रणा की थी ॥१२॥ हे द्विज सत्तमा ! जो यहाँ सात दिन तक बड़ी माये वह नडाव-व्या करे । इसका समय नहीं कहा गया है ॥१३॥ इसके पश्चात्त गणों के माथ वे सब वैशम्पायन को छोड़ का सात दिन में चले गये जहाँ कि सन्धि की हुई थी ॥१४॥

ब्राह्मणानान्तु वचनाद्ब्रह्मव्याञ्चकार स ।

शिष्यान्व ममानोय स वैशम्पायनोऽब्रवीत् ॥१५॥

ब्रह्मव्याञ्चरश्च वै मरुते द्विजसत्तमा ।

सर्वे यूय ममागम्य श्रुत ने तद्वित वच ॥१६॥

महमेव चिन्तामि तिष्ठन्तु मुनयस्त्विमे ।

यन्-चोत्थापयिष्यामि तपसा स्वेन भावित ॥१७॥

गवमुत्तस्तत् ऋद्धां याज्ञवल्क्यमथाश्रवोत् ।

उवाच यत्यभावीत सर्वं प्रत्ययस्त्वमे ॥१८॥

गवमुत्त स ऋषिणि यज्ञं पि प्रददी गुरो ।

हविर्गण तवात्मानि छर्त्तिस्त्वा ब्रह्मास्ति म ॥१९॥

सत्त ग ध्यानमास्थाय नूयमाराधयद्विजा ।

मयं ब्रह्म गदुच्छिन्न ग गत्वा प्रतितिष्ठति ॥२०॥

सती यानि यतान्यूङ्क्ते यजू प्यादित्यमण्डलम् ।

तानि तस्म ददो नुष्ट मूर्या वै ब्रह्मगीतये ।

अदभ्याय मातण्टो याज्ञवल्क्याय वीमते ॥२१॥

मन्त्रणा ॥ बाल मे उवाच ब्रह्मव्याचो शिष्या था । उनके अनन्तर ३१ वैशम्पायन । शिष्या था मातण्ट ॥२१॥ हे द्विज सत्तमा ! मेरे निय

ब्रह्मवत्स्य को करो ध्याय धन नोय धाकर दहति वचन मुझे बोलो ॥१६॥
 याज्ञवल्क्य ने कहा—मैं ही कहूँगा वे मुनिपण ठहरें । अपने तप से भावित
 होता हुआ मैं बत को उत्थापित करूँगा ॥१७॥ इस प्रकार से बहने हुए वह
 फँस होकर याज्ञवल्क्य से बोले कि जो भी तुमने पढ़ा है उस सबको मुझे बपण
 कर दो—यह कहा ॥१८॥ इस प्रकार से कहे जाने वाले ब्रह्मविद्वत्तम उसने
 क्षीर अक्षर रूप यज्ञ को ध्वनि कर के बुझ कर दे दिया था ॥१९॥ इसके अन
 न्तर उसने हे दिवा ! ध्यान में स्थित होकर सूर्य की आराधना की थी । जो
 उच्छिन्न सूर्यब्रह्म का और आकाश में बाहर प्रतिष्ठित होता है । इसके पश्चात्
 जो यज्ञ ऊर्ध्व भाग में गए वे और आदित्य मण्डल में स्थिति थे उनको सत्पुत्र
 होने वाले सूर्य ने ब्रह्म रीति के लिए उद्यत दे दिया था । भीमाय याज्ञवल्क्य उस
 समय ब्रह्म के रूप में थे । ऐसे याज्ञवल्क्य के लिए मातएक ने यज्ञ दिए थे
 ॥२०॥ ॥२१॥

यजू ध्यधीयन्ते यानि ब्राह्मणा येन वेम च ।
 अथवक्ष्याय दत्तानि ततस्ते वाजिनोऽभवन् ॥२२॥
 ब्रह्महत्या तु बध्नीयुर्वा चरणाच्चरका स्मृता ।
 वशम्भायक्षिप्यास्ते चरका समुदाहता ॥२३॥
 इत्येते चरका प्रोक्ता वाजिनस्तात्रिवोधत ।
 याज्ञवल्क्य स्मक्षिप्यास्ते कण्ववैद्येयशास्त्रिन ॥२४॥
 मध्यादिनश्च क्षापेयी विदिग्धप्राप्य उद्दल ।
 ताभ्रायणश्च वात्स्यश्च तथा गाभवशाशिरी ।
 भ्राट्वी च तथा पर्याी वीरणी सपरायण ॥२५॥
 इत्येते वाजिन प्रोक्ता दश पञ्च च स्मृता ।
 घतमेकाधिक कृत्स्न यजुषा च विकल्पका ॥२६॥
 पुत्रमध्यापयामास सुमन्तुमथ जग्निनि ।
 सुमन्तुश्चापि सुत्वान पुत्रमध्यापयत्पुत्रम् ।
 सुकर्माण सुत सुत्वा पुत्रमध्यापयत्पुत्रम् ॥२७॥

स सहस्र मघीत्याशु सुकर्माप्यथ सहिता ।

प्रोवाचाथ सहस्रस्य सुकर्मा सूर्यवर्चस ॥२८॥

जिस किसी के द्वारा ब्राह्मण जिस यजु का अध्ययन करते हैं वे ब्रह्म-
हम वाले के लिये किये हुये हैं इससे वाजिन हुए और कहे भी जाते हैं ॥२२॥
जिन्होंने चरण से ब्रह्महत्या को चीख किया था वे चरक कहे गए हैं । वे वैश-
म्पायन के शिष्य हैं जो चरक कहे गये हैं ॥२३॥ इन्होंने ये चरक कहे गये हैं
अब उन वाजिनो को जान लो । वाजिनत्व के वे शिष्य हैं जो कएव वैश्वेशाली
हैं ॥२४॥ मध्यान्दिन—वापेयी—विदिम्भ—हृद्वन—ताम्रायसु—वास्त—मासव-
सौमिरी—आटवी—पथुई—वीरली—मथरायसु—ये इतने वाजिन इस नाम से कहे गये
हैं ये दश और पाँच कुल पन्नाह होते हैं । यजुषो का पूर्ण विकल्प एनवी एक
है ॥२५॥२६॥ इसके अनन्तर जेमिनि ने सुमन्तु अपने पुत्र को पढाया था ।
सुमन्तु प्रभु ने भी अपने पुत्र सुत्वाज को पढाया था । सुत्वा ने अपने पुत्र
सुकर्मा को पढाया था ॥२७॥ इसके पश्चात् सुकर्मा ने भी शोध एक सहस्र
सहितामो का अध्ययन कर के सूर्य वचस सुकर्मा ने सहस्र को बोला था ॥२८॥

अनध्यायेष्वधीयानास्ताञ्जघान सतक्रतु ।

प्रायोपवेशमकरोत्ततोऽमी शिष्यकारणात् ॥२९॥

ऋद्ध दृष्ट्वा तत शक्रो वरमस्मै ददौ पुन ।

भाविनी तं महावीर्यो शिष्यावयगवर्चसो ॥३०॥

अधीयानो महाप्राज्ञो सहस्र सहितानुयो ।

एतो सुरो महाभागो मा ऋन्य द्विजसत्तम ॥३१॥

इत्युक्त्वा वासव श्रीमान्सुकर्माण पशस्विनम् ।

शान्तक्रोध द्विज दृष्ट्वा तर्जवान्तरधीयत ॥३२॥

तस्य शिष्यो भवेद्धोमान्पौष्यञ्जी द्विजसत्तमा ।

हिरण्यनाभ कौशिन्यो द्विजयोऽभून्नराधिप ॥३३॥

अथापयत्तु पौष्यञ्जी सहस्रद्वन्तु सहिता ।

तेनान्धोदीच्यासामान्या शिष्या पौष्यञ्जिन शुभा ॥३४॥

शतानि पञ्च कौणिक्य सहितानाञ्च वीथवान् ।

गिष्या हिरण्यनाभस्य स्मतास्ते प्राच्यसामगा ॥३५॥

अनध्याय के दिन में अध्ययन करते बान उनका गतवस्तु (इन्) ने मार दिया था । इसने पश्चात् गिष्य के कारण स इग्ने प्रयापनेष (भोजन का स्थान) कर दिया था ॥३६॥ इनके पश्चात् फिर दूसरे क ड डेल कर इन्द्र ने धरवान दे दिया था कि ये जलन बचन होना गिष्य महान् वीथ बाल होने ॥३७॥ हे द्विज सत्तम ! महा प्राप्त पवन वाले महान् सहिता बाल य दोनो धुर महान् भाग वाले है माय कोय न करें ॥३८॥ ब्रह्म बहु कर श्रीभास् इन्द्रवेव यथास्वी श्रीन कोय के सान्त हो जाने बाल द्विज भुज्मा को देख कर महा पर ही समर्पण हो गए ॥३९॥ हे द्विज सत्तम ! उसका गिष्य बहुत ही बुद्धिमान् धीर वीष्यञ्जी हुआ—हिरण्यनाभ—कौणिक्य धीर दूसरा नराधिप हुआ ॥४०॥ वीष्यञ्जी ने भाषा सहस्र सहिता का अध्ययन किया था । इससे भयाधीश्व सामान्य वीष्यञ्जी क सुम गिष्य हुए धीर सहितामा के दाँव सी वीथवान् कौणिक्य हुवे । हिरण्यनाभ के गिष्य प्राच्य सामग बहे गए है ॥४१॥

लोकास्ती कृष्णमिच्छन् कृतीती राज्ञिस्तिथ्या ।

पौष्यन्त्रिंशतिव्याश्वत्वारस्तेषा भेदाग्निबोधत ॥४२॥

राणामनीय स हि तृण्डपुनस्तस्मान्न्यो मूलचारी सुविद्वान् ।

सकतिपुत्र सहस्रास्यपुत्र एतान् भेदान् वित्त लोकाक्षिणस्तु ॥४३॥

ययस्तु कुमुमे पुत्रा धीरसो रत्नपासर ।

भागवित्तिश्च तेजस्वी त्रिविधा कौयुमा स्मृता ॥४४॥

शौरिष्ठा शृङ्गिपुत्रश्चद्विज्वेती चरितव्रती ।

राणामनीय सौमित्रि सामवेदविगारयो ॥ ४५॥

प्रोवाच सहितास्तिष्ठ यन्निगुनो महातपा ।

चल प्राचीनमोक्षश्च सुराश्व द्विजोत्तमा ॥४६॥

प्रोवाच सहिता पटु पारायस्तु कौयुम ।

मासुरायणवगाप्यो वेदमृदपरायणो ॥४७॥

प्राचीनयोगपुत्रश्च बुद्धिमाश्च पतञ्जलि ।

कौशुमस्य तु भेदास्ते पाराशर्यस्य पट् स्मृता ।

लाङ्गलि क्षालिहोत्रश्च पट् पट् प्रोवाच सहिता ॥४२॥

पौष्यञ्जी के चार शिष्य थे उनके नाम लोकाक्षी-कुथुमि-कुशीती और लाङ्गल थे । सब उनके भेद बतलाये जाते हैं उन्हें चाप लोग समझ लेंगे ॥३६॥ शरिष्ठ का पुत्र वह राणाग्रणीय था । उससे धन्य मूलपात्री या जो कि बहुत अच्छा विद्वान् था । सकृत् पुनः सद्मास्य पुनः ये लोकाक्षी के भेद जानो ॥३७॥ कुथुमि के तीन पुत्र औरस-रसपारस और भाग वित्ति ये तीन प्रकार वाले तेज-युक्त कौशुम कहे गये हैं ॥३८॥ शौरिष्ठ-शृङ्गिपुत्र दो ये चरित्त ज्ञत वाले थे । राणाग्रणीय और सौमिनि ये दो दोनों सामवेद के पण्डित थे ॥३९॥ महात् सपत्नी शृङ्गिपुत्र ने तीन सहिता कही थी । हे द्विजोत्तमो ! ब्रह्म, प्राचीन योग, सुपात्र इनमें हैं सहिता बोली थी, इनमें पाराशर्य और कौशुम भी हैं । भासुरायण और वैश नाम वाले दोनों वेद वृद्ध में परायण थे ॥४०॥ प्राचीन-योग का पुत्र पतञ्जलि बड़ा बुद्धिमान था । कौशुम के ये भेद पाराशर्य के भी कहे गये हैं । लाङ्गलि और क्षालिहोत्र ने ठीक-ठीक सहिता बतलाई हैं ॥४१॥

भालुकि कामहानिश्च जैमिनिर्लोमगायिन ।

कण्वश्च कोलहर्षश्च पण्डिते लाङ्गला स्मृता ।

एते लाङ्गलिन शिष्या सहिता ये प्रसाधिता ॥४३॥

ततो हिरण्यनाभस्य कृतशिष्यो नृपात्मज ।

सोऽकरोच्च चतुर्विंशत्सहिता द्विपदा वर ।

प्रोवाच चैव शिष्येभ्यो येभ्यस्ताश्च निबोधत ॥४४॥

राडश्च महवीर्यश्च पञ्चमो बाह्वस्तथा ।

तालक पाण्डकश्चैव कालिको राजिकस्तथा ।

गौतमश्चानवस्तश्च सोमराजापतत्तत ॥४५॥

पृष्टञ्च परिकृष्टश्च उलूखलक एव च ।

यवीयसश्च वैशालो मगुलीयश्च कौशिक ॥४६॥

सालिमञ्जरिसत्यश्च कापीय कानिकश्च य ।

पराशरश्च धर्मात्मा इति कान्तास्तु सामगा ॥४७॥

सामगानान्तु सर्वेषां यः सौ द्वौ तु प्रकीर्तितौ ।

पौष्पश्चिश्च कृतिश्च च सहितानां विकल्पकौ ॥४८॥

अथर्वाणं द्विधा कृत्वा सुमन्तुरददद्विजाः ।

कवचाय पुन कृत्स्नं स च विद्याद्यथाक्रमम् ॥४९॥

कवचस्तु द्विधा कृत्वा पथ्यायकं पुनर्ददौ ।

द्वितीयं वेदस्पृशसि स चतुर्दशकरोत् पुनः ॥५०॥

भालुकि कामहानि धमिनि भोगसाधिन वरुड बौनह ये १४ साङ्गल
कहे गये हैं । ये साङ्गल के शिष्य हैं जिन्होंने सहिताएँ प्रसाधित की हैं ॥४७॥
इसके पश्चात् हिरण्यनाभ के कुछ शिष्य नृपायज हुए । द्विषो म नष्ट उसने
बीबीस सहिताएँ की हैं । और फिर उनको शिष्यो के लिये बोला था । जिन
शिष्यों को बोला था उन्हें धातु भुम्भसे जानलो ॥४८॥ राक्ष महावीर्य पंचम
बाहुल साकल पाशुक कालिक राजिक पीतम चाम्बवस्त सोम राजापतन्,
पृथ्वी परिकुल वसुजलक यवीयस वषास वसुवीर्य कौशिक सामिग जरि
साय कारीय कालिक और धर्मात्मा पराशर ने सब सामगा परित्याग्य हुए
हैं ॥४७॥ समस्त सामको ने दो ध्याय्य अष्ट प्रकीर्तित हुए हैं । सहिताओं के
विकल्पक ने दोनो पौष्पश्चि और द्विजा हैं ॥४८॥ हे द्विजा ! सुमन्तु ने अथर्वा
को दो करके दिया था । फिर कवच के लिये सम्पूर्ण दिया था और उसने
पथाक्रम उसे जाना है । कवच ने भी दो प्रकार का करके उनमें से एक को
फिर पथ्य के लिए दिया था । दूसरा वेदस्पृश के लिये दिया था और फिर
उसने उसे चार प्रकार का कर दिया था ॥४९॥५०॥

मोदो ब्रह्मबलश्च व पिप्पलादिस्तथ च

शौकवायनिश्च घमज्ञश्चतुवस्तपन स्मृतः ।

वेदस्पृशस्य चत्वारं शिष्यास्त्वेते दृढव्रता ॥५१॥

पुनश्चत्रिविधं विद्धि पथ्यानां भेदमुत्तमम् ।

जाजलि कुमुदादिश्च तृतीयं शौनक स्मृतः ॥५२॥

शौनकस्तु द्विधा कृत्वा दद्यावेकन्तु वसवे ।

द्वितीया सहिता धीमान्सैन्धवायनसंज्ञिते ॥५३॥
 सैन्धवो मुखकेशाय मित्रा सा च द्विषा पुन ।
 नक्षत्र कल्पो वैतानस्तृतीय सहिताविधि ।
 चतुर्थोऽङ्गिरस कल्प शान्तिकल्पश्च पञ्चम ॥५४॥
 श्रेष्ठस्त्वयवर्णो ह्येते सहिताना विकल्पना ।
 षट्श कृत्वा मयाप्युक्त पुराणमृपिसत्तमा ॥५५॥
 आग्नेय मुमतिर्धोमान्काश्यपो ह्यङ्कतन्नर ।
 भारद्वाजोऽग्निवर्चाश्च वसिष्ठो मित्रयुश्च य ।
 सार्वणि सोमवत्तिस्तु सुशर्मा शाशपायन ॥५६॥
 एते शिष्या मम ब्रह्मन् पुराणेषु दृढव्रता ।
 त्रिभिस्तिष्ठ कृतास्तिष्ठ सहिता पुनरेव हि ॥५७॥

वेदस्पर्श के दृढ व्रत वाले चार शिष्य हुए थे । ब्रह्मवक्ष वाला मोष, पिप्पलाद, धर्म का ज्ञाता शौक्वायनि और चौथा तपन ये चारों के नाम बताये गये हैं ॥५१॥ फिर पद्यों के तीन प्रकार के उत्तम भेद बता लो । एक जाजलि दूसरा कुमुदावि और तीसरा मौनक कहा गया है ॥५२॥ मौनक ने दो भेद करके उनमें से एक बभ्रु के लिये दिया था । द्वितीय जो सहिता था उसे उस परम बुद्धिमान् ने सैन्धवायन नाम वाले को दिया था ॥५३॥ सैन्धव ने मुखकेश के लिये दी फिर वह दो प्रकार की भेद वाली हुई थी । नक्षत्र कल्प, वैतान, तृतीय सहिता विधि, चतुर्थ अङ्गिरस कल्प, पञ्चम शान्ति कल्प होता है ॥५४॥ ये जो सहिताओं के विकल्पन हैं उनमें अवर्णो श्रेष्ठ होता है । हे ऋषि सत्तमा । छँ प्रकार से करके मैं भी पुराण को कहा है ॥५५॥ आग्नेय, मुमति, धोमान्, काश्यप, अङ्कतन्नर, भारद्वाज, अग्निवर्चा, वसिष्ठ, मित्रयु, सार्वणि, सोमवत्ति, सुशर्मा, शाशपायन ये इतने पुराणों में दृढव्रत वाले भेदे शिष्य थे । फिर तीनों ने तीन सहिताओं के तीन किये ॥५६॥५७॥

काश्यप सहिताकर्त्ता सार्वणि शाशपायन ।

सामिका च चतुर्थी स्यात्सा चैवा पूर्वसहिता ॥५८॥

सर्वास्तिहि चतुष्पादा सर्वाश्चकार्यवाचिका ।

पाठान्तरे पृथग्भूता वेदगात्रा यथा तथा ।
 अतः साहस्रिका सर्वा शासपायनिकामृते ॥५६॥
 सोमहवणिका भूलास्ततः काश्यपिका परा ।
 सार्वणिकास्तृतीयास्ता यजुर्वक्त्रिमाथपण्डिता ॥५७॥
 शासपायनिकाश्चान्या नोदनाथविभूषिता ।
 सहस्राणि श्रुचामष्टौ पट्णतानि तथैव च ॥५८॥
 एता पञ्चदशान्याश्च दशाया दशभिस्तथा ।
 बालवित्या समप्रक्षा (पा) ससावर्णा प्रकीर्तिता ॥५९॥
 अष्टौ सामसहस्राणि सामानि च चतुर्दश ।
 आरण्यक सहोमच एता गामन्ति सामगा ॥६०॥

काश्यप सार्वणि और शासपायन सहितानि हैं और यह पूर्व संहिता
 भीषी सामिना होती है । वे सब चार पादो वाली हुषा करती है और सभी
 एकार्थ की वाचिका भी होती है । वेद की बालाएँ यथा तथा पाठान्तर में
 पृथक् होती हैं । शासपायनिका के बिना सब चार सहस्र वाली हैं ॥५६॥५७॥
 भूल सोमहवणिका है इनके पश्चात् काश्यपिका होती है । तृतीय सार्वणिका
 है वे यजु के वाक्यान्व की पहिळत होती हैं ॥५८॥ अन्य जो शासपायनिका
 शाखाएँ हैं वे मोदन के भवन से विभूषित होती हैं । ऐसे में कुल पाठ सहस्र
 छ सौ श्रुचाएँ हैं ॥५९॥ वे अन्य पञ्चदश हैं और दसवी दश के साथ दश हैं
 बालवित्या जो हैं वे समप्रक्षा ससावर्णा कही गई हैं ॥६०॥ पाठ साम
 सहस्र और चौदह साम हैं । सामना योग इसको आरण्यक और सहोम धाय
 भरत है ॥६१॥

द्वादशैव सहस्राणि छन्द आभ्ययन स्मृतम् ।
 यजुषा ब्राह्मणानाञ्च यथा व्यासो व्यकल्पयत् ॥६४॥
 सम्राभ्यारण्यकन्तस्स्यात्समं त्रकरणं तथा ।
 अतः परं कथानान्तं पूर्वा इति विशेषणम् ॥६५॥
 आभ्यारण्य समं त्रच श्रुगब्राह्मणयजु स्मृतम् ।
 तथा हरिद्रवीर्याणां पिबान्युपविबलानि च ।

तथैव तैत्तिरीयाणां परक्षुद्रा इति स्मृतम् ॥६६

द्वे सहस्रे शतन्यूने वेदे वाजसनेयके ।

ऋगण परि सख्यातो ब्राह्मणन्तु चतुर्गुणम् ॥६७

अष्टौ सहस्राणि शतानि चाष्टौ अशीतिरन्यान्यधिकश्च पाद ।

एतत्प्रमाणं यजुषामृचाश्च सशुक्रिय साखिल याज्ञवल्क्यम् ॥६८

तथा चरणविद्यानां प्रमाणं सहिता शृणु ।

पट्साहस्रमृचामुक्तमृच पट्विंशति पुनः ।

एतावदधिकं तेषां यजुः कामं विवक्षति ॥६९

एकादश सहस्राणि दश चान्या दशोत्तरा ।

ऋचान्वश सहस्राणि अशीतिविंशतानि च ॥७०

सहस्रमेक मन्त्राणामृचायुक्तं प्रमाणतः ।

एतावदभृगुविस्तारमन्यज्ञाधिकं बहु ॥७१

बारह सहस्र छन्द आध्यत्म्य कहल गये हैं । यजु का और ब्राह्मणों का अर्थात् ब्राह्मण भागों का जिन तरह ग्यान प्रवृत्ति विस्तार कल्पित किया है ॥ ॥६४॥ यह सप्रामाण्य एक तथा समन्तर रख होता है । इससे भागे कवाचों का तो पूर्वा यह विधेयण होगा है ॥६५॥ प्रामाण्य और समान ऋक्-ब्राह्मण और यजु कहा गया है । इसी प्रकार से तारिद्वीयों के खिलामि एवं उपखिलामि तथा तैत्तिरीयों के परक्षुद्रा कहा गया है ॥६६॥ सो कर दो हजार वाजसनेयक वेद में ऋक् गण की परिसंख्या की गई है, ब्राह्मण भाग तो बीगुना होता है ॥६७॥ आठ सहस्र आठसौ अस्मी अन्यान्य और अधिक पाद होता है । यह प्रमाण यजु का और सशुक्रिया साखिल याज्ञवल्क्य ऋक् का है ॥६८॥ इसी प्रकार से चरण विद्याओं का प्रमाण एवं महिमा का प्रमाण करो । छे सहस्र छन्दों में ऋचाओं का कहा गया है । इतना अधिक उतका यजु है जो काम को कहता है ॥६९॥ मारुत हजार दशोत्तर और अन्य दश है । दस सहस्र तीन सौ अस्मी ऋक् है ॥७०॥ ऋचाओं, मन्त्रों का एक सहस्र प्रमाण से कहा है । इतना ऋक् का विस्तार है और अन्य बहुत आधिक होता है ॥७१॥

ऋचामथवणा यच्च सहस्राणि विनिश्चय ।
 सहस्रमन्यद्विजममृपिभिर्विचरति बिना ॥७२॥
 एतदङ्गिरसा प्रोक्तन्तेषामारण्यक पुन ।
 इति सख्या प्रसख्याता शास्त्राभेदास्तथैव च ॥७३॥
 कर्त्तारिश्चैव शास्त्रानां भेदे हेतुस्तथैव च ।
 सवमन्तरेष्वेव शास्त्राभेदा समा स्मृता ॥७४॥
 प्राजापत्या अतिनिस्त्या तद्विकल्पास्त्वमे स्मृता ।
 अनित्यभावाददेवानां मन्त्रोत्पत्ति पुन पुन ॥७५॥
 मन्वन्तराणां क्रियते सुराणां नामनिश्चय ।
 द्वापरेषु पुनर्भेदा अताना परिकीर्त्तिता ॥७६॥
 एव भेद तथान्यस्य भववानृपिसत्तम ।
 शिष्येभ्यश्च पुनर्दत्त्वा तपस्तप्नु गतो वनम् ।
 तस्य शिष्यप्रशिष्यस्त शास्त्राभेदास्त्वमे कृता ॥७७॥
 भङ्गानि येषाम्प्रत्यारो भीमासा न्यायविस्तर ।
 धन शास्त्रं पुराणञ्च विद्यास्तमेताव्रतुवश ॥७८॥

मन्वन् नृपामो का वीच सहस्र विनिश्चय होता है । वीच के बिना
 ऋषियों के द्वारा अन्य सहस्र जानना चाहिए ॥७२॥ यह अङ्गिरस ने कहा है
 फिर उनका आरण्यक होता है । यह सख्या प्रसख्यात की गई है और इसी
 प्रकार से शास्त्राभेद के भेद भी बताए गये हैं ॥७३॥ शास्त्राभेद के करने वाले
 और उनका भेद में उसी प्रकार से हेतु सभी मन्वन्तरो य इस तरह से शास्त्राभेद
 के ज्ञेय समान कहे गये हैं ॥७४॥ प्राजापत्य अति निस्त्य हैं उनका विकल्प वे
 कहे गये हैं । देवों के अनित्य भाव से मन्त्रों की उत्पत्ति बार-बार होती है ॥
 ७५॥ मन्वन्तर सुरों के नाम का निश्चय किया जाता है । द्वापरो में फिर
 अतों के भेद कहे गये हैं ॥७६॥ इस प्रकार ॥ उस समय में ऋषि सत्तम भग
 वाद् अन्य की शिष्यों के लिये फिर देवर तपस्वा करने को वन में चले गये थे ।
 उनके शिष्य एवं शिष्यों के शिष्य प्रशिष्यों ने वे समस्त शास्त्राभेद के भेद किये

है ॥७७॥ अङ्ग वेद चार है । श्रीमहा, न्याय विस्तार, अर्धशास्त्र और पुराण
ये चौदह विद्याएँ हैं ॥७८॥

प्रायुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रय ।
अथैवात्र चतुर्वन्तु विद्यास्त्वष्टादर्शव तु ॥७९॥
ज्ञेया ब्रह्मर्षय पूर्वन्तेम्यो देवर्षय पुन ।
राजर्षय पुनस्तोम्य ऋषिप्रकृतयश्च य ।
तेम्य ऋषिप्रकृतयो मुनिभि शसितव्रतै ॥८०॥
कश्यपेषु वसिष्ठेषु तथा भृश्वङ्गिरोऽत्रिषु ।
पञ्चस्वेतेषु जायन्ते गोत्रेषु ब्रह्मवादिन ।
यस्मादृषन्ति ब्रह्माण्तेन ब्रह्मर्षय स्मृता ॥८१॥
धर्मस्याथ पुंसस्तथस्य ऋतोऽथ पुंसहस्य च ।
अत्यूषस्य प्रभासस्य कश्यपस्य तथा पुन ॥८२॥
देवर्षय सुतास्तेषा नाभतस्ताम्रिवोधत ।
देवर्षी धर्मपुत्रौ तु नरनारायणावुभौ ॥८३॥
बालखिल्या ऋतो पुत्रा कर्म पुंसहस्य तु ।
कुबेरश्चैव पौलस्त्य अत्यूषस्याचल स्मृत ॥८४॥
पर्वतो नारदश्चैव कश्यपस्यात्मजावुभौ ।
ऋषन्ति देवान् तस्मात्ते तस्माद्देवर्षय स्मृता ॥८५॥

प्रायुर्वेद, धनुर्वेद और गान्धर्व वे तीन हैं । अर्धशास्त्र भीषा है, ये
ब्रह्मदर्श विद्याएँ हैं ॥७९॥ पहिले ब्रह्मर्षियों को जानना चाहिए इसके पश्चात्
देवर्षि फिर राजर्षि, वे ऋषियों की तीन प्रकृतियाँ होती हैं । शसित व्रत मुनियों
के द्वारा उनसे ऋषि प्रकृतियाँ होती हैं ॥८०॥ कश्यप वसिष्ठ-भृगु-अङ्गिरा और
अपि इन पाँचों गोत्रों में ब्रह्मवादी उत्पन्न होते हैं । जिस कारण से वे सब ब्रह्मा
को ऋषि किया करते हैं इसीलिये ये ब्रह्मर्षि कहे जाते हैं ॥८१॥ धर्म-पुलस्त्य-
ऋतु-पुलह-अत्यूष-प्रभास और कश्यप के देवर्षि पुत्र हैं, उनके जो नाम हैं वे सब
जान लो । नर और नारायण ये दोनों धर्म के पुत्र देवर्षि हैं ॥८२॥८३॥ बाल-
खिल्य ऋतु के पुत्र हैं, कर्म पुलहान पुत्र हैं—कुबेर पुलस्त्य का और अचल

प्रत्यय का पृथक् कहा गया है ॥८४॥ पंचत और नारद ये दोनों कश्यप के आत्मन हैं । ये देवों को श्रुण्व करते हैं इसी कारण वे वे देवर्षि कहे गये हैं ॥८५॥

मानवे वपये वणे ऐलवन्ते च य नृपा ।

ऐला ऐलवाकनाभागा ज्ञया राजपयस्तु ते ॥८६॥

श्रुपन्ति रज्जनाद्यमात्राया राजपयस्तत ।

ब्रह्मलोकप्रतिष्ठास्तु स्मृता ब्रह्मर्षयो मता ॥८७॥

देवलोकप्रतिष्ठास्तु ज्ञया देवपय शुभा ।

इन्द्रलोकप्रतिष्ठास्तु सर्वे राजपयो मता ॥८८॥

अभिजात्या च तपसा मन्त्रव्याहरणस्तथा ।

एव ब्रह्मपय प्रोक्ता दिव्या राजपयस्तु ये ॥८९॥

देवपयस्तथान्ये च तेषा वक्ष्यामि सक्षरणम् ।

भूतमव्यभवज्ञान सत्याभिध्यातृषु तथा ॥९०॥

सम्बुद्धास्तु स्वयं ये तु सम्बुद्धा ये च १ स्वयम् ।

तपसेह प्रसिद्धा ये गर्भयश्च प्रणोदितम् ॥९१॥

मन्त्रव्याहारिणो ये च ऐश्वर्यास्तिर्गणाश्च ये ।

इत्येते श्रुविभियुक्ता देवद्विजनृपास्तु ये ॥९२॥

एतान् भावानधीयाना ये चैत श्रुपियो मता ।

सप्त ते सप्तभिश्चैव गुरो सप्तर्षयः स्मृता ॥९३॥

मानव वपय वण मे और ऐल वण मे जो राजा है वे ऐल-ऐलवाक और नाभाग राजर्षि जानने के योग्य हुए हैं ॥८६॥ श्रुण्व करते हैं और प्रजापति का रक्षण करते हैं इसलिये इन्हें राजर्षि कहा गया है । ब्रह्म लोक प्रतिष्ठा वाल ब्रह्मर्षि माने गये हैं ॥८७॥ देवलोक में प्रतिष्ठा जाने कुछ देवर्षि कहे गये हैं । इन्द्र लोक में प्रतिष्ठा जाने सब राजर्षि माने गये हैं ॥८८॥ अभिजाति से और तप से तथा मन्त्रों के व्याहरणों से इस प्रकार से ब्रह्मर्षि दिव्य तथा राजर्षि कहे गये हैं ॥८९॥ जो अन्य देवर्षि हैं उनके मन्त्रों में वतसाहोय । भूत मव्य भव का ज्ञान तथा सत्याभिध्यातृ भी वतसाया आश्रय ॥९०॥ जो स्वयं ही सम्बुद्ध हुए और जो स्वयं सम्बुद्ध हैं यहाँ जो तप से प्रसिद्ध हुए और जिन्होंने गर्भ मे

प्रलोकित किया, जो मन्त्रों के व्याहरण करने वाले हैं और जो ऐश्वर्य से सर्वत्र गमन करने वाले हैं, ये देव-द्विज और नृप ऋषियों से युक्त हैं। इन भावों का अध्ययन करते हुए और जो वे ऋषि माने गये हैं वे सप्त मुखों से युक्त सात ही हैं इसीलिए सप्तर्षि कहे गये हैं ॥६१॥६२॥६३॥

दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दिव्यचक्षुषः ।

बुद्धा प्रत्यक्षवर्मास्तो गोत्रप्रवर्तकाश्च ये ॥६४॥

पटकर्माभिरता नित्यशालिनो गृहमेचिनः ।

तुल्यैर्बर्ग्यहरन्ति स्म ग्रहष्टैः कर्महेतुभिः ॥६५॥

अग्राम्यैर्वैत्तयन्ति स्म रसेश्चैव स्वयंकृतैः ।

कुटुम्बिनश्चद्धिमन्तो बाह्यान्तरनिवासिनः ॥६६॥

कृतादिषु युगाख्येषु सर्गेष्वेव पुन पुनः ।

वर्णाश्रमव्यवस्थान् क्रियन्ते प्रथमन्तु यैः ॥६७॥

प्राप्ते भेतायुग्मुखे पुन सप्तर्षयस्तिवहः ।

प्रवर्तयन्ति ये वर्णाश्रमाश्चैव सर्वाः ।

तेषामेवान्वये वीरा उत्पद्यन्ते पुन पुनः ॥६८॥

दीर्घ आयु वाले—मन्त्रों के करने वाले—ईश्वर-दिव्य चक्षु वाले—बुद्ध-प्रत्यक्ष वर्म वाले—और जो गोत्रों के प्रवर्तक हैं—बहु कर्मों में रत रहने वाले नित्यशाली—गृहमेची—ग्रहष्ट कर्मों के हेतुओं से तुल्य व्यवहार किया करते हैं। वे जो स्वयं कृत अग्राम्य रसों से वलीन किया करते हैं वे—कुटुम्बी-द्धि वाले—बाह्य और अन्तर के निवास करने वाले कृतादिनाम वाले समस्त युगों में बार-बार पहिले वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था जिनके द्वारा की जाती है। भेता युग के मुख के प्राप्त होने पर यहाँ पर पुन ये सप्तर्षि गण सवय वर्णों और आश्रमों का प्रवर्तन करते हैं उन्हीं के वंश में वीर बार-बार उत्पन्न होते हैं ॥६४॥॥६५॥॥६६॥॥६७॥॥६८॥

जायमाने पिता पुत्रे पुत्र पितरि चैव हि ।

एग समेत्याविज्येदाद्वर्तयन्त्यायुग्मक्षयात् ।

यथाशीतिसहस्राणि प्रोक्तानि गृहमेचिनाम् ॥६९॥

अयम्णो दक्षिणा ये तु पितृयाण समाश्रिता ।
 दारान्निहोत्रिणस्ते १ ये प्रजाहेतव स्मृता ॥१००॥
 गृहमेधिनाञ्च सस्येया श्मशानान्याप्ययन्ति ते ।
 अष्टाशोतिसहस्राणि निहिता उत्तरायणे ॥१०१॥
 ये श्रूयन्ते दिम प्राप्ता आपयो ह्यूढ रेतस ।
 मन्त्रब्राह्मणकर्तारो जायन्ते ह युगधये ॥१०२॥
 एवमावर्त्तमानास्ते द्वापरेषु पुन पुन ।
 कल्पाना भाष्यविद्याना नानाशास्त्रकृत क्षये ॥१०३॥
 भविष्ये द्वापरे च व द्रोणिर्द्वैपायन पुन ।
 वेदव्यासो ह्यतीतेऽस्मिन् भविता सुमहातपा ॥१ ४॥
 भविष्यन्ति भविष्येषु शाखाप्रणयनानि तु ।
 तस्म तद्ब्रह्मण ब्रह्म तपसा प्राप्तमव्ययम् ॥१ ५॥

पुत्र के उत्पन्न हो जाने पिता धीर पिता के विषय में पुन इस प्रकार से
 परिच्छेद से भितकर युग के क्षय वदन्त वर्त्तन किया करते हैं । व ऐसे गृहमेधी
 घठठासी ह्वार कहे गए हैं ॥१६६॥ मयमा के जो दक्षिण होते हैं वे पितृयाण म
 समाश्रित होते हैं । वे दारान्निहोत्री हैं और जो प्रजा के हेतु रूप कहे गये हैं
 ॥१ ॥ जो गृहमेधी श्मशानों का आश्रय करते हैं उनकी सख्या करने के योग्य
 हैं वे भी घठठासी ह्वार उत्तरायण म निहित होते हैं ॥१ २॥ जो ऊढ रेतस श्रुति
 दिव्य मात्र में प्राप्त हो गये हैं और ऐसे सुने जाते हैं वे मन्त्र धीर ब्राह्मण के
 कर्ता युग के क्षय हो जाने पर उत्पन्न हुआ करते हैं ॥१ २॥ इस प्रकार से
 द्वापरो में पुन पुन आव-मान हाते हैं और क्षय म चलने भाष्य विद्याओं के
 नाश प्रकार के शाखों के करने वाले होते हैं ॥१ ३॥ भविष्य द्वापर में फिर
 द्रोणि द्वैपायन सुमहातपा वेदव्यास इनके अतीत हो जाने पर होंगे ॥१ ४॥
 भविष्यो में शाखा प्रणयन होंगे । उसके लिए उस ब्रह्म के द्वारा तप से अव्यय
 ब्रह्म प्राप्त किया गया था ॥१ ५॥

तपसा नम सम्प्राप्त कर्मणा हि ततो यय ।

यस्यसा प्राप्य सत्य हि सत्येनालो हि आन्वय ॥१ ६॥

अव्ययादमृत शुक्लममृतात् सर्वमेव हि ।

ध्रुवमेकाक्षरमिदं स्वात्मन्येव व्यवस्थितम् ।

वृहन्वाद्बृहण्यञ्चैव तद्ब्रह्मैवैवमभिधीयते ॥१०७॥

प्रणवान् स्थितं भूयो भूर्भुवःस्वरिति स्मृतम् ।

ऋग्यजुः सामागर्वरूपिणो ब्रह्मण्ये नमः ॥१०८॥

जगतः प्रलयोत्पत्तौ यत्तत्कारणसञ्चितम् ।

महत्तः परमं गुह्यं तस्मै सुब्रह्मण्ये नमः ॥१०९॥

अगाधापरमक्षय्यं जगत्सम्मोहनालयम् ।

सप्रकाशप्रवृत्तिभ्यां पुरुषार्थप्रयोजनम् ॥११०॥

साङ्ख्यज्ञानवता निष्ठा गतिः सङ्गदमात्मनः ।

यत्तदव्यक्तममृतं प्रकृतिप्रज्ञां शाश्वतम् ॥१११॥

प्रधानमात्मयोनिञ्च गुह्यं सत्त्वञ्च शब्दयते ।

अविभागस्तथा शुक्लमक्षरं बहु वाचकम् ।

परमब्रह्मणो तस्मै नित्यमेव नमो नमः ॥११२॥

तपसे कर्म सम्प्राप्त किया और कर्म के द्वारा फिर यज्ञ का लाभ हुआ ।

यज्ञ से सत्य को पाकर फिर उस सत्य से अव्यय को प्राप्त किया ॥१०६॥ अव्यय

से अमृत और अमृत से सभी शुक्ल को प्राप्त किया । यह ध्रुव एकाक्षर अपनी

आत्मा में ही व्यवस्थित है । वृहन् होने से और वृहण होने के कारण से ही

वह ब्रह्म ऐसे नाम से कहा जाया करता है ॥१०७॥ प्रणव के रूप में व्यवस्थित

फिर 'भूर्भुवः स्व' ऐसा कहा गया है । उस ऋग्-यजु-साम और धार्व्य के रूप

वाले ब्रह्म के लिए नमस्कार है ॥१०८॥ इस जगत् की प्रसव और उत्पत्ति में

जो वह कारण की सजा वाला कहा गया है वह महत् का परम गुह्य है उस

गुह्य के लिए नमस्कार है ॥१०९॥ यह जगत् अगाध-अपार अक्षय्य और

सम्मोहन का धर है । सप्रकाश प्रवृत्तियों से पुरुषार्थ के प्रयोजन वाला होता

है ॥११०॥ सख्य के ज्ञान वालों की निष्ठा-गति-आत्मा का सच्छुद्ध जो वह

अव्यक्त-अमृत-प्रकृति ब्रह्म-शाश्वत है वह प्रधान-आत्मयोनि-गुह्य और सत्य इन

शब्दों से कहा जाता है । अविभाग शुक्ल है और अक्षर बहुत का वाचक होता

है । उस परम ब्रह्म के लिये नित्य ही नमस्कार है ॥१११॥११२॥

कृते पन क्रिया नास्ति कुत एवाकृतक्रिया ।
 सकृदेव कृतं सच यद्व लोके कृताकृतम् ॥११२॥
 श्रोतव्यं वा श्रुतं वापि तथवासाधुसाधुता ।
 ज्ञातव्यञ्चाथ मन्तव्यं स्पष्टव्यं शोभ्यमेव च ।
 द्रष्टव्यञ्चाथ श्रोतं य ज्ञातव्यं वाथ किञ्चन ॥११३॥
 दर्शितं यदनेनैव ज्ञानं तद्वं सुरपिण्डम् ।
 यद्व दर्शितवानेष कस्तदन्वेष्टुमर्हति ।
 सर्वाणि सर्वान्सर्वाश्च भगवानेव सोऽजयीत् ॥११४॥
 यदा यत्क्रियते येन तदा तत्स्रोऽभिमान्यते ।
 येनेदं क्रियते पूव तदन्वेन विभावितम् ॥११५॥
 यदा तु क्रियते किञ्चित्केनचिद्वाह मय क्वचित् ।
 तेनैव तत्कृतं पूव कर्तृणा प्रतिभाति च ॥११६॥
 विरक्तञ्चातिरिक्तञ्च ज्ञानाज्ञाने प्रिमाप्रिये ।
 धर्माधर्मौ सुख दुःख मृत्युश्चामृतमेव च ।
 ऊढं न्तिथगर्भोभामस्तस्य बाहृष्टकारणम् ॥११७॥
 स्वायम्भुवोऽथ ज्येष्ठस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
 प्रत्येकविद्यम्भवति त्रेतास्विह पुनः पुनः ॥११८॥

कृत में क्रिया नहीं है फिर अकृत की क्रिया कसे ॥११२॥ एक बार जो
 सब किया गया है वह लोक में कृताकृत है ॥११३॥ श्रुत को सुनना चाहिए
 उसी प्रकार से असाधु साधुता है । जानना चाहिए—मानना चाहिए—स्पर्श
 के योग्य होना चाहिए—भोज करना चाहिए—देखना चाहिए—सुनना चाहिए—
 कुछ जानना चाहिए ॥११४॥ जो इसी के द्वारा देखा गया वह सुरपियों का
 ज्ञान है । जिसने यह देखा है वह ज्ञान है नहीं दूसरे के योग्य होता है । सबको
 सबको भगवान् ही है ऐसा वह बोल ॥११५॥ जिस समय में जो जिसके द्वारा
 किया जाता है उस समय उसके द्वारा वह माना जाता है । जिसके द्वारा यह
 पहिल किया जाता है वह धम्म के द्वारा विभावित होता है ॥११६॥ जिस समय
 किसी के द्वारा कुछ बाह्य मय वही पार किया जाता है वह उसी के द्वारा पहिले

किया हुआ करने वालों को प्रतिमान होता है ॥११७॥ ज्ञान और अज्ञान में-
प्रिय और अप्रिय में विरक्त और अतिरिक्त-वर्ग एवं अघर्म-सुख-दुःख-मृत्यु-
अमृत-ऊर्ध्व-तिर्यक् और अधोमुख ये सब उसी महत्त्व का कारण होता है
॥११८॥ ज्येष्ठ परमेश्वर ब्रह्मा का स्वायम्भुव यहाँ चेताओं में पुन-पुन प्रत्येक
विद्य वाला होता है ॥११९॥

अस्मत्ते ह्येकविंशन्तद्वापरेषु पुनः पुनः ।
ब्रह्मा चैतदुवाचादौ तस्मिन् वैवस्वतेऽन्तरे ॥१२०॥
भावर्त्तमाना अपयो युगाख्यासु पुनः पुनः ।
कुर्वन्ति सहिता ह्येते जायमाना परस्परम् ॥१२१॥
अष्टाशीतिसहस्राणि श्रुतर्षीणा स्मृतानि वै ।
ता एव सहिता ह्येते भावर्त्तन्ते पुन पुनः ॥१२२॥
अविता वक्षिषुष्यन्वान ये श्मशानानि भेषिरे ।
युगे युगे तु ताः शाखा व्यस्यन्ते तैः पुन पुनः ॥१२३॥
द्वापरेणिव सर्वेषु सहिताश्च श्रुतर्षिभिः ।
तेषा गोत्रेष्विमाः शाखा भवन्तीह पुनः पुनः ।
ताः शाखास्तत्र कर्त्तारो भवन्तीह युगक्षयात् ॥१२४॥
एवमेव तु विज्ञेय व्यतीतानागतेष्विह ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु शाखाप्रणयनानि वै ॥१२५॥
अतीतेषु अतीतानि वर्तन्ते साम्प्रतेषु च ।
अविध्याणि च यानि स्युर्वर्ण्यन्तेऽजागतेष्वपि ॥१२६॥

द्वापरो में बार-बार एक विद्य वाला व्यवस्थमान होता है । भावि में
वैवस्वत मन्वन्तर में ब्रह्माजी ने यह बोला था ॥१२०॥ अध्विगण बार-बार
युगाख्याओं में भावर्त्तमान होते हैं और परस्पर में जायमान होते हुए इन
सहिताओं को किया करते हैं ॥१२१॥ अष्टाशी हजार श्रुतर्षि कहे गए हैं और वे
ही सहिताएँ बार-बार भावर्त्तमान हुआ करती हैं ॥१२२॥

वशिष्ठ मापों का आश्रय होने वाले जिन्होंने श्मशानों का सेवन किया
था युग-युग में पुन पुन वे ही शाखाओं को किया करते हैं ॥१२३॥ यहाँ सब

द्वारो म मूर्तपितो के द्वारा सहितए और उनके दोनों मे य साक्षाए बार-बार होती है । यहाँ पर साक्षाए वहाँ पर उनके करने वाले युग के शय स होते है ॥१२४॥ इसी प्रकार से जो व्यतीत हो गये है उनमे और जो भागे होने वाले अतर्गन है उनमे सब जान सना चाहिए । सब मन्वन्तरो म साक्षाओ के प्रणयम भी जान सने चाहिए ॥१२५॥ अनीतो मे अतीत होत हैं और साम्भतो मे अर्थात् वर्तमानो मे और जो भविष्य है वे अनागतो म वर्णित किय जाते है ॥१२६॥

पूर्वेण पश्चिम शय वत्तमानेन चोभयम् ।

एतेन क्रमयोगेन मन्वन्तरविनिश्चयः ॥१२७॥

एव देवाश्च पितर ऋषयो मनवश्च ये ।

म न सहोद्व गन्धन्ति ह्यावतन्ते च त सह ॥१२८॥

जनलोकात्पुरा सर्वे पशुकल्पात्पुन पनः ।

पर्याप्तकाले सम्प्राप्ते सम्भूता नव नस्य (?) तु ॥१२९॥

अथदग्धराविनार्थेन सम्बध्यते सदा तु ते ।

ततस्ते दीपवज्जलम पश्यन्ते रागपूवकम् ॥१३०॥

निवसते सदा वृत्तिस्तेषामावोपदक्षनात् ।

एव देव धुगानीह बलकृत्वा निवसते ॥१३१॥

जनलोकात्तपोलोक गन्धन्तीहानिवस्तनम् ।

एव देवधुगानीह व्यतीतानि सहस्रशः ।

निघन ब्रह्मलोके च गतानि मुनिभिस्तद्व ॥१३२॥

म शनमभानुपूर्व्येण तेषा वक्तुं सविस्तरान् ।

अनादित्वाच्च कालस्य असङ्ख्यपन्नाच्च सवत् ।

मन्वन्तराव्यतीतानि यानि कल्प पुरा सह ॥१३३॥

पूव से पश्चिम जानना चाहिए और वर्तमान से पूर्व और पश्चिम दोनों को ही जान सने चाहिए । इस क्रम के योग से मन्वन्तरो का विनिश्चय हुआ करता है ॥१२७॥ इसी प्रकार से सब पितर ऋषि और मनुष्य ये सब मन्त्रो के सहित ऊँच शाय को चले जाया करते हैं और उनके साथ ही फिर आवर्त्त-

है ॥१४२॥ यज्ञा पर समस्त प्राणी सूय ही त्रिगुणों से द्रव हो जाते हैं । यज्ञा को आगे करके देव-ऋषि और बानवों के साथ देवों के देव और मुनि के ईश्वर भईश्वर में प्रवेश किया करते हैं ॥१४३॥ यह ही कल्पादि में बार-बार समस्त प्राणियों का सय होता है । यह ही देवर्षियों के साथ मनु ही स्थिति का काल होता है ॥१४४॥ समस्त मन्वन्तरो ही प्राप्ति सन्धि की समझणों । मैंने उनमें पहिले ही युगारम्भ जो तुम्हारे सामने समुद्दिष्ट ही थी ॥१४५॥ अतएव प्राणि संपुक्त चतुर्गुण कहा गया है । यह इक्ष्वाकु युगा परित्यक्त नाविक मनु का एतद्विकार भगवान् प्रभु ने यत्नाया था ॥१४६॥

एव मन्वन्तराणां तु सर्वेषामेव लक्षणम् ।
 यतीतानामताना वै वर्तमानेन कीर्तितम् ॥१४७॥
 इत्येव कीर्तितं सर्गो मनो स्वायम्भुवस्य ह ।
 प्रति सन्धिन्तु वक्ष्यामि तस्य यं चापरस्य तु ॥१४८॥
 मन्वन्तरं यथा पूर्वमृषिभिर्देवैर्तं सह ।
 अथव्यम्भाविनायैतं यथा तर्ह्य निवर्तते ॥१४९॥
 अस्मिन् मन्वन्तरे पूर्व त्रैलोक्यमस्येश्वरास्तु ये ।
 सप्तर्षयश्च देवास्ते पितरो भगवस्तथा ।
 मन्वन्तरस्य काले तु सम्पूर्णं साधकास्तथा ॥१५०॥
 क्षीणाधिकारा सृता बुद्धा पर्यायमात्मनः ।
 महर्षीकाय ते सर्वे उन्मुखा दविरे गतिम् ॥१५१॥
 ततो मन्वन्तरे तस्मिन् प्रसीक्षा देवतास्तु ता ।
 सम्पूर्णं स्थितिकाले तु तिष्ठन्त्येक कृत युगम् ॥१५२॥
 उत्पद्यन्ते भविष्याश्च यावन्मन्वन्तरेश्वरा ।
 देवता पितरश्चैव ऋषयो मनुरेव च ॥१५३॥

इसी प्रकार से सभी मन्वन्तरो का लक्षण होता है । यतीत और भगवतो का वर्तमान के द्वारा किया गया है ॥१५०॥ यह स्वायम्भुव मनु का सर्ग का साधना गया है । अब उसकी तथा दूसरे की प्रति सन्धि-वर्तलाङ्गण ॥१५१॥ जिस प्रकार से पहिले ऋषि और देवों के साथ मन्वन्तर अवश्यम्भावी सर्व से

जसे वह निवृत्त होता है ॥१४६॥ इस मन्वन्तर में पहिले जो त्रैलोक्य के ईश्वर हैं—सप्तर्षि देव—पितर तथा मनुष्य वे सभी सम्पूर्ण मन्वन्तर के समय में साधक होते हैं ॥१५॥ श्रीशुभ्र अधिकार वाले हुए धारणे पर्याय (पापों) को जानकर वे सब महर्षियों के लिए उद्युक्त होते हुए बलि की चारण दिया करते थे ॥१५१॥ इसके पश्चात् उस मन्वन्तर प्रवीण हुए वे सब देवता एक कृत युग में पूरे स्थिति के समय में उद्धार करते हैं ॥१५२॥ बितने मन्वन्तर के ईश्वर हैं जैसे—देवता—पितर—ऋषि भोज और मनु उत्पन्न होते हैं और धारी होने वाले होते हैं ॥१५३॥

मन्वन्तरे तु सम्पूर्णं यद्यन्यद् कला मुने ।

सम्पद्यते कृतं तेषु कलिशिष्टेषु च तदा ॥१५४॥

यथा कृतस्य सन्तानं कलिपूर्व स्मृती बुध ।

तथा मन्वन्तरान्तेषु प्रादिमन्वन्तरस्य च ॥१५५॥

धीरो मन्वन्तरे पूर्वं प्रवृत्त चापरे पुन ।

भुजे कृतयुगस्याथ तेषां शिष्टास्तु ये तदा ॥१५६॥

सप्तर्षयो मनुष्य व काशान्विष्ठास्तु ये स्थिता ।

मन्वन्तर प्रतीक्षन्ते क्षीयन्ते तपसि स्थिता ॥१५७॥

मन्वन्तरव्यवस्थार्थं सप्तर्षयश्च सर्वस्य ।

पूषदस्य सम्प्रवृत्तन्ते प्रकृते वृष्टिसमये ॥१५८॥

इन्द्रोऽपि सम्प्रवृत्तेषु उत्पन्नास्वीपधीषु च ।

प्रजासु च निकृतासु सस्थितासु क्वचित् क्वचित् ॥१५९॥

वार्त्तायान्तु प्रवृत्तायां सप्तर्षेऽपि भाविते ।

निरानन्दे गते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥१६०॥

अग्रामनगरे चैव वर्णाग्रिमविवर्जिते ।

पूर्वमन्वन्तरे हि ते ये भवन्तीह धार्मिका ।

सप्तर्षयो मनुष्य व सतानां व्यवस्थिता ॥१६१॥

सम्पूर्ण मन्वन्तर में यदि धर्म बलिभुज में सम्पन्न होता है । बलिभुज

में फिर उनके होने पर उस समय कृत होता है ॥१६०॥ किस प्रकार से बुधों

ने कृत की सन्तान कनिष्वर्ण वतार्दी है उभी प्रकार से मन्वन्तरान्तो में मन्वन्तर का आदि हुआ करता है ॥१५५॥ पुनः मन्वन्तर के क्षीण हो जाने पर और फिर दूसरे के प्रवृत्त होने पर कृतयुग के सुख में और इसके अनन्तर जो उनके शिष्ट होते हैं वे उस समय में होते हैं ॥१५६॥ सप्तर्षियों का समुदाय और मनु जो कालापेक्ष स्थित होते हैं वे सब मन्वन्तर की प्रतीक्षा किया करते हैं और तप में स्थित क्षीण होते हैं ॥१५७॥ मन्वन्तर की व्यवस्था करने के लिए और सन्तति प्राप्त करने के वास्ते सब और वे पूर्व की ही भाँति वृद्धि के सजन के प्रवृत्त हो जाने पर वे सम्प्रवृत्त हुआ करते हैं ॥१५८॥ दुर्गा के सम्प्रवृत्त होने पर और सौमित्रियों के समुत्पन्न हो जाने पर और कहीं-कहीं पर प्रजाभो से निकलने से सन्निवृत्त होने पर ॥१५९॥ वार्त्ता के प्रवृत्त हो जाने पर तथा सद्धम के ऋषियों के द्वारा भाषित होने पर—समस्त इस लोक के आनन्द रहित हो जाने पर एक स्थावर (जड़-अचेतन) और जङ्गम (चेतन) के नष्ट हो जाने पर ॥१६०॥ आभो और नमरो से रहित लोग के हो जाने पर तथा चारों वर्ण और प्राणियों से एकवचन सून्य हो जाने पर पहिले मन्वन्तर के शिष्ट रहने पर यहाँ पर जो भी धर्म के मानने वाले व्यक्ति होते हैं वे सप्तर्षियों के समूह और मनु सन्तान की वृद्धि करने के लिए व्यवस्थित हुए वे ॥१६१॥

प्रजाध्वं तपता तेषा तपः परमदुश्चरम् ।

उत्पद्यन्तीह सर्वेषा निघनेष्विह सर्वश ॥१६२

देवासुरा पितृमरणा मृतयो मनवस्तथा ।

सर्पा भूता पिशाचाश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसा ॥१६३

ततस्तेषा तु ये शिष्टा शिष्टाचारान् प्रचक्षते ।

सप्तर्षयो मनुश्चैव आदौ मन्वन्तरस्य ह ।

प्रारम्भन्ते च कर्माणि मनुष्या देवतै सह ॥१६४

मन्वन्तरादौ प्रागेव चैतायुगमुखे ततः ।

पूर्वं देवास्ततस्ते वै स्थिते धर्मे तु सर्वशः ॥१६५

ऋषीणा ब्रह्मचर्येण गत्वाऽऽनृष्यन्तु वे ततः ।

पितृणा प्रजया चैव देवानामिज्यया तथा ॥१६६

शत वर्षसहस्राणि धर्मं वर्णात्मके स्थिता ।

त्रयी वार्त्ता दध्नीतीति धर्मान् वर्णार्थमास्तथा ।

स्थापयित्वाधर्माश्चैव स्वर्गाय दधिरे मती ॥१६७॥

पूव देवेषु तेभ्येव स्वर्गाय प्रमुखेष च ।

पूव देवास्ततस्ते च स्थिता धर्मेषु कृत्स्नसः ॥१६८॥

प्रजा की प्राप्ति करने के लिए तपस्वर्या करने वाले उनकी तपस्या प्राप्त की बुद्धि की । यहाँ पर सब लोगों का निश्चय (मुत्सु) हो जाने पर सभी और उत्पन्न हुआ करते हैं ॥१६२॥ देव तथा असुर-पितृगण-मुनि वृक्ष तथा मनुगण-सर्प-भूत-पिशाच-बन्धव-यक्ष और राक्षस इसके पश्चात् उनमें जो धिष्ठ वे वे सिद्धाचारों की विद्या करते हैं । मन्वन्तर आदि में मर्त्यपित्री का शत्रु वाय और मनु तथा देवों के साथ ही मनुष्य वर्णों का प्रारम्भ किया करते हैं ॥१६३ १६४॥ मन्वन्तर के आदि में पहिले ही वेताम्रुव के मुख में पहिले देव होते हैं इसके पश्चात् सभी और वे धर्म स्थित हो जाने पर ऋषियों के ब्रह्मचर्य का पूरा ध्यान करने से आनुस्व वर्णात् ऋण का चुकाया जाने की प्राप्ति हुए फिर इसके अनन्तर सत्तान की समुत्पत्ति करके उसके द्वारा पितृगण की अनुत्पत्ति (ऋण का समाप्त) प्राप्ति की फिर इसके अनन्तर इन्द्र का वजन करने से देवों की अनुत्पत्ति प्राप्ति की भी ऋषि-ऋण पितृ-ऋण और देव-ऋण ये तीन ऋणों का भार सभी के ऊपर रहता है जोकि ब्रह्मचर्य सत्तति और व्रत से क्रम से चुकाया जाता करता है ॥१६४ १६५ १६६॥ सो सहस्र वर्ष तक बर्णात्मक धर्म में स्थित होते हुए उन्होने त्रयी-वार्त्ता-दध्नी नीति वहाँ तथा प्राथमो के धर्मों की स्थापित करके और ब्रह्मचर्य-गार्हस्थ्य-वानप्रस्थ और सत्यास इन चारों प्राथमो की स्थापना करके फिर स्वर्ग के गमन करने की बुद्धि चारण की प्रार्थना स्वर्ग में भते गये वे ॥१६७॥ पहिले देवों के और फिर उनके स्वर्ग के लिए प्रमुख हो जाने पर पहिले देव और इसके पश्चात् वे सब पूर्णतया धर्म के राज निश्चित हुए वे ॥१६८॥

मन्वन्तरे परानृते स्थानान्मुत्सृज्य सवस्र ।

मन्त्र सहोध्यङ्ग्यन्ति महर्लोकमनामयम् ॥१६९॥

विनिवृत्तविकारास्ते मानसी सिद्धिमास्थिता ।
 अवेक्षमाणा वक्षिनस्तिष्ठन्त्याभूतसप्तवम् ॥१७०॥
 ततस्तेषु व्यतीतेषु सर्वेष्वेतेषु सर्वदा ।
 शून्येषु देवस्थानेषु त्रैलोक्ये तेषु सर्वदा ।
 उपस्थिता इहैवान्ये देवा ये स्वर्गवासिनः ॥१७१॥
 ततस्ते तपसा युक्ता स्थानान्यापूरयन्ति वै ।
 सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन च समन्विता ॥१७२॥
 सप्तर्षीणा मनोभ्यः व देवाना पितृभिः सह ।
 निधनानीह पूर्वेषामादिना च भविष्यता ॥१७३॥
 तेषामत्यन्तविच्छेद इह मन्वन्तरक्षयात् ।
 एव पूर्वानुपूर्व्येण स्थितिरेषानवस्थिता ।
 मन्वन्तरेषु सर्वेषु या वदाभूतसप्तवम् ॥१७४॥
 एषा मन्वन्तराणान्तु प्रतिसन्धानलक्षणम् ।
 प्रतीतानागतानान्तु प्रोक्त स्वायम्भुवेन तु ॥१७५॥

मन्वन्तर के परावृत्त होने पर सब धोर से स्थानों का त्याग करके
 मन्वी के साथ मानव रहित ऊर्ध्व महर्लोक को चले जाया करते हैं ॥११६॥
 समस्त प्रकार के विकारों के विक्षेप रूप से निवृत्त हो जाने वाले ये मानसी
 सिद्धि में स्थानित होते हुए अवेक्षमाणा और अपने आपको ब्रह्मा में रखने वाले
 भूत सप्तव पर्यन्त ठहरा करते हैं ॥१७०॥ इसके अनन्तर उन सबके व्यतीत
 हो जाने पर और सर्वदा इन सब शून्य देवों के स्थानों में त्रैलोक्य में सभी
 धोर से उनमें स्वर्ग में निवास करने वाले जो अन्य देव हैं वे सब यहाँ पर ही
 उपस्थित होते हैं ॥१७१॥ इसके पश्चात् वे सत्य व्रत के द्वारा-ब्रह्मचर्य के पूर्ण
 प्रतिपालन के द्वारा और श्रुत के द्वारा पुरुषतया सर्व समन्वित और तप से
 युक्त वे उन स्थानों की आपूर्ति किया करते हैं ॥१७२॥ सप्तर्षियों का-मनु का
 और पितृगण के साथ देवों की यहाँ पर मृत्यु पूर्व में होने वाली की भाँति से
 और भविष्यत् ॥ होती है ॥१७३॥ उनका अत्यन्त विच्छेद यहाँ पर मन्वांतर के
 क्षण से होता है । इस प्रकार से पूर्व की आनुपूर्वी से यह अनवस्थित स्थिति

प्रकार से यह स्वायम्भुव मनु का अन्तर विस्तारध्वज तथा आनुपूर्वी से कह दिया है अब आये फिर मैं क्या बखाने कह ॥१८६॥

॥ प्रकरण ४४ पृथ्वी-दोहन ॥

क्रम मन्वन्तराखान्तु ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ।
 दशतानां च सर्वेषां ये च मस्यान्तरे मनो ॥१॥
 मन्वन्तराणां यानि स्मृतीतानागतानि ह ।
 समास्ताद्विस्तराण्येव ब्रूवतो व निबोधत ॥२॥
 स्वायम्भुवो मनु पूव मनु स्वारोचिषस्तथा ।
 भीतमस्तामसश्च तथा रवतचाक्षुषी ।
 पक्षेते मनवोऽसीता वक्ष्याम्यष्टावमागतान् ॥३॥
 सावर्णा पञ्च रोच्यश्च भीत्यो धवस्वतस्तथा ।
 वक्ष्याम्येतान् पुरस्तात् मन्वोर्वैवस्वतस्य ह ॥४॥
 मन्व पञ्च येऽसीता मानवास्तान् निबोधत ।
 मन्वन्तर मया भीत क्रान्त स्वायम्भुवस्य ह ॥५॥
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मनो स्वारोचिषस्य ह ।
 प्रजास्य समासेन द्वितीयस्य महात्मन ॥६॥
 आसन् व तृपिता देवा मनुस्वारोचिषेऽन्तरे ।
 पारावताश्च विहासो दानेव तु मणौ श्रुतौ ॥७॥

श्री साङ्ख्यपामन ने कहा—मैं मन्वन्तरो के क्रम को तब पूरक जानने की इच्छा करता हूँ और जिस मनु के अन्तर में जो सब देवत हुए हैं उनके क्रम को भी जानने की इच्छा रखता हूँ । ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—अतीत और भविष्यत मन्वन्तरो के भी जो देवत होते हैं उनको संक्षेप से और विस्तार से बताने वाले मुझसे सब कुछ समझ लो ॥२॥ अब तक छ मनु व्यतीत हुए हैं उनके क्रम से जान ले ई—सबसे पहला मनु स्वायम्भुव हुआ था उसके पश्चात्

स्वारोचिष मनु हुए फिर ओषध तामस—रैवत और अन्त मे जाधुप मनु हुए है ।
 ये इतने ऊँ मनु तो अब तक व्यतीत हो चुके हैं । अब जो अनागत अर्थात्
 भविष्य मे होने वाले आठ मनु हैं उनको बताऊँगा ॥३॥ पाँच सावर्ण—रोच्य-
 भौत्य तथा वैवस्वत ये आठ हैं । वैवस्वत मनु के पहिले इनको बताऊँगा ॥४॥
 जो पाँच मनु अतीत हो चुके हैं उन मातवो को आप लोग जान लो । स्वायम्भुन
 का क्रान्त मन्वन्तर मैंने कह दिया है ॥५॥ इसके आगे जो स्वारोचिष मनु है
 उस द्वितीय महान् धारमा वाले की प्रजा का सर्व सखेप से बतलाऊँगा ॥६॥
 स्वारोचिष मन्वन्तर मे तुपिता और विद्वान् पारावत देव हुए थे उस समय ये दो
 ही गण कहे गये हैं ॥७॥

तुपिताया समुत्पन्ना क्रतो पुत्रा स्वारोचिष ।
 पारावताश्च शिष्टाश्च द्वादशीती गणौ स्मृतौ ।
 छन्दजाश्च चतुर्विंशद्देवास्ते वै तदा स्मृता ॥८॥
 धैवस्यशोऽथ वामान्यो गोपा देवायतस्तथा ।
 अजश्च भगवान् देवो दुरोणश्च महाबल ॥९॥
 आपश्चापि महाबाहुर्महोजाश्चापि वीर्यवान् ।
 चिकित्थान् मिथुनो यश्च अशोचश्चैव पथ्यते ।
 इत्येते क्रतुपुत्रास्तु तदासन् सोमपायिन ॥१०॥
 प्रचेताश्चैव यो देवो विश्वेदेवास्तथैव च ।
 समञ्जो विश्रुतो यश्च अजिह्वाश्चारिमहान् ॥११॥
 अजिह्वानमहीयानी चिन्तावन्ती तथैव च ।
 अजोपी च महाभागो यवीयश्च महाबल ॥१२॥
 होता यज्वा च इत्येते पराक्रान्ता परावता ।
 इत्येता देवता ह्यासन्मनुस्वारोचिपेन्तरे ॥१३॥
 सोमपास्तु तदा ह्येताश्चतुर्विंशतिदेवताः ।
 तेषामिन्द्रस्तदा ह्यासीद्वैधश्च लोकविश्रुतः ॥१४॥

तुपिता मे ऋतु के स्वारोचिष पुत्र उत्पन्न हुए । और शिष्ट पारावत
 उत्पन्न हुए ये द्वादश थे । ये दो गण कहे गये हैं और छन्दज ये थे उस समय

मे चौबीस देव कहे गये हैं ॥८॥ धरस्य-वामा-व-गोपा-देवायन-अज-भगवान्
 देव-दुरोण-महाबल-आप-महाबाहु-महीना-धीर्यवान्-चिकित्वा-निमृत्-
 अशोय ये सब पढ़े जाते हैं । ये सब ऋतु के पुत्र उस समय में सोमपायी हुए
 थे ॥९॥१॥ प्रचेता देव-वि-वेदेवा-विद्यत-अग्निह्न-अरिमदन-अजिह्मान-
 महीमान ये विद्यावान् थे जो अचोष जो महाशम ये-महीम-महाबल-हीता
 और मन्वा के सब परावत पराक्रांत हुए हैं । ये सब स्वारोचिष मन्व-उर म
 देवता थे ॥११॥१२॥१३॥ उस समय में ये चौबीस देवता सोमप थे । उस
 समय में जोक विद्यत बीच उनका दूत था ॥१४॥

ऊर्जो वसिष्ठपुत्रस्तु स्तम्भः काश्यप एव च ।

भागवत् तदा द्रोणो ऋषभोऽङ्गिरसस्तथा ॥१५॥

पीलस्त्यञ्च व दत्तात्रिणात्रेयो निम्बस्तथा ।

पीलस्त्यश्च आवास्तु एते सप्तपदः स्मृताः ॥१६॥

अत्र कबिलस्तञ्च व कृतान्तो विभृतो रविः ।

बृहस्पतिश्च नवञ्च व सुताञ्च ते नव स्मृताः ॥१७॥

मनोः स्वारोचिषस्यते पुत्रा वशकराः स्मृताः ।

प्रायो परिसङ्गधाता द्वितीय चतुदन्तरम् ॥१८॥

सप्तर्षयो मनुर्वेदाः पितरञ्च चतुष्टयम् ।

भूल मन्वन्तरस्वते तैवा चवान्तरे प्रजा ॥१९॥

ऋषीणां देवताः पुत्रा पितरो देवसूतव ।

ऋषयो देवपुत्राश्च इति चास्त्रविनिश्चयः ॥२०॥

मनो क्षत्र विद्यञ्च व सप्तर्षिभ्यो द्विजातय ।

एतन्मन्वन्तर प्रोक्त समासाञ्च तु विस्तरात् ॥२१॥

वसिष्ठ का पुत्र ऊर्ज-काश्यप का पुत्र स्तम्भ-भार्य-द्रोण-आङ्गिरस-
 ऋषभ-पीलस्त्य-दत्तात्रि आनेक-निमृत्-पीलह का धावाध ये सप्तर्षि कहे गये
 हैं ॥१५॥१६॥ अत्र-कबि-उर-कृतान्त-निमृत्-रवि-बृहस्पति-नव ये नौ पुत्र
 कहे गये हैं ॥१७॥ ये स्वारोचिष मनु के ये बन्ध कर पुत्र कहे गये हैं । पुराण
 में ये सब परिसङ्गता हैं । वह द्वितीय मन्तर होता है ॥१८॥ इसके मन्तर

मे प्रजा है ॥१६॥ ऋषियों के देवता पुत्र है और पितर देव पुत्र होते हैं । ये सब ऋषि और देव पुत्र ही हैं ऐसा शास्त्र का विनिश्चय होता है ॥२०॥ मनु से शत्रु अर्थात् क्षत्रिय और वैश्य और सप्तर्षियों से द्विजाति वृष । यह मन्वन्तर सद्यो से कह दिया गया है विस्तार नहीं कहा है ॥२१॥

स्वायम्भुवेन विस्तारो ज्ञेय स्वारोचिपस्य तु

न शक्यो विस्तरस्तस्य वक्तुं वर्णशतैरपि ।

पुनरुक्तवद्वत्पात्तु प्रजानां वै कुले-कुले ॥२२

तृतीयस्त्वथ पर्याय श्रोतमस्यान्तरे मनो ।

पञ्च वैव गणा प्रोक्तास्तान् अव्यामि निबोधत ॥२३

सुधामानश्च देवाश्च ये चान्ये वक्ष्यवर्त्तिन ।

प्रतर्ह्नाः शिवा सत्या गणा द्वादश वै स्मृता ॥२४

सत्यो धृतिदमो दान्त क्षम क्षामो धृति शुचि ।

ईषोर्जाश्च स्या ज्येष्ठो वपुष्माणश्च व द्वादश ।

इत्येते नामभिः क्लान्ता सुधामानस्तु द्वादश ॥२५

सहस्रधारो विश्वात्मा क्षमितारो बृहदसु ।

विष्वधा विष्वरुमी च मनस्वन्तो विराध्यशा ॥२६

ज्योतिश्चैव विभाभ्यश्च कीर्त्तिमान् वशकारिण ।

अग्नानाराधितो देवो वसुविभक्तो विष्वस्वसु ॥२७

दितक्रुनु सुधर्मा च भूतवर्मा यक्षस्थिन ।

कैतुमाश्चैव इत्येते कीर्त्तितास्तु प्रमर्ह्ना ॥२८

स्वायम्भुव से स्वारोचिष का विस्तार कात लेना चाहिए । वैसे उसका पूर्ण विस्तार ही क्यों मे भी बतलाया नहीं जा सकता है । कुल-कुल मे पुनर्लक्ष का गहन्य प्रजामो का होता है ॥२९॥ तृतीय श्रोतम मनु के अन्तर मे पर्याप्त होता है । इसमे पांच गण कहे थे उनकी बतलाऊंगा उन्हें आप समझ लो ॥२३॥ सुधामान और देव जो अन्य वषधर्ती हैं-अतर्दन-शिव और सत्य ये बारह गण कहे गये हैं ॥२४॥ सत्य-क्षम-दान्त-क्षम-क्षाम-धृति-शुचि-ईषोर्जा-ज्येष्ठ-और वपुष्मान् ये बारह हैं । ये सब नाम से कहे गये हैं और

सुधामान बारह है ॥२३॥ सहस्रवार-विश्वात्मा-अमितार-बृहद्गु-विश्वधा
विश्व कर्मा-मनस्वन्त-विराज्यमा-ज्योति-विषाम-कीर्तिमान् ते वशकारी है ।
अन्यानाराधित-देव वसुविष्णु-विवस्वमु-दिव ऋतु-सुषर्मा-धौर घृतवर्मा ये
सब यशस्वी हैं । केतुमान् ये प्रमदन कहे गये हैं ॥२६॥२७॥२८॥

हसस्वरोऽहिहा चैव प्रतदनयस्तकरो ।

सुदानो वसुदानश्च सुमस्तसविषानुभो ॥२९॥

जन्तुवाहपतिश्च व सुवित्तसुनयस्तथा ।

धिवा ह्य ते तु विज्ञवा यज्ञिमा द्वादशापरा ॥३०॥

सत्यानामपि नामानि निबोधत यथामतम् ।

दिक्पतिर्वाक्पतिश्च व विश्व शम्भुस्तथ च ॥३१॥

स्वमृषीकोऽधिपश्च व वज्रोधा मुह्यसर्षपश्च ।

वासवश्च सदाश्वश्च क्षेमानन्दो तथैव च ॥३२॥

सत्या ह्य ते परिक्रान्ता यज्ञिया द्वादशापरा ।

इत्येते देवता ह्यासन्नोत्तमस्यान्तरे मनो ॥३३॥

यजश्च परशुश्च व दिव्यो दिव्योपधिष्ठ य ।

देवानुजश्चाप्रतिभो महोत्साहौशिजस्तथा ॥३४॥

विनीतश्च सुकेतुश्च सुमित्र सुवत्त शुचि ।

धीक्षमस्य मनो पुत्रास्त्रयोदश महात्मन ।

एते धनप्रणोतास्तृतीय चैतदन्तरम् ॥३५॥

भौतमे परिसङ्ख्यात सव स्वारोचिषेण तु ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च तामसस्तात्रिबोधत ॥३६॥

चतुर्थे त्वय प्रययि तामसस्यान्तरे मनो ।

सत्या स्वरूपा सुविमो हरयश्चतुरो यथा ॥३७॥

इस स्वर-अहिहा-प्रतदन-वसस्वर-सुदान-वसुदान-सुमस्तस-धिप
दोनो-जन्तुवाहपति-सुवित्त सुनय-धिवा ये यज्ञिमा दूसरे द्वादश जानने चाहिए
॥२९॥३०॥ मन सबो के नाम भी यथामत जान लो । दिक्पति-वाक्पति-
विश्व-शम्भु-स्वमृषीक-अधिप-वज्रोधा मुह्य सवध-वासव-सदाश्व क्षेम और

प्रानन्द मे सब बाग्दू दूसरे यत्निय कहे गये हैं । शीतम मन्वन्तरो मे ये सब देवता थे । ॥३१॥३२॥३३॥ अज-परबु-दिव्य-दिव्यौपवि-नप-देवानुज-अप्रतिम-महोत्साहो शिज-विनीत-सुरेसु-सुमित्र-सुचल-अचि ये महान् प्रात्मा वाले शीतम मनु के तेरह पुत्र हुए थे । इन्होंने ही अज का अर्वात् क्षत्रियो का प्रणयन किया था और यह तृतीय अन्तर है । इस शीतम मे स्वारोचिष के द्वारा यह सयं परिसंस्थात हुआ है अब विस्तार से और आनुपूर्वी से तामस जाता है उनको जान लो । ॥३४॥३५॥३६॥ इसके अनन्तर चौथे तामस मन्वन्तर के पर्याय मे सत्य-स्वरूप-सुधिय-हरय ये चार गण हैं ॥३७॥

पुलस्त्यपुत्रस्य सुतास्तामसस्यान्तरे मनो ।
गणास्तु तेषां देवानामेकैकं पञ्चविंशक ॥३४॥
इन्द्रियाणां सप्त यद्विभुनय प्रतिजानते ।
सत्यप्राणास्तु शीर्षण्वात्ममश्चैवाष्टमस्तथा ।
इन्द्रियाणि सदा देवा मनोस्तस्यान्तरे स्मृता ॥३६॥
तेषां च प्रभुदेवानां शिविरिन्द्र प्रतापवान् ।
सप्तर्षयोऽन्तरे चैव तान्निबोधत सत्तमा ॥३७॥
काव्यो हर्षस्तथा चैव काश्यप पृथुरेव च ।
आत्रेयश्चान्निरित्येव ज्योतिर्षमा च भार्गव ॥३८॥
पौलहो वनपीठश्च गोत्रे वासिष्ठ एव च ।
चौत्रस्तथापि पौलस्त्य ऋषयस्तामसेऽन्तरे ॥३९॥
जनुवण्डस्तथा शान्तिर्नर स्यातिर्भयस्तथा ।
प्रियभृत्यो ह्यवक्षिश्च पृष्ठलोढो हृढोद्यत ।
ऋतश्च ऋतवन्धुश्च तामसस्य मनो सुता ॥४०॥
पञ्चमे त्वय पर्याये मनोश्चारिष्णवेऽन्तरे ।
गणास्तु सुसमाख्याता देवतानां निबोधत ॥४१॥
अमृता भामूतरजोविकुण्ठा ससुमेवस ।
चरिष्णोस्तु बुभा पुत्रा वसिष्ठस्य प्रजापते ।
चतुर्दश च चत्वारो गणास्तेषान्तु भास्वरा ॥४२॥

स्वत्रधिप्रोमिमापञ्च प्रत्येतिहामृतस्तथा ।

सुमतिर्वाविरावश्च वाचिनोद स्रवस्तथा ॥४६॥

प्रविराशी च वादश्च प्राशश्चेति चतुदश ।

धमृताभा स्मृता ह्य ते देवाभ्यारिष्यन्वेऽन्तरे ॥४७॥

पुनस्त्य पुन के सुत तामस मन्वन्तर मे थे । उन देवों के गण एक-एक पञ्चीस थे ॥४६॥ जो इन्द्रियों के छी बुनि प्रति साठ ॥ सत्यप्राण-सीपण्य तथा आठवीं दम है । उस समय मे इन्द्रिय उस मनु के अन्तर न देव कहे गये हैं ॥४६॥ उन मनु देवों का विधि प्रताप बाधा इन्द्र वर । इस मन्वन्तर मे जो सत्त्विये है सत्तमा । उनको सब आप लोक जान ली ॥४७॥ काश्य हव काश्यप पूष, आत्रेय अग्नि ज्योतिर्धामा मातृव पीतृव जनपीठ गोत्र मे वासिष्ठ वन पीतृव दे इस मन्वन्तर मे ऋषि मे ॥४८॥४९॥ अनु वरद शान्ति नर क्पाति मम प्रियभूत्य अवधि पृष्ठसीढ ह्योद्यत ऋत ऋतवन्तु, ये तामस मनु के पुत्र मे ॥४९॥ इसके अनन्तर वारिष्यन्व मनु के पंचम अन्तर पर्याय मे जो देवताओं के गण कहे गये हैं उन्हें सब जान ली ॥४९॥ धमृत भाधृत रज विकुलठ ससुमेधस वरिष्यन् के पुत्र पुत्र थे । वसिष्ठ प्रभापति के पीतृव और वार उनके मातृव मस्त थे । स्वयं मित्र अग्निमातृ, प्रत्येतिहामृत सुमति वाविराव वाचिनोद स्रव प्रविराशपी वाद प्राश ये पीतृव हैं । वारिष्यन् मन्वन्तर मे थे धमृताभ देव कहे गये हैं ॥४९॥४९॥४९॥

मतिश्च सुमतिश्चैव ऋतसत्त्वो तथैव च ।

भावृतिविवृतिश्च न मदो विनय एव च ॥५०॥

जेता जिघ्या सहश्च न च तिमान् स्रवसस्तथा ।

इत्येतानीह नामानि भ्रामूतरजसा विदुः ॥५१॥

वृषभेता जयो भीम शुचिर्दान्तो यक्षो दम ।

नायो विद्वानजेयश्च कृशो गौरो द्रुवस्तथा ।

कीर्तितास्तु विकुण्ठा नै सुमेधास्तु निबोधत ॥५२॥

मेधा मेधातिथिश्च न सत्यमेधास्तथैव च ।

पृस्निमेधास्पमेधाश्च मूयो मेधादय प्रभु ॥५३॥

दीप्तिमेवा यशोमेधा स्थिरमेधास्तथैव च ।

सर्वमेधादवमेधाश्च प्रतिमेधाश्च य स्मृतः ।

मेधावान् मेधहर्ता च कीर्त्तितास्तु सुमेधसः ॥५२॥

विभुरिन्द्रस्तदा तेषामासीद्विक्रान्तपौत्र्यः ।

पौत्रस्त्यो वेदवाहुश्च यजुर्नामा च काश्यपः ॥५३॥

हिरण्यरोमाङ्गिरसो वेदश्रीश्चैव भार्गवः ।

ऊर्ध्वबाहुश्च वासिष्ठ पर्जन्य पौत्रहस्तथा ।

सत्यमेवस्तथाप्रेयः ऋषयो रैवतान्तरे ॥५४॥

महापुराणसम्भाव्य प्रत्यङ्गपरहा शुचिः ।

वसवन्धुनिरामिथ केतुभृङ्गो दृढव्रतः ।

चरिष्णवस्य पुत्रास्ते पञ्चमर्षतवन्वरम् ॥५५॥

मति, सुमति, ऋत, सत्य, धामृति, विवृति, भय, विनय, जेता, जिष्णु, सह, शुतिमान, सज्ज, ये इतने नाम आमत रजों के जान लो ॥५५॥५६॥

वृषभेता, अव, भीम, शुचि, दान्त, वस, दय, नाथ, विद्वान्, भवेय, कृश, गौर

तथा नृप ये विकुण्ठ कहे कहे हैं । अव सुमेधा जान लो ॥५०॥ मेधा-

तिथि, सत्यमेधा, वृष्णिमेधा, अल्पमेधा, भूयोमेधादय, प्रभु, कीर्त्तिमेधा, यशोमेधा,

स्थिरमेधा, सवमेधा, अश्वमेधा, प्रतिमेधा, मेधावान्, मेधहर्ता ये सब सुमेधस

कहे गये हैं ॥५१॥५२॥ उनका विक्रान्त पौत्र्य वासा उस समय में विभु बन्ना

था । पौत्रस्त्य, वेदवाहु, यजु नाम वासा श्रीर काश्यप, हिरण्य रोमा, आङ्गि-

रस, वेदश्री, भार्गव, ऊर्ध्वबाहु, वासिष्ठ, पर्जन्य, पौत्रह, सत्यमेध, भार्गव ये

रैवत मन्वन्तर में ऋषि थे ॥५३॥५४॥ महापुराण सम्भाव्य, प्रत्यङ्ग परहा,

शुचि, वसवन्धु, निरामिथ, केतुभृङ्ग, दृढव्रत ये चरिष्णव के पुत्र थे । यह पंचम

मन्वन्तर है ॥५५॥

स्मारोन्निपोत्तमश्चैव तामसो रैवतस्तथा ।

प्रियव्रतान्वया ह्येते चत्वारो मनवस्तथा ॥५६॥

पठे स्तुत्यय पयसि देवा ये चाक्षुपेज्जन्तरे ।

माधा प्रसूता माव्याश्च पृथुकाश्च दिवौकसः ।

महानुभावलेखाश्च पञ्च देवगणा स्मृता ॥१५७॥
 दिवौकस सग एष प्रोच्यते मातृनामभि ।
 अत्रे पुत्रस्य नम्रार आरण्यस्य प्रजापते ।
 गणेश्च तेषां भवानामेकको ह्यष्टक स्मृत ॥१५८॥
 अन्तरिक्षो वसुह्वो ह्यतिथिश्च प्रियवत ।
 धोता मन्ता सुमन्ता च आद्या ह्येते प्रकीर्तिता ॥१५९॥
 इत्येनमद्वस्तथा पश्य पथ्यमेवो महायथा ।
 सुमनाश्च सुवेताश्च रवत सुप्रचेतस ।
 ह्यतिथीश्च महासत्त्व प्रसूता परिकीर्तिता ॥१६०॥
 विजय सुजयश्चैव मनोदानौ तथैव च ।
 सुमति सुपरिथीश्च विज्ञातोऽप्यपतिश्च य ।
 भाष्या ह्येते स्मृता देवा पृथुकास्तु निबोधत ॥१६१॥
 अजिष्ठ शाक्यो देवो बानपृष्ठस्तथैव च ।
 सङ्कुर सत्यभृष्ट्युश्च निध्र्युश्च विजयस्तथा ।
 अजितश्च महाभान पृथुकास्ते दिवौकस ॥१६२॥
 लेखास्तथा प्रवक्ष्यामि श्रुत्वतो मे निबोधत ।
 मनोजव प्रघातस्तु प्रवेतास्तु महायथा ॥१६३॥
 बातो प्रवक्षितश्च व अदमुतथीश्च वीर्यवान् ।
 अवनो बृहस्पतिश्चैव लेखा सम्परिकीर्तिता ॥१६४॥

इमारोचिष तम रामश्च तथा रवत वे भारो मनु प्रियवत के अन्वय
 अर्वात् वक्ष वे ॥१६५॥ अब छठे पर्वण्य मे बाणाय मन्वन्तर मे जो देव वे वे प्राण
 प्रसूत भाष्य पृथुर्क दिवौकस और महानुभाव लेख वे पाँच देवगण कहे गये
 हैं ॥१५७॥ यह मातृ नामो के द्वारा दिवौकस सर्व कहा जाता है । अग्नि के पुत्र
 प्रजापति आरण्य के नाती हैं । उन देवों के बहुत एक-एक अष्टक कहा गया
 है ॥१५८॥ अन्तरिक्ष वसुहव अतिथि प्रियवत धोता मन्ता सुमन्ता वे प्राण
 कहे गये हैं ॥१५९॥ इत्येनमद पश्य पथ्यमेव महायथा सुमना सवेता रवत
 सुप्रचेतस ह्यति महायव व प्रसूत कीर्तित किने गये हैं ॥१६०॥ विजय सुजय

इस प्रजापति दत्त का पुत्र राजा था । स्वायम्भुव मनु ने अग्नि के कारण के प्रति दिया था ॥७३॥ इसके अनन्तर चाक्षुष के अविष्य मन्वन्तर को प्राप्त करके हे द्विजो ! इसके पञ्चात् उणोद्धान के माघ वष्ट को जन-लाकेगा ॥७४॥ उत्तानपाद से अक्षुर सुनृत और वित्तमायिनी शुभ अधिधम मे ध्रुव की माता हुई । शुचि स्थित वाली वह धर्म की पत्नी लक्ष्मी मे उत्पन्न हुई थी ॥७४७५॥ उत्तानपाद ने ध्रुव-कीर्त्तिमान्-व्यवम्भान् तथा वसु को उत्पन्न किया था और शुचि स्थित वाली दो कन्याओं को जन्म दिया था । एत मन्-स्विनी और दूसरी स्वरा थी । उनके पुत्र कीर्त्तिन द्विजे भवे हे ॥७६॥ वीर्य वाले ध्रुव ने निराहार रहते हुए विपुल यज्ञ को चाहते हुए दस हजार दिव्य वर्ष तक तप किया था ॥७७॥ प्रथम नेता युग मे वह स्वायम्भुव मनु का वीर था जिसने योग से आत्मा को भाग्य करते हुए महान् यज्ञ की प्रार्थना की थी ॥७८॥ ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर ज्योतिगणों का उत्तम स्थान उसको दिया था जो कि सप्तरथ परम सुन्दर और भस्त्रोदय से रहित था ॥७९॥ उसकी अत्यधिक मात्रा वाली ऋद्धि और महिमा को देखकर दैत्यासुरों के आचार्य शुक्र ने भी इसके यज्ञ का वक्षन किया था ॥८०॥

अहोऽयं तपसो वीर्यमहो श्रुतमहो हृतम् ।
स्थिता सप्तर्षय कृत्वा यदेममुपरि ध्रुवम् ।
ध्रुवे दिव समासक्तमीश्वर स दिवस्पति ॥८१॥
ध्रुवात्पुष्टिञ्च भव्यञ्च भूमि सा सुपुत्रे तृपो ।
स्वा ह्यायामाह वै पुष्टिमव नारी तु ता त्रिभु ॥८२॥
सत्याभिन्वाहुते तस्य सद्यः भवत्तदा ।
दिव्यसहस्र नाञ्छाया- पिता ॥८३॥
आयाया पुष्टिरावत्त ५- सपान् ।
स्त्रीनगर्भ वृषक वृष- तम् ॥८४॥
प्राचीनगर्भस्य भू- तम् ।
परचिष पुत्रभि- तमनि ॥८५॥

ये नो ह ॥६७॥ श्रीरश्मिमन्तु दक्षम वा । नाहमेव ऋतु के पुत्र ये । ये सब
 वाक्षुप के पुत्र ये श्रीर यह छट्ती मन्वन्तर है । उस महात्मा का यह सग सब
 स्वत ने परितरफ्यात किया है । हे द्विजो ! मैंने इसे विस्तार तथा आनुपूर्वी से
 कह दिया है ॥६८॥६९॥ ऋषिगो ने कहा—वाक्षुप का वामाद कश्यप के वश
 में उत्पन्न हुआ था । उसके अन्ववाय में श्रीर जो भी कोई दूसरे हो उन्हें यथा
 तथा रूप से बतलाइये ॥७॥ श्रीसूतजी ने कहा—वाप लोग वाक्षुप का निरुग
 जो है उसे ससेप से लगने के योग्य होते हैं । उसके अन्ववाय में प्रतापवाय नाम
 पृथु हुआ था ॥७१॥ अग्य दक्ष और त्र्येतस्य प्रजापति के पति थे । जनि प्रजा
 पति ने उत्तानपाद को पुत्र ग्रहण किया था ॥७२॥

दक्षकस्य तु पुत्रोऽस्य राजा ह्यासीत् प्रजापते ।
 स्वायम्भुवेन मनुना दत्तोऽने कारणं प्रति ॥७३॥
 मन्वन्तरमथासाद्य भविष्य वाक्षुपस्य ह ।
 पक्ष तदनु वक्ष्यामि उपोद्घातेन च द्विजा ॥७४॥
 उत्तानपादास्तुरा सूनृता वित्तभाविनी ।
 उत्पन्ना चाधिधर्मेण ध्रुवस्य जमनी शुभा ।
 धमस्य पत्न्या संख्या च उत्पन्ना सा शुचिस्मिता ॥७५॥
 ध्रुवश्च कीर्त्तिम तन्म्व अयस्मन्त वसु तथा ।
 उत्तानपादोऽनयत् कथे ह च शुचिस्मिते ।
 मनस्विनी स्वराज्यव तयो पुत्रा प्रकीर्त्तिता ॥७६॥
 ध्रुवो वपसहस्राणि दक्ष दिव्यानि धीर्यवान् ।
 तपस्तेपे निराहार प्रापयन् विपुल यथा ॥७७॥
 त्रेतायुगे तु प्रथमे पौत्र स्वायम्भुवस्य स ।
 आत्मान धारयन् योगात् प्रापयन् सुमहद्यथा ॥७८॥
 तस्म ब्रह्मा ददौ प्रीतो ज्योतिषा स्थानमुत्तमम् ।
 आभूतसम्पन्न इवमस्तोदधनिवर्जितम् ॥७९॥
 तस्यातिमात्राभृदि च महिमान निरीक्ष्य ह ।
 दत्तामुराष्ट्रमाचार्य इलोकमप्युगता जगौ ॥८०॥

इस प्रजापति दक्ष का पुत्र राजा था । स्वायम्भुव मनु ने भूमि के कारण के प्रति दिया था ॥७३॥ इसके अनन्तर चाक्षुष के भविष्य मन्वन्तर को प्राप्त करके हे द्विजो । इसके पञ्चात् उपोद्भूत के साथ पृथ्वी को वस-जाऊँगा ॥७४॥ उत्तमपाद से चतुर सुभुव और वित्तमाकिनी शुभ भविष्य से ध्रुव की माता हुई । शुचि स्मित वाली वह धर्म की पत्नी लक्ष्मी से उत्पन्न हुई थी ॥७४-७५॥ उत्तमपाद ने ध्रुव-श्रीतिमान्-प्रवस्मान् तथा वसु को उत्पन्न किया था और शुचि स्मित वाली से कन्याओं को जन्म दिया था । एक मन-सिन्धी और दूसरी स्वरा थी । उनके पुत्र श्रीतिष्ठ क्रिये गये थे ॥७६॥ वीर्यवाने ध्रुव ने निराहारा रहते हुए विपुल यक्ष को चाहते हुए दक्ष हजार दिव्य वर्य सत्त्व रूप दिया था ॥७७॥ प्रथम जन्मा युग में वह स्वायम्भुव मनु का पौत्र था जिसने योग में जासना को धारण करते हुए पञ्चात् यक्ष की प्रार्थना की थी ॥७८॥ ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर ज्योतिर्गणों का उत्तम स्थान उसको दिया था जो कि सत्त्वय पर्यन्त परम सुन्दर और अस्तीत्य से रहित था ॥७९॥ उसकी अत्यधिक भाषा वाली श्रुति और वहिमा को देखकर वैष्णवों के धारार्थ गुरु ने भी इसके यक्ष का वसुन किया था ॥८०॥

ग्रहोऽप्य तपसो वीर्यमहो अतमहो व्रतम् ।
स्थिता सप्तर्षय कृत्वा यदेतमुपरि ध्रुवम् ।
ध्रुवे दिव समासक्तमीश्वर स दिवस्पति ॥८१॥
ध्रुवात्पुष्टिञ्च भव्यञ्च भूमि सा सुपुत्रे नृपौ ।
स्वा ह्यायामाह वै पुष्टिमव नारी तु ता विभु ॥८२॥
सत्यामिव्याहृते तस्य सद्य स्त्री साभवत्तदा ।
दिव्यसहन नान्ध्याया दिव्याभरणभूषिता ॥८३॥
ह्यायामा पुष्टिरावत्त पञ्च पुत्रानकल्मषान् ।
प्राचीनगर्भ वृषक वृकञ्च वृकल वृतिम् ॥८४॥
पत्नी प्राचीनगर्भस्य भूवर्चा सुपुत्रे नृपम् ।
नाम्नोदारधिय पुत्रमिन्द्रो य पूर्वजन्मनि ॥८५॥

सवत्सरसहस्राते सकृदाहारमाहरत् ।

एव मन्वन्तर युक्तमिन्द्रत्व प्राप्तवान्विभम् ॥८६॥

उदारधे सुत भद्राजयत्सा दिवश्छयम् ।

रिपु रिपुञ्जय जज्ञ वराङ्गी सा दिवश्छयात् ॥८७॥

ब्रह्माचार्य ने कहा था—महो ! इस ध्रुव के तप का पराक्रम कैसा अद्भुत है और इसका भुव तथा इत भी कितना विचक्षण है कि इस ध्रुव को धरने से भी ऊपर करके सप्तपिण्ड स्थित होते हैं। ध्रुव ने समासक्त विभ है विवस्वति ईश्वर है ॥८६॥ उम भूमि ने ध्रुव से मन्म और पुष्टि के तपो का प्रसव किया था। विभु पुष्टि ने अपनी छाया से कहा कि नारी हो जाओ ॥८७॥ उसके साथ अग्निव्याहृत होने पर उस समय में वह तुरन्त ही ली होगई थी जो कि छाया विभ सहन से दिव भूपलों से विभूषित थी ॥८८॥ पुष्टि ने उस छाया में पाँच निष्पाप पुत्र उत्पन्न किये थे। उनके नाम—प्राचीन गर्भ—वृषक—वृक—वृकल और वृत्ति थे ॥८९॥ प्राचीन गर्भ की पत्नी भूवर्षा ने मुपको पुत्र उत्पन्न किया था जिसका नाम उदारधी था और जो पूर्व जन्म में राजा था ॥९०॥ एक सहस्र वर्षों के जन्म में एकबार बाहर चला गया था। इस प्रकार के विभु ने मन्वन्तर से युक्त इन्द्रव को प्राप्त किया था ॥९१॥ भद्रा उसने उदारधी के पुत्र विवश्चय को जन्म दिया था। वराङ्गी उसने रिपुञ्जय रिपु को उत्पन्न किया था ॥ ९२॥

रिपोराघत्त बृहती चाक्षुष सवतेजसम् ।

व्यजीजनत् पुष्करिण्या वारुण्या चाक्षुषो मनुम् ।

प्रजापतेरात्मजायामरण्यस्य महात्मन ॥९३॥

मनारजायन्त दस नदलाया शुभा सुता ।

कन्धाम्ना व महाभाग वराजस्व प्रजापते ॥९४॥

ऊरु पूरु शतबुध्नस्तपस्वी सत्यवाक कवि ।

अग्निधुदतिरावञ्च सुबुध्नस्तेति ते नव ।

अभिमयुञ्ज दशमो नदलाया मनो सुता ॥९५॥

ऊरारजनयत् पुनान् पशाम्नेयी महाप्रभान् ।

प्रद्व सुमनस स्थाति ऋतुमद्भिर्गम निरम् ॥६१

अङ्गान् मुनीनामस्य ये वेनमेक व्यजायत ।

अपचारेण वेनस्य प्रकोप मुमहानभवत् ॥६२

प्रजायमृषयस्तस्य समन्वुदक्षिण करम् ।

वेनस्य पाणी ययिते भव्यमूय महान्मृग ।

वैन्धो नाम महोपायो य पृथु परिकीर्त्तित ॥६३

स धन्वी कवचो जानम्लेजसा प्रज्वलप्रिय ।

पृथुर्वैन्ध सवन्धोऽङ्गान् ररक्ष क्षत्रपूर्वज ॥६४

विष्णु ने वृद्धनी ने सर्व नेत्र रात्रि चाधुप जो गरम्भ किया था प्रो
पुष्पशिखी वाष्पणी ने चाधुप ने मनु हो उत्पन्न किया था जो कि महात्मा मरुत
प्रजापति को धारमजा की ॥६५॥ मनु म वृद्धना में वज्र धुध पुत्र उत्पन्न रित थे
जो महाभाग प्रजापति बैराज की कृपा थी ॥६६॥ ऊन-पृथ-प्रतपुम्न-नपस्थी
सहपवाक्-कवि-सन्निपुण-प्रतिराज धीर मृन्म ये नी है धीर स्वयं अतिमन्यु
मदना ने मनु के पुत्र हुए थे ॥६७॥ धाम्नेयी ने ऊन में पक्षान् प्रजा रात्रि उं
पुत्रो को जन्म दिया था जिनके नाम—मद्व—मुषम—रात्रि—कृन्—प्राङ्गम
और मिष थे ॥६८॥ मुनीना न धद्व न एक गन्तव्य वदको उत्पन्न किया था ।
वेन के अपचार के कारण से वज्र भागी को व उत्पन्न हुआ था ॥६९॥ प्राप्ति
ने प्रजा के विष उसके दाहिने हाथ का मन्त्र किया । उम समय वेन के हाथ
के मन्त्र प्रिये जाने पर एक महावृत्त वैन्ध नाम वाला महोपाय उत्पन्न हुआ
था जो कि पृथु इस नाम से कहा गया है ॥७०॥ यह धन्वी—कवच-वारी तेज से
प्रजलित करता हुआ उत्पन्न हुआ । क्षत्र पूर्वज वैन्ध पृथु ने समस्त लोको की
रक्षा की थी ॥७१॥

राजसूयामिपित्तानामाद्य स वसुधाधिप ।

तस्य स्तवार्चमुत्तमो निपुणो मृतमानवी ॥७२

तेनेय गौमंहाराजा दुग्धा सस्यानि धीमता ।

प्रजाना वृत्तिकामाना देवेश्च पिंगलं सह ॥७३

पितृमिर्दानवश्च व गन्धर्वरप्सरोगणौ ।
 सर्वे पृथ्यजनश्च व वीरुङ्ग पतिस्तथा ॥६७
 तेषु तेषु तु पात्रेषु दुह्यमाना वसुधरा ।
 प्रादाद्येष्विस्तुत क्षीर तेन लोकास्त्वभारयत् ॥६८
 विस्तरेण पृथोज्ज्वल कोत्तयस्व महामते ।
 यथा महात्मना दुग्धा पूव तेन वसुधरा ॥६९
 यथा देवस्य जायश्च यथा ब्रह्मर्षिभि सह ।
 यथा यक्ष सगन्धर्वरप्सरोग्रियया पुरा ॥७०
 तेषां पात्रविशेषाश्च दोग्धार क्षीरमेव च ।
 तथा वत्सविशेषाश्च तप्तं प्रधूहि पृच्छताम् ॥७१

राजसूय यज्ञ के द्वारा अग्निपितृ होने वाले राजाओं ने यह द्रव्य सबसे पहले माघ वसुधा का स्वामी हुआ था । उसके स्तव्य करने के लिए परम निष्ठुण सुत क्षीर माग्य उत्पन्न हुए थे ॥६७॥ उस बुद्धिमान् महाम् राजा ने इस गौ से सबको का दोहन किया था । वृत्ति की कामना वाले प्रजाओं के देव-ऋषि गणों के साय-पितर-दानव-गन्धर्व-रप्सरार्यों के गण-समस्त पुरुष जन-विष्णु क्षीर पर्वतों के साय उब उब पात्रों में दुह्य मान इस वसुधरा ने हज्ज्या के पशुघार क्षीर दिया था उससे लोको की चारण किया था ॥६९॥६७ ॥६८॥ ऋषियों ने कहा—हे महामते ! विस्तार के साय पृथु के यम का वधान करिये । जिस प्रकार से उस महात्मा ने इस वसुधरा का दोहन किया था । ॥६९॥ पहिले जिस तरह से देव-जाय-ब्रह्मर्षि-यक्ष-वन्धव क्षीर रप्सरार्यों के साय उनके पात्र विशेषों को दोग्धा को क्षीर को तथा वत्स विशेषों को इन सबको पूछने वाले इनको भवी भाँति मतलाइये ॥१ ॥१ १॥

यस्मिंश्च कारणे पात्रिर्वेनस्य भक्षित पुरा ।
 क्रुद्ध भर्षिभि पूव तत् सव कथयस्व न ॥१ २
 बरुणयिध्यामि नो विश्वा पृथोर्वेन्यस्य सम्भवम् ।
 एकाया प्रयताश्च व शुभ्रपध्व द्विजोत्तमा ॥१ ३

नाशुचेर्नापि पापाय नाशिष्यायाहिताय च ।
 वरुण्येयमिम पुण्य नात्रताय कथञ्चन ॥१०४॥
 स्वर्ग्यं यशस्यमायुग्य पुण्य वेदैश्च सम्मितम् ।
 रहस्यमृषिभि प्रोक्तं शृणुयाद्योऽनमूयक ॥१०५॥
 यस्त्वेम आचयेन्मर्त्यं पृथोर्वन्धस्व सम्मवम् ।
 आह्वारोभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत् कृताकृतम् ।
 गोप्ता धर्मस्य राजासौ बभूवान्निसम प्रभु ॥१०६॥
 अग्निवशसमुत्पन्नो ह्यङ्गो नाम प्रजापति ।
 यस्य पुत्रोऽभवद्वेनो नात्यर्थं धार्मिकस्तथा ॥१०७॥

जिस कारण के होने पर पहिले बैनका हाथ मया नवा था और पहिले
 मर्त्यियों ने बहुत क्रुद्ध होकर उसके हाथ का मन्थन किया था वह सब हमको
 बतलाइए ॥१०२॥ श्री कृतजी ने कहा—हे द्विश्रोतमो ! हे विप्रो ! मैं आपके
 सामने अब वैज्य वृषु के जन्म का वर्णन करेगा । आप लोग सब एकत्र मन
 बाँके और प्रयत्न होते हुए ध्यान करो ॥१०३॥ जो प्रभुषि हो पापमुक्त-अहित
 भ्रत एवं अविष्य हो उससे कभी भी इस परम पुण्य चरित्र का वर्णन नहीं
 करना चाहिये ॥१०४॥ स्वर्ग देने वाला, यश प्रदान करने वाला, आयु देने
 वाला, पुण्य और समस्त वेदों के द्वारा सम्मत यह श्रुतियों के द्वारा परम
 रहस्य कहा गया है, जो अमूया अर्थात् भिन्दा न करने वाला हो, उसे ही यह
 ध्यान कराना चाहिये ॥१०५॥ जो मनुष्य वैज्य वृषु का जन्म चरित्र के इस
 वृत्तान्त की सुनाये उसे ब्राह्मणों को नमस्कार करके ही सुनाना चाहिये और
 फिर अपने कृत तथा अकृत का कुछ सोच नहीं करना चाहिये । यह राजा धर्म
 की रक्षा करने वाला यज्ञ के समान प्रभु हुआ था ॥१०६॥ यज्ञ के वश से
 उत्पन्न हुआ अङ्ग नाम वाला प्रजापति हुआ था । जिसका पुत्र वेन हुआ था,
 जो कि विशेष अद्विक धार्मिक नहीं था ॥१०७॥

जातो मृत्युमुतामा वै सुतीयाया प्रजापति ।

स मातामहदोषेण वेन कालात्मजात्मज ॥१०८॥

आप लोग सब भी मुझे तत्त्वसे पूर्ण महात्मा निश्चय रूप से समझें ॥११७॥
 समस्त लोको के प्रभु श्री विषेय रूप से धर्मों के स्वामी हमही है । मैं इच्छा
 करता हुआ धर्मात् यदि मैं चाहूँ तो इस पृथ्वी को जनादूँ धरवा बससे प्लावित
 करदूँ—सृजन करूँ या बसन करूँ मुझे यह सब शक्ति विद्यमान है । इसमें
 कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिये ॥११८॥ स्वप्न होने के कारण से या
 भान की अधिकता से कोई अत्यन्त बोद्धि होवाने और उसका अनुभव न
 किया जा सकता हो तो वेन रूप उसे छीक कर देवा । इतना सुनकर महर्षिभूष्य
 बहुत क्रोध होगये वे ॥११९॥ तब तो महाबाहु उसकी विस्फुरित भक्ति के समान
 निगूहीत करके उन्होंने अत्यन्त क्रोधित हासे हुए उसके बाप हस्तका मन्थन किया
 था ॥१२॥ उसके प्रमथ्यमान होने बासे से पहिले जो अभिश्रुत हुआ है वह
 धर्मात् तू उत्पन्न हुआ । हे द्विजो ! और अत्यन्त छोटा एक कृष्ण बरु वाला
 पुत्र भी उत्पन्न हुआ था ॥१२१॥

स भीत प्राङ्मनिश्चय स्थितवान् व्याकुलेन्द्रिय ।
 तमात्त विह्वल दृष्ट्वा निपीदेत्यब्रुवन् किल ॥१२२॥
 निपादवशकर्त्ताऽसौ बभूवानन्तविक्रमः ।
 भीमरानसृजत्सोऽपि वेनकस्मयसम्भवान् ॥१२३॥
 ये चादे विन्ध्यमिलमास्तुष्कुरातुवरं खसा ।
 अघमदधमश्चापि सम्भूता वेनकस्मपात् ॥१२४॥
 पुनमहर्षयस्तस्थ पाशि वेनस्य दक्षिणम् ।
 भरणीमिव सरम्भाममन्धुर्जातमन्यव ॥१२५॥
 पृथुस्तस्मात् समुत्पन्न करास्फालनतेजसः ।
 पृथो करसनाद्वापि यस्याम्नात् पृथुस्ततः ।
 दीप्यमान स्ववपुषा साक्षादग्निरिवोन्मूलनम् ॥१२६॥
 आद्यमाजयव नाम वनुर्गृह्य महारवम् ।
 शराश्च विभ्रदक्षाय कवचञ्च महाप्रसम् ॥१२७॥
 तस्मिन्नातेऽथ भूतानि सप्रहृष्टानि सवशः ।
 समुत्पन्ने महारात्रि वेनश्च निदिबद्धत ॥१२८॥

वह अत्यन्त भयभीत हुआ ओढ़े हुए व्याकुल इन्द्रियों वाला स्थित होगया था । उसको अत्यन्त आर्त और विह्वल देख कर ऋषियों ने कहा—बैठ जाओ भयार्ति निरण हो जाओ ॥१२२॥ यह अनन्त विक्रम वाला निषाद वश का करने वाला हुआ था । वेन के कल्प से उत्पन्न होने वाले घीयरो का उसने भी सृजन किया था ॥१२३॥ और जो अन्य विन्ध्यचल में रहने वाले तुम्बर-सुवर-खर और शर्म की रश्मि वाले भी थे, वे भी सब वेन के कल्प से उत्पन्न शीघ्र वाले होते हुए बहुत सरम्भ से भरखी काष्ठ की भाँति वेन के बलिण हाथ का मग्नन करने लगे ॥१२४॥ करने पर आस्फासन सेज वाले उससे पृथु उत्पन्न हुआ । भयवा जिस पृथु के करतल से पृथु उत्पन्न हुआ था वह अपने शरीर से वीर्यमान होते हुए साक्षात् अग्नि के मुख्य जलवा हुआ था ॥१२५॥ आद्य आजगद नाम वाले और महान् ध्वनि वाले वनपु को ग्रहण करके और रक्षा के लिये शरीर को धारण करते हुए तथा महा प्रभा वाले कवच को धारण किये हुए था ॥१२७॥ उसके उत्पन्न होने पर सभी ओर से समस्त प्राणी बहुत प्रसन्न हुए थे । इस महान् राजा के समुत्पन्न होने पर वेन तो स्वयं को चला गया था ॥ १२८ ॥

समुत्पन्नेन राजपि स सत्पुत्रेण धीमता ।

पुत्रपुत्राश्च पुत्रान्मनो नरकात्त्रायते तत १२९

■ नद्यश्च समुद्राश्च रत्नान्यादाय सर्वश ।

समागम्य तदा वैश्वमन्यविश्वन्नराधिपम् ।

महता राजराज्येन महाराज महाद्युतिम् ॥१३०

सोऽभिपिक्तो महाराजा देवैरङ्गिरस सुतं ।

आदिराजो महाराज पृथुर्वैन्य प्रतापवान् ॥१३१

पित्राऽपरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिता ।

ततो राजेति नामास्य अनुरागादजायत ॥१३२

आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यत ।

पर्वताश्च विशोर्यन्ते ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥१३३

अकृष्टपण्या पृथिवी सिद्धधन्यशानि चिन्तया ।

सवकामदुधा गाव पुटके पुटके मधु ॥१३४॥

एतस्मिन्नेव काले च यज्ञ पतामहे सुमे ।

सूत सुत्या समुत्पन्न सौत्येऽहनि महामति ।

तस्मिन्नेव महायज्ञ जज्ञ प्राज्ञोऽयं मागध ॥१३५॥

॥ रावपि भीमाद् भीर सत्पुत्र वे उत्पन्न होने से वह पुरुषो ने व्याघ्र के समान रहने वाला पुनाम वाले नरक से फिर नाग वा जाता है ॥१३६॥ समस्त नन्विर्वा-समस्त समुद्र सब भीर से रानी को लाकर भीर वहाँ धाकर उस गराबिय बन्ध का उन सबने अभिवेष किया था जो कि महान् राजा के राज्य से महान् राजा भीर महान् सति वाला था ॥१३७॥ वह महान् राजा मगध के पुत्र देवो के द्वारा आशिष्य-महाराज भीर प्रवास वाला बन्ध पृथु अभिषिक्त हुआ था ॥१३८॥ उसके पिता के द्वारा अपरञ्जित उसकी प्रजा उसके द्वारा अनुरञ्जित हुई थी । तब ने ही अनुराज से इसका राजा वह नाम हो गया था ॥१३९॥ समुद्र में अभिव्याप्त करते हुए उसके जल स्तम्भित होयमे से भीर विभीष्ट होते हैं भीर व्यवभक्त नहीं हुआ था ॥१४०॥ उस समय पृथ्वी अकृष्ट पण्या हो गई थी अर्थात् बिना जुताई के ही फसल पदा करने वाली थी बिना काने भान से ही अन्नो की सिद्धि होती है । गोए समस्त कामो के बोहल करने वाली थी भीर पुटक-पुटक में मधु था ॥१४१॥ इस ही जल में शुभ वैतामह यज्ञ में धी य दिन में मुक्ति में सूत उत्पन्न हुए अर्थात् महामति वाले थे । उस ही महायज्ञ में प्राज्ञ मागध उत्पन्न हुए थे ॥१४२॥

ऐन्द्र ए हविषा चापि हवि पृक्त बृहस्पते ।

जुहावेन्द्राय देवेन तत सूतो व्यजामत ॥१४३॥

प्रमादस्तान सञ्जह प्रम्यञ्जितञ्च कमसु ।

शिष्यहृष्येन यत्पृक्तभिभूत मुरोहवि ।

अथरोत्तरभारेण जज्ञ तद्वणुबहुतम् ॥१४४॥

यज्ञ सनात्समभवद्भृश्या हीनयोनिन ।

सूत पूर्वेषा साधमतुल्यमम प्रकीर्तित ॥१४५॥

मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मं क्षत्रोपजीवनम् ।
 रथनागाश्च चरितं जघन्यञ्च चिकित्सितम् ॥१३६॥
 पृथो रतवार्यं तौ तत्र समाहृतौ सुरपिभिः ।
 तावूचुर्मुनयः सर्वे स्तूयतामेष पाथिव ।
 कमेतदनुरूपं वा पात्रं स्तोत्रस्य चाग्ययम् ॥१४०॥
 तावूचतुस्तदा सर्वास्तानृपोन्सूतमागधी ।
 आवा देवानृपी इवैव प्रीणयाव स्वकर्मभिः ॥१४१॥
 न चास्य कर्म वै विद्वो न तथा लक्षणं यशः ।
 स्तोत्रं येनास्य कुर्यादो राज्ञस्तेजस्विनो द्विजाः ॥१४२॥

ऐन्द्र हवि के द्वारा बृहस्पति का भी हवि युक्त हुआ । देव के द्वारा इन्द्र के लिए हुनन किया था । इसके बाद सूत उत्पन्न हुए ॥१३६॥ वहाँ पर प्रमाद उत्पन्न हुआ और कर्मों में प्रायश्चित्त उत्पन्न हुआ । विष्णु के हृदय से जो पृक्त हो यह गुप्त का हवि अभिभूत होमया । ऐसे मधरोत्तर धार से यशों की रिकृति उत्पन्न हुई ॥१३७॥ जो कनिय से ब्राह्मणी ने हीनदोनि से हुआ । पूर्व में साधर्मं तुल्य धर्म वाला सूत प्रकीर्तित हुआ था ॥१३८॥ सूत का यह मध्यम धर्म है और क्षत्रोपजीवन है । रथ नाग चरित है और चिकित्सित जघन्य चरित होता है ॥१३९॥ सुरपिभों के द्वारा वहाँ पर वे दोनों पृथु के स्तवन के लिए बुलाये गये थे और समस्त मुनियों ने उन दोनों से कहा कि तुम इस पृथु राजा की स्तुति करो । यह आप दोनों के अनुष्म ही कार्य है और यह राजा भी स्तोत्र का पात्र है अर्थात् यह राजा भी स्तवन के योग्य है ॥१४०॥ तब उन दोनों सूत और मागव ने उन समस्त ऋषियों से कहा—हम दोनों अपने कर्मों के द्वारा देवों को और ऋषियों को प्रसन्न करते हैं ॥१४१॥ हम इसके कर्म को नहीं जानते हैं और न उस प्रकार के लक्षण वाला इसका यश ही है । हे द्विज वृन्द ! जिससे कि इस तेजस्वी राजा का स्तोत्र करे ॥१४२॥

ऋषिभिस्ती नियुक्ती तु भविष्यै स्तूयतामिति ।

दानधर्मरतो नित्य सत्यवान् स जितेन्द्रिय ।

ज्ञानशीलो बदान्यस्तु सन्नामेष्वापराजित ॥१४३॥

बचन का ध्यान करो ॥१३५॥ उपाय से नवी नानि प्रारम्भ निवे ॥ सप्त
उत्क्रम सिद्ध होते हैं । ह मृषा ' मुझे मार कर जो प्राण शत्रुओं के पालन में
समय नहीं हो सकते हैं ॥१३६॥

प्रथमभूता भविष्यामि जहि कोप महायुते ।

प्रवक्ष्या च स्त्रिय प्रहृष्टिबन्धोनिशतेष्वपि ।

मत्सीय पृथिवीपाल धम न त्यक्तुमहसि ॥१३७

ए । बहुविध वाक्य श्रुत्वा राजा महामना ।

क्रोध निगृह्य धर्मत्मा वसुधामिदमब्रवीद् ॥१३८

एकस्यार्थस्य यो ह यावात्मनो वा परस्य वा ।

एक प्राणं बहून् वापि काम तस्यास्ति पातकम् ॥१३९

यस्मिन्नु निहते भद्रं तन्मते बहवः सुखम् ।

तस्मिन्नुते शुभे नास्ति पातकञ्चोपपातकम् ॥१४०

सोऽहं प्रजाविमित्तत्वा बहिष्यामि वसुधरे ।

यदि मे वचनं तावदरिष्यसि जमदितम् ॥१४१

त्वा निहत्याद्यं वातमेव मन्त्रासनपराङ्मुखीम् ।

आत्मानं प्रथमित्वेह धारयिष्याम्यहं प्रजा ॥१४२

सं त्वा भवनमासाद्य मयं धमभृता भवे ।

सखीयमप्रजा नित्यं शक्ता ह्यसि न सशय ॥१४३

हे महाद् वसि बाले ! आप कोप को त्याग दें—मैं भगभृता ही

बान्नी । धात्रो तिम्र बोनियो में भी तिम्रों वक्ष्या हूँ कही गई हैं । हे

पृथ्वीपाल ! ऐसा मानकर आप धर्म का त्याग करने के योग्य नहीं होते हैं ।

॥१३७॥ महाद् मन वाले राजा ने इस प्रकार के वाक्यों को सुनकर धर्मत्मा

के क्रोध को रोककर पृथ्वी से बह नहा—॥१३८॥ एक के पक्ष में या पराये

धर्म के लिये जो कोई हनन किया करता है चाहे किसी के एक प्राण का हनन

करे या बहुतों का हनन करे उसका बड़ा बारी भवस ही पातक दुष्प्र करता

है ॥१३९॥ हे भद्र ! जिस हनन में बहुत से प्राणी सुख की प्राप्ति किया करते

हैं । हे शुभे ! उसके मारे जाने पर पातक और उपपातक कुछ भी नहीं होता

है ॥१६०॥ हे वसुधै ! वह मैं प्रजा के कारण तुझे माँझ्या । यदि तू अब मेरे जगत् के हित करने वाले वचन को नहीं करेगी ॥१६१॥ मेरे शासन के निरुद्ध जाने वाली तुझे आज वाग्य में मारकर यहाँ आत्मा की प्रार्थना करके मैं प्रजा को धाग्या करूँगा ॥१६२॥ हे घम वारण करने वालों में श्रेष्ठ ! वह तू आज मेरे वचन को प्राप्त कर प्रजा को निश्चय सज्जीविन कर, तू समर्थ है—
इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥१६३॥

दुहितृत्वञ्च मे गच्छ एवमेत महद्गम् ।
निपच्छे स्वान्तु धर्माय प्रयुक्त चोद्दर्शने ॥१६४॥
प्रत्युवाच ततो वैश्यमेवमुक्ता सती मही ।
एवमेतदहं राजन् विद्यास्यामि न सद्यः ॥१६५॥
वत्सन्तु मम त गच्छ क्षरेय येन वत्सला ।
समाश्च मुरु सर्वत्र मा त्व धर्मभृता वर ।
यथा विष्णुन्दमानञ्च क्षीर सर्वत्र भावये ॥१६६॥
तत उत्सारयामास क्षिताजालानि सर्वश ।
घनुष्कोट्या ततो गीम्यस्तेन शंखा विवर्द्धिता ॥१६७॥
मन्वन्तरेष्वतीतेषु विपमासीदसुन्धरा ।
स्वभावेनाभवस्तस्मा समानि विपमाणि च ॥१६८॥
न हि पूर्वानि सर्गे धी विपमे पृथिवीतले ।
प्रतिभाग पुराणा ग्रामाणा वापि विचले ॥१६९॥

स वत्समित्रा वत्सन्तु चाक्षुष भनुमीश्वर ।

पृथुद्व दोह सस्यानि स्वतले पृथिवी तत ॥१७३॥

हे शीर दसने । तु मेरी मेरी कम का मर्म के लिये प्रयोग ये माई हुई
 तुम्हको म इस प्रकार से यह एक बहुत बड़ा वरदान देता हूँ ॥१६४॥ उस तरह
 से नहीं गई पृथ्वी ने इसके पामात्र अन्य से कहा—हे राजन् । इस तरह से मैं
 यह सब करूँगी इसके कुछ भी सबब नहीं है ॥१६५॥ हे कम भारण करने
 वालो ये ॥१६६॥ वाय भूक लते बल बनाकर वो जिससे मैं परसमा होकर शरण
 नहीं और वाय तुम्हें सब बचाने सम कर देवों जिससे यह विष्णुस्वभाव कीर
 समान नाशित कर ॥१६६॥ इसके अनन्तर अन्य ने सब शीर से शिला के
 समूहों को उन्नाशित किया वा शीर यह बारी अनुप की कटि से किया और
 वससे वाय विषय रूप से बहित हो करे से ॥१६७॥ बीते हुए मावन्तरो ने यह
 अनुश्रवा विवना थी । उसके स्वभाव से ही सब शीर विषय भाग हुए थे ।
 ॥१६८॥ पहिले विषय ने इस विषय पृथ्वी के लक्ष में जयरो मयवा प्रामो वा
 कोई प्रविभाव नहीं है ॥१६९॥ चाक्षुष मन्वन्तर ने पहिले यह ऐसी आभार थी
 कि न तो यहाँ शरण ही थे न शीघो की रक्षा होती थी न दृष्टि ही होती थी
 और न कोई बाधित करने के भाग ही थे । फिर वत्सन्त मन्वन्तर ने इस
 सबबा यहाँ जन्म हुआ था ॥१७०॥ यहाँ-यहाँ पर सबता थी यहाँ पर फिर
 यह सब हुआ और यहाँ पर ही सर्वथा प्रजा निवास किया करती थी ॥१७१॥
 प्रजाओं वा माहोर-मल और भूत भी हुआ था । वय धादि राजा के होने के
 समय स सेवर इन लोक म इस सब वस्तुओं की उत्पत्ति ॥१७२॥
 समस्त धर्मविधो के प्रसव हो जाने पर महान् धर्म से उसने यह सब किया
 था । प्रविपति पृथु ने चाक्षुष अनु की वत्स वसित करके स्वतन म सस्यो ता
 पृथ्वी न दोहन किया था ॥१७३॥

सस्यानि सेन दुग्धानि नान्येन तु वस्तुधराम् ।

मनुष्य चाक्षुष इत्या वत्सम्यात्रे च भूमये ।

सेनाधन ताना ता व वर्तन्ते प्रजा सदा ॥१७४॥

सृष्टिनि स्रुयते चापि पुनरुत्पत्ता रतुन्वरा ।
 वन्य मोमम्वद्वननया दाम्बा चापि वृद्धपति ॥१७॥
 पात्रमार्थान् छन्दामि गाधद्वारादीनि मवन ।
 श्रीमार्गानिदा नेपा नपा श्रद्धा च दाध्वनम् ॥१८॥
 पुन स्रुयन्ता देवमर्गं पुनरुत्पत्तयेमि ।
 मोयन पात्रमादाय समुत्पत्तये नदा ।
 तेनैव वन्य यन्मे च देवा उम्भपुराणिमा ॥१९॥
 नागेश्वर स्रुयते दुःखा विप क्षीर तदा मही ।
 तेषां च धाम्निदिवाद्या रात्रयेषा महीवम ॥२०॥
 नागाना के द्विजस्यैव सर्पाणां च मर्त्यमा ।
 तेनैव वन्य यन्मृगाना महाकाया महोन्नता ।
 तेषां चाम्निदाद्यागाम्निदीयांस्तु मदाश्रया ॥२१॥
 धाम्निपात्रे पुनरुत्पत्त्या त्वन्मर्त्यानिमिय मही ।
 वन्य वैश्वरग वृन्ता यर्ष पुण्यजनैर्मन्दा ॥२२॥
 दोग्धा च जनूनाभस्तु पिता मर्गिष्वरस्य म ।
 यक्षाम्ना मन्त्राणा व्रीही म मृमहावन ।
 तेन ते वर्जयन्तीति पम्पिष्वान् ॥२३॥

उग गता वैत्य न दय वन्त्रग म मर्त्या रा दाह्यन क्रिया वा । ३५
 चापुष धनु ही उद्धता उताया नर दम दमद्वन्द्व ग्वन्व पात्र ये उम ममय उम
 वन्य मे वद्व मम्म प्रजा मगना वर्जित मदा क्रिया रानी है ॥१७॥ फिर यह
 उगम्परा अग्निका के डाग म्नुत जेनी है और पुन वरुव ही गई ही । उम
 ममय मोम या उम हुया वा और उद्भम्पनि दोहन रग्ने बरने वने रे ॥१७॥
 उग ममय मर्ती और उन्द नदा गाधर्मा यादि पात्र वना वा और उम ममय
 उनरा मान्यन नव नवा उद्धा ही और हुया वा ॥१७॥ हमरे पदवात् देवगण
 के डाग निगम पुनरुत्पत्तयेमि मर्त्या के, स्रुयन्ता रग्ने उम ममय मे मुवण निर्मित
 पात्र तेषां मन्त्रा का दोहन क्रिया मया वा और उमी ने उन्द यादि देवो ने
 वर्यन रत्न (पुति) क्रिया वा ॥१७॥ नागा के डाग म्नुत हुई पृथ्वी ने

उस समय विष रूपो क्षीर दोहन म दिया था । उनका दोग्धा वासुकि या घोर काद्रवेय महान् श्रोत्र बांसे थे ॥१७८॥ हे द्विचक्र ! नाथो का और सभी सर्पों का उसी से बतन होता है । ये सब उष-महान् क्षीर के धारण करने वाले घोर महान् उवश थे । वही उनका आहार था और वसा ही आहार वही क्षीर घोर वही आश्रय था ॥१७९॥ फिर यह पृथ्वी आम-पात्र में अन्तर्धान में दोहन की गई थी घोर पुण्य जन यज्ञो के द्वारा बभ्रवशु को बरस कल्पित कर दोहन किया गया था । उस समय मल्लिकार्जुन का पिता जनुनाभ जो यज्ञात्मज महान् तेज बाला वशी घोर महान् बल वाला था इसका दोग्धा था । उससे वे अपनी वृत्ति लिया करते हे यह परमपि ने कहा था ॥१८०॥ ॥१८१॥

राक्षसश्च पिपाचश्च पुनरुग्धा वसुन्धरा ।

ब्रह्मापेतस्तु दोग्धा च तेषामासीत्कुबेरक ॥१८२॥

रक्ष सुमाली बलवाक्षीर रुधिरमेव च ।

कपालपात्रे निरुग्धा अन्तर्धानश्च राक्षसै ।

तेन क्षीरेण रक्षामि वत्तयन्तीह सबध ॥१८३॥

पचपात्रे पुनरुग्धा गन्धर्वैरप्सरोगणै ।

वत्स धिन्नरथ कृत्वा शुचीन् गधास्तथ च ॥१८४॥

तेषा विश्वावसुस्त्वासीदोग्धा पुत्रा मूने शुचि ।

गन्धर्वराजोऽतिबलो महात्मा सूर्यसन्निभ ॥१८५॥

शनश्च स्तूयते दुग्धा पुनर्देवो वसुन्धरा ।

तत्रोपधीमूर्त्तिमती रत्नानि विविधानि च ॥१८६॥

वत्सस्तु हिमवास्तपा मेरुदोग्धा महापिरि ।

पात्रन्तु कलमेवासीत्तत्र शनः प्रतिष्ठित ॥१८७॥

स्तूयते वृक्षबीरुमि पुनरुग्धा वसुन्धरा ।

पलाशपात्रमादाय दुग्धं क्षिप्तप्रराहणम् ॥१८८॥

नामधुरं पुष्पितं घनं प्लक्षं वत्सो यदास्विनी ।

सर्वकामदुघा दोग्धी पृथिवी भूतमाविनी ॥१८९॥

सया धात्री विधात्री च धारिणी च वसुन्धरा ।

दुग्धा हितार्थं लोकानां पृथुना इति न श्रुतम् ।

चराचरस्य लोकस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ॥१६०॥

इसके पश्चात् यह वसुन्धरा गङ्गा तथा पिशाचों के द्वारा दोहन की गई थी । उनका प्रहोषित कुवेर दोगधा था ॥१६२॥ सुमाली बलवान् गङ्गा था, और उनका क्षीर सघिर हो था । राजाओं के द्वारा कपाल के पात्र में ग्रन्थधान दोहन की गई थी । सभी क्षीर से राजस सौम्य अपनी वृत्ति बसाया करते हैं ॥ ॥१६३॥ गन्धर्वों तथा अश्वराजों के संपुत्रों के द्वारा फिर यह वसुन्धरा दोहन की गई थी । उस समय पित्ररज को बल बनाया था और शुचि राजा का दोहन किया गया था ॥१६४॥ मुनि का पवित्र पुत्र विश्वायसु उनका दोगधा था, जो कि गन्धर्वगण अत्यन्त बलवान्—महान् आत्मा था और सूर्य के सुरप था ॥१६५॥ फिर यह पृथ्वी पौलो के छात्र स्मृत होती है और दोहन की गई थी । वहाँ पर भूतिमयी गङ्गा की भोपविषा तथा अनेक प्रकार के रत्नों का दोहन हुआ था ॥१६६॥ उनका उस समय हिमाचल बल बना था और महाशक्ति मित्रि सेह उनका दोगधा अपना दोहन करने वाला था । पाप उन गङ्गा से ही था, उससे सैल प्रतिष्ठित हुए ॥१६७॥ फिर वृक्ष और जलोत्तों के द्वारा यह भूमि स्मृत होती है और दोहन की गई थी । पलाश का पत्र लाकर छिन्न का प्रवेक्षण हुआ था ॥१६८॥ पुष्पित सैल कामधुक् था—सका बल हुआ था—सत्स्वित्नी मूल भाविनी पृथ्वी समस्त कामों की दुपा दोहरी थी ॥१६९॥ यह यह धात्री-निवासी और चारखी वसुन्धरा पृथु राजा के द्वारा समस्त लोकों के हित सम्पादन करने के लिये दोहन की गई थी—ऐसा हमने सुना है । यह हम समस्त धर और सबर लोक की प्रतिष्ठा तथा योनि है, यहाँ यह सबके उद्धार का स्थान है ॥१७०॥



॥ प्रकरण ४—पृथु वंश कीर्तन ॥

यासीदिय सगुहान्ता मेदिनीति परिश्रुता ।

वसु धारयते यस्माद्वसुवा तेन चोच्यते ॥१॥

मधुकटभयो पूष मेदसा सपरिप्लुता ।
 ततोऽम्बुपगमाद्वाप्त पृथोर्वन्त्यस्य धीमता ॥२॥
 इयञ्चासीत् समुद्रान्ता मेदिनीति परिथ ता ।
 दुहितृत्वमनुप्राप्ता पृथिवीत्युच्यते तत ॥३॥
 प्रथिता प्रविभक्ता च क्षोभिता च वसुन्धरा ।
 सस्याकरवती राज्ञा पसनाकरमानिनी ।
 चातुर्वर्ण्यसमाकीर्णा रक्षिता तेन धीमता ॥४॥
 एव प्रभातो राज्ञासीद्ध य स नृपसत्तम ।
 नमस्यञ्च व पूज्यञ्च भक्तधामेण सर्गसि ॥५॥
 ब्राह्मणञ्च महाभाग विवेकाङ्गपारम ।
 पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मवोनि सनातन ॥६॥
 पार्थिवञ्च महाभाग प्राधयदमिमहत्तम ।
 आदिराजा नमस्काय पृथुर्वय प्रतापवान् ॥७॥

श्री मूलजी ने कहा—यह ममदा के भूतलक है और मेदिनी इस नाम वाली सुती गई है। क्योंकि यह वसुन्धरा को धारण किया करती है।
 ही स। कमला इस नाम से बड़ी जाना करती है ॥२॥ यह पहिले समय में मधु और कटभ के भेद से सपरिप्लुत थी फिर बीजान् बन्ध राजा पृथु के अम्बुपगम से यह समुद्र के अन्त तक हुई थी और मेदिनी इस नाम से परिप्लुत हुई। यह दुहिता के भाव से प्राप्त हुई थी तब से ही यह पृथ्वी इस नाम से बड़ी जाती है ॥३॥ यह प्रथित हुई-प्रविभक्त हुई और क्षोभ से भी मुक्त हुई बन्धु ररा नी जो कि सस्यो के बाकरी वाली राजा के द्वारा पसना के आदरो के माना वाली भी गई थी। यह चारों तरफों के समुद्र से समानीर्ण सभी राजा के गरा जो कि परम ब्रह्मवान् था रक्षित हुई थी ॥४॥ यह नृपों में परम भद्र राजा व र इस प्रकार के प्रभाव से मुक्त था। यह प्राणियों के समूह व द्वारा मन्त्र नमन करने के योग्य तथा पूजा करने के योग्य था ॥५॥ वे और व के समस्त जीवों के पारनामी महान् भाग्य नाम ब्राह्मणों के द्वारा ब्रह्मपानि एवं सनातन वंश वृष ही नमस्कार करने के योग्य होता है ॥६॥

जो राजा इस भू-मण्डल में महाम् वश प्राप्त करने के इच्छुक हो उन महाभागों के द्वारा भी परम प्रताप वाला आदि राजा वैष्णु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ॥७॥

योधैरपि च सग्रामे प्रार्थयानेर्जय युधि ।

आदिकर्त्ता नराणां नै नमस्य पृथुरेव हि ॥८॥

यो हि योद्धा रणं याति कीर्त्तयित्वा पृथु नृपम् ।

स घोररूपे सग्रामे क्षेपी तरति कीर्त्तिमान् ॥९॥

वैश्यैरपि च राजर्षिर्गैश्च वृत्तिसमास्थितैः ।

पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिदाता महायशा ॥१०॥

एते वत्सविशेषाश्च दोग्धार क्षीरमेव च ।

पात्राणि च भयोक्तानि सर्वाण्येव यथाक्रमम् ॥११॥

ब्रह्मणा प्रथमं दुग्धा पुरा पृथ्वी महात्मना ।

वायुं कृत्वा तदा वत्स बीजानि वसुधातले ॥१२॥

ततः स्वायम्भुवे पूर्वन्तदा मन्वन्तरे पुनः ।

वत्सं स्वायम्भुवः कृत्वा दुग्धा ग्रीष्मेण वै मही ॥१३॥

मनौ स्वारीचिषे दुग्धा मही चैत्रेण धीमता ।

मनु स्वारीचिषः कृत्वा वत्सं सस्यानि वै पुरा ॥१४॥

जो योधा सग्राम भूमि में शयनाजय प्राप्त करने की कामना रखते हैं, उनके द्वारा भी मानवी का आदिकर्त्ता पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ॥८॥ जो योधा रणभूमि में पहिले पृथु राजा का गुण-गान करके जाया करता है वह फिर वही घोर स्वरूप वाले सग्राम में क्षेपे वाला होता हुआ कीर्त्ति प्राप्त करने वाला पार उत्तरता है ॥९॥ वैश्यों की वृत्ति में समास्थित रहने वाले वैश्यों के द्वारा भी वह राजर्षि वृत्ति के देने वाला क्षीर महान् वश वाला पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ॥१०॥ ये सब वत्स विशेष, दोहन करने वाले दोग्धा यक्ष और पात्र तथा क्षीर सभी वस्तुएँ क्रम के अनुसार मँने कह दी है ॥११॥ पहिले महान् आत्मा वाले ब्रह्माजी ने इस पृथ्वी का दोहन किया था । उस समय ब्रह्मा ने वायु को वत्स बनाया था और इस वसुधा के

मधुकटभयो पूव मेन्सा सपरिप्लुता ।
 ततोऽभ्युपगमाद्वाभ पृथार्वेन्यस्य धीमत ॥२॥
 इयञ्चासीत् समुद्रान्ता मेन्नीति परित्रता ।
 दुहितृत्वमनुप्राप्ता पृथिवीत्युच्यते तत ॥३॥
 प्रथिता प्रविभक्ता च जोगिता च वमुच्यते ।
 सस्याकरवती राज्ञा पत्न्याकरवार्तिनी ।
 चातुषण्यसमाकीर्णा रक्षिता तन धीमता ॥४॥
 एव प्रभावो राजासीद् य स नृपसत्तम ।
 नमस्यञ्च व पूज्यञ्च अतप्रापेण सर्गस्य ॥५॥
 ब्राह्मणञ्च महाभाग विवेकाङ्गपारम ।
 पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनि सनातन ॥६॥
 पाथिगेञ्च महाभाग प्राथयद्भिमहद्यस ।
 आदिराजा नमस्त्राय पृथुर्वैय प्रसापवान् ॥७॥

श्री सुतजी ने कहा—वह समुद्र के अंत तक हुई और मेदिनी इस नाम
 वाली सुती गई है । क्योंकि वह वसु सर्वात् धनो को चारण किया करती है
 वही से वसुधा इस नाम से बड़ी जाया करती है ॥१॥ वह पहिले समय में
 मधु और कठभ के वेद से सपरिप्लुत थी फिर धीमान् वैश्य राजा पृथ के
 अभ्युपगम से वह समुद्र के अंत तक हुई थी और मेदिनी इन नाम से परिप्लुत
 हुई । यह दुहिता के नाम को प्राप्त हुई थी उस से ॥३॥ यह पृथ्वी इस नाम से
 नहीं जाती है ॥४॥ यह प्रथिता—प्रविभक्त हुई और योगिता से भी युक्त
 हुई वसु बरा थी जो कि सस्यो के आकरो वाली राजा के द्वारा पत्नो के
 आकरो के माता बालो की गई थी । वह चारो बलों के समुदाय से धमाकीय
 उसी राजा के द्वारा जो कि परम बुद्धिमान् था रक्षित हुई थी ॥५॥ वह नृपो
 में परम श्रेष्ठ राजा कव्य इस प्रकार के प्रभाव से युक्त था । वह प्राणियों के
 समूह के द्वारा सर्वत्र गमन करने के योग्य तथा पूजा करने के योग्य था ॥६॥
 वेद और वेद के समस्त अङ्गों के धारमासी महान् आत्म बाले ब्राह्मणों के द्वारा
 ब्रह्मयोनि एवं सनातन केवल पृथ ही नमस्कार करने के योग्य होता है ॥७॥

जो राजा इस भू-मण्डल में महाम् यज्ञ प्राप्त करने के इच्छुक हो उन महाभागों के द्वारा भी परम प्रताप वाला बादि राजा वेणु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ॥७॥

योधोरपि च सग्रामे प्रार्थयानेर्जय मुधि ।

आदिकर्ता नराणा नै नमस्य पृथुरेव हि ॥८॥

यो हि योद्धा रक्ष याति कीर्तयित्वा पृथु नमम् ।

स धोररूपे सग्रामे क्षेपी तरति कीर्त्तिमान् ॥९॥

वैश्यैरपि च राजर्षिर्भक्ष्यवृत्तिसमास्थितः ।

पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिदाता महायज्ञा ॥१०॥

एते वत्सविशेषाश्च दोग्धार क्षीरमेव च ।

पात्राणि च मयोक्तानि सवौष्येव यथाक्रमम् ॥११॥

ब्रह्मणा प्रथम दुग्धा पुरा पृथ्वी महात्मना ।

वायु कृत्वा तदा वत्स वीजानि वसुधातले ॥१२॥

ततः स्वायम्भुवे पूर्वन्तदा मन्वन्तरे पुनः ।

वत्स स्वायम्भुव कृत्वा दुग्धा गोप्मेण गौ मही ॥१३॥

मनी स्वारोचिषे दुग्धा मही चैत्रेण धीमता ।

मनु स्वारोचिष कृत्वा वत्स सस्यानि गौ पुरा ॥१४॥

जो योधा सग्राम भूमि में अपना जय प्राप्त करने की कामना रखते उनके द्वारा भी मानवों का आदिकर्ता पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ॥८॥ जो योधा रणभूमि में पहिले पृथु राजा का गुण-मान करके जामा करता है वह फिर वहाँ भीरु स्वरूप वाले सग्राम में क्षेम वाला होता हुआ वृष्णा कीर्त्ति प्राप्त करने वाला पार उत्तरता है ॥९॥ वैश्यों को वृत्ति में समास्थित रहने वाले वैश्यों के द्वारा भी वह राजर्षि वृत्ति के देने वाला भीरु महान् यज्ञ वाला पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ॥१०॥ ये सब वत्स विशेष, दोहन करने वाले दोब्बा गण और पात्र तथा क्षीर सभी वस्तुएँ क्रम के अनुसार मीने कह दी हैं ॥११॥ पहिले महान् आत्मा वाले ब्रह्माजी ने इस पृथ्वी का दोहन किया था । उस समय ब्रह्मा ने वायु को वत्स बनाया था और इस वसुधा के

तल म बीबो का दहा था ॥१९॥ इसक पचात् फिर बहिले स्वायम्भुव मन्व
 तर मे स्वायम्भुव को वत्स बनाकर बीष्म के द्वारा इस मही का दोहन किया
 गया था ॥१३॥ स्वरोचिष मन्व तर म भीमान् च ने मही का दोहन किया
 था । स्वरोचिष मनु को वत्स बनाकर सस्यो का दोहन किया गया था ॥१४॥

उत्तमेऽनन्तमेनापि दुग्धा देवभुजेन तु ।

मम कृत्योत्तम वत्स सबसस्यानि धीमता ॥१५॥

पुनश्च पञ्चमे पृथ्वी तामसस्यान्तरे मनो ।

बुधेय तामस वत्स कृत्वा तु वसवधुना ॥१६॥

चारिष्णावस्य देवस्य सप्राप्त चातरे मनो ।

दुग्धा मही पुरागेन वत्सञ्चारिष्णाव प्रति ॥१७॥

चाक्षुषेऽपि च सम्प्राप्त तदा मन्वन्तरे पुन ।

दुग्धा मही पुरागेन वत्स कृत्वा तु चाक्षुषम् ॥१८॥

चाक्षुषस्यान्तरेऽप्येते प्राप्त ववस्वते पुन ।

अन्येनैव मही दुग्धा यथा ते कीर्तित यथा ॥१९॥

एतदुग्धा पुरा पृथ्वी व्यतीतेऽध्वन्तरेषु च ।

देवादिभिमनुष्यश्च तथा ब्रूतादिभिश्च या ॥२०॥

एव सर्वेषु विज्ञया ह्यतीतानागतैर्बिभू ।

देवा मन्वन्तरध्वस्य पृथोऽस्तु शृणुत प्रजा ॥२१॥

उत्तम श्रीर भीमान् अनुत्तम देवभुव के द्वारा वत्स बना
 कर बीबाम् ने समस्त सस्यो का दोहन किया था ॥१५॥ फिर तामस मन्वन्तर
 से जो कि पाँचवाँ मन्वन्तर था वसवन्धु के द्वारा यह पृथ्वी तामस मनु को
 वत्स बनाकर दोहन की गई ॥१६॥ फिर चारिष्णुव देव के मन्वन्तर प्राप्त होने
 पर पुराण ने चारिष्णुव को वत्स बनाकर इस पृथ्वी का दोहन किया था ॥१७॥
 फिर चाक्षुष मन्वन्तर के आगने पर पुराण के द्वारा ही चाक्षुष को वत्स
 कल्पित कर इस मही का दोहन किया गया ॥१८॥ फिर वासव मन्वन्तर के
 व्यतीत हो जाने पर इस ववस्वत मन्वन्तर के सम्प्राप्त हो जाने पर यह मही
 अन्य राजा के द्वारा दोहन की गई है जैसा कि मैंने तुमको अभी सब बताया

या ॥१२६॥ पहिले इन मन्त्रों के ज्ञान हो जान पर दय प्रादि-
मानव और भूतानि के द्वारा यह भूमि देखन की गई थी ॥१२७॥ इन प्रकार म
र्त्यल एव अनागत मन्त्री में मन्त्रों में देवों का जान जना चाहिए । मर इन
गता पृथु की प्रजा का अवलक्षण आप लोग करें ॥१२८॥

पृथोस्तु पुत्रो विक्रान्तो जजानेऽन्तर्द्विपानिनी ।
शिलण्डिनी हविर्दानमन्तर्द्विनाडुघजायत ॥१२९॥
हविर्दानात्पडाग्रो यो विपरणाऽजनयस्मुतात् ।
प्राचीनवर्हिष शुक्र गय कृणु प्रजाजिनी ॥१३०॥
प्राचीनवर्हिभंगवान् महानामीत् प्रजापति ।
दलऽततपोवीर्ये पृथिव्यामेकराडमै ।
प्राचीनाग्रा कुशास्तस्य तन्मास्प्राचीनवर्हसो ॥१३१॥
समुद्रनयान्तु कृतदार स वै प्रभु ।
महत्तमस पारे सवर्णांश्च प्रजापते ।
सवर्णाऽऽमत्त मामुद्री दम प्राचीनवर्हिष ॥१३२॥
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्ध्वस्य पारणा ।
प्रपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तप ।
वषट्पसहस्राणि समुद्रनसिलेशया ॥१३३॥
तपश्चरत्सु पृथिवी प्रचेत सु महीवहा ।
मर्क्यमाणामावबुर्बुम्बाश्च प्रजापत्य ॥१३४॥
प्रत्याहते तदा तस्मिन्नाक्षुपम्यान्तरे मनो ।
नाशकन् मास्तो वातु वृत खममवद्द्रुमै ।
दशवर्षसहस्राणि न शेकुञ्चेद्वितु प्रजा ॥१३५॥

पृथु राजा के जो विक्रान्त पुत्र उत्पन्न हुए वे जोकि अन्तर्द्विपानी थे ।
शिलण्डिनी हविर्दान अन्तर्द्विना से उत्पन्न हुआ ॥१२९॥ हविर्दान से पट्प्राणवी
विपरणा ने पुत्रों को जन्म दिया था । जिनके नाम प्राचीन वर्हि-शुक्र-जप-
कृष्ण-वज्र और अजिन थे ॥१३०॥ प्राचीन वर्हि भंगवान् महान् प्रजापति थे ।
यह वन-भूत-तप और वीर्य में पृथिवी में एकपट् थे । प्राचीनाग्रा कुशा उनके

ये इसीसे यह प्राचीन बहि नाम बना हुआ था ॥२४॥ वह प्रभु समुद्र तनया म
कृतान्तर हुआ था धर्षन् समुद्र तनया को अपनी दारा बनाया था । महान् तम
क पार म प्रजापति से सबर्ण म दग सावत्री प्राचीन बहियो को सबर्ण ने
था ए किया था ॥२५॥ ये मन्व धनुर्वेद के पारयायी प्रचेतम थे । धपृथक धम
के धावरण करन खान उनन दग सहस्र वर्ष तक महान् तपस्वर्या की थी जो
कि समुद्र के जल म गवन करने वाले थे ॥२६॥ प्रचेतायो के तपस्वर्या करने
पर महीरह प्ररक्षयाण वृक्षी से बोरे । इसके अनन्तर प्रजापति हो गया
था ॥२७॥ उस समय बाध प मन्वन्तर के प्ररक्षित हो जाने पर मास्त बहुत
न कर सका और इसी से आकाश आवृत हो गया था । वक्ष सहस्र वर्ष तक प्रजा
कुक्ष भी वेदा न कर सकी थी ॥२८॥

तदुपधृत्य तपसा सर्वे युक्ता प्रचेतसः ।

मुक्षेभ्यो वायुमग्निश्च ससृजुर्वातमन्यव ॥२९॥

उन्मूलानथ तान् वृक्षान् कृत्वा वायुरखोपयत् ।

तानग्निरदहद्वोर एवमासीद्भूमक्षयः ॥३०॥

मक्षयमयो बुद्ध्वा किञ्चिच्छेदेणु क्षासिपुः ।

उपगम्यावधीदेतान् राजा सोमः प्रचेतसः ॥३१॥

दृष्ट्वा प्रयोजनं सर्वं लोकसन्तानकारणात् ।

कौपत्स्यजतं राजानं सर्वं प्राचीनबहिषः ॥३२॥

वृक्षा क्षित्या जनिष्यन्ति धाम्येतामग्निमास्तौ ।

रत्नभूता तु कन्येय वृक्षाणां वरवर्णिनी ॥३३॥

अविष्य जानता ह्य वा मया गोभिर्विबद्धिता ।

मारिषा नाम नाम्नीषा वृक्षैरेव विनिमिता ।

मार्या भवतु वो ह्य वा सोमवमविबद्धिता ॥३४॥

युष्माक तेजसोऽर्द्धेन मम आर्द्धेन तेजसः ।

अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान् दक्षो नाम प्रजापतिः ॥३५॥

तपस्या से मुक्त समस्त प्रचेतायो ने यह गुनकर कोषित होते ॥३६॥ मुक्तो

से वायु और अग्नि को उत्पन्न किया था ॥३७॥ वायु ने उन समस्त वृक्षो

को उन्मूलित कर मुरवा दिया था और अग्नि ने उनको दण्ड कर दिया था । इस प्रकार से धीरे-धीरे का सख बूझा था ॥३०॥ कुछ आगिया का ढोंग रह जाने पर द्रुमों के क्षय को जानकर प्रचेतस सोम राजा उनके पास याकर उनसे कहने लगा ॥३१॥ लोह मन्तान के जलरूप में समस्त प्रयोजन जाकर प्राचीन घृष्टिप राजा लोग कोन को छोड़ रो ॥३२॥ क्षिति में वृक्ष उत्पन्न होंगे । मणि और वायु शान्त हो जावे । रत्नभूता यह कन्या वृक्षों की धर वर्णिनी है ॥३३॥ भविष्य अर्थात् आगे जाने वाले समय को जानने वाले मैं गौरी से विप्रणिता की है । नाम से यह भागिना नाम वाली है और यह पृथा के द्वारा ही विनिमित्त हुई है । यह गौरी के गर्भ में विषादित हुई वायसी भार्यी होये ॥३४॥ आपके आर्ष तेज से और आपे मेरे तेज से द्रुम पत्र सिद्धात् दक्ष नाम वाला प्रजापति उत्पन्न होगा ॥३५॥

स इमा दक्षभूयिष्ठा युष्मत्सोजोमयेन वै ।
 अग्निनाग्निसमो भूयः प्रजा सवर्द्धयिष्यति ॥३६॥
 ततः सोमस्य वचनाल्लगृहस्ते प्रचेतसः ।
 सहस्रस्य कोप वृक्षेभ्यः पत्नी यमेन मारिषाम् ॥३७॥
 मारिषाया ततस्ते वै मनसा यर्ममादधुः ।
 दक्षभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषाया प्रजापति ॥३८॥
 दक्षो जज्ञं महातेजाः सोमस्पाशेन वीर्यवान् ।
 असृजन्मानसानादौ प्रजा दक्षोऽथ मेषुनात् ॥३९॥
 अचराश्च चराश्चैव द्विषदोऽथ चतुष्पदान् ।
 विसृज्य मनसा दक्ष पश्चादमृजत स्थिरः ॥४०॥
 ददौ ॥ दक्ष धर्मसि कक्षपाय त्रयोदश ।
 कालस्य नयने मुक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे ॥४१॥
 एभ्यो दत्त्वा ततोऽन्या वै चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।
 द्वे चैव वाहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ।
 कन्यामेका कृशाश्वाय तेभ्योऽन्यत् निबोद्धत ॥४२॥
 आपके तत्त्वोपम अग्नि से दक्ष भूयिष्ठा दसही वह अग्नि राम होकर

प्रजा का सम्बद्ध न करेगा ॥३६॥ इसके पदपात् सोम के बचन से उन प्रचे-
ताघो ने वृक्षो से कोप का सहार करके घम से मारिया को पत्नी रूप में ग्रहण
किया था ॥३६॥ इसके अनन्तर उन्होंने मारिया में मन से गम धारण कराया
था । इन प्रचेताघो से मारिया ने प्रजापति महात्मा तब वासा सोम के घम से
वीर्यवान् दश उत्पन्न हुआ था । आदि में मानस प्रजाघो का मृजन किया था
इसके अनन्तर दश ने मधुन से सृजन किया ॥३७-३८॥ दश ने चर-मचर-
क्षिप्त घोर चतुष्पदा का धन से विनोद रूप से सृजन करके पीछे जियो का
सृजन किया था ॥३८॥ उन्होने अन्तर् दश ने दसती घम से लिए बी-रक्षप
को तेरह घोर काल के नवन में युक्त उत्साह से हनु के लिए दी थी ॥३९॥
इनको देकर फिर अन्य चार घोरमेमि को दी—दो बाहु पुत्र के लिए—दो
आङ्गिरस के भिन्न घोर एक कन्या कृशास्व के लिये दी । अब उससे जो सन्तति
हुई उसे भी आप लोग भली भाँति समझ लो ॥४०॥

अन्तर आकुपस्याम मनो पशन्तु हीयसे ।

मनोर्वेवस्वतस्यापि सप्तमस्य प्रजापते ॥४१॥

तासु देवा सखा गावो नागा वित्तिलवानवा ।

गधर्वाप्सरसश्च न जतिरेज्याश्च जातय ॥४२॥

सत प्रभृति लोकेऽस्मिन् प्रजा मधुमसम्भवा ।

सङ्कल्पाङ्गनास्त्वर्चात्पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते ॥४३॥

देवानां दानवानाञ्च देवर्षीणाञ्च ते शुभ ।

सम्भव कथितं पूर्वं दक्षस्य च महात्मन ॥४४॥

प्राणात्प्रजापतेजसं दक्षस्य कथितं त्वया ।

कथं प्राचेतसत्वं च पुनर्लोके महातपाः ॥४५॥

एतन्न सगमं सूत व्याख्यातुं स्वमिहार्हसि ।

स दोहित्रश्च सोमस्य कथं दशगुरताङ्गतः ॥४६॥

उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यं भूतेषु सत्तमाः ।

अपयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये नरा ॥४७॥

यहाँ पर आधुन मनु का छट्वाँ अन्तर हीयमान होता है । प्रजापति

सप्तम वैवस्वत मनु का भी समाप्त होता है । उन में देव-सप्त-गौ-नाग-दितिज-
दानव-गन्धर्व-अप्सरा और अन्य जातिवाँ उत्पन्न हुई थी ॥४३-४४॥ इसके
पश्चात् सभी से लेकर इस लोक में मनुष्यसे जन्म ग्रहण करनेवाली प्रजा हुई थी ।
इससे पहिले जो हुए थे सब पूर्व में होने वालों की सृष्टि सद्गुण-दर्शन-स्पर्शन
से ही गरीब जाती है ॥४५॥ ऋषियों ने कहा—आपने देवों का-दानवों का
और देवपियों का शुभ जन्म महात्मा वश के पहिले बतलाया है ॥४६॥ आपने
प्रजापति वश का जन्म प्राण से बतलाया है । फिर महात्मा ने प्राचेतसत्व की
कैसे मात किया था ॥४७॥ हे भूत ! यह हमको बड़ा उपदेश होता है । आप
इसकी पूरी व्याख्या करने के योग्य होते हैं । यह सोम का बोधिपथ स्वयं
बत गया था ? ॥४८॥ श्री भूतजी ने कहा—हे भक्तों ! प्राणियों में उत्पत्ति
और निर्गुण निरूप्य होना है । इस विषय में ऋषि जीन और जो मिथा वाले
मनुष्य हैं वे मोह को प्रसन्न नहीं होते हैं ॥४९॥

युगे युगे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो द्विधा ।
पुनश्चैव निरुच्यन्ते विद्वास्तत्र न मुह्यति ॥५०॥
ज्यैष्ठ्यं कानिष्टमग्रेषां पूर्वं नासीद्विजोत्तमा ।
तप एव गरीयोऽभूत् प्रभावश्चैव कारणम् ॥५१॥
इमा विसृष्टि यो वेद चाक्षुषस्य चराचरम् ।
प्रजानामायुरुत्तीर्णं स्वर्गलोके महीयते ॥५२॥
एष सर्गं समाख्यातश्चाक्षुषस्य समा सत ।
इदमेतै पठन्विसर्गा हि कान्ता मन्वन्तरात्मका ।
स्वायम्भुवाद्याः सक्षेपाश्चाक्षुषान्ता वषाकम् ॥५३॥
एते सर्गा यथाप्रज्ञ प्रोक्ता वै द्विजसत्तमा ।
वीदस्वदतिसर्गेषु तेषां ज्ञेयस्तु विस्तर ॥५४॥
अनन्ता नातिरिक्ताश्च सर्वे सर्गा विवस्वत ।
आरोभ्यायुष्ममाणेन धर्मत कामतोऽर्जतः ।
एतानेव गुणभेदेति य पठत्यनसूयक ॥५५॥

ववस्वतस्य वक्ष्यामि साम्प्रतस्य महात्मन ।

समासाद्व्यासत सर्गं ध्रुवतो मे निबोधत ॥५६॥

हे द्विज धृन् ! ये समस्त वक्ष्यामि भुव भुव व होते हैं और फिर निबद्ध हुआ करते हैं । उसमें विद्वान् पुरुष कभी मोहित नहीं होता है ॥५॥ हे द्विजोत्तमो ! पहिले इनकी ज्येष्ठता और वनिष्ठता अर्थात् सुष्टपन और बद्धपन नहीं होती थी । तब ही एक बड़ा दृष्टा या और प्रभाव ही कारण था ॥५१॥ जो आधुप की इस चराचर विशेष सृष्टि को जानता है वह प्रजाओं की आयु की उत्तीर्ण होगया और स्वयं लोक में प्रतिष्ठित होता है ॥५२॥ मैंने यह आधुप मन्वन्तर का सर्ग संक्षेप से कहा है । ये मन्वन्तरात्मक अर्थात् मन्वन्तर के स्वर्ण वाले छ विसय क्रांति होते हैं । स्वायम्भुव के आद्य वाले आधुप के अन्त वाले मयाक्रम संक्षेप से वर्णित हैं । अर्थात् इनमें से छ ये स्वायम्भुव प्रथम है और आधुप अन्तिम है ॥५३॥ ये समस्त सग प्रजा के अनुसार हे द्विजोत्तमो ! मैंने कहे हैं । ववस्वत विसय से ही उनका विस्तार जान लेना चाहिये ॥५४॥ ये समस्त सग विवस्वान् से न तो अनन्त हैं और व अतिरिक्त ही है । भारोग्य और आयु प्रमाण स-वम स तथा काम स इनके ही कुछ स जो भगवन्मया इसे पढ़ता है हो जाता है । अब साम्प्रत महात्मा ववस्वत का सर्ग समाप्त और विस्तार दोनों स मैं कहूँगा उसे आप जोन बताने वाले मुखसे जान लो ॥५५, ५६॥

प्रकरण ४६-वैवस्वत सर्ग वर्णन

सप्तमे त्वय परमनि मनोर्वैवस्वतस्य ह ।

भारीचात्कश्यपाद् देवा जज्ञिरे परमथय ॥१॥

आदित्या वसवो रुद्रा साध्या विश्वे मरुद्गणा ।

भृगवोऽङ्गिरसश्च व ह्यष्टौ देवगणा स्मृता ॥२॥

आदित्या मरुतो रुद्रा विज्ज मा कश्यपात्मजा ।

साध्याश्च वसवो विश्वे धमपुत्रास्त्रयो गणा ॥३॥

भृगोस्तु भार्गवो देवो ह्यङ्गिरोऽङ्गिरस मुत ।
 बौवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन् नित्य ते छन्दजा सुराः ॥४॥
 एष सर्गस्तु मारीचो विज्ञेय साम्प्रत शुभ ।
 तेजस्वी साम्प्रतस्तेषामिन्द्रो नाम्ना महाबल ॥५॥
 अतीतानागता ये च वर्तन्ति ये च साम्प्रतम् ।
 सर्व मन्वन्तरेन्द्रास्तु विज्ञेयास्तुत्यलक्षणा ॥६॥
 भूतभण्यभवन्नाथ सहस्राक्षः पुरन्दर ।
 मघवन्तश्च ते सर्वे ऽट्टङ्गिणो बज्रपाणय ।
 सर्वे क्रतुवातेनेष्ट पृथक् अतमुखेन तु ॥७॥

श्री गूढशी ने कहा—इसके अनन्तर वैवस्वत ऋतु के सप्तम पर्याय मे मारीच से कश्यप से वैव और परमपिंगल उत्पन्न हुए ॥१॥ आदिशय—बसुगण—रुद्र—प्राण्य—विश्वे—मन्वन्तरेन्द्रा—भृगु—अङ्गिरस मे आठ देवगण रहे गये है ॥२॥ आदित्य—मरुत और रुद्र ये कश्यप के पुत्र जानने चाहिए । साध्य—बसुगण—विश्वे ये तीन गण अर्ग के पुत्र हैं ॥३॥ भृगु का भार्गव वैव पुत्र है और अङ्गिरस का अङ्गिरा पुत्र हुआ । इन वैवस्वत अन्तर मे निरूप छन्दज सुर हैं ॥४॥ यज्ञ मारीच सर्ग जानना चाहिए जो कि साम्प्रत और शुभ है । साम्प्रत अर्थात् हम वर्तमान समय मे होने वाला उनमे तेजस्वी और नाम से महाबल रुद्र है ॥५॥ जो अतीत और अनागत है और जो इस समय मे वर्तमान है वे सब मन्वन्तरेन्द्र तुल्य लक्षाक्ष वाले ही जानने चाहिए ॥६॥ भूत भण्य और भवत् के सहस्राक्ष—पुरन्दर और मघवन्त वे सब ऽट्टङ्गी—बज्र पाणि है । सबो के द्वारा वातऋतु से मज्जन किया गया है जो कि पृथक् अत मुखे से मुक्त है ॥७॥

अज्ञोष्ये यानि सत्त्वानि यतिमन्त्यवसानि च ।

अग्निभूयावतिष्ठन्ते धर्माद्यै कारणैरपि ॥८॥

तेजसा तपसा बुद्ध्या बलश्रुतपराक्रमै ।

भूतभण्यभवन्नाथा यथा ते प्रभविष्णवः ।

एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि श्रुत्वतो मे निबोधत । ९

भूत भव्यं भविष्य तत् लोकत्रयं द्विज ।
 भूर्लोकोऽयं स्मृतो भूमिरन्तरिक्षं भुवः स्मृतम् ।
 भव्यं स्मृतं दिव्यं ह्य तत्तथा यक्ष्यामि साधनम् ॥१०॥
 ध्यायत पुत्रकामेन ब्रह्मणा विभाषितम् ।
 भूरिति व्याहृतं पूवं भूर्लोकोऽयमभूत्तदा ॥११॥
 भूस्तथा स्मृतो घातुस्तथाऽग्नी लोकदत्तन ।
 भूतत्वाद्गन्तव्याश्च भूर्लोकोऽयमभूत्ततः ।
 भूतोऽयं प्रथमो लोको भूतत्वाद्भूद्विजं स्मृतं ॥१२॥
 भूतेऽस्मिन् भवदित्युक्तं द्वितीयं ब्रह्मणः पुनः ।
 भवत्युत्पद्यमानेन कालक्षय्योऽयमुच्यते ॥१३॥
 भवनासु भुवर्लोको निवर्तमानिरुच्यते ।
 भूतान्तरिक्षं भुवस्तस्माद्वितीयो लोक उच्यते ॥१४॥

भौतत्रय में जो सत्त्व गतिमान् और सबल हैं उनका अभिन्न करके
 धारणित होते हैं । भर्माद्य धारणों से-सेव से-तपसे बुद्धिसे और बल-धुत और
 पराक्रम ॥ भूत भव्य और भवसाय होते हैं व उची प्रकार से प्रभविष्णु में
 हैं । यह सब मैं बतलाऊंगा बोलने वाले भुक्ते आप लोग सब जानकारी का
 लो ॥१०॥ भूत भव्य और भविष्य यह द्विजों के द्वारा लोकात्मक कहा गया
 यह भूमि भूर्लोक कहा गया है और अन्तरिक्ष भुवलोक इस नाम से ॥
 गया है । भव्य यह दिव्य कहा गया है जब उनके साधन बतलाऊंगा ॥११॥
 पुनः की कामना वाले ध्यान करते हुए ब्रह्मा ने सबसे धार्य भूँ यह बोला व
 सबसे ही यह भूर्लोक हो गया था ॥१२॥ भू यह वायु तत्ता धन में कहा गया
 है तथा यह लोक दत्तन में भूतत्व और दत्तत्व होने के कारण से तभी से य
 भूर्लोक हुआ था । इसीलिए यह प्रथम लोक भूतत्व होने से द्विजों के द्वारा
 कहा गया है । इस भूत में ब्रह्मा के द्वारा पुनः द्वितीय भवत्त यह कहा गया ॥
 भवति इस उत्पद्यमान के द्वारा यह काल क्षय्य कहा जाता है ॥१२॥॥१३॥ भव
 होने से निवर्त के ज्ञाताओं के द्वारा भुवलोक कहा जाता है । अन्तरिक्ष भू
 होता है इससे यह द्वितीय लोक कहा जाता है ॥१४॥

उत्पन्ने तु भुवर्लकि तृतीय ब्रह्मणा पुन ।
 भव्येति व्याहृत यस्माद्भाव्यो लोकस्तदाभवत् ॥१५
 अनागते भव्य इति शब्द एष विभाव्यते ।
 तस्माद्भाव्यो ह्यसौ लोको नामतस्तु दिग स्मृतम् ॥१६
 स्वरित्युक्त तृतीयोज्ञ्यो भाव्यो लोकस्तदाभवत् ।
 भाव्य इत्येष धातुर्वे भाव्ये काले विभाव्यते ॥१७
 भूरितीय स्मृता भूमिरन्तरिक्ष भुव स्मृतम् ।
 दिव स्मृत तथा भाव्य त्रैलोक्यस्यैष सग्रहः ॥१८
 त्रैलोक्ययुक्तं व्याहारैस्तिन्नो व्याहृतयोऽभवन् ।
 नाथ इत्येष धातुर्वे धातुर्ज्ञं पालने स्मृत ॥१९
 यस्माद् भूतस्य लोकस्य भव्यस्य भवतस्तदा ।
 लोकत्रयस्य नावास्ते तस्मादिन्द्रा द्विजै स्मृताः ॥२०
 प्रधानभूता देवेन्द्रा गुणभूतास्तथैव च ।
 मन्वन्तरेषु ये देवा यज्ञभाजो भवन्ति हि ॥२१

भुवर्लकि के उत्पन्न होने पर ब्रह्मा ने फिर तृतीय को भव्य ऐसा कहा जिस कारण से अब वह भव्य लोक हो गया था ॥१५॥ अनागत में भव्य यह भाव्य विभाजित होता है । इससे यह लोक भव्य नाम से कहा गया है ॥१६॥ अब यह कहा गया है अब अन्य तृतीय भाव्यलोक हुआ था । भाव्य यह धातु भाव्य काल में विभावित होता है ॥१७॥ यह भूमि भू इस नाथ से कही गई है—अन्तरिक्ष भुव इस नाम से कहा गया और भाव्य दिव इस नाम से कहा गया है—यही त्रैलोक्य का सग्रह होता है ॥१८॥ त्रैलोक्य से युक्त व्याहारो से "भूमि" स्व " तीन व्याहृतियाँ हो गई हैं । 'नाथ'—इस नाम से एक धातु है वह धातु के ज्ञान रखने वालों के द्वारा पालन कर्म से कही गई है ॥१९॥ जिस से भूत-भाव्य और भवत् लोक के उस समय में तीन लोक के वे जो नाथ थे द्विजों के द्वारा वे इन्द्र कहे गये हैं । २०॥ प्रधान भूत देवेन्द्र तः । गुणभूत मन्वन्तरो में जो देव हैं वे यज्ञ के भागग्राही होते हैं ॥२१॥

यक्षगन्धर्वरक्षासि पिशाचोरमदानवाः ।

महिमान् स्मृता ह्येते देवेन्द्राणां नु सवश ॥२२॥

देवेन्द्रा गुरवो नाथा राजान पित्रो हि ते ।

रक्षन्तीमा प्रजा सर्वा धर्मशेह सुरोत्तमा ॥२३॥

इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं देवेन्द्राणां समासत ।

सप्तर्षीन् सम्प्रवक्ष्यामि साम्प्रत ये दिवि स्थिताः ॥२४॥

गाधिप्य कीर्तिको धीमान् विष्वामित्रो महातपा ।

भार्गवो जम्बवन्निष् ऊरुपुत्र प्रतापवान् ॥२५॥

बृहस्पतिमुतभ्रापि भारद्वाजो महातपा ।

धौतप्यो गौतमो विद्वाञ्छरद्वाङ्नाम धार्मिक ॥२६॥

स्वायम्भुवोऽभिभगवान् सङ्गकोशस्तु पञ्चम ।

पक्षो वासिष्ठपूजस्तु वसुमान् लोकविश्रुतः ॥२७॥

वत्सार् काश्यपश्च व सप्तते साधुसम्मता ।

एते सप्तर्षय सिद्धा वक्षन्ते साम्प्रतेऽन्तरे ॥२८॥

यक्ष-गन्धर्व-राक्षस-पिशाच-उरव-दानव-ये देवेन्द्रा के सब ओर से महिमाएं बही गई हैं ॥२२॥ हे सुरोत्तमो । देवेन्द्र-गुरु-नाथ-राजा-पितर में सभी यहाँ पर धर्म से प्रजा की रक्षा किया करते हैं ॥२३॥ यह देवेन्द्रों का लक्षण संक्षेप से बतला दिया है । अब सप्तर्षियों के विषय में बतलाते हैं जो कि इस समय दिवि में स्थित रहते हैं ॥२४॥ याचि से उत्पन्न होने वाले भौतिक और धीमान् महान् तपस्वी निष्वामित्र-वागव जम्बवन्नि प्रतापवान् ऊह का पुत्र-बृहस्पति का पुत्र महान् तपस्वी भारद्वाज-धौतप्य गौतम जो कि बड़ा विद्वान् शरद्वाङ् नाम वाला परम धार्मिक है-स्वायम्भुव भगवान् धनि जो ब्रह्म का बीरा और पवित्र है-सङ्गकोश वासिष्ठ पुत्र जो वसुमान् और लोक में परम विद्वत् है-वत्सार् काश्यप के साधुओं के द्वारा सहमत सप्त ऋषिपुत्र हैं । ये वरमान इस अन्तर में सिद्ध हुए सप्तर्षि होते हैं ॥२५॥२६॥२७॥२८॥

इक्ष्वाकुर्धन नाभासो वृष्ट सूर्यातिरेक च ।

नरिभ्यन्तश्च सिख्यातो नाम उद्दिष्ट एव च ॥२९॥

कल्पश्च पृषधश्च वसुमान्नवम स्मृत ।

मनोर्व्वम्बतस्यैते दक्ष पुत्रा प्रकीर्त्तिता ।

कीर्त्तिता वै मया ह्येते मममञ्चैतदन्तर्गम् ॥३०

इत्येव वै मया पादो द्वितीय कथितो द्विजा ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च ब्रूय किं वक्ष्याम्यहम् ॥३१

इन्द्राकु-नाभान-धृष्ट-दार्वाणि-तर्ग्यन्त-विश्यात और उद्दिष्ट मान-
पृषध और नवम वसुमान् वै दक्ष वैरम्बत मनु के दक्ष पुत्र कहें गये हैं । मैंने
इनको कीर्त्तित कर दिया है और यह ममम अन्तर्ग है । हे द्विजगण । यह मैंने
द्वितीय पाद कहा है । अब आगे शेष ही मुझे उतवाऊँ पुन विस्तार में तथा
मानुष्यों ने मैं तथा वक्ष्य कह्य ॥२९॥३०॥३१॥

॥ प्रकरण ४७--प्रजापति वंशानु कीर्तन ॥

श्रुत्या पाद द्वितीयस्तु क्रान्त सूतेन धामता ।

मत्तस्तृतीय पप्रच्छ पाद वै क्षात्रपायन ॥१

पाद क्रान्ता द्वितीयोऽयमनुपङ्गेण मस्त्वया ।

तृतीय विस्तरात्पाद सोपोद्धात प्रकीर्त्तय ।

एवमुक्तोऽब्रवीत्सूत प्रहृष्टोऽनन्तरात्मना ॥२

कीर्त्तयिष्ये तृतीयञ्च सोपोद्धात सविस्तरम् ।

पाद समुदयाद्विप्रा मदनो मे निबोधत ॥३

मनोर्व्वम्बतस्येव माम्प्रतम्य महात्मन ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च निसर्गं शृणुत द्विजा ॥४

चतुर्युगैकसप्तत्या सहस्रात् पूर्वमेव तु ।

सह देवगणैश्चैव ऋषिभिर्दानवै सह ॥५

पितृगन्धर्वयक्षैश्च रक्षोभूतगणैस्तथा ।

मानुषे पशुभिश्चैव पक्षिभि र्वावरं सह ॥६

ऊचु सर्वे ततोऽन्योन्य जनलोके महपय ।
 ऊचुरेव महाभागा वारुणे वितते ऋतौ ॥१८॥
 सर्वे वयं प्रसूयामश्वासुपस्यान्तरे मनो ।
 पितामहात्मजा सर्वे तत थ यो भविष्यति ॥१९॥
 स्वायम्भुवेऽन्तरे क्षप्ता सप्ताय ते भवेन तु ।
 जज्ञिरे १ पुनस्ते ह जनलोकाहि गता ॥२०॥
 देवस्य महतो यज्ञ वारुणी विभ्रतस्तनुम् ।
 ब्रह्मणो जुह्वत शुक्रमम्भौ पूष प्रजेन्तया ।
 ऋषयो जज्ञिरे पूष द्वितीयमिति न थुतम् ॥२१॥

ऋषियों ने कहा—हे अश्वत्थन ! पहिले समुत्पन्न सप्तपिण्ड कहे सात
 मानस पुत्रत्व से कल्पित हुए ? यह हमे बतलाइये । इसके पश्चात् महान् तेज
 वाले पौराणिक सूरजी ने कुछ वचन बोले ॥१८॥ सप्तपिण्ड कहे सिद्ध हुए जो
 स्वायम्भुव अन्तर ने वे अन्तर को प्राप्त कर जोकि ववस्वत नाम वाला था
 भव के अभिषाप से समिद्ध होकर उन्होंने उस समय में तप को प्राप्त नहीं किया
 था । एकबार धामाजी ने जनलोक में उपपन्न हो ॥१९॥॥२०॥ तब जनलोक में
 सब महर्षिलोग आपस में एक—दूसरे से बोले और विरत वारुण ऋतु में महाभाग
 बोले ॥२१॥ हम सब आशुप मनु के अन्तर में प्रसूयमान होते हैं । सब पितामह
 के धामज हैं । इससे श्रेय होगा ॥२२॥ स्वायम्भुव अन्तर में सात के लिये वे
 धिय के द्वारा अभिषक्त हुए वे पुन यही जनलोक से विज को गये हुओं ने जन्म
 लिया था ॥२॥ यज्ञमें वरुण के छरीर को धारण करने वाले महान् देव प्रजा
 की दृष्टा से पहिले अग्नि ने शुक्रका इवन करत हुए ब्रह्मा से पूर्व में ऋषिलोग
 उत्पन्न हुए थे । यह हमारा द्वितीय श्रुत है ॥२१॥

भृगुरज्जिरा मरीचि पुलस्त्य पुलह ऋतु ।
 अत्रिश्च व वसिष्ठश्च अष्टौ ते ब्रह्मण सुता ॥२२॥
 तथास्य वितते यज्ञ देवाः सर्वे समागताः ।
 यज्ञाङ्गानि च सर्वाणि वपटवारश्च मूर्तिमान् ॥२३॥
 मूर्तिमन्ति च सामानि यजू पि च सत्सवा ।

ऋग्वेदश्चाभवत्तत्र पदक्रमविभूषितः ॥२४

यजुर्वेदश्च वृत्ताढ्य ओङ्कारवदनोज्ज्वल ।

स्थितो यज्ञार्थसंपृक्तसूक्तग्राह्याणमन्त्रवान् ॥२५

सामवेदश्च वृत्ताढ्य सवंगेयपुर सरः ।

विश्वावस्वादिभिः साद्धं गन्धर्वं सम्भृतोऽभवत् ॥२६

ब्रह्म वेदस्तथा घोरै कृत्याविविभिरन्वित ।

प्रत्यङ्गिरसयोगैश्च द्विशरीरक्षिरोऽभवत् ॥२७

लक्षणानि स्वराः स्तोभा निरुक्तस्वरभक्तय ।

आश्रयस्तु वपट्कारो निग्रहप्रग्रहावपि ॥२८

भृगु-अङ्गिरा-भरीषि-पुनस्त्य-पुनह-क्रम-अत्रि और वसिष्ठ ये आठ ब्रह्मा के पुत्र हैं ॥२९॥ उसी प्रकार से यज्ञ के वितर होने पर समस्त देवगण वहाँ प्राये थे । समस्त यज्ञ के प्रज्ज और मूर्तिमान् वपट्कार-मूर्तिमान् साम-सहस्रो यजु और पद-क्रम आदि से विभूषित ऋग्वेद वहाँ पर था ॥२३॥२४॥ वृत्त से आढ्य और ओङ्कार के मुख से उज्ज्वल यजुर्वेद यज्ञ के अर्थ से संपृक्त सूक्त-ग्राह्याण और मन्त्रों वाला वहाँ पर स्थित है ॥२५॥ समस्त गाने के योग्यों में अग्रणी वृत्त से आढ्य सामवेद विश्वावस्वादि के साथ गन्धर्वों के द्वारा सम्भृत था ॥२६॥ ब्रह्मवेद घोरकृत्या विधियों से युक्त और प्रत्यङ्गिरस योगों के द्वारा दो शरीर एवं क्षिर वाला था ॥२७॥ लक्षण स्वर हैं, स्तोम निरुक्त स्वर और भक्ति हैं । आश्रय वपट्कार है और निग्रह तथा प्रग्रह भी हैं ॥२८॥

दीप्ता दीप्तिरिलादेवी दिक्ष प्रदिशगीस्वरा ।

देवकन्याश्च पत्न्यश्च तथा मातर एव च ॥२९

आयु सर्वत एवेते देवस्य यजतो मुखे ।

मूर्तिमन्त, स्वरूपाख्या वरुणस्य वपुर्भूत ॥३०

स्वयम्भुवस्तु ता दृष्ट्वा रेत समपतद्भुवि ।

ब्रह्मर्षेर्भावभूतस्य विधानाच्च न सशय ॥३१

कृत्वा जुहाव स्रग्म्याश्च स्रुवेण परिगृह्य च ।

आज्यवज्जुहुवाञ्चक्रे मन्त्रवच्च पितामह ॥३२

तत स जनयामास भूतग्राम प्रजापति ।

तस्यार्वाक तेजसस्तस्य यज्ञ लोकेषु तजसम् ।

तमसाभावव्याप्यत्व तथा सत्त्व तथा रज ॥३३॥

सगुणात्तजसो नित्यमाकाशे तमसि स्थितम् ।

तमसस्तेजसत्वाच्च सबभूतानि जज्ञिरे ॥३४॥

यदातस्मिन्नजायत काले पुत्रास्तु कमजा ।

भ्राज्यस्यास्यामुपादाव स्वशुक्र हुतवाञ्च ह ॥३५॥

वीता वीति इमावेवी विद्या और प्रविण्मीश्वर-देवक्या-पत्निर्मा तथा माताएँ-प्रायु वरुण के बपु को बारण करने वाले यजन करते हुए देव के मन्त्रम ये सब और से स्वकपाक्य सूर्तिमात् ये ॥३६॥३॥ उसको देखकर स्वयम्भू का रेतस् भूमि पर गिर गया । और भावभूत ब्रह्मर्षि के विधान से कोई सहाय नहीं है ॥३७॥ स व से परिग्रहण करके स गो से बरके हुवन किया था । पितामह ने बृत भी भाति मन्त्रवत् हुवन किया था ॥३८॥ इसके पश्चात् उस प्रजापति ने भूतग्राम को उत्पन्न किया था । उसके पुर उससे यज्ञ में तेजसे लोको म तजस-तमसाभाव व्याप्यत्व सत्त्व तथा रज को उत्पन्न किया था । सगुण तेजसे नित्य आकाश में तमसे स्थित है । तम से और तेजसत्व होने से समस्त प्राणी उत्पन्न हुए ॥३९॥ जिस समय में उस काल में कयच पुन उत्पन्न हुए थे भ्राज्य की स्वाधी ने लेकर अपने शुक्र का हुवन किया था ॥४०॥

शुक्र हुतेऽथ तस्मिन्तु प्रादुभू ता महर्षय ।

ज्वलन्तो बपुषा युक्ता सप्त व प्रसवगुण ॥४१॥

हुते चाग्री सकृच्छुक्र ज्यासाया निसत कवि ।

हिरण्यगर्भस्त दृष्ट्वा ज्वाला भित्त्वा विनिसतम् ।

भृगुस्त्वमिति होवाच यस्मात्तस्मात्स व सृगु ॥४२॥

महादेवस्तथोद्भूत दृष्ट्वा ब्राह्मणमश्वीत् ।

ममैव पुत्रकामस्य वीक्षितस्य त्वय प्रभो ।

विजज्ञेऽथ भृगुर्द्वो मम पुत्रो भवत्वयम् ॥४३॥

तथेति समनुज्ञातो महादेव स्वयम्भुवा ।

पुत्रत्वे कल्पयामास महादेवस्तथा भृगुम् ।
 वासणा भृगवस्तस्मात्तदपत्यञ्च स प्रभु ॥३९॥
 द्वितीयन्तु तत शुक्रमङ्गारेष्वपतत्प्रभु ।
 मङ्गारेष्वङ्गिरोऽङ्गानि सहितानि ततोऽङ्गिरा ॥४०॥
 सम्भूति तस्य ता दृष्ट्वा वह्निर्ब्रह्माणमब्रवीत् ।
 रेतोधास्तुम्यमेवाह द्वितीयोऽय ममास्त्विति ॥४१॥
 एवमस्त्विति सोऽयुक्तो ब्रह्मणा सदसस्पति ।
 तस्मादङ्गिरसश्चापि आग्नेया इति न श्रुतम् ॥४२॥

उत्तमे युद्धके युत होने पर इसके अनन्तर महर्षिगण प्रादुर्भूत हुए थे
 पा शरीर से उवलन्त थे और वे साथ प्रसव गुणी से युक्त थे ॥३९॥ अग्नि ने
 एक बार शूद्र के हुत किये जाने पर उवाला से कवि निवृत्त हुए । उवाला का
 भेदन कर उसको निकला हुआ ग्रहण ने देखा और तू भृगु है ऐसा कहा इसीसे
 यह भृगु हुए हैं ॥३७॥ महादेव ने उने इस प्रकार से उत्पन्न होता हुआ बेलकर
 ब्रह्माजी ने कहा है प्रभो ! पुत्र की कामना वाले दीक्षित मेरा यह है जो यह
 भृगुदत्त उत्पन्न हुआ है यह मेरा पुत्र होजावे ॥३८॥ ब्रह्माजी ने—ऐसा ही होवे—
 दम तरुण ने अज्ञात प्राप्त होजाने वाले महादेव ने भृगु को अपना पुत्र मान लिया
 था । दम तरुण भृगु हुए और उसकी सन्तति प्रभु है ॥३९॥ इसके अनन्तर
 प्रभु ने द्वितीय युद्ध का मङ्गारों में उला था । मङ्गारों में अङ्गिर—अङ्ग सहित
 ऋग उगत मङ्गिरा हुआ । उगाही इस प्रकार की सम्भूति को देखकर अग्नि ने
 ब्रह्माजी से कहा मैं तुम्हारे लिये ही रेतोधा हुआ हूँ । यह दूसरा मेरा होजावे
 ॥४०॥ (॥ भेगाही) ही—दम प्रकार से यह सदसस्पति ब्रह्मा के द्वारा समनुज्ञात
 लाभ में । दम मङ्गिरा जन्म हुए एवा हमने श्रुत किया है ॥४२॥

पट्टस्त्यन्तु पुन युक्ते ब्रह्मणा लोककारिणा ।
 हुत समभवस्तत्र पट्टब्रह्माण इति श्रुति ॥४३॥
 मरीचि प्रवमस्तत्र मरीचिम्य समुत्पित ।
 मनो तस्मिन् गुणो जने यतस्तस्मात्तम वै ऋनु ॥४४॥

ग्रह तृतीय इत्यथस्तस्मादत्रि स कीर्त्यते ।
 केशश्च निमित्तभू त पुलस्त्यस्तेन स स्मृत ॥४३॥
 केशलम्ब समुद्भूतस्तस्मात् पुं ह स्मृत ।
 वसुमध्यात्समृत्पन्नो वसुमान् वसुधात्रय ॥४४॥
 वसिष्ठ इति तत्त्वज्ञ प्रोच्यते ब्रह्मवादिभि ।
 इत्येते ब्रह्मण पुत्रा मानसा पञ्चमहपय ॥४५॥
 लोकस्य सन्तानकरास्तरिमा वदित्वा प्रजा ।
 प्रजापतय इत्येव पञ्चमन्ते ब्रह्मण मुता ॥४६॥
 अपरे पितरो नाम एतरेव महर्षिभि ।
 उत्पादिता ऋषिगणा सप्त लोकेषु विभृता ॥४७॥

लोक के चारण करने वाले ब्रह्मा के द्वारा भूक के छ भाग कर हवन
 करने पर वहाँ से ब्रह्मा हुए थे ऐसी स्तुति है ॥४३॥ उनमें मरीचि प्रथम हैं जो
 मरीचियो से समुत्पन्न हुए हैं । उस क्रतु में मुत्त उत्पन्न हुआ इसीलिए वह क्रतु
 नाम वाले हुए थे ॥४४॥ वे तीसरा हैं इस अर्थ वाला इसीसे वह अभि कहा
 जाता है । निमित्त केशों से हुआ इससे वह पुलस्त्य कहा गया है ॥४५॥ उनमें
 केशों से समुद्भूत हुआ था इससे वह पुलह—इस नाम से कहा गया है । वसु के
 मध्य से उत्पन्न हुआ इससे वसुधा का आश्रय वाला वसुमान् हुआ था ॥४६॥
 ब्रह्मवादी तत्त्वज्ञों ने वसिष्ठ ऐसा कहा है । इतने में ब्रह्मा के छ मानस महर्षि
 उत्पन्न हुए थे ॥४७॥ वे इस लोक के सन्तति के करने वाले थे और उनके द्वारा
 ही यह वदित है । वे ब्रह्मा के पुत्र प्रजापति इस प्रकार से भी पढ़े जाया
 करते हैं ॥४८॥ दूसरे पितर भी इन्हीं महर्षियों के द्वारा उत्पादित हैं जो सात
 लोकों में विभूत ऋषिगण हैं ॥४९॥

मारीचा मागवाश्च तथवाङ्मिरसोऽपरे ।
 पौलस्त्या पौलहाश्च न वासिष्ठाश्च विभृता ।
 मात्रेयाश्च गणा प्रोक्ता पितृणा लोकाविभृता ॥५०॥
 एते समासतस्तात पुरव तु गुणास्त्रय ।
 अपूर्वाश्च प्रकाशाश्च ज्योतिष्मन्तश्च विद्यता ॥५१॥

तेषां राजा यमो देवो यमैर्विहितकर्मणा ।
 अपरे प्रजानां पतयस्ताञ्छगुभमतन्द्रिता ॥१२॥
 कर्दमः कदम्बः शेषो विक्रान्तः सुश्रुवास्तथा ।
 बहुपुत्रः कुमारश्च विवस्वान् स क्षत्रियवा ॥१३॥
 प्रचेतसोऽरिष्टनेमिर्वह्नीलश्च प्रजापतिः ।
 इत्येवमादयोऽन्येऽपि बहवश्च प्रजेश्वरा ॥१४॥
 कुशोच्चया वाल्मिकिरथा सम्भूता परमर्षयः ।
 मनोजया सर्वगता सार्वभोगाश्च तेऽभवन् ॥१५॥
 जाता भस्मव्यपोहिण्या ब्रह्मर्षिगणसम्भवाः ।
 वैश्वानरा मुनिगणास्तपश्चतुषरायणाः ॥१६॥
 स्रोतोम्यस्तस्य चोत्पन्नावश्विनौ रूपमस्मिनी ।
 विदुर्जन्माक्षरजसो विमना नेत्रसम्भवाः ॥१७॥
 ज्येष्ठा प्रजानां पतयः स्रोतोम्यस्तस्य जज्ञिरे ।
 ऋषयो रोमकूपेभ्यस्तथा स्वेदमलोद्भवाः ॥१८॥

गारीय-भागव-मार्कण्डेय-पोलम्य-पोलह-वाशिष्ठ श्रीर मादेय ये गण
 लीगो मे प्रणिश्व निखरो मे कहे गये हे ॥१०॥ हे तात ! ये सर्वोप से पहिले ही
 सीत गुण थे भगव-प्रजाप श्री विश्वत ज्योतिष्मन्त ये कहे जाते हैं उनका राजा
 देवता है । यमो के द्वारा विहित कर्मण दूगरे प्रजापति के पति होते हैं उनको
 अब जसविश्वत होकर गुणो में ब्रह्मा हैं इसलिये तुम्हें सुचना चाहिये यह भार्गव
 है ॥११॥१२॥ कर्दम-कदम्ब-शेष-विक्रान्त-सुश्रुवा-बहुपुत्र-कुमार-विवस्वान्-
 सुप्रिय-प्रचेतस-अरिष्टनेमि-बह्वन् श्रीर प्रजापति एवमादि तथा अन्य भी बहुत
 से प्रजेश्वर होते हैं ॥१३॥१४॥ कुशोच्चय-वालमिकिरथ परमर्षि उत्पन्न हुए तथा
 भनाज-सम्भवा श्री सार्वभौम ये हुए हैं ॥१५॥ ब्रह्मर्षिगण सम्मत तप श्री
 श्रुत म परामण वैश्वानर मुनिगण भस्मव्यपोहिनी से उत्पन्न हुए थे ॥१६॥
 उगता स्रोता से म्य सम्मिता शक्तिनीकुमार उत्पन्न हुए । उगते स्रोतो से विदुर्ज-
 नार जग-विमन्-नेत्र सम्भवा-ज्येष्ठा प्रजापति के पति उत्पन्न हुए । तथा स्वेदमल
 से उदगर जाते ऋषि रोम कूपो से उत्पन्न हुए ॥१७॥१८॥

दाहणा हि ह्ये मासा निर्यासा पक्षसप्तम्य ।
 वत्सरा ये त्वहोरात्रा पित्र ज्योतिश्च दाहणम् ॥५६॥
 रौद्र लोहितमित्याहुर्लोहित कनक स्मृतम् ।
 तमत्रमिति विज्ञय धूमश्च पञ्चव स्मृता ॥५७॥
 येष्विन्द्रपस्तस्य रद्रास्तथादित्या समुद्भवा ।
 अङ्गारेभ्यः समुत्पन्ना ज्योतिषो दिव्यमानुषा ॥५८॥
 प्रादिमानस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मसमुद्भव ।
 सबकाममित्याहुस्तत्र कयामुदाहरन् ॥५९॥
 ब्रह्मा सुरगुस्तत्र त्रिदश सप्रसीदति ।
 इमे च जनयिष्यन्ति प्रजा सर्वा प्रजेश्वरा ॥६०॥
 सर्वे प्रजाना पतय सर्वे चापि तपस्विन ।
 तत्प्रसादादिर्मांलोकान्धारयेयुरिमा क्रिया ॥६१॥
 इन्द्र सबद्ध यामास तत्र तेजोविबद्ध नम् ।
 वैवेपु वैदविद्वांस सर्वे राजपयस्तथा ॥६२॥

यह वे मास दाहण के जो निर्वास के के पक्षों की सन्धियों की जो
 वत्सरा और अहोरात्र पित्र दाहण ज्योति रौद्र को लोहित कहते वे लोहित को
 कनक कहा गया है । उसे मत्र ऐसा जानना चाहिए और धूम पञ्चव कहे गये
 हैं ॥५६॥ ५॥ उसकी अभियोगों की वे हैं तथा आदित्य उत्पन्न हुए । अङ्गारों से
 दिव्य मानुष ज्योतिषों समुत्पन्न हुई ॥५८॥ आदिमान लोक का ब्रह्मा ब्रह्म से
 समुद्भूत हुआ । वहाँ पर ब्रह्मा को उदाहृत करते हुए सर्व कामदे ऐसा कहते
 हैं ॥५९॥ वहाँ देवों के साथ सुरगुण ब्रह्मा सम्प्रसन्न होते हैं । ये प्रजेश्वर समस्त
 प्रजापतियों को उत्पन्न करने ॥६०॥ वे सब प्रजापतियों के पति वे और वे सब तपस्वी
 वे । उनके प्रसाद से वे क्रियाएँ इन लोकों को धारण करती हैं ॥६१॥ आपके
 तेज के विबद्ध न करते हुए इन्द्र का सबधन किया था । देवों के समस्त राजपिंगण
 वेद के विद्वान् वे ॥६२॥

वेदमत्र परा सर्वे प्रजापतिगुणोद्भवा ।

अनन्त ब्रह्मा सत्यञ्च तपश्च परम भुवि ॥६३॥

सर्वे हि वयमेते च तत्रैव प्रभव प्रभो ।

ब्रह्म च ब्राह्मणाश्चैव लोकाश्चैव चराचरा ॥६७

मरीचिमादित कृत्वा देवाश्च ऋषिभि सह ।

अपत्यानीय सञ्चिन्त्य तेऽपत्यङ्कामयामहे ॥६८

तस्मिन् यज्ञ महाभावा देवाश्च ऋषिभि सह ।

एतद्व शसमुद्भूता स्थानकालाभिमानिन ॥६९

न च तेनैव रूपेण स्थापयेयुरिमा प्रजा ।

युगादिनिधनान्चैव स्थापयेयुरिमा प्रजा ॥७०

ततोऽब्रवीत्लोकगुरु परमित्यविचारयन् ।

एव देवा विनिश्चित्य मया मृष्टा न सगय ।

भयता वशसम्भूता पुनरेते महर्षय ॥७१

सैषा भृगो कीर्तयिष्ये वश पूर्वमहात्मन ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च प्रथमस्य प्रजापते ॥७२

सब प्रजापति के गुणों से उद्भूत होने वाले देवों के मन्यों में परायण थे । अन्त और सत्य ब्रह्म—भू में परम तब वे भव और हुम हे प्रभो ! आपका ही प्रसव है जिसमें ब्रह्म और ब्राह्मण तथा चराचर लोक हैं ॥६९-६७॥ मरीचि आदि लेकर ऋषियों के साथ देवगण यहाँ पर सन्तति की विन्ता कर उन सबने मयस्थ (मन्तान) की कामना की थी ॥६८॥ उस यज्ञ में महात् भाग वाले देवता ऋषियों के साथ स्थान और काल के अभिमानी इस वश में समुद्भूत थे ॥६९॥ और उसी रूप से इन प्रजाओं की स्थापना नहीं करनी चाहिए किन्तु युगादि निग्रन से इनको स्थापित करो ॥७०॥ इसके अनन्तर लोक शुद्ध से विचार ॥ करते हुए कहा—मैंने इस प्रकार का विनिश्चय करके देवताओं को सृष्ट किया है उनमें सख्य नहीं है । फिर ये महर्षिगण सबके वश में सम्भूत हुए हैं ॥७१॥ उनमें से महात्मा भृगु के वश को पहिले बतलाऊँगा जो कि प्रथम प्रजापति है इसे विस्तारानुपूर्व्या से कहूँगा ॥७२॥

मार्गा भृगोरप्रतिमे उत्तमेऽभिजने शुभे ।

हिरण्यकशिपो कन्या दिव्या नाम परिश्रुता ।

पुलोमश्चापि पोलोमी दुहिता वर वर्णिनी ॥७३

भृगोस्त्वजनयद्विद्या काव्य वेदविदा वरम् ।
 देवासुराणां भावाय शुक्रबुधिसुत ग्रहम् ॥७४॥
 स शुक्रभ्रोशना ख्यात स्मृत काशीरूपि नामतः ।
 पितृणां मानसी कन्या सोमपाता यक्षस्विनी ।
 शुक्रस्य भार्याङ्गी नाम विजय चतुर सुतान् ॥७५॥
 ब्राह्मण तेजसा युक्त स जातो ब्रह्मवित्तमः ।
 तस्यामेव तु धत्वार पुत्रा शुक्रस्य वज्रिरे ॥७६॥
 स्वप्ता वक्त्री द्वावेतौ सण्डाभकौ च तावुभौ ।
 ते तदाविस्मयन् ब्रह्मा ब्रह्म कन्या प्रभावतः ॥७७॥
 रञ्जन मृधुरविमञ्ज विद्वान्वञ्ज बृहद्गिरा ।
 वक्त्रिण सुता ह्येते ब्रह्मिष्ठा सुरयाजकाः ॥७८॥
 इत्याभमदिनाष्टाव मनु मेत्याम्ययोजयन् ।
 निरत्यमान च धर्म दृष्टुं नो मनुमप्रवीत् ॥७९॥
 एतरेव तु नाम त्वा प्रापयिष्यामि याजनसु ।
 भूत्वेन्द्रस्य तु तदाक्य तस्माद् देशावपाकमन् ॥८०॥

भृगु की भार्या हिरण्यकशिपु के उत्तम-धुम-अप्रतिम अभिजन मे विद्या
 रूप नाम से परिभूत होने वाली कन्या से वैरो के जन्माश्रो मे परमब्रह्म काव्य
 को उत्पन्न किया था जो कि देवासुरो के आचार्य थे और कविपुत्र शुक्र ग्रह
 है ॥७४॥ वह शुक्र उशना इस नाम से प्रसिद्ध हुआ और नाम से काव्य भी
 कहा गया है । सो जब पितृगण की मापसी यक्षस्विनी कन्या जो कि शुक्र की
 अङ्गी नाम वाली भार्या थी उसने चार पुत्र उत्पन्न किये थे ॥७५॥ ब्रह्म तेज से
 युक्त वह ब्रह्मवेत्ताश्रो मे था वह उत्पन्न हुआ था । शुक्र के चार पुत्र उसी मे
 से हुए हैं ॥७६॥ स्वप्ता-वक्त्री दो थे और वक्त्रा तथा मन्त्र के दोनो उत्पन्न
 हुए । वे उस समय आदित्य के तुल्य और प्रभाव से ब्रह्मा के ही तुल्य थे ॥७७॥
 रञ्जन-मृधुरविमञ्ज और बृहद्गिरा ये वक्त्री के ब्रह्मिष्ठ और सुरो के यजन कराने
 वाले पुत्र थे ॥७८॥ इत्या के धर्म की निनाश करने ॥ सिये मनु के समीप
 जाकर योजना की । इन्द्र ने धर्म को निरत्यमान देवकर मनु से कहा—॥७९॥

इसके द्वारा ही इन्द्रावरुण काजब तुरतो प्राप्त राज्या । उन उर के बार
को मुनकर उन देश मे अगाधान्न होषये ॥८०॥

तिराभूनेषु नेत्रिन्द्रो धर्मपत्नीच चेतनाम् ।
ग्रहेण मोचयित्वा तु तत सोऽनुमसार नाम् ॥८१॥
तत इन्द्रविनाशाय यत्तमानान् यतीस्तु तान् ।
तथागतान् पुनर्दृष्ट्वा दुष्टानिन्द्र ग्रह्ण्यतु ।
सुध्याप देवदेवस्य वेद्या वै दक्षिणे तत ॥८२॥
तेषांस्तु भक्ष्यमाणाना तत्र शालावृकं सह ।
वीर्पाणि न्यपतस्तानि खजूं राक्ष्यभवस्तन ॥८३॥
एव दक्षिण पुत्रा इन्द्रेण मिहता पुरा ।
यजन्मा देवयानी च शुक्रस्य दुहिताऽभवत् ॥८४॥
शिशिरा विश्वरूपस्तु त्वष्टु पुत्रोऽभवन्महान् ।
विश्वरूपानुजश्चापि विश्वकर्मा यम स्मृत ॥८५॥
भृगोस्तु भृगवो देवा जज्ञिरे द्वादशात्मजा ।
देव्या तान्सुपुत्रे सर्वान्काव्यश्चैवात्मजान्भु ॥८६॥
भुवनो भावनश्चैव अस्यश्चान्यायतस्तथा ।
ऋतु भवाश्च मूर्द्धा च व्यजयो व्यथुपश्च य ।
प्रसवश्चाप्यजश्चैव द्वादशोऽविपति स्मृत ॥८७॥
इत्येते भृगवो देवा स्मृता द्वादश याज्ञिका ।
पौलोम्यजनयत्पुत्र ब्रह्मिष्ठ वशिष्ठ विभुश्च ॥८८॥
व्याधित सोऽष्टमे मासि गर्भकूरेण कमण्डा ।
अयनाच्च्यवनासोऽयं चेतनस्तु प्रचेतस ।
प्राचेतसाच्च्यवनक्रोधादध्वान् पुरुषादज ॥८९॥
जनयामास पुत्रो ह्यो मुकन्यायाश्च भार्गव ।
आत्मवान् दधीचञ्च तावुभौ साधुसमतो ॥९०॥

उनके तिरोमूत हो जाने पर इन्द्र ने धर्म की पत्नी चेतना को ग्रह
छुड़वाकर इसके पक्षपात सह उसका ही अनुसरण करने लगा था ॥८१॥ इसके

पश्चात् इन्द्र के विनाश करने के लिये बल करते हुए उन पतियों को वहाँ धाये हुए वृद्धों को पुनः देखकर इन्द्र उनका हनन कर देने । फिर दक्षिण में देवदेव की वेदी में सो गया था ॥८२॥ वाला वृद्धों के साथ खाये हुए उनके वहाँ पर शीर्ष बिर गये थे जो कि फिर खनू र होवये थे ॥८३॥ इस प्रकार से पहिले बरुनी के पुत्र इन्द्र के द्वारा मारे गये थे । यजनी में देवयानी धुरु की देटी हुई थी ॥८४॥ त्वहा के निधिरा और विस्वकर्म महान् पुनः उत्पन्न हुआ । विस्वकर्म का अनुज भी विस्वकर्मनिभ कहा गया है ॥८५॥ मृगु के भृगव देव बाण्ड पुनः उत्पन्न हुए थे । प्रभु काम्य ने उन समस्त पुत्रों को देवी में उत्पन्न किया था ॥८६॥ भुवन-भावन-धन्य-आवायत-कनुभुवा-मूर्द्धा-व्यजय-अभुप प्रसव-प्रज और बारहवाँ भविष्यति कहा गया है ॥८७॥ ये इतने बाण्ड याज्ञिक भृगव देव बहे गये हैं । पीलोमी ने बह्मिष्ठ-बधी-विभु पुत्र को उत्पन्न किया था ॥८८॥ गंध कूर वन से वह अष्टम भास में व्याधि से परत हुआ था । व्यवन से व्यवनात और प्रचेता से चेतन-प्राचेत्यस व्यवन शीघ्र से पुत्र से राज ने अग्न्या को इस प्रकार भर्त्सव में सुकन्या के दो पुत्रों को उत्पन्न किया था जोकि प्रात्मवान और दधीच थे दोनों बहुत ही शत्रु सम्मत हुए थे ॥८९॥

सारस्वत सरस्वत्या दधीवाचोपपद्यते ।
 क्वी पत्नी महाभार्या आत्मवानस्य नाहुपी ॥९१॥
 तस्य ऊर्ध्वोऽपि जज्ञ ऊरु मित्वा महायथा ।
 प्रीतिं प्रासीदचीकस्तु दीप्ताग्निसदृशप्रभ ॥९२॥
 जमदग्निश्च चीकस्य सत्यवत्या व्यजायत ।
 भृगोश्च रुषिपयसि रौद्रवध्नवयोस्तथा ॥९३॥
 जमनाद् ध्रुवस्याग्नेजमदग्निरजायत ।
 रणुका जमदग्नेस्तु शक्रतुल्यपराक्रमम् ।
 ब्रह्माक्षत्रमय राम सुपुत्रोऽमिततेजसम् ॥९४॥
 भौवस्यासीत्पुत्रस्त जमदग्निपुराणेनम् ।
 तेषां पुत्रसहस्राणि मार्गवाणा परस्परात् ॥९५॥

ऋष्यन्तरेषु वै बाह्या वहवो भार्गवा मृता ।
 वत्सो विश्वोऽश्विषेणश्च पाण्ड पथ्य सशीनक ।
 गोत्रेण सप्तमा ह्येते पक्षा जेमास्तु भार्गवा ॥६६॥
 शृणुताङ्गिरमो वशमग्ने पुत्रस्य धीमत ।
 यस्यान्वदाये सम्भूता भारद्वाजा सगौतमा ।
 देवाश्चाङ्गिरसो मुख्यास्त्विषुमन्तो महीजस ॥६७॥

धमीच से मरुत्वती में मार्गस्वत पुत्र उत्पन्न होता है । आत्मवान की
 महान् भाग वाली लक्ष्मी की पुत्री रवि पत्नी हुई थी ॥६१॥ महान् यश वांन
 ऋषि ने उनके ऊँचो का भेदन करके ऊँचों में शीर्ष ऋषीक दीप्त अग्नि की
 प्रभा के सहस्र हुंसा था ॥६२॥ ऋषीक के सत्यवती में जमदग्नि उत्पन्न हुए ।
 उनी प्रकार से रौद्र वैष्णवों के रवि पर्याय में शृगु के हुए ॥६३॥ वैष्णव अग्नि
 के जमन से जमदग्नि उत्पन्न हुए । जमदग्नि से रेणुका ने इन्द्र के समान परा-
 क्रम वाले ब्रह्म धीर क्षत्र से पूर्ण अग्नि तेज वाले राम (परशुराम) को उत्पन्न
 किया था ॥६४॥ शीर्षके जमदग्नि से पहिले होने वाले सौ पुत्र हुए ये उन
 भार्गवों के आपस में एक सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए ये ॥६५॥ ऋष्यन्तरो में बहुत
 से बाह्य ये वे भार्गव कहे गये हैं । वत्स-विश्व-अश्विषेण-पाण्ड-पथ्य-सशीनक
 गोत्र से ये भार्गव सप्तमा पक्ष जानने के योग्य होते हैं ॥६६॥ यश अग्नि के
 धीमान् पुत्र अङ्गिरस के वश का अवश करो जिसके वश में मगौतम भारद्वाज
 उत्पन्न हुए ये । शृणुता महान् शीर्ष वाले अङ्गिरस देव मुख्य ये ॥६७॥

सुरूपा चैव मारीचो वार्दभी च तथा स्वराट् ।
 पथ्या च मानवी कन्या तिस्रो भार्या स्त्वयर्वण ।
 इत्येताङ्गिरस पत्न्यस्तासु वक्ष्यामि सन्ततिम् ॥६८॥
 अयर्वणस्तु दायादास्तासु जाता कुलोद्बहा ।
 उत्पन्ना महता चैव तपसा मावितात्मनाम् ॥६९॥
 बृहस्पति सुरूपाया गौतम सुपुत्रे स्वराट् ।
 अदन्व्य वामदेवश्च उत्तम्यमुशिजन्तथा ॥७०॥

धिष्णु पुत्रस्तु पथ्यायां सवत्सर्व्व मानस ।
 धिचित्तश्च तथामस्य शरद्वाभ्याप्युत्पथ्य च ॥१०१॥
 अशिखो दीधतमा बृहदुत्थो वामदेवज ।
 धिष्णो पुत्र सुधन्वान् अथमश्च सुधन्व ॥१०२॥
 रमकारा स्मृता देवा अप्यो ये परिश्रुता ।
 बृहस्पतेरद्वाजो विद्युत् सुमहामना ॥१०३॥
 अङ्गिरसस्तु सवर्त्तो देवानङ्गिरस शृणु ।
 बृहस्पतेर्यव्यासो देवा ह्यङ्गिरस स्मृता ॥१०४॥
 श्रीरसाङ्गिरस पुत्रा मरुताया विजग्निरे ।
 श्रीवायुविवमुहको दध प्राणस्तथैव च ।
 हविष्माश्च हविष्णुश्च ऋतु सत्यश्च ते दध ॥१०५॥
 जमस्यस्तु उत्तम्यश्च वामदेवस्तथोशिज ।
 भारद्वाजा साकृत्तिका गाम्यकाश्चरयीतरा ॥१०६॥
 मुद्गला विष्णुवृद्धाश्च हरिता वामवस्तथा ।
 तथा भाक्षा भरद्वाजा आवभा किम्भयास्तथा ॥१०७॥
 एते ह्यङ्गिरस पक्षा विक्रया दश पञ्च च ।
 अर्धमस्तरेषु च बाह्या बहवोऽङ्गिरस स्मृता ॥१०८॥

मरुता-भारीभी-कावभी तथा स्वराट्-पथ्या-मानवी श्रीर कभ्या ये
 यौन धनर्वा की भार्या भी । ये इतनी अगिरस की भार्या थी उनमें यो सन्तति
 हुए सप्तर्षी में धन नतवाता हैं ॥१०५॥ धनर्वा के दायाद कुतोद्गह उनमें उत्पन्न
 हुए ये श्रीर नावित आत्मा वासी के महान् तप से उत्पन्न हुए ये ॥१०६॥ मरुता
 में बृहस्पति ने यौहम ने स्वराट प्रसूत किया । जरी प्रकार से धन-व-वामदेव
 उत्तम्य श्रीर उत्तिज को उत्पन्न किया था ॥१०७॥ पथ्या में विष्णु पुत्र हुआ
 संवर्त्त मानस हुआ । निचिन्त-जथा यस्य-शरद्वाज-उतवाज-अशिख-दीधतमा-
 बृहदुत्थ ये वामदेव से जन्म लेने वाले थे । विष्णु के पुत्र सुधन्वान्-अथम श्रीर
 सुधन्व ये ॥१०८॥ ये देव रथवार रहे गये हैं जो कि अपि परिश्रुत
 थे । बृहस्पति के महान् तप वाता करवाने विपन्न हुआ था ॥१०९॥ अङ्गिरस

से सम्बन्ध हुआ था वह अग्निरत्न देवों का वक्ता कहे । बृहस्पति के जो छोटें देव हैं वे ही अग्निरत्न कहे गये हैं ॥१०४॥ अग्निरत्न के और पुत्र सुम्पा नाम वाली से उत्पन्न हुए थे । द्यौर्दार्पायु-दनु-दक्ष-दम-प्राण-हविष्मान्-हविष्णु-ऋतु-ग्रीष्म-मरुत वे दक्ष से ॥१०५॥ अयस्य-जनय-वामदेव-उविश्व-भारद्वाज-शार्ङ्ग-तिष्ठ-गाय-वाक्य-रजोतर-मृदुवन-विष्णु-वृद्धहस्ति-वापव-प्राञ्ज-भरद्वाज-मार्पण-किम्बय के अग्निरत्न वश और पाँच पञ्च जानने के योग्य होने हैं । ऋष्य-नारी में बहुत से बाह्य अग्निरत्न कहे गये हैं ॥१०६-१०७-१०८॥

मारीच परिवक्ष्यामि वशमुत्तमपुरुषम् ।

मस्यान्ववाये सम्भूत जगत्स्वावरणज्ज्ञमम् ॥१०९॥

मरीचिरापञ्चरुमे ताभिष्यायन्प्रजेप्सया ।

पुत्र सर्वगुणोपेत प्रजावान् सुहृदिदिति ।

संपूज्यते प्रसस्ताया मनसा भाविता प्रभु ॥११०॥

आहूताश्च तत सर्वा आस समवसत्प्रभु ।

तासु प्रणिहितात्मानमेक सोऽजनयत्प्रभु ॥१११॥

पुत्रमप्रतिमधाम्नारिष्टनेमि प्रजापति ।

पुत्र मरीच सूर्याभ ववीवेशो व्यजीजनत् ॥११२॥

प्रक्ष्यामन् हि सता वाच पुनर्दीर्घ सलिले स्थित ।

सप्तवर्षसहस्राणि तत सोऽप्रतिमोऽभवत् ॥११३॥

कश्यप सवितुर्विद्धास्तेन स ब्रह्मण सम ।

मन्वन्तरेषु सर्वेषु ब्राह्मणाञ्जेन जायते ॥११४॥

कन्यानिमित्तमित्युक्ते दक्षेण कुपिता प्रजा ।

अपि वत्स तदा कश्य कश्य मद्यमिहोच्यते ॥११५॥

हाश्चैकसा हि विज्ञेया ब्रह्मणा कश्य उच्यते ।

कश्य मद्य स्मृत विप्रैः कश्यपानास्तु कश्यप ॥११६॥

अब मारीच उत्तम पुरुषों वाले वश को वनलाता हूँ जिसके वश में ४ समस्त स्वावर और जज्ञम जगत् उत्पन्न हुआ था ॥१०९॥ मरीच ने जल उत्पन्न किये और प्रजा भी उद्बोध से उनके द्वारा ध्यान करते हुए समस्त गुणों

यदास्य मनसा सष्टा न व्यवहन्त ता प्रजा ।

अपध्याता भगवता महादेवेन धीमता ॥१२७॥

मधुनेन च भावेन सिसर्गविविधा प्रजा ।

असिक्नी चावहत् पत्नी वीरणस्य प्रजापते ॥१२८॥

सुता सुमहता युक्ता तपसा लोकवारिणीम् ।

यया धृतमिदं सर्वं जगत् स्यावरजङ्गमम् ॥१२९॥

अत्राप्युदाहरस्तीमो क्लोकी प्राचेतस प्रति ।

यक्षस्योद्बुधतो भार्यामसिक्नी वीरिणी पराम् ॥१३०॥

किर भीमा ने अपने आपको मनुष्य-उरग-राक्षस देव-असुर-गन्धर्व-
दिग्गज सहस्रजनप्रजा-ईश्वर रूप-जन और सेव से करने ही मुख्य विभावित किया
था ॥१२४॥ उसी प्रकार से परम मुदित होते हुए अस्य गतिमाय और प्रभु
मानस ही प्राणियों को एक बनेक प्रकार की प्रजायी का सृजन किया था ॥१२५॥
अपि यो यो-देवो यो-गन्धर्वाँको-मनुष्य-उरग और राक्षसों को यक्ष-भूत और
पिशाचों को यक्षी-गन्धु और मृगों को जिस समय करने मनसे सृजन किया था
तो वह प्रजा की कृति नहीं हुई थी । क्योंकि यह प्रजा भीमा महादेव भगवान्
के द्वारा अपध्यात की ॥१२७॥ फिर वैष्णव के भाव से बनेक प्रकार की प्रजा
का सृजन किया था । प्रजापति वीरण की असिक्नी पत्नी की सहन किया था
॥१२८॥ प्रजापति वीरण की सुता सुमहान् तपसे युक्त थी और लोकोंको चारण
करने वाली थी जिसने इस सम्पूर्ण स्यावर और जङ्गम जगत् को चारण किया
था ॥१२९॥ परम वीरिणी असिक्नी भार्या का उद्बुध करने वाले दक्ष प्राचेतस
के प्रवृत्ति ये दो श्लोक हैं जिनको वहाँ पर भी उदाहृत किया जाता है ॥१३०॥

कूपाना नियुत दक्ष सर्पिणा साविभानिनाम् ।

नदीगिरिषु सज्जस्ता पृष्ठतोऽन्ययो प्रभु ॥१३१॥

त दृष्ट्वा अपिमि प्रोक्तं प्रतिष्ठस्यति च प्रजा ।

प्रथमात्र द्वितीया तु दक्षस्येह प्रजापते ॥१३२॥

तथायच्छस्यकालं कूपाना नियुते तु स ।

असिक्नी वरिणी यव दक्ष प्राचेतसोऽबुधत् ॥१३३॥

अथ पुत्रसहस्रं स वैरिण्याममितीजसा ।

असिक्न्या जनयामास दक्षं प्राचेतसं प्रभु ॥१३४॥

तास्तु दृष्ट्वा महातेजा स विवर्द्धयिषून् प्रजा ।

देवपि प्रियसवादो नारदो ब्रह्मण सुत ।

नाशाय वचनं तेषां क्षापायैवात्मनोऽब्रवीत् ॥१३५॥

य स वै प्रोच्यते विप्रं कश्यपस्येति कृत्रिमं ।

दक्षश्चापभयाद्भीतो ब्रह्मर्षिस्तेन कर्मणा ॥१३६॥

य कश्यपसुतस्याथ परमेष्ठी व्यजायत ।

मानसं कश्यपस्येह दक्षश्चापभयात् पुनः १३७

तस्मात् स कश्यपस्याथ द्वितीयं मानसोऽभवत् ।

सहि पूर्वसमुत्पन्नो नारद परमेष्ठिन ॥१३८॥

येन दक्षस्य पुत्रास्ते हृयंश्वा इति विश्रुता ।

निन्वार्थं नाशिता सर्वे विनष्टाश्च न सशयः १३९

तस्योद्यतस्तदा दक्ष क्रुद्धो नाशाय वो प्रभु ।

ब्रह्मर्षीन् वै पुरस्कृत्य याचित परमेष्ठिना ॥१४०॥

सामिमान्ती सर्पों मूषों वा एक निवृत्त नवीं श्रौर पर्वंतो मे सज्जन करते हुए प्रभु दक्ष ने उनके पीछे अनुगमन किया था ॥१३१॥ उसको देखकर ऋषियों ने कहा प्रजापति को प्रतिष्ठित करेगा । यहाँ प्रजापति दक्षकी प्रथमा है, द्वितीया तो यथाकाल उसी प्रकार से मूषों के निवृत्त ने चली गई उस प्राचेतस दक्ष ने जहाँ पर बैरिणी असिक्नी का उद्बहन किया था ॥१३२॥१३३॥ इसके अनन्तर उस प्राचेतस दक्ष ने बैरिणी असिक्नी में अपरिमित धोखे से एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किए थे ॥१३४॥ महान् तेजवाले उसने प्रजापति के बढाने की इच्छा वाले उनको देगकर ब्रह्मा के पुत्र देवर्षि प्रिय सम्वाद वाले नारद ने उनके नाश के लिये ही वचन बोला ॥१३५॥ जो वह कश्यप का कृत्रिम विप्र है यह कहा जाता है । ब्रह्मर्षि उस तम से दक्ष के शाप के भय से डरभया ॥१३६॥ इसके अनन्तर जो दक्षपुत्र मुक्ता परमेष्ठी उत्पन्न हुआ था दक्ष के शाप के भय से फिर यहाँ दक्षपुत्र ना मानस पुन दुःखा ॥१३७॥ इससे वह कश्यप का द्वितीय मानस हुआ

उन लोगों ने नारद का यह वचन सुना और उसे सुनकर वे सब दिशाओं में चले गये । वायु को समनुमत्त कर वे परामर्श भी प्राप्त हुए ॥१४१॥ वे वायु से मिथित होते हुए आनन्द तक भी भ्रमण करते हुए ही हैं और नहीं सोट पा रहे हैं । इस प्रकार से वायु के चर को प्राप्त होकर वे महर्षिगण भ्रमण किया करते हैं ॥१४२॥ अपने पुत्रों के नष्ट हो जाने पर प्रानेतस दक्ष ने फिर तैरिशी पत्नी से ही जब प्रभु ने एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये थे ॥१४३॥ प्रजा के विषय न करने की दृष्टि वाले वे शबलास्य फिर नारद के द्वारा वहाँ पर वह पूव म कहा हुआ वचन सुनने गये थे ॥१४४॥ महान् भोज वाले वे सब कुमारों ने उस वचन को सुनकर आपस में एक दूसरे से बोले महर्षि ने ठीक ही कहा है । भाइयों की परधी भर्षात् मार्ग को जानना चाहिए, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥१४५॥ पृथ्वी का प्रमाण जानकर प्रजा का मुक्त पूजन करना करेंगे । वे सब भी उसी मार्ग से सम्पूर्ण दिशाओं की ओर चले गये थे । समुद्रों में गई हुई नवियों की भीति ने भी धनी तक नहीं जीट रहे हैं ॥१४६॥ सभी से लेकर भाई भाई के अभिषेक करने में रत होता हुआ प्रयाण करता था और वहाँ नष्ट हो जाता है क्योंकि उस प्रकार से कार्य की जानकारी नहीं रहती थी ॥१४७॥

नष्टेषु शबलास्येषु दक्ष कठोऽभवद्विभुः ।

नारद नाशमेहीति गर्भवास वसेति च ॥१४८॥

तथा तेष्वपि नष्टेषु महात्मसु पुरा किञ्च ।

पट्टिकन्याऽजहृषो तैरिष्यामिव विधुता ॥१४९॥

तास्तदा प्रतिजग्राह पत्न्यर्थे कस्यच प्रभुः ।

धम सोमस्तु भववास्तवीवाभ्ये महृषय ॥१५०॥

इमा विसष्टि दक्षस्य कृत्स्ना यो वेद तत्त्वतः ।

आयुष्मान् कीर्तिमान् धन्य प्रजावाञ्छ भवत्पुत्र ॥१५१॥

शबलास्य पुत्रों के नष्ट होजाने पर विभु दक्ष बहुत ही अधिक कोपित हुआ था और नारद नाम के प्राप्त होना तथा वचन के आवास भर्षात् गर्भ में निवास प्राप्त कर ऐसा धाम दे दिया था ॥१५२॥ पहिले समय से उस प्रकार

मे उन महात्मा आत्मा बानो के वृष्ट हो जाने पर इन न वैगिणी पत्नी मे हो
प्रसिद्ध नाट रत्नाया ना नृपति सिखा या ॥११॥ उन समस्त रत्नाया न
पत्नी के रूप मे प्राप्त होने के विर प्रभु स्वयं रा स्वीकार सिखा या । समस्त
रूप-मोप शीर्ष उनी प्रकाश न अन्य मन्त्रिगण दे ॥१२॥ या होई पुन्य रक्ष
प्रजा पनि ही इन विशेष रूप बानो मृष्टि हो नम्रगण या न नक्षत्ररक्ष जानना
है वह परमानु बाना-होनिवाया सो प्रजावाया अन्य जाना ॥१३॥

प्रकरण ४८-श्रृष्टि वंशानु कीर्तन

एव प्रजामु मृष्टामु रक्ष्यतेन महात्मना ।
प्रतिष्ठितामु मर्षामु स्वावगामु खगामु च ॥१॥
अभिषिक्त्याधिपत्येषु तेषा मुरुन प्रजापति ।
तन क्रमेण गजानानि ध्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥२॥
द्विजातीना वीर्यान्च नक्षत्राणा ग्रहे मह ।
यजाना नरमाञ्चैव माम गज्येज्यपेचयन् ॥३॥
वृक्ष्यति तु विष्ट्वेग ददाविक्षिप्त्वा पतिम् ।
भृगूनामधिपत्वं च काव्य गज्येज्यपेचयन् ॥४॥
आदित्याना पुनर्विष्णु वसूनामथ पात्रकम् ।
प्रजापतीना दक्षश्च मरुतामथ बामवम् ॥५॥
दैत्यानामथ राजान प्रह्लाद दितिनन्दनम् ।
नारायण तु साय्याना ह्यद्राणा वृषभध्वजम् ॥६॥
विप्रचित्तिश्च राजान दानवानामयादिषन् ।
अथा तु वरुण राज्ये राज्ञा वैश्वरुण पतिम् ।
यक्षाणां राक्षसानाञ्च पारिवानां जनस्थ च ॥७॥

श्री मूवत्री ने कहा—महात्मा आत्मा बाने कव्य के द्वारा इन प्रकार से
प्रजाया ना मृजन करने पर और समस्त स्वावर तथा जङ्गम प्रजाओं के प्रति-
ष्ठित किये जान पर उनके आश्रित्य के स्थान पर उनमें मे मुष्ट को प्रजापति

का अभिषेक करके इसके पश्चात् क्रम से राज्यो का व्यादेश करने का उपक्रम किया था ॥१२॥ द्विजातियो के बीरवो के ग्रहो घोर नक्षत्रो के साथ यज्ञो का घोर तपो का राज्य म सोम को अभिषिक्त किया था अर्थात् उक्त सबका अधिपति चन्द्र को बनाया था ॥१३॥ अङ्गिरस विश्वेशो का पति बृहस्पति घोर भृगुघो का अधिप काव को राज्य मे अभिषिक्त किया था ॥१४॥ आदित्यो का विष्णु को—वसुघो के वावक को—प्रजापतियो का द्यु का घोर महतो का इन्द्र को राज्य मे अधिप अभिषिक्त किया था ॥१५॥ इसके पश्चात् दत्यो का राजा दितिमन्वन प्रह्लाद को—साम्यो का अधिप नारायण को—इन्द्रो का अधिप वृषभ ध्वज को बनाया था ॥१६॥ दानवो का अधिप राजा विप्रचिति को आदिष्ट किया था—वसो का स्वामी वसु को घोर सब राजाघो के राज्य मे बभ्रव (क्रुवेर) को पति बनाया था वसो घोर रससो का—पादियो का घोर भन का भी अधिप भी क्रुवेर को ही अभिषिक्त किया था ॥१७॥

धवस्वत पितृणाञ्च यम राज्येऽभ्यवेशयत् ।

सबभूतपिशाचानां निरिश दूतपाणिनम् ॥८॥

शालानां हिमवन्तश्च नदीनामथ सागरम् ।

गन्धर्वाणामधिपतिं चक्र चित्ररथ तदा ॥९॥

सृष्ट्यं श्वसमस्तानां राजानञ्चाभ्यवेशयत् ।

मृगाणामथ शार्ङ्गं स गोवृषश्च चतुष्पदम् ॥१०॥

पक्षिणामथ सर्वेषां गरुडं पततां वरम् ।

गन्धानां मातुलञ्च व भूतानामथरीरिणाम् ॥११॥

शब्दाकाशबलानाञ्च वायुं बलवतां वरम् ।

सर्वेषां ददृष्ट्वां शेषं नागानामथ वासुकिम् ॥१२॥

सरीसपाणां सर्पाणां नावानाञ्च व तक्षकम् ।

सागराणां नदीनाञ्च मेघानां वपितस्य च ।

आदित्यानामन्यतमं यजन्यमभिषिक्तवान् ॥१३॥

सर्वाप्सरोगणानाञ्च कामदेवं तथैव च ।

श्रुतानामथ मासानामात्तवानां तथैव च ॥१४॥

पक्षाणाञ्च विपक्षाणां मुहूर्त्तानाञ्च पर्वणाम् ।

कलाकाक्षाप्रमाणां गते रयनयोस्तथा ।

गणितस्याथ योगस्थ चक्रे सवत्सर प्रभुम् ॥१५॥

पितृगण का स्वामी वैवस्वत यम को राज्य में अधिप अभिषिक्त किया था । समस्त भूतगणों और पिशाचों का स्वामी शूल पाणि गिरिश को बनाया ॥१५॥ शैलो का स्वामी हिमाचल को—नदियों का पति सागर को—गन्धर्वों का अधिपति उस समय में चित्ररथ को बनाया था ॥१६॥ अश्वों का राजा उच्चैश्वा को राजा बनाकर अभिषिक्त किया था । समस्त मृग अर्थात् पशुओं का राजा घाट्कल को और क्षत्रुपक्षों का अधिप मोक्ष को बनाया था ॥१७॥ समस्त शत्रियों का स्वामी पक्षियों में परमश्रेष्ठ गरुड को बनाया । गन्धों के स्वामी को और बिना शरीर वाले प्राणी शब्द—आकाश और बल इन सबका स्वामी बलवानों में श्रेष्ठ वायु को तथा मधुसूत दह्याचारी जीवों का अधिप शेष को और नागों का स्वामी वासुकि को अभिषिक्त किया था ॥१८-१९॥ सर्पसृप—नाग और सर्पों का राजा तक्षक को बनाया था । सागरों का—नदियों का—मेघों का—वृषि का आश्रितों का अग्र्यतम पञ्चम को स्वामी अभिषिक्त किया था ॥२०॥ समस्त अक्षरों के समुदाय का राजा कामदेव को अभिषिक्त किया था । ऋतुओं का—मासों का—आर्तुनों का—पक्षों का—विपक्षों का—मुहूर्त्तों का—पर्वों का—रुद्रा एव काष्ठा प्रमाणां का—यति का तथा दोनों धर्मों का—गणित का और योग का स्वामी सम्बत्सर को बनाया था ॥२१-२४॥

प्रजापतिर्वै रजस पूर्वस्यान्दिशि विश्रुतम् ।

पुत्र नाम्ना सुवामान राजान सोऽभ्यपेचयत् ॥२५॥

पश्चिमाया दिशि तथा रजस पुत्रमच्युतम् ।

केतुमन्त महात्मान राजान सोऽभ्यपेचयत् ॥२६॥

मनुष्याणामधिपति चक्रे चैव सुत मनुम् ।

तैरिय पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा मपत्तना ।

यथाप्रवेशमद्यापि वर्मणु परिपाल्यते ॥२७॥

स्वायम्भुवेऽन्तरेपूव ब्रह्मणा तऽभिषेचिता ।
 नृपा ह्य तेषां विच्यन्ते मनवो य भवन्ति व ॥१६॥
 मन्वन्तरेऽप्यतीतेषु यता ह्य तेषु पार्थिव ।
 एवमभ्येऽभिषिच्यन्ते प्राप्त मन्तरे पुन ।
 अतीतानागता सर्वे स्मृता मन्तरेऽम्बरा ॥१७॥
 राजसूयेऽभिषिक्तश्च पृथुरेभिर्नरोत्तमैः ।
 वैदहश्च न विधिना कृतो राजा प्रतापवान् ॥१८॥
 एतानुत्पाद्य पुत्रास्तु प्रजासन्तानकारणात् ।

राजा प्रजापति ॥१६॥ विद्या मे बहुत ही प्रसिद्ध सुधामा नाम वाले पुत्रको
 उसने राजा अभिषिक्त किया था । ॥१६॥ पश्चिम विद्या मे राजा के पुत्र अश्विनी
 को महारु आत्मा वाले केशुमारु को उसने राजा अभिषिक्त किया था ॥१७॥
 और समस्त मनुष्यों का स्वामी मनु सुत को बनाया । उसके द्वारा वह समस्त
 प्राप्त द्वीपों वाली भूमि और पत्तणों (नगर) के सहित प्रदेशों के अनुसार राजतक भी
 धर्म के साथ परिपालित की जाती है ॥१८॥ स्वायम्भुव मन्तर मे पहिले मे सब
 ब्रह्म ने अभिषिक्त किये थे । जो मनु होते हैं मे तब अभिषिक्त किये जाते हैं
 ॥१९॥ इन मन्तरो के अतीत होने पर पार्थिव चले गये थे । फिर अन्य
 मन्तर प्राप्त होने पर अब इसी प्रकार से अभिषिक्त किये जाते हैं । अतीत
 तथा अनागत समस्त मन्तरेऽम्बरा कहे गये हैं ॥२०॥ इन सब मनवों के द्वारा
 राजसूय म पृथु अभिषिक्त किया गया था जोकि वैदिक विधि से प्रतापवान्
 राजा बनाया गया है ॥२१॥

पुनरेव महामाग प्रजानां पतिरीश्वर ॥२२॥
 कक्ष्यपो गोत्रकामस्तु चचार परम तप ।
 पुत्री गोत्रकरी महा भवेतामित्यचिन्तयत् ॥२३॥
 तस्य प्रध्यायमानस्य कक्ष्यपस्य महात्मन ।
 ब्रह्मणोऽग्री सुतां पश्चात् प्रादुर्भूतां महीमती ॥२४॥
 वत्सारश्चासितश्च व तावुमौ ब्रह्मवादिनौ ।
 वत्सारश्चिद्गुणो जज्ञ रम्यश्च महायशा ॥२५॥

रैम्यस्य रैभ्या विज्ञेया निध्रुवस्य निबोधत ।

च्यवनस्य सुकन्याया सुमेधा समपद्यत ॥२६॥

निध्रुवस्य तु या पत्नी माता वै कुण्डपायिनाम् ।

असितस्यैकपत्नीया त्रिहिष्ठ समपद्यत ॥२७॥

शाण्डिल्याना वक्ष्यन्त्वा देवस्त. सुमहायशा ।

निध्रुवा शाण्डिल्या रैम्यास्तथ गश्वात्तु कश्यपा ॥२८॥

वरप्रभृतयो देवा देवस्तम्य प्रज्जारित्वमा ॥२९॥

प्रजा जी वृद्धि के कारण से इन पुत्रों को उत्पन्न कराकर पुन प्रजापति के पति महान् भाग वाले—ईश्वर कश्यप जॉई गोत्र की कामना रखते थे, परम तपस्या को धारण किया था और मर्याद यह सफल होना था कि दो पुत्र मेरे मोक्ष के लिये जाने उत्पन्न होजायें ॥२२॥२३॥ प्रच्छेद रूप से ध्यान करने वाले महात्मा कश्यप के पीछे त्रिहिष्ठ के भय भक्षण दो पुत्र महान् मोक्ष वाले प्रादुर्भूत हुए ॥२४॥ वस्सार और धर्मित न दोनों ही त्रिहिष्ठवादी थे । वस्सार से निध्रुव उत्पन्न हुआ और महान् वक्ष वाला वह रैम्य हुआ ॥२५॥ रैम्य के जो हुए थे रैम्य कहलाये और निध्रुव की श्रव्य जानागरी करी । च्यवन की सुकन्या से सुमेधा समुत्पन्न हुए ॥२६॥ निध्रुव की जो पत्नी थी वह कुण्डपायियों की माता थी । धर्मित की एकपत्नी ने त्रिहिष्ठ उरग्न हुआ ॥२७॥ शाण्डिल्यो के पवन की सुमहा सुन्दर एवं महान् वक्षवाले देव ने निध्रुव—शाण्डिल्य और रैम्य ये तीन और नीचे कश्यप और वह प्रभूति देव थे सब देव की प्रजा थी ॥२८॥२९॥

मानसस्य चरिष्यन्तस्तस्य पुत्रो दम क्रिष ।

मानसस्तस्य दामादस्तृणविन्दुगति श्रुत ॥३०॥

प्रेतायुममुच्छे गजा तृतीये सम्बभूव ह ।

तस्य कन्या त्विडविटा रूपेणाप्रतिमाभवत् ।

पुलस्त्याय स राजपिस्ता कन्या प्रत्यपादयत् ॥३१॥

अपिरिडविडायान्तु विश्रवाः समपद्यत ।

तस्य पत्न्यश्रुतस्य पीलस्त्यकुलवर्द्धना ॥३२॥

बृहस्पतेर्बृहत्कीर्तिर्देवाचापस्य कीर्तितः ।
 कन्या तस्योपयेमे स नाम्ना व देवर्वाणिनीम् ॥३३॥
 पुष्पोत्कटाश्च वाकाश्च सुते मात्यवत स्थितौ ।
 ककसी मालिनः कन्या तासान्नु शृणुत प्रजा ॥३४॥
 ज्येष्ठ बथदण तस्य सुपुत्रे देवर्वाणिनी ।
 दिव्येन विधिना युक्तमार्पणाय श्रुतेन च ।
 राक्षसेन च रूपेण मासुरेण बलेन च ॥३५॥
 लिपाव सुमहाकाय स्थूलशीर्ष महातनुम् ।
 भट्टवद्गृह्णारिच्छमयुः शक्रकण विलाहितम् ॥३६॥
 ह्रस्वबाहु प्रबाहुश्च पिङ्गल सुविभीषणम् ।
 बलवान्नानसम्पन्न सम्बुद्ध ज्ञानसम्पदा ॥३७॥
 एषविधं सुत दृष्ट्वा विश्वरूपधर तथा ।
 पिता दृष्ट्वावाङ्मयीत च कुपेरोऽप्यमिति स्वयम् ॥३८॥

अरिष्य माण मानस उसके इन पुत्र हुआ । उसका शमाव मानस था
 जोकि तुण्डिलु इस नामसे विद्यत हुआ था ॥३०॥ सुतीय नेता भुग के मुख न
 राजा हुआ था । उसकी इक्षिका भी जोकि रूप ने अत्रिमा भी । उस राजपति
 ने उस परम सुन्दरी कन्या को पुत्रस्य के लिये देरी थी ॥३१॥ अरि पुनरप्य ने
 इक्षिका ने विधवा को अन्न दिया । पीनरुत कुल के बहाने वाली उसकी चार
 पत्नियां थी ॥३२॥ देवी के आचाम बृहस्पति का बृहन्कीर्ति कहा गया है ।
 नाम से देवर्वाणिनी उसकी कन्या के साथ उसने विवाह किया था ॥३३॥
 मात्यवान् की पुष्पोत्कटा और वाका वो मुताये थी-माली की ककसी कन्या थी
 इन उनकी प्रजाओं का व्यवहार करो ॥३४॥ देव र्वाणिनी ने उनके सबसे बड़े
 बभ्रवण को उत्पन्न किया जोकि दिव्य विधि और मार्पस न से पूजतया सम्पन्न
 था । साथ ही उसने राक्षस का रूप का और मासुर बल भी था ॥३५॥ तीन
 पैरो वाले-बहुत बड़े शरीर वाल-स्थूल शीर्ष स युक्त-महान् तनुमे सम्पन्न-भाठ
 दाढी वाले-हरी रंग की सम्य से युक्त-शक्रकण-विलाहित-छोटी भुजाओं
 वाले-प्रबाहु-पिङ्गल-सुविभीषण-बलवान् ज्ञान स युक्त तथा ज्ञान की सम्पत्ति ने

कर का रावण करने से ही वह रावण कहलाया है ॥४२॥४३॥४४॥ तेरह
वह राक्षस है ॥४५॥

ता पञ्चकोट्यो वर्षाणामास्थाता सङ्ख्यया द्विज ।

निपुतान्येकपट्टिञ्च सङ्ख्याविद्भिर्दाहता ॥४६॥

पट्टिषतसहस्राणि वर्षाणां तु स रावण ।

वेवताना श्रुपीस्थान् चोर कृत्वा प्रजागरम् ॥४७॥

त्रेतायुगे चतुर्विंशे रावणस्तपस क्षयात् ।

राम दाशरथि प्राप्य सगण क्षयमीषिवान् ॥४८॥

महोदय प्रहस्तञ्च महापाशुनरस्तथा ।

पुष्पोत्पटाया पुत्रास्ते कन्या कुम्भीनसी तथा ॥४९॥

विशिरा हूणश्च विष्णुजिह्वश्च राक्षस ।

कन्या ह्यसलिका च वाकाया प्रसवा स्पृता ॥५०॥

इत्येते क्रूरकर्माणि पीतस्त्र्या राक्षसा यथा ।

दाक्षिणामिजना सर्वे देवरपि दुरासवा ॥५१॥

सर्वे लब्धवराश्च न पुत्रपौत्रसमन्विता ।

यक्षाणाञ्च सर्वेषां पीतस्त्र्या ये च राक्षसा ॥५२॥

ये वर्षों की पाँच करोड़ द्विजों के द्वारा संख्या से कही गई हैं । संख्या के हातामों के द्वारा इकसठ नियुक्त कही गई है ॥४६॥ साठवीं हजार वर्ष तक छह रावण ने देवताओं और श्रमियों का चोर प्रजागर करके चौबीसवें त्रेता युग में उसका का क्षय होने से दशरथ के पुत्र श्रीराम को प्राप्त किया और वह रावण गणों के साथ क्षय को प्राप्त हुआ था ॥४७-४८॥ पुष्पोत्पटा के महोदय प्रहस्त—महापाशुनर पुत्र थे तथा कुम्भीनसी नाम वाली एक कन्या थी ॥४९॥ विशिरा—हूण—विष्णुजिह्व राक्षस तथा वाका के अनतिना नाम वाली कन्या ये सब प्रसव कहे गये हैं ॥५०॥ ये दश पीतस्त्र्य राक्षस क्रूर कर्म करने वाले थे । ये सब दाक्षिण्यमिजना वाले और देवों के द्वारा भी दुरासद थे ॥५१॥ ये सभी नरदान प्राप्त करने वाले और पुत्रों तथा पौत्रों से वन्धन से अर्थात् पुत्र पौत्र वाले थे । और अष्टस्य यक्षों के ये पीतस्त्र्य राक्षस थे ॥५२॥

आगस्त्यवैश्वामित्राणां क्रूराणां ब्रह्मरक्षसाम् ।
 वेदाध्ययनशीलानां तपोव्रतनिपेविणाम् ॥५३॥
 तेषामैकविंशो राजा पौलस्त्यः सव्यपिङ्गलः ।
 इतरे वै यज्ञमुखास्तेन रक्षोगणैः स्वयम् ॥५४॥
 यातुघाना ब्रह्मघाना वार्ताश्चैव दिवाचराः ।
 निशाचरगणस्तेषां चत्वारः कविभिः स्मृताः ॥५५॥
 पौलस्त्या नैष्ठिकैश्चैव आगस्त्या कौशिकास्तथा ।
 इत्येताः सप्त तेषां वै जातयो राक्षसाः स्मृताः ॥५६॥
 तेषां रूपं प्रवक्ष्यामि स्वभावेन व्यवस्थितम् ।
 वृत्ताभा पिङ्गलाश्चैव महाकाया महोदराः ॥५७॥
 अष्टदंष्ट्रा शकुर्कर्णा ऊर्ध्वरोमाणा एव च ।
 माकर्णदारितास्वाश्च मुखभूमोर्ध्वमूर्ध्वजाः ॥५८॥
 स्थूलशीर्षा सिताभाश्च ह्रस्वकाश्च प्रवाहकाः ।
 ताम्रास्या लम्बजिह्वौघा लम्बभ्रूस्थूलनासिकाः ॥५९॥
 नीलाङ्गा लोहितग्रीवा मम्भीराक्षा विभीषणाः ।
 महाघोरस्वराश्चैव विकटा वदपिण्डिकाः ॥६०॥
 स्थूलाश्च तुङ्गनासाश्च शिलासहनना दृढाः ।
 दारुणाभिजना क्रूरा प्रायशः क्लिष्टकर्मिणः ॥६१॥
 सकुण्डलाङ्गदापीना मुकुटोष्णीवधारिणः ।
 विचित्रवस्त्राभरणाश्चित्ररत्नगनुलेपनाः ॥६२॥
 अन्नादा पिशितादाश्च पुरुषादाश्च ते स्मृताः ।
 इत्येतद्रूपसामर्थ्यं राक्षसानां बुधैः स्मृतम् ।
 न समस्तबलं बुद्धं यतो मायाकृतं हि तत् ॥६३॥

आगस्त्य-वैश्वामित्र-क्रूर-ब्रह्म राक्षस-वेदों के अध्ययन करने के स्वभाव
 वाले और तपो व्रत के निपेवण करने वालों के उन सबका सव्य पिङ्गल पौल-
 स्त्य ऐकविंश राजा था । दूसरे यज्ञ मुख थे इससे तीन राक्षसों के गण थे
 ॥५३-५४॥ यातुघान-ब्रह्मघान-वार्ता और दिवाचर थे उन निशाचरों के चार

यवीयसी सुता तस्यामबला ब्रह्मवादिनी ।

अनाप्युदाहरन्तीम स्लोक पौराणिका पुरा ॥७६॥

अत्रे पुत्र महात्मान शान्तात्मानमवस्मयम् ।

दत्तानेय तनु विष्णो पुराणज्ञा प्रचक्षते ॥७७॥

स्वर्गानु के द्वारा भूम के हन होने पर दिन से मही पर पतमान हुआ था । इस लोक के उस समय अन्धकार से एकदम अग्निभूत होने पर जिसने प्रभा को प्रवर्तित किया था ॥७६॥ वहाँ विरता हुआ वह शिवाकर उस समय तेरा कल्याण हो—इस प्रकार से कहा गया था । उस ब्रह्मर्षि के वचन से दिव से मही पर नहीं गिरा ॥७७॥ जिस महात्मा तपस्वी ने अग्निभूत योत्रो को किया था और जो अग्निभूत योत्रो ने देवों के द्वारा प्रवर्तित किया गया था । उसने महात्मा तप से आर्चित प्रभा वाले समस्त ही अक्षयानु अपने समान वन पुत्रों को उत्पन्न किया था ॥७८॥ स्वस्त्वायेय इय नाम से विख्यात वेद के पारमार्थी ऋषिगण ने उनमें विख्यात बन गये महात्मा योत्र से युक्त परम ब्रह्मर्षि भी थे ॥७९॥ उनमें दत्तानेय सबसे बड़ा था और उसका छोटा भाई दुर्वासा था । उसकी छोटी बहिन और ब्रह्मवादी वाली पुत्री थी । वहाँ पर भी पहिले पौराणिक लोग इस स्लोक को कहा करते हैं ॥७९॥ महात्मा आत्मा वाले कल्प रहित और शान्तात्मा अग्नि के पुत्र को जिसका नाम दत्तानेय था पुराणों के माता लोग उन्हें विष्णु का तनु कहा करते हैं ॥८०॥

तस्य गोत्रान्वये जाताम्रस्वार प्रविता भुवि ।

क्षयामाभ्रमुद्गताम्र व वसारकगविष्टिरा ।

एते नृणांस्तु चत्वार स्मृता यथा महीषसाम् ॥८०॥

कक्षपात्रारदम्ब व पर्वतोऽरुन्धती तथा ।

जज्ञिरे च त्ररुन्धत्यास्ताग्निबोधत सप्तमा ॥८१॥

नारदस्तु वसिष्ठायाऽरुन्धती प्रत्यपादयत् ।

ऊढ रेता महातेजा वृषसापात् नारद ॥८२॥

पुरा देवाऽपि तस्मिन्समामे तारकामये ।

अनावृष्ट्या हृते लोके यत्र सके सुरै सह ।
 वसिष्ठस्तपसा धीमान्धारयामास वै प्रजा ॥८१॥
 अत्रीपथ मूलफलमोपधीश्च प्रवर्त्तयन् ।
 तास्तेन जीवयामास काम्यादौपधेन तु ॥८२॥
 अरुन्धत्या वसिष्ठस्तु शक्तिमुत्पादयद् द्विजा ।
 सागरस्नानयन्धत्ते रहस्यन्ती पराशरम् ॥८३॥
 काली पराशराब्जले कृष्णार्द्धपायन प्रभुम् ।
 ह्रैपायनादरण्या वै शुको जज्ञे गुणान्वित ॥८४॥

उसके गोपान्वय में भूमण्डल में प्रसिद्ध इयाम्—सुखल—वकारक और गविष्ठिर ये चार उत्पन्न हुए । ये चार मनुष्यों के, जिनके कि महान् भोज था, पक्ष कहे गये हैं ॥८१॥ ऊधमय से नारद पर्वत और अरुन्धती उत्पन्न हुए । हे श्रेष्ठगण ! प्रवर्त्तय जो अरुन्धती के हुए उसको समझ जो ॥८२॥ नारद ने वसिष्ठा में अरुन्धती को प्रतिपादित किया था । ऊर्द्ध रेतस महान् तेजवाले वृक्ष थाप से बारह हुए ॥८३॥ पहिले समय में तारकामय देव और असुरों के सग्राम में, बुद्धि के न होने से लोक के हम होजाने पर और देवी के साथ इन्द्रदेव के धर्म हाजाने पर वसिष्ठ मुनि ने जोकि परब बुद्धिमान् से अपने तप के फल से प्रजा को धारण किया था ॥८४॥ यही पर उसने मूल और फल तथा मोपनिधो को प्रवृत्त करते हुए कदछा से और ओषध से उसने उन प्रजाओं को जीवित किया था ॥८५॥ हे द्विजगण ! वसिष्ठ ने अरुन्धती में शक्ति को उत्पन्न किया था । सागर को जन्म देती हुई शक्ति से पराशर को न देखती हुई काली ने पराशर से प्रभु कृष्ण ह्रैपायन को उत्पन्न किया । ह्रैपायन से धारण्या में शुण-मण समन्वित शुक्र उत्पन्न हुए ॥८६॥

उत्पद्यन्ते च पीवयौ पडिमे शुक्लसूनुव ।
 मूरिश्रवा प्रभु शम्भु कृष्णो गोरञ्च पञ्चय ॥८७॥
 कम्मा कीर्तिमती चैव योगभाता दहन्ता ।
 जननी ब्रह्मदत्तस्य पत्नी सार्वभूहस्य च ॥८८॥

श्वेता कृष्णाश्च गौराश्च श्यामा धूमा समूनिना ।

ऊष्मपा दारकाश्च व नीलाश्च व पराशरा ।

पराशराणामद्यो ते पक्षा प्रोक्ता महात्मनाम् ॥८७॥

अत ऊढ निबोधध्वमिन्द्रप्रतिमसम्भवम् ।

वसिष्ठस्य कपिश्च या घृताच्या समपद्यत ।

कुशीलिय समाख्यात इन्द्रप्रतिम उच्यते ॥८८॥

पृथो सुताया सम्भूत पुत्रस्तस्या भवद्वसु ।

उपमन्वु सुतस्सस्य यस्येमे उपमन्वव ॥८९॥

मित्रावरुणयोश्च व कुम्भिनो वे परिधुता ।

एकार्षेयास्तथवाये वसिष्ठा नाम विश्व ता ।

एते पक्षा वसिष्ठाना स्मृता एकादशव तु ॥९०॥

इत्येते ब्रह्मण पुनः मानसा ह्यष्ट विश्व ता ।

आतर मुमहामागा तथा वक्षा प्रतिहिता ॥९१॥

प्रीतलोकाम्भारयतीमा देवविगणसकुलान् ।

तेषा पुत्राश्च पीत्राश्च गतगोऽथ सहस्रव ।

मर्ष्याता पृथिवी सर्वा सूर्यस्यैव तमस्तिमि ॥९२॥

ये छ शुद्ध के बीबरी में उत्पन्न होते हैं—धूरिधवा-प्रभु-धम्भु-कृष्ण

गौर पञ्चम गौर धीर कीर्तिमती मय्या जो योगवाता इव वत वाली ब्रह्मवत्

की माता की धीर सात्वत मुह की पत्नी थी ॥८७॥८८॥ अतः कृष्ण-गौर-

श्याम-धूम-समूनिन-ऊष्मप-दारक-नील धीर पराशर-महात् आत्मा वाले

पराशरो के व आठ पक्ष बहे गये हैं ॥८७॥ इसके आये इन्द्र प्रतिम सम्भव को

जान लो । वसिष्ठ की कपिष्ठली घृताची में कुशीलिय ब्रह्म बवा उ पन हुआ

जारी इन्द्र प्रतिम कहा जाता है ॥ ८८॥ पृथु की सुता से उरववा वसु पुत्र हुआ ।

उसका पुत्र उपमन्वु था जिसके ये सब उपमन्व बण हैं ॥८९॥ धीर मित्रावरुणो

के कुम्भिन हुए जो एकार्षेय पण्डित हुए व । उसी प्रकार से अन्य वसिष्ठ नाम

से विद्यत हुए वे । वे स्यारह पक्ष वसिष्ठो के कहे गये हैं ॥९०॥ ये आठ पुन

ब्रह्माक मानस प्रमिष्ट हुए हैं । आई मुन्दर एव महात् मान वाले हैं धीर उनके वध

प्रतिष्ठित है ॥६१॥ इन देवपिण्डों से सकुल तीनों लोगों को वाग्म्य करती हुई भूमि थी । उसके सिकड़ों एवं सहस्रो पुत्र और गौत्र वे जिनसे व्याप्त यह पृथ्वी है जैसे सूप की फिरछों से होती है ॥६२॥

प्रकरण ४६-मान्धर्व मूर्च्छना लक्षण

निसर्गं मनु पुत्राणां विस्तरेण निबोधत ।
 पृथग्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गवमभक्षयत् ॥१॥
 क्षापाच्छूद्रत्वमापन्नदण्यवनस्य महात्मन ।
 करुपरयं तु कारुण्यं क्षत्रियो मुह्यदुर्भद ॥२॥
 सहस्रक्षत्रियगणविक्रान्तं सवभूव ह ।
 नाभागारिष्टपुत्रस्तु विद्वानासीद्वृत्तत्वन ॥३॥
 भलन्दनस्य पुत्रोऽभूत् प्राशुर्नाम महाबल ।
 प्राशोरेकोऽभवत् पुत्रं प्रजानिरिति विद्मत् ॥४॥
 प्रजानरभवत् पुत्रं क्षत्रियो नाम वीर्यवान् ।
 तस्य पुत्रोऽभवच्छ्रीमश्नु क्षुपो नाम महायशः ॥५॥
 क्षुपस्य विश्वः पुत्रस्तु प्रतिमा न बभूव ह ।
 विश्वपुत्रस्तु कल्याणो विविशो नाम घामिष्ठा ॥६॥
 विविशपुत्रो धर्मात्मा लज्जिनेत्र प्रतापवान् ।
 करन्धमस्तस्य पुत्रस्वेतायुगमुखोऽभवत् ॥७॥

श्री सूतजी न कदा—अब मनु के पुत्रों का निसर्ग विस्तार के साथ ज्ञान जेना नाहिये । पृथग्र ने गुरु की गाव का हनन करके उत्तम भक्षण कर लिया था ॥१॥ महारु अग्रमा जाले भक्षण के ज्ञान से शूद्रत्व को प्राप्त होगया था । शूद्रपण मुझ दुर्भद कारुण्य क्षत्रिय जाति सहस्रो क्षत्रियों के समूह में विक्रान्त था, उत्पन्न हुआ । नाभागारिष्ट का पुत्र भलन्दन वडा विद्वान् था ॥२॥३॥ भलन्दन का पुत्र महारु बल वाला प्राशु नाम वाला उत्पन्न हुआ था । प्राशु के

एक ही प्रजानि—इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥४॥ प्रजानि के सनिज नाम वाला वीरवान् पुन हुआ था । उसके भीमान् महान् यज्ञ वाला क्षुप—इस नाम का पुत्र हुआ ॥५॥ क्षुप का पुत्र विश हुआ जिसकी कोई प्रतिमा नहीं थी । विश का पुन कल्याण जिसका नाम विविग था और वह बहुत धार्मिक था ॥६॥ विविग का पुत्र धर्मात्मा और प्रताप वाला सनिनेत्र था । उसका पुत्र करन्धम हुआ जोकि त्रेता यग के आरम्भ में हुआ था ॥७॥

करन्धमसुतश्चापि आविक्षिप्तम वीरवान् ।
 आविक्षितो व्यतिक्रामत् पितरं गुणवत्तया ॥८॥
 मरुतो नाम धर्मात्मा चक्रवर्त्तिसमो नृप ।
 सवर्त्तेन दिव नीत ससुहृत् सह बाधव ॥९॥
 विवादोऽत्र महानासीत् सवत्तस्य बृहस्पते ।
 अद्वि दृष्टा तु यज्ञस्य क्रदस्तस्य बृहस्पति ॥१०॥
 सवर्त्तेन हूते यज्ञं चक्रोप सुभृशन्तदा ।
 लोकानां स हि नाशाय दवर्तहि प्रसादित ॥११॥
 मरुतश्चक्रवर्त्ती स नरिष्यन्तमवाप्तवान् ।
 नरिष्यन्तस्य दायदो राजा दण्डधरा वम ॥१२॥
 तस्य पुत्रस्तु विक्रान्तो राजासीप्राह्वयद्ध न ।
 सुधृती तस्य पुत्रस्तु नर सुधृतिन सुत ॥१३॥
 केवलस्तस्य पुत्रस्तु वन्तुमान् केवलात्मज ।
 अथ बन्धुमतं पुत्रो धर्मात्मा वेगवान् नृप ॥१४॥

करन्धम का पुत्र बोर्बवान् आविक्षिप्त नाम वाला था । धृष्टी की सप सता से आविक्षिप्त ने अपना पिता को भी व्यतिक्रान्त कर दिया था ॥८॥ मरुत नाम वाला राजा चक्रवर्त्ती के समान हुआ था । मित्रों और बाधकों के सहित वह सर्वा के द्वारा दिव लोक को ले जाया गया था ॥९॥ इसमें सवर्त्त बृहस्पति का महान् विवाद था । यज्ञ की अद्वि की देखकर बृहस्पति उससे बहुत क्रद हुआ था ॥१०॥ सवर्त्त के द्वारा यज्ञ के हूच हो जाने पर उस समय यह बहुत ही अधिक क्रुपित हुआ और वह लोगों के नाश करने के लिए उद्यत

होगया था । देवगण के द्वारा उसे प्रमत्त किया गया था ॥११॥ चक्रवर्ती जो मरुत था उसने नरिष्यन्त को प्राप्त किया था । नरिष्यन्त का दायाद दणुधरद्वम राजा था ॥१२॥ उसका पुत्र परम विक्रम वाला राष्ट्रवधन राजा था । उसका पुत्र सुधृनी था और उसका पुत्र नर था ॥१३॥ उसका वेषल पुत्र था और केवल का आत्मज धन्धुमान् था । इसके पदवान् धन्धुमान् का पुत्र अमांसा राजा वेगवान् हुआ ॥१४॥

बुधो वेगवत पुत्रस्तृणविन्दुर्बुधात्मज ।
 त्रेतायुगमुखे राजा सृतीये सबभूव ह ॥१५॥
 कन्या तु तस्य द्रविडा माता विश्ववसो हि सा ।
 पुत्रश्चास्य विशालोऽभूद् राजा परमधार्मिक ॥१६॥
 विशालस्य समुत्पन्ना विशाला नयनिर्मिता ।
 विशालस्य सुतो राजा हेमचन्द्रो महाबल ॥१७॥
 सुचन्द्र इति विख्यातो हेमचन्द्रादनन्तरम् ।
 सुचन्द्रतनयो राजा धूम्राश्व इति विश्रुत ॥१८॥
 धूम्राश्वतनयो विद्वान् सृञ्जय समपन्नत ।
 सृञ्जयस्य सुत श्रीमान् सहदेव प्रतापवान् ॥१९॥
 कृशाश्व सहदेवस्य पुत्र परमधार्मिक ।
 कृशाश्वस्य महातेजा सोमदत्त प्रतापवान् ॥२०॥
 सोमदत्तस्य राजर्षे सुतोभूज्वनमेजय ।
 जनमेजयात्मजश्चैव प्रमतिर्नाम विश्रुत ॥२१॥

वेगवान् का पुत्र बुध हुआ और बुध का पुत्र तृणविन्दु हुआ था जो कि सृतीय त्रेतायुग के मुख (प्रारम्भ) में राजा हुआ था ॥१५॥ उसकी कन्या द्रविडा थी जो कि विश्ववा की माता हुई थी । इसका पुत्र परम धार्मिक राजा विशाल हुआ था ॥१६॥ विशाल को नय निर्मित विशाला उत्पन्न हुई थी और विशाल का पुत्र महाबलवान् हेमचन्द्र राजा हुआ था ॥१७॥ हेमचन्द्र के अनन्तर सुचन्द्र इस नाम से विख्यात पुत्र हुआ । सुचन्द्र का पुत्र राजा धूम्राश्व परम विख्यात हुआ ॥१८॥ धूम्राश्व का पुत्र बहुत विद्वान् सृञ्जय समुत्पन्न हुआ

या । सुव्यय का पुत्र श्रीमान् एव प्रताप वाला सहदेव हुआ ॥१६॥ सहदेव का पुत्र परम धार्मिक कुशाक्ष हुआ और कुशाक्ष का पुत्र महान् तेजवाला एव प्रतापी सोमदत्त हुआ ॥१७॥ राजर्षि सोमदत्त के जनमेजय पुत्र उत्पन्न हुआ था । जनमेजय के प्रथम इस नाम से प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१८॥

तृणविन्दुप्रसादेन सर्वे वंशालका धृषा ।

दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवन्त सुधार्मिका ॥१९॥

सर्वार्थमिष्टं तु त्वासीदानीतो नाम विधुस्त ।

पुत्र सुकन्या कन्या च भार्या या अयवन्तस्तु ॥२०॥

भानात्तस्य तु दायको रेवो नाम्ना तु वीर्यवान् ।

भानतो विषयो यस्य पुरी चापि कुशस्थली ॥२१॥

रेवस्य रक्त पुत्र ककुची नाम धार्मिक ।

ज्येष्ठो भ्रातृशतस्वासीद्राजा प्राप्य कुशस्थलीम् ॥२२॥

कन्यया सह भूत्वा च गन्धर्व ब्रह्मणोऽन्तिके ।

मुहूर्त्तं देवदेवस्य भास्य बहुयुगं विभो ॥२३॥

भ्राजगाम युवा जन त्वा पुरी यादववृत्ताम् ।

कृता द्वारवती नाम बहुशरा मनोरमा ॥२४॥

भोजवृष्टधन्वकगुप्ता वसुदेवपुरोगम ।

साङ्गया रक्त श्रुत्वा यथातत्त्वमरिचम् ॥२५॥

कन्या तु वलदेवाय सुप्रता नाम रेवतीम् ।

वत्सा जगाम शिखर मेरोस्तपसि सस्थित ॥२६॥

ये समस्त राजा तृणविन्दु के प्रसाद से वंशालक हुए थे । ये समस्त वीर भाग्य वाले-महान् भारमा से युक्त-वीर्य वाले और नयी भाँति से धर्म के मानने वाले हुए थे ॥१९॥ सर्वाति के एक बेटा हुआ था-एक पुत्र था जो भानात्त इस नाम से प्रसिद्ध था और एक कन्या थी जिसका नाम सुकन्या था और वह अयवन्त श्रुति की भार्या हुई थी ॥२०॥ भानात्त का दायक प्रसात् दाय के ग्रहण करने वाला पुत्र वीर्यवान् रेव नाम वाला हुआ जिसका रेश ठी भानत्त था और पत्नी कुशस्थली थी ॥२१॥ रेव का पुत्र रक्त हुआ था जिसका नाम

ककुषी वा श्रीर वह परम धार्मिक हुआ वा जो सौ भाइयो का ज्येष्ठ था श्रीर मुदास्थली को प्राप्त कर राजा हुआ था ॥२१॥ विष्णु देवों के देव के एक मुहूर्त मान समय तक जोकि मर्त्या के बहुत से युग थे, ब्रह्मा के समीप में गन्धर्व को कन्या के साथ में सुनकर युवा यादवों से वृत्त अपनी पुत्री में आगम्य जोकि बहुत द्वारों वाली बहुत सुन्दर द्वारवती नाम बाती की गई थी, वसुदेव जिनमें अश्वत्थी थे ऐसे भोज घृष्टि श्रीर गन्धर्वों के द्वारा वह पुरी सुरभित थी। उस कथा को शत्रुघ्नो के वसन करने वाले रैरत ने पथातस्व सुना था ॥२६-२७-२८॥ शुक्ल व्रत वाली रेवती नाम से युवत कन्या को वसुदेव को देकर तपश्चर्या में सन्विष्ट होता हुआ मेरुगिरि के शिखर पर चल गया ॥२९॥

रेमे रामश्च धर्मात्मा रेवत्या सहित किल ।

ता कवामृषय श्रुत्वा पप्रच्छुस्तदनन्तरम् ॥३०॥

कथ बहुयुगे काले व्यतीते सूतनन्दन ।

न जरा रेवती प्राप्ता पलितश्च कुत प्रभो ॥३१॥

मेव गतस्य वा तस्य क्षम्यति सन्तति कथम् ।

स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वत ॥३२॥

कियन्तो वा सुरगणा गन्धर्वास्तत्र कीदृशा ।

यच्छ्रुत्वा रैवत कालान् मुहूर्तमिव मन्यते ॥३३॥

न जरा क्षुत्पिपासा वा न च मृत्युभय तत ।

न च रोग प्रभवति ब्रह्मातोकमतस्य हि ॥३४॥

गान्धर्व्यं प्रति यच्चापि पृष्टस्तु मुनिसत्तमा ।

ततोऽहं सप्रवक्ष्यामि याथातथ्येन सुव्रता ॥३५॥

सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशति ।

तालाश्र्वं कोनपञ्चाशदित्येतत् स्वरमण्डलम् ॥३६॥

पट्जपंभौ च शान्धारो मय्यम पञ्चमस्तथा ।

धैवतश्चापि विज्ञेयस्तथा चापि निपादवान् ॥३७॥

परमात्मा वलराम ने रेवती के साथ भ्रमण किया। उस कथा को सुन तापे अनन्तर ऋषियो ने पूछा ॥३०॥ ऋषियण बोले—हे सूत नन्दन ।

हे प्रभो ! बहुत युगो वाले काश के व्यतीत हो जाने पर रेवती वृद्धावस्था को प्राप्त नहीं ॥३१॥ और पलित केश प्राप्त नहीं हुआ है ? ॥३१॥ जब सर्वाति मेघ पर चला गया तो उसकी सन्तति कसे ॥३२॥ जोकि शाय तक भी इस भू मण्डल पर स्थित है । यह तत्त्व पूर्वक सब वृत्त सुनना चाहते हैं ॥३२॥ कितने सुगण थे और किस तरह के मन्त्र थे जिसको सुनकर रवत कालो को मूर्च्छा की भाँति मानता था ॥३३॥ श्री सुसजी ने कहा—ब्रह्मलोक में जाने वाले को न बुझाया होता है और न मन्त्र-प्राप्त ही लगती है । मृत्यु का भय भी नहीं होता है और न किसी रोग का भय ही रहा करता है ॥३४॥ हे मुनिभेदो ! गान्धर्व के विषय में जैसा भी मुझसे पूछा गया है वह मैं हे सुप्रता । यथास्थ से अर्थात् बिल्कुल ठीक ठीक बतलाऊँगा ॥३५॥ साय स्वर पञ्चजादि हों ॥ तीन ग्राम और इस्कीस मूर्च्छनाएँ होती हैं । उनवास प्राप्त होते हैं—यह इतना स्वर मण्डल होता है ॥३६॥ स्वरो के नाम—पञ्च-अपम-गान्धार-मध्यम-पञ्चम षष्ठ और निषाद ये सात हैं ॥३७॥

सौवीरी मध्यमग्रामो हरिणास्या तथैव च ।
 स्यात्कलीपबसोपेता चतुर्थी शुद्धमध्यमा ॥३८॥
 धार्ज्नी च पावनी चैव दृष्टाका च यथाक्रमम् ।
 मध्यमग्रामिका ह्याता पञ्चमग्राम निबोधत ॥३९॥
 उत्तरमन्द्रा रजनी तथा या चोत्तरायता ।
 शुद्धपञ्च जा तथा चैव जानीयात् सप्तमा च ताम् ॥४०॥
 गान्धारग्रामिकाश्चान्यान् कील्यमानान् निबोधत ।
 अग्निष्टोमिकमाद्यन्तु द्वितीयं चाजपेयिकम् ॥४१॥
 तृतीयं पौण्ड्रकं प्रोक्तं चतुर्थं चाक्षमेधिकम् ।
 पञ्चमं राजसूयं च षष्ठं चक्रमुदयिकम् ॥४२॥
 सप्तमं गोसव नाम महानृष्टिकमष्टमम् ।
 ग्रहादानञ्च नवमं प्राजापत्यमनन्तरम् ॥४३॥
 नागपक्षाथय विद्यादगोत्तरञ्च तथैव च ।
 हयक्रान्तं मृगक्रान्तं विष्णुक्रान्तं मनोहरम् ॥४४॥

सूर्यक्रान्त वरेण्यश्च भक्तकोकिलवादिनम् ।
 सावित्रमर्द्धसावित्र सर्वतो मद्रमेव च ॥४५॥
 सुवर्णश्च सुनन्दश्च विष्णुर्वैष्णुवरावुभौ ।
 सागर विजयश्चैव सर्वभूतमनोहरम् ॥४६॥
 हंस ज्येष्ठ विजानीमस्तुम्बुरुप्रियमेव च ।
 मनोहरमधात्र्यश्च गन्धर्वानुगतश्च य ॥४७॥
 अलम्बुपेष्ठश्च तथा नारदप्रिय ण्य च ।
 कपितो भीमसेनेन नागराणा यथा प्रिय ॥४८॥
 करोपनीत विनता श्रीराक्षो भार्गवप्रिय ।
 गिषातिमंध्यमग्राम पद्मजग्रामश्चतुर्दश ॥४९॥

सोवीरो-मध्यम ग्राम-हरिणास्था-कलोपयतोपेता-बुद्धमध्यमा चतुर्षी-
 क्षात्री-पावनी-दृष्टाका य यथाक्रम मध्यम स्वर की ग्रामिका हैं श्रीर इन्ही नामो
 से प्रतिष्ठ हैं । मध्य पद्म जग्राम की ममभक्तो ॥३८॥३९॥ उत्तर मन्त्रा-रजनी-
 उत्तरायता-बुद्धपद्मा श्रीर सप्तमा ये जाननी चाहिये ॥४०॥ भव बतलाई जाने
 घानी ग्रन्थ जो पान्धार की ग्रामिका है उम्ह ममक जेनी चाहिये । अग्निधोमिका
 प्रथम है श्रीर द्वितीय वाजपेयिक है । तीसरी पौरवृक कही गई है । चौथी
 आश्वमेजिक है । पाँचवी राजगुह्य श्रीर छठी चक्र सुवर्णक है । सातवी गोसव
 गङ्गावृष्टिक आठवी होती है । नवम रत्नवान है इनके धनन्तर प्राजाप्य है ॥४०॥
 ॥४१॥४२॥४३॥ नाग यथाश्रय-गीतर-ह्यक्रान्त-मनोहर-मृषक्रान्त-सूर्यक्रान्त-
 परेण्य-भक्तकोकिल वादी-सावित्र-अर्द्धसावित्र-सर्वतोभद्र-सुवर्ण-सुमन्द्र-विष्णु
 वैष्णुवर-सागर-विजय-सर्वभूत मनोहर-हंस को ज्येष्ठ जानते हैं-तुम्बुरुप्रिय-
 मनोहर-अधात्र्य-गन्धर्वानुगत-अलम्बुपेष्ठ नागद प्रिय-भीमसेन के द्वारा नागरो
 की प्रिय कही गई है-करोपनीत विनता-श्री-इस नाम वाली-भार्गव प्रिय-
 ये तीस मध्यम स्वर के ग्राम हैं । पद्म के चौदह ग्राम हैं ॥४४॥४५॥
 ४६॥४७॥४८॥४९॥

तथा पञ्चदशेच्छन्ति गान्धारग्रामसंस्वितान् ।
 समोवीरा तु गान्धारी ब्रह्मणा ह्युपगोयते ॥५०॥

उत्तरादिस्वरस्यैव ब्रह्मा च देवताञ्च च ।
 हरिदेशतमुत्पन्ना हरिणास्या व्यजायत ।
 मूच्छना हरिणास्यैव अस्या इन्द्रोऽधिदत्तम् ॥११॥
 करोपनीतवितता मरुद्भिः स्वरमण्डले ।
 सा कालोपनता तस्मात्मास्तम्नाञ्च दत्तम् ॥१२॥
 मनुदेशतमुत्पन्ना मूच्छना शुद्धमध्यमा ।
 मध्यमोऽयं स्वर शुद्धो गन्धर्वमन्त्राञ्च देवता ॥१३॥
 मृग सह सञ्चरते सिद्धाना भागदक्षणे ।
 यस्मात्तस्मात् स्मृता मार्गी मृगेन्द्रोऽस्याञ्च देवता ५४
 सा चाधमममायुक्ता अनेकान् पौरवान् रवाम् ।
 मूच्छना योजना ह्य वा रजसा रजनी तत ॥१५॥
 ताल उत्तरमन्त्राञ्च षड्जवत्तका विदुः ।
 तस्मादुत्तरतालञ्च प्रथम स्वायत्त विदुः ।
 तस्मादुत्तरमन्त्रोऽयं देवतास्य ध्रुवो ध्रुवः ॥१६॥

इसी प्रकार से बा-चार स्वर के ग्राम संस्थित पन्द्रह जाहते हैं । सभी बीरा-गान्धारी जो ब्रह्मा के द्वारा उपरीत हुया करती है । उत्तरादि स्वर का यहाँ पर ब्रह्मा ही देवता होता है । हरिदेश समुत्पन्ना-हरिणास्या ही मूच्छना है और वह इसका अधिकारी देवता होता है ॥११॥१२॥ स्वरों के मण्डल में मरुती के द्वारा करोपनीत विनता होती है । वह कसोपनता है इससे मास्त ॥ यहाँ पर अधिदत्त होता है ॥१३॥ मनु देश में समुत्पन्न मूच्छना शुद्ध मध्यमा है । यहाँ मध्यम स्वर है और शुद्ध मध्यम देवता है ॥१३॥ सिद्धों के माग के दक्षन में मृगों के साथ सञ्चरण करती है । इसी कारण से यह मार्गी कही गई है और इसका मृगेन्द्र देवता होता है ॥१४॥ और वह आधम य समायुक्त होती है और अनेक पौरवों को रव वाले कर देती है । यह मूच्छना योजना रजसे रजनी होती है । ५५॥ इसका ताल उत्तर मन्त्राञ्च होता है और इसको षड्ज देवता वाली जाननी चाहिये । इसका उत्तर ताल प्रथम स्वायत्त जान लव । इससे यह उत्तर मन्त्र है और इसका ध्रुव नियमित देवता है ॥१६॥

प्रपानादुत्तरत्वाच्च वैवतस्योत्तरायणम् ।

स्यादिय मूर्च्छना ह्येव पितर आद्वेदेवता ॥५७॥

षुद्धगण्डुजम्बर कृत्वा यस्मादग्निं महर्षयम् ।

उपतिष्ठन्ति तस्मान् जानीयाच्छुद्धगण्डुजम् ॥५८॥

य सता मूर्च्छना कृत्वा पञ्चमस्वरको भवेत् ।

यक्षीणा मूर्च्छना सा तु पाक्षिका मूर्च्छना स्मृता ॥५९॥

नागदृष्टिविषा गीता नोपगर्हन्ति मूर्च्छनाम् ।

शक्तीय तृता ह्येते ब्रह्मणा नागदेवता ।

महीना मूर्च्छना ह्येषा वसुधाया देवता ॥६०॥

शकुन्तकानां कृत्वा च उपमा यान्ति किन्नरा ।

उत्तमा मूर्च्छना तस्मात् पक्षिगजोऽत्र देवता ॥६१॥

गान्धाररागद्वन्द्वेन वा च धारयतेऽर्पत ।

तस्माद्विष्णुगान्धारी गन्धर्वश्चाधिर्देवतम् ॥६२॥

प्रपान और उत्तररत्न होने से पतित यह उत्तरायण यह मूर्च्छना है । इस प्रकार से आद्वेदेवता पितर होते हैं ॥५७॥ जिस कारण से महर्षिगण शुद्ध गण्डुज स्वयं ही करके फिर अग्नि को उपस्थान दिया करते हैं । इसीसे उते शुद्ध पञ्जित जानना चाहिये । जो मत्पुरुषों की मूर्च्छना को करके पञ्चम स्वर होता है वह यक्षियों की मूर्च्छना है और यह पाक्षिका मूर्च्छना कही गई है ॥५८॥ विषागीता नागदृष्टि मूर्च्छना का उपगण नही करती है और ये नाग-देवता ब्रह्मा के द्वारा दत्त होजाते हैं । यह अक्षियों धर्वात् नागों की मूर्च्छना होती है और वसुधा मही देवता है ॥६०॥ किन्नर पक्षियों की उपमा करके जाते हैं । इससे उत्तमा मूर्च्छना है और इसमें पक्षिगज यही देवता है ॥६१॥ गान्धार राग के शब्द से वा को कण से धारण करताहै इससे यह विष्णु गान्धारी होता है और उपमा मन्त्र अग्निदेवता होता है ॥६२॥

गान्धारानन्तर गत्वा सृष्टेय मूर्च्छना यत ।

उत्तरमादुत्तरमान्धारी वसुधाया देवता ॥६३॥

सेय सलु महाभूता पितामहमुपस्थिता ।
 पड जेय भूच्छना तस्मात् स्मृता ह्यनलदेवता ॥६४॥
 दिव्येय चायता तेन भन्दपद्मा च भूच्छने ।
 निवृत्तगुणनामान पञ्चमञ्चात्र धैवतम् ॥६५॥
 पूर्णा सप्त स्वरा ह्येव भूच्छना सप्रकीर्तिता ।
 नानासाधारणाश्च न पदेवानुविदस्तथा ॥६६॥

जिससे ना बार के अनन्तर यह भूच्छना सृष्ट हुई उस का ए से उत्तर
 ना थारी हुई और यही सप्त सप्तिकाभी देवता है ॥६३॥ यह यह महाभूता पिता
 मह को उपस्थित हुई यह पडज भूच्छना है और इससे यह अनल देवता वाली
 कही गई है ॥६४॥ यह चिन्मा और आयता है इससे मन्द पद्मा भू-क्षेत्रार्थे पञ्चम
 और धैवत की होती है जोकि निवृत्त गुण और नाम वाले है । इस प्रकार से
 सात स्वरो वाली पूरा भूच्छना कही गई है । यह चनेका और साधारण न ही
 अनुविद होती है ॥६५॥

प्रकरण ५०—गीता सूक्तार निर्देश

पूर्वार्धाम्यमत बुद्धा प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वश ।
 त्रिात न भलङ्कारास्तान् मे निगदत शृणु ॥१॥
 भलङ्कारास्तु नक्तव्या स्व स्ववर्णं प्रहेतव ।
 सस्थानयोगश्च तथा पादाना चान्ववेक्षया ॥२॥
 वाक्यार्थपदयोमार्थ रत्नङ्कारस्व पूरणम् ।
 पदानि गीतकस्याह पुरस्तात् पृष्ठतोऽप्यवा ॥३॥
 स्थानानि त्रीणि जानीयादुर-कृच्छिरस्तथा ।
 एतेषु त्रिषु स्थानेषु प्रवृत्तो विधिस्तम ॥४॥
 चत्वार प्रकृती कर्णा प्रविभारश्चतुर्विध ।
 विवक्ष्यमष्टया च देवा षोडशधा विदु ॥५॥

स्थायी वर्णं प्रसचारी तृतीयमवरोहणम् ।
 आरोहणं चतुर्थन्तु वर्णं वर्णविदो विदुः ॥६॥
 तत्रैकं सचरस्थायी सचरास्तचरीभवन् ।
 अथ रोहणवर्णानामवरोहं विनिर्दिशेत् ॥७॥

अब पूर्व में हुए आचार्यों के मत को जानकर आनुपूर्वी के साथ तीन सौ अक्षरकारों को बनलाया जाता है। उन्हें बतसाने वाले मुझसे आप लोग भली भाँति जानकारी कर लेवें और अवलोक करे ॥१॥ अपने-अपने वर्णों से प्रकट हेतु वाले अक्षरकार सस्थान योगों से और पादों की अन्ववेक्षा से कथन करने के योग्य होते हैं ॥२॥ वाक्य-अर्थ-पद और योषार्थों से अक्षरकार की पूछता होती है। पृष्ठ से और आगे गीतक के पद कहे गये हैं ॥३॥ स्थान उर स्थल-कण्ठ और शिर में तीन जानने चाहिए। इन तीन स्थानों में उत्तम विधि प्रवृत्त होती है ॥४॥ प्रकृति में चार वर्णों और चार प्रकार का प्रविचार होता है। विकल्प आठ प्रकार के तथा देव सोलह प्रकार के जाने गये हैं ॥५॥ स्थायी-वर्ण प्रसचारी और तीसरा अवरोहण, चतुर्थ आरोहण वर्ण वर्णों के भेदा लोग जानते हैं ॥६॥ यहाँ एक सचरास्तचरी होता हुआ सचर स्थायी होता है। इसके अनन्तर रोहण वर्णों का अवरोहण विनिर्दिष्ट करना चाहिए ॥७॥

अरोहणेन आरोहवर्णं वर्णविदो विदुः ।
 एतेषामेव वर्णानामक्षरान्निबोधत ॥८॥
 अक्षरान्क्षरास्तु चत्वारः स्थापनी क्रमरेजिनः ।
 प्रमादश्चाप्रमादश्च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥९॥
 विस्वरोष्ट्रकसाश्चैव स्थानादेकान्तरं गताः ।
 आवर्तस्याक्रमोत्पत्ती द्वे कार्ये परिमाखत ॥१०॥
 कुमारमपरं विद्याद्विस्तरं वमनं भूतम् ।
 एष वै चाप्यपाङ्गस्तु कुतारेकः कलाधिकः ॥११॥
 श्येनस्त्वैकान्तरे जातः कलामात्रान्तरे स्थितः ।
 तस्मिन् च स्वरे वृद्धिस्ति उक्ते तद्विलक्षणा ॥१२॥

प्रयोविशत्य शीतिस्तु तेषामेतद्विपर्यय ।

पञ्चपक्षोऽपि तत्त्वादी मध्यो हीनस्वरो भवेत् ॥२८॥

अलङ्कार का प्रयोजन चार प्रकार का जानना चाहिए जोकि सत्यान-
प्रमाण-धिकार और सक्षरण होना है ॥२२॥ जिस प्रकार से अपने शरीर का
अलङ्कार विषयस्त अर्थात् उस्ता-फुटा हुआ अत्यन्त महित अर्थात् बुरा हो
जाता है । घातम सम्भव होने से बलों को भी अलङ्कृत करने में विषम हो जाता
है ॥२३॥ अनेक प्रकार के आभरणों के योग से जिस तरह नारी का विभूषण
हुमा करता है वही प्रकार से बल का भी अलङ्कार होता है और यह भी यदि
विषयस्त होता है तो अत्यन्त महित हो जाता है ॥२४॥ जिस तरह चरण में
कुण्डल कभी नहीं पहिने हुए देखे गये हैं और कभी रुख में रतना अर्थात्
नारवनी (कौबनी) नहीं पहिनी जाया करती है । इसी तरह से विपरीत स्थिति
में रहने वाला अलङ्कार अत्यन्त बुरा हुमा करता है ॥२५॥ किया हुआ भी
अलङ्कार जो राग को बिना देखे यथोचित मात्र वाले कलात्म्य के लिए जिसका
विषय किया जाता है ॥२६॥ लक्षण-पञ्चस्था और बह्मिकाओं द्वारा प्रवर्तन
मात्रोद्भूत और मुक्षोद्भूत ठीक-ठीक रूप से बतलाता है ॥२७॥ उनका यह
विपर्यय तैईत और अस्ती होता है । तत्त्व के आदि में पञ्च पक्ष भी मध्य और
हीन स्वर वाला हो जाता है ॥२८॥

पञ्चममध्यमयोश्चैव ग्रामयो पय्ययस्तथा ।

मानोयोत्तरमद्रस्य पडेवानाविकस्य च ॥२९॥

स्वरालप्रत्ययश्चैव सन्वेषा प्रत्यय स्मृत ।

अनुगम्य बहिर्गीत विज्ञात पञ्चदशतम् ॥३०॥

गोरुपाणां पुरस्तात्तु मध्यमाशस्तु पर्यय ।

तयोविभागो भीताना सावध्यमाप्तस्थित ॥३१॥

अनुपङ्ग मयोद्दिष्ट स्वसारञ्च स्वरान्तम् ।

पय्यय सप्रवर्त्तत समस्वरपञ्चकम् ॥ २

गान्धारानन गीय ते चत्वारि मन्द्रकाणि च ।

पञ्चमो मध्यमश्चैव धैवते तु निपादजं ।

पडजपमैश्च जानीमो मन्द्रकेष्वेव नान्तरे ॥३३॥

द्वे चापरान्तिके विद्याद्वयशुलाष्टकस्य तु ।

प्राकृते वैणवंश्चैव गान्धाराशे प्रयुज्यते ॥३४॥

पदस्य तु त्रय रूप सप्तरूपन्तु कौशिकम् ।

गान्धाराशेन कात्स्न्येन पर्ययस्य विधिः स्मृतः ।

एवञ्चैव क्रमोद्दिष्टो मध्यमाशस्य मध्यम ॥३५॥

पञ्च और मध्यम नामों का पर्यय मानोयोत्तर मन्द्र का और धावा-
विक का ही होता है ॥३३॥ स्वराद्य प्रत्यय सबका प्रत्यय कहा गया है ।
बहिर्गीत का अनुगमन करके पाँच देवता जाने गये हैं ॥३०॥ गोरूपों के पहिले
मध्यमाश पर्यय होता है । उन दोनों का विभाग गीतों के जावरण मार्ग में
संस्थित होता है ॥३१॥ मैंने स्वरांतर स्वतार और अनुगमन को उद्दिष्ट किया
है । पर्यय सप्तस्वर पञ्चक्रम को संप्रवर्तित होता है ॥३२॥ चार मन्द्रक गान्धा-
राश से गाने जाते हैं । पञ्चम और मध्यम ही धैवत निपादज-पञ्च और
पडपमों से मन्द्रको ही में जानते हैं, अगर में नहीं ॥३३॥ और दो अपरान्तिक
जानने चाहिए । हम शुलाष्टक का प्राकृत में वैखणों से ही गान्धाराश में प्रयोग
किया जाता है ॥३४॥ पद के तीन रूप हैं और कौशिक सात रूप वाला होता
है । पूर्ण गान्धाराश से पर्यय की विधि कही गई है । इसी प्रकार से क्रमोद्दिष्ट
और मध्यमाश का मध्यम होता है ॥३५॥

यानि गीतानि प्रोक्तानि रूपेण तु विशेषतः ।

तत्तु सप्तस्वर कार्य सप्तरूपन्तु कौशिकम् ॥३६॥

अङ्गदर्शनमित्याहुर्मनि द्वे समके तथा ।

द्वितीयभावाचरणा मात्रा नाभिप्रतिष्ठिता ॥३७॥

उत्तरे च प्रकृत्येव मात्रा तत्त्वोच्यते तथा ।

हन्तार पिण्डको यत्र मात्राया नातिवर्त्तते ॥३८॥

पादेनैकेन मात्राया पादोनामति धीरणा ।

सख्यायाश्चोपहनन तत्र यानमिति स्मृतम् ॥३९॥

द्वितीय पादमङ्गलं ग्रहेणामिप्रतिष्ठितम् ।

पूर्वमष्टतृतीये तु द्वितीय चापरीतके ॥४०॥

मर्द्धेन पादसाम्यस्य पादभागान् पञ्चके ।

पादभाग सपाद तु प्रकृत्यामपि संस्थितम् ॥४१॥

चतुष्पमुत्तरे च मद्रवत्या च मद्रके ।

मद्रके दक्षिणस्यापि यथोक्ता वस्तते कला ॥४२॥

जो गीत विशेषता से रूप से कहे गये हैं वह तो सप्त स्वर करना चाहिए

और कौशिक सप्त रूप करना चाहिये ॥३६॥ सप्त दो मान मङ्गलमान यह कहते

हैं । द्वितीयभावावरण भाग अमिप्रतिष्ठित नहीं है ॥३७॥ और उत्तर में प्रकृति

से ही इस तरह माना लक्ष्मीन होती है वहाँ पर हस्तार सिद्धक माता में प्रति

वृत्तन नहीं करता है ॥३८॥ एक पाद से माया म पादोनर मतिवीर्या है और

सक्या का उपहनन होता है वहाँ पर मानम्—यह कहा गया है ॥३९॥ द्वितीय

पादमङ्गल है जो ग्रह से प्रति प्रतिष्ठित होता है । मद्र तृतीय में तो पूर्व है और

अपरीतक म द्वितीय है ॥४०॥ मर्द्ध से पाद साम्य का और एक मद्रके में पाद

भाग से पाद भाग सपाद तो प्रकृति में भी संस्थित होता है ॥४१॥ उत्तर में

चतुर्थ और मद्रवती में मद्रक और मद्रक में दक्षिण की भी यथोक्त कला होती

है ॥४२॥

पूर्वमेवानुयोगस्तु द्वितीया बुद्धिरिष्यते ।

पादो आह्वरण चास्मत् पार मान विधीयते ॥४३॥

एकत्वमुपयोगस्य द्वयोयद्वि द्विजोत्तम ।

अनेकसमवायस्तु पताकाह्वरिण स्मृतम् ॥४४॥

तिसृणां च वृत्तीनां वृत्तौ वृत्ता च दक्षिणा

मष्टौ तु समजावास्ते सौवीरा मूञ्चना तथा ।

कुशत्पनुत्तर सप्त सप्त सप्तस्वर तु य ॥

पूर्व ही अनुयोग का है द्वितीया बुद्धि इच्छित

आह्वरण वहाँ पर अस्मद् पार पार का विधान नहीं है ।

सप्त । उपयोग का एकत्व और जो दोष है तथा ॥

पताका हरिण कहा गया है ॥४४॥ और तीन वृत्तियों का और वृत्ति में दक्षिणा वृत्ता के घाठ समबाध है और सौवोरा मूर्च्छना होती है । कुक्ष्यनुत्तर जो सत्य सात सत्त्वस्वर होता है ॥४५॥

अकरण ५१—वैवस्वत मनु वंश वर्णन

ककुप्तिनस्तु त लोक रैवतस्य गतस्य ह ।
 हुताः पुण्यजनैः सर्वा राक्षसैः सा कुशस्थली ॥१॥
 सङ्घे भ्रातृशत तस्य धार्मिकस्य महात्मन ।
 निबध्यमाना रक्षोभिर्दिशः सप्राद्रवन् भयात् ॥२॥
 तेषान्नु ते भयाक्रान्ता क्षत्रियास्तत्र तत्र हि ।
 अन्ववायस्तु सुमहान् महास्तत्र द्विजोत्तमा ॥३॥
 प्रयता इति विख्याता विश्वे सर्वसिु धार्मिकाः ।
 घृष्टस्य घाष्टंक क्षत्र रणघृष्ट वभूव ह ॥४॥
 त्रिसाहस्रान्तु सगण क्षत्रियाणां महात्मनाम् ।
 नभगस्य च दायादो नाभागो नाम वीर्यवान् ॥५॥
 अम्बरीषस्तु नाभार्गविरूपस्तस्य चारमज ।
 पूषदश्वो विरूपस्य तस्य पुत्रो रथीतर ॥६॥
 एते क्षत्रप्रसूता वै पुनश्चाङ्गिरस स्मृता ।
 रथीतराणां प्रवरा क्षात्रोपेता द्विजातयः ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—ककुप्ती के उस लोक की रैवत के चले जाने से उसकी जो कुशस्थली थी वह सब पुरुषजनो राक्षसों के द्वारा हत होगई ॥१॥ उसके जो सौ भाई थे जोकि बड़ा धर्म के मानने वाला और महान् भ्राता वाला या राक्षसों के द्वारा निबध्य मान होते । भय से दिशाओं में भाग गये थे ॥२॥ द्विजों में उत्तम । उनके गय से आक्रान्त वे क्षत्रिय बड़ी-बड़ी होगये और वह सुमहान् अन्ववाय महान् हो गया ॥३॥ सप्तस्य दिशाओं में धार्मिक लोग प्रयता दश नाम से विख्यात हुए । घृष्टका रणघृष्टि में उठने वाला घाष्टंक

क्षत्रिय हुआ था ॥४॥ महान् आत्मा जाने क्षत्रियो का संगण तीन हजार था ।
नभग के दाय का हकदार बड़ा पराक्रमी नामाब नाम वाला हुआ ॥५॥
नामामि अम्बरोप हुआ और उसका पुत्र विरूप हुआ । विरूप का पुत्र वृषदत्त
और उसका पुत्र रथीतर नाम वाला हुआ था ॥६॥ ये सब क्षत्रियो की सत्ति
प्राङ्गिरस कही गयी है । रथीतरो ने जो प्रवर के और ज्ञान धर्म से समन्वित
वे वे द्विजाति थे ॥७॥

क्षवत्स्तु मनो पूर्वमिक्ष्वाकुरभिनि सृत ।
तस्य पुत्रशत त्वासीदिक्ष्वाकोबू रिदक्षिणम् ॥८॥
तेषां ज्येष्ठो विकुक्षिः नेमिदण्डश्च ते त्रय ।
शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्रा पचाशत्स्तु वै ॥९॥
उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महीक्षित ।
पत्न्या रिशत्तवाष्टौ च दक्षिणस्याश्च ते दिक्षि ॥१०॥
विशतिप्रमुखास्ते तु दक्षिणापथरक्षिण ।
इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षि व अष्टकायामथादिशेत् ॥११॥
मासमानय आढ्येय मृगान् हत्वा महाबल ।
धातमश्च नु कर्तव्यमष्टकाया न सस्य ॥१२॥
स गतस्तु मृगव्या व वधनात्तस्य भीमत ।
मृगान् सहस्रशो हत्वा परिधातश्च बीयवान् ।
भक्षयन्वधकन्तन विकुक्षिमृ गयाङ्कुत ॥१३॥
प्रागते स विकुक्षो तु समासे सहस्रनिके ।
वसिष्ठञ्चोदयामास मास प्रोक्षयतामिति ॥१४॥

मनु के पुत्र क्षुब से इक्ष्वाकु अभिनि मृत हुए । उस इक्ष्वाकु के सौ पुत्र
थे जोकि भूरि दक्षिणा वाले थे ॥८॥ उन एक छत पुत्रो में जो सबसे बड़ा पुत्र
था उसका नाम विकुक्षि था और नेमिदण्ड यो वे तीन थे । उसके शकुनि
जिनम प्रधान था ऐसी रीति से पचासी पुत्र हुए थे ॥९॥ वे सब नृप उत्तरा
पथ के रक्षा करने वाले थे । उनमें आसीस और आठ दक्षिण दिशा में गये
थ ॥१०॥ जिनम विशति सबम प्रमुख व ऐसे थे दक्षिणा पथ के रक्षा

वाले हुए थे । इक्ष्वाकु ने विकुक्षि को अष्टका में आदेय दिया था ॥११॥ राजा बोले—हे महान् यत्न वाले ! जगन् में जाकर श्राद्ध करने के योग्य गायत्री लाना चाहिए । आज अष्टका में श्राद्ध करना चाहिए । इसमें कुछ भी तथ्य नहीं है ॥१२॥ वह बुद्धिमान् इस वाक्य को ग्रहण कर वन में जा पहुँचा । वह परम वीर्यवान् शिकार करते-करते परिव्रान्त हो गया था । भृगया करने गये हुए विकुक्षि ने वहाँ पर कुछ आहार कर लिया था ॥१३॥ सैनिकों के सहित विकुक्षि के भ्राते पर राजा ने वसिष्ठ जी को प्रेरित किया कि वे सामग्री का प्रोक्षण करें ॥१४॥

तयेति चोदितो राजा विविक्तसमुपस्थित ।
 स दृष्टोपहत मास क्रुद्धो राजानमब्रवीत् ॥१५॥
 शूद्रेणोपहत मास पुत्रेण तव पार्थिव ।
 शशभक्ष्यादभोज्य वै तव मास महाशते ॥१६॥
 शशो दुरात्मना पूर्वमरण्ये भक्षितोऽनघ ।
 तेन मासमिदं दुष्ट पितृणां नृपसप्तम ॥१७॥
 इक्ष्वाकुस्तु ततः क्रुद्धो विकुक्षिमिदमब्रवीत् ।
 पितृकर्मणि निदिष्टो भया त्वं भृगयाङ्गत ।
 शशभक्षयसेऽरण्ये निर्धृणु पूर्वमद्य नु ॥१८॥
 तस्मात्परित्यजामि त्वा गच्छ त्वं त्वेन कर्मणा ।
 एवमिक्ष्वाकुना त्यक्तो वसिष्ठवचनात् सुत ॥१९॥
 इक्ष्वाकौ सस्थिते तस्मिन्सहस्री स पृथिवीमिमांस् ।
 प्राप्त परमधर्मात्मा स चायोध्याधिपोऽभवत् ॥२०॥
 तदाकरोत्स राज्यं वै वसिष्ठपरिनोदित ।
 सत स्तेनेन सा पूर्णा राज्यावस्था महीपते ॥२१॥

राजा के द्वारा उस प्रकार प्रेरित वसिष्ठ मुनि विविधपूर्वक उपस्थित हुए । सामग्री को देखकर क्रुपित होते हुए राजा से कहा—॥११॥ हे पार्थिव ! हे महान् बुद्धि वाले ! आपके पुत्र शूद्र ने सामग्री को उपहत कर दिया है । उनमें भक्षण कर लेने से यह सामग्री भोजन करने के योग्य नहीं है ॥१६॥ हे अनघ !

हे नृपो मे भद्र । इस दुःसामाने पहिले ही जगत्त मे आहार कर लिया है । इससे यह समस्त सामग्री दूषित होगयी है और पितरो के योग नहीं रही है ॥१७॥ तब तो इक्ष्वाकु बहुत ही बड़ दुःखी और त्रिभुक्ति से बीना—मैं तुझे त्रि-कर्म मे निर्दिष्ट किया था और तभी तू शिकार करने यहाँ से गया था । निश्चय तूने आज पहिले ही जगत्त मे आहार कर लिया है ॥१८॥ इस कारण से मैं आज तेरा त्याग करता हूँ और त्याग तेरे ही अपने कर्म से किया था रहा है । इस प्रकार से यह पुन बसिष्ठ के वचन से इक्ष्वाकु के द्वारा त्याग दिया गया था ॥१९॥ इस इक्ष्वाकु के सन्निध्य होने पर उस क्षत्री ने इस पृथ्वी को प्राप्त किया और परम भवतिमा वह भवोन्मा का स्वामी हुआ था ॥२०॥ बसिष्ठ के द्वारा परिश्रेष्ठ हुए उसने उस समय राज्य किया था । इसके अनन्तर राजा की वह राज्यावस्था स्तेन से पूर्ण हुई ॥२१॥

कालेन गतवास्तव स च न्यूनतराङ्गसिम् ।
 ज्ञात्ववनेतच्छास्यान ना विविभक्तयेसु च ॥२२॥
 मांस भक्षयित्वाभुज यस्य मांसमिहान्म्यहम् ।
 एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनोयिषु ॥२३॥
 शशावस्य तु वायाव ककुत्स्थो नाम वीर्यवान् ।
 इन्द्रस्य वृषभूतस्य ककुत्स्थो जायते पुरा ॥२४॥
 पूज्यमाहीनके युद्ध ककुत्स्थस्तेन स स्मृतः ।
 घनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुरोमा अस स्मृतः ॥२५॥
 वृषदश्वः पृथो पुत्रस्तस्माद्घस्तु वीर्यवान् ।
 आघस्तु यवनाश्चस्तु श्रावस्तस्तस्य चात्मजः ॥२६॥
 जज्ञ श्रावस्तको राजा श्रावस्तो येन निर्मिताः ।
 श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महायशः ॥२७॥
 बृहदश्वसुतश्चापि कुनसाश्च इति श्रुतिः ।
 य स भुधुवघाद्राजा भुधुमारत्वमागतः ॥२८॥

काल के व्यतीत होने से वहाँ पर वह 'न्यूनतर' बलि को प्राप्त हुआ । इस प्रकार से इस शासक को जलकर बिना विधि के अक्षय नहीं करना चाहिये

॥२२॥ परलोक में भाँस आदि के भक्षण करने वालों में जिसके मांस को मैं यहाँ भक्षण करता हूँ । वह इसमें भाँस को खाया इस भाँस का मांसत्व मनीषीगण कहा करते हैं ॥२३॥ असाव का दायाम् (पुत्र) वीर्यवान् ककुत्स्थ हुआ । पहिले वृषभूत इन्द्र का ककुत्स्थ उत्पन्न होठा है ॥२४॥ पहिले आदीवक युद्ध में उसके द्वारा वह ककुत्स्थ स्मरण किया गया था—अर्थात् कहा गया था । इसके द्वारा ककुत्स्थ के पृथुरोमा हुआ ॥२५॥ पृथु का पुत्र वृषदम्ब और उससे वीर्यवान् अन्ध्र हुआ । उसके आन्ध्र—यवनरूप और आवस्त ये पुत्र हुए ॥२६॥ आवस्तक राजा हुआ जिसने आवस्ती नाम वाली पुरी का निर्माण किया था । आवस्त का दायाम् महान् यश वाला वृहदश्व हुआ था ॥२७॥ वृहदश्व का पुत्र भी कुवलाश्व हुआ यह श्रुति है । जो वह राजा पुन्धु के यश से पुन्धु मारत्व को प्राप्त हो गया था ॥२८॥

धुन्धुवध महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् ।

यदर्थं कुवलाश्व स धुन्धुमारत्वमागत ॥२९॥

वृहदश्वस्य पुत्राणां सहस्राण्येकविंशति ।

सर्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदा ॥३०॥

बभूवुर्द्वामिका सर्वे यज्वानो भूरिवक्षिणा ।

कुवलाश्व महावीर्यं सूरमुत्तमधार्मिकम् ॥३१॥

वृहदश्वोऽभ्ययिष्वत्त तस्मिन् राष्ट्रे नराधिप ।

पुत्रसक्रामितश्रीस्तु वन राजा विवेश ह ॥३२॥

वृहदश्व महाराज सूरमुत्तमधार्मिकम् ।

प्रयात तमुत्तङ्गस्तु बह्वर्षि प्रत्यवारयत् ॥३३॥

भगतो रक्षणं कार्यं तत्तावत् कर्तुं भर्हति ।

निरुद्धिन्नस्तप कर्तुं न हि शक्नोमि पार्थिव ॥३४॥

ममाश्रमसमीपेषु समेषु मरुत्वान्सु ।

समुद्रो बालुकापूर्णस्तत्र तिष्ठति मूपते ॥३५॥

ऋषियो ने कहा—हे महान् पण्डित ! हम धुन्धु के यश से सुनना चाहते हैं और विस्तारपूर्वक बखान करने की इच्छा करते हैं जिसके लिये वह

कुबलाश्व पुष्पु मारुत को प्राप्त होयवा वा ॥२६॥ श्री कृतजी ने कहा—वृहदस्व के एक बीस सहस्र पुत्र थे । वे सब विद्याधो मे निष्णात बड़े ही बसवाले और दुरासह थे ॥३॥ सब बहुत दक्षिण वाले यन्त्रा परब धार्मिक हुए थे । वृहदस्व राजा ने महान् वीर वाले—शूरवीर—उत्तम धम के मानने वाले उस कुबलाश्व को उस राष्ट्र मे राजा अभिषिक्त किया वा । जब पुत्र ने समस्त राज्य भी प्राप्त करलीवा वा तब राजा ने वनमे प्रवेष्ट कर लिया वा ॥३१ ३२॥ उत्तम धार्मिक और शूर महाराज वृहदस्व को वन मे प्रयास करते वाले को ब्रह्मपि उत्तम ने उसको रोका वा ॥३३॥ उत्तम ने कहा—हे पार्थिव ! आपका रक्षा करना काय है आपको उसे करना चाहिये । मैं जह ग रहित होकर तप नहीं कर सकता हूँ ॥३४॥ हे भूपते ! मेरे आश्रय के समीप सब मन्त्रव्याधो मे बाधुका से परि पूरु समुद्र वहाँ पर स्थित रहता है ॥३५॥

देवतानामवभ्यस्तु महाकायो महाबल ।

अन्तर्भू नि गतस्तत्र बालुकान्तर्हितो महान् ॥३६॥

स मनीस्तनय ऋरो घुन्धुर्नाम सुदारुण ।

शत लोकविनाशाय तप आस्थाय वारुणम् ॥३७॥

सबरसरस्य पयन्ते स निश्वास प्रमुञ्चति ।

यदा तदा मही तत्र चलिता स्म सकानना ॥३८॥

तस्य निश्वासवातेन रज उद्भूयते महत् ।

आदित्यपथमावृत्य सप्ताह भूमिकम्पनम् ॥३९॥

सविस्फुलिङ्ग सज्जाल सधूममत्तिदारुणम् ।

तेन राजन्न श्वनोमि तस्मिन् स्वातु स्व आयमे ॥४०॥

त वारय महाबाहो लोकाना हितकाम्यया ।

तेजस्ते सुमहाविष्णुस्तेजसाप्याययिष्यति ॥४१॥

लोका स्वस्था भवन्त्वद्य तस्मिन् विनिहृतेऽपुरे ।

त्व हि तस्य वधायान्न समद्य पृथिवीपते ॥४२॥

वह महान् काया वाला और महान् बल वाला देवताओ का अवध्य है

अर्थात् देवो क द्वारा बध करने के योग्य नहीं है । वह भूमि के अतगत वहाँ

बालुकाभो से छिपा हुआ रहता है ॥३६॥ वह मनुका पुत्र है, पुत्रु उसका नाम है और वह बड़ा दास्य है । वह क्षतसोको के विनाश करने के लिये दास्य रूप में स्थित होकर रहता है ॥३७॥ वह सम्बन्धर पर्यन्त में निश्वास का मोचन किया करता है । जब वह अपना निश्वास छोड़ता है तब वह समस्त भूमि वनो के सहित बलायमान होजाया करती है ॥३८॥ उसके निश्वास की वायु से बहुत रज उठती है और सूर्य के मार्ग को आवृत करलेती है तथा सप्ताह तक भूमि का कम्पन हुआ करता है ॥३९॥ वह कम्पन भी सामान्य नहीं होता है उसमें स्फुल्लिङ्ग अर्थात् अग्निकण होते हैं ज्वाला युक्त, धूम से समन्वित और अत्यन्त भी दास्य होता है । हे राजन् ! इस कारण से उस अपने आश्रम में नहीं रह सकती है ॥४०॥ हे महान् बाहुभो वाले ! उसका निवारण करो और हमारे हितकी कामना से उसे हटाओ । आपका तेज महाविष्णु है आप तेजसे भी रोक देंगे ॥४१॥ उस असुर के मृत होजाने पर प्राण लोक स्वस्थ होवे । हे पृथिवी के पति ! आपही उसके वध करने में समर्थ होते हैं ॥४२॥

विष्णुना च वरो दत्तो मम पूर्व्वं ततोऽनघ ।
 न हि धुन्धुर्महावीर्य्यस्तेजसाल्पेन शक्यते ॥४३॥
 निर्द्गु पृथिवीपाल अपि वर्षशतैरिह ।
 वीर्य्यं हि सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासहम् ॥४४॥
 एवमुक्तस्तु राजर्षिरुत्तङ्गेन महात्मना ।
 क्रुबलाश्च सुत प्रादात्तस्मिन् धुन्धुनिवारणे ॥४५॥
 राजा सन्मस्तशस्त्रोऽहमयन्तु तनयो मम ।
 भविष्यति द्विज श्रेष्ठ धुन्धुमारो न शक्य ॥४६॥
 स त व्यादिश्य तनयं धुन्धुमारणमुद्यतम् ।
 जगाम पर्व्वतायैव तपसे ससितव्रत ॥४७॥
 क्रुबलाश्चस्तु धर्मात्मा पितुवचनमास्थित ।
 सहस्रं रेकविशत्या पुत्राणां सह पार्श्विव ।
 प्रापादुत्तङ्गं सहितो धुन्धोस्तस्य निवारणे ॥४८॥

तमाविगस्ततो विष्णुभगवान् स्वेन तेजसा ।

उत्तद्धस्य नियोगात्तु लोकानां हितकाम्यया ॥४१॥

हे धनप ! विष्णु ने मुझे पहिले बरवान दिया था महान् वीर्य वाला धुम्धु यस्य तेज वाले किसी के भी द्वारा मारा नहीं जा सकता है ॥४३॥ हे पृथिवी पाल ! तू क्यों मे भी नही निदग्ध नहीं किया जा सकता है । उसका पराक्रम बहुत ही अधिक है जिसको कि देवगण भी सहन नहीं कर सकते हैं ॥४४॥ महामा उत्तद्ध के द्वारा इस प्रकार से कहने पर उस राजर्षि ने उस धुम्धु के हटाने के काम के लिये अपने पुत्र कुन्जाम्ब को वे दिया था ॥४५॥ मैं धस्व स्थाप करने वाला होयया यह मेरा पुत्र राजा है । यह धुम्धु के मारने वाला होगा हे हिम श्रेष्ठ ! इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥४६॥ यह धुम्धु के मारने में उद्यत उस पुत्र को आज्ञा देकर स्वयं सशित व्रतवाला होते हुए तप करने के लिये पश्चिम पर चला गया था ॥४७॥ यमर्षिया कुन्जाम्ब पिता के वचनों में आस्थित होकर एक विंशति सौ हजार धुम्धु के साथ यह राजा उत्तद्ध के साथ धुम्धु के निराकरण करने के कार्य में दिया था ॥४८॥ इसके पश्चात् भगवान् विष्णु ने तेज के द्वारा उत्तद्ध के नियोग से लोगों के हित की कामना से उसमें प्रवेश किया था ॥४९॥

तस्मिन् प्रयाते कुट्टे दिवि शब्दो महानभूत् ।

अक्षप्रभृत्येप नृपो धुम्धुभारो भविष्यति ॥५०॥

दिव्यं पुष्पञ्च त देवा सममसत अदभुतम् ।

स गत्वा पुरुष व्याघ्रस्तनय सह बीम्यवान् ॥५१॥

समुद्रं खनयामास वानुकाणवमभ्ययम् ।

नारायणेन राजर्षिस्तेसाप्यायितो हि स ॥५२॥

बभूवातिबलो भूय उत्तद्धस्य वसे स्थित ।

तस्य पुत्रः सनद्भिश्च वासुकान्तर्हितस्तदा ॥५३॥

धुम्धुरासादितस्तत्र शिमायित्य पश्चिमाम् ।

मुग्धेनाग्निना क्रद्धो लोकानुद्धत मयिव ॥५४॥

वारि शुधान्न योगेन महोदधिरिवोदये ।

सोमस्य सोमपथेष्ठ धारोमिकलिलो महान् ॥५५॥

तस्य पुत्रास्तु निर्दग्धास्त्रिभिर्नास्तु राक्षसा ।

तत स राजातिबलो घुन्धुबन्धुनिबर्हण ॥५६॥

तस्य वारिमय वेगमपिबत् स नराधिप ।

योगी योगेन बर्हि वा शमयामास वारिणा ॥५७॥

निरस्यत्त महाकाय बलेनोदकराक्षसम् ।

उत्तङ्क् दृष्टयामास कृतकर्म्म नराधिप ॥५८॥

उस दुष्पर्य के प्रयाण करने पर दिव में एक महान् स्रब्ध हुआ कि आज से लेकर यह राजा घुन्धु मार इस नाम से प्रथित हो जायगा । यह आकाशवाणी हुई थी ॥५०॥ देवगण ने दिव्य पुष्पो के द्वारा अति अद्भुत उसका समर्पण किया था और वह पुष्प आध्र बोधे वाला पुष्प के साथ वहाँ गया था ॥५१॥ नारायण के तेज से आप्तामित उस राजपि ने वहाँ उस बालुकार्णव अथर्व समुद्र का स्नान किया था ॥५२॥ वह अत्यन्त बलवान् राजा उत्तङ्क् के वश में स्थित हुआ था । उस समय स्नान करने वाले उस गवा के पुत्रों ने बालुकार्णों में क्षिपा हुआ वह घुन्धु प्राप्त कर लिया था जोकि पश्चिम दिशा में आश्रम बना कर मुख से उत्पन्न अग्नि से मानो लोको का उद्धार करता हुआ था, बहुत ही क्रुद्ध हो रहा था ॥५३-५४॥ सोम के उदय में समुद्र की भाँति योग से जल छोड़ा, हे सोम पान करने वालों में श्रेष्ठ । महावृक्ष की उर्मियों से कलिल होगया था ॥५५॥ उसके पुत्र निर्दग्ध हो गये थे, राक्षस तीन से कम थे, इसके अनन्तर घुन्धु के बन्धुओं का निर्वहण करने वाल अति बलवान् नराधिप ने उसके जनमय वेग को भी लिया था । योगी ने योग के द्वारा अग्नि का जल से शमन कर दिया था ॥५६-५७॥ बल से उदक राक्षस महान् काम वाले उसको निरस्त कर दिया और नराधिप ने अपना कार्य समाप्त कर उत्तङ्क् को दिवला दिया था ॥५८॥

उत्त कश्च वर प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने ।

अदात्तस्वाक्षय वित्त शत्रुभिश्चाप्यधृष्यताम् ॥५९॥

धर्मे रतिञ्च सततं स्वर्गे वासं तथाक्षयम् ।

पुत्राणां चाक्षयात्लोकान् स्वर्गे ये राक्षसा हता ॥६०॥

तस्य पुत्राश्च यः क्षिप्त्वा हृद्भास्वो ज्येष्ठ उच्यते ।

भद्राश्व कपिलाश्वश्च कनीयासौ तु सौ स्मृतौ ॥६१॥

धौ धुमारिहृद्भास्वस्त हर्म्यस्वस्तस्य चात्मज ।

हर्माश्वस्य निकुम्भोऽमृत क्षत्रधमरत सदा ॥६२॥

सहताश्वो निकुम्भस्य धृतो रणविघ्नाश्वः ।

कुशाश्वश्चाक्षयाश्वश्च सहताश्व सुतायुधौ ॥६३॥

तस्य पत्नी हैमवती सता मतिहृषद्वती ।

विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रस्तस्या प्रसेनजित् ॥६४॥

युवनाश्व सुतस्तस्य त्रिषु लोकेष्वतिष्ठति ।

अत्यन्तधार्मिको गौरी तस्य पत्नी पतिव्रता ॥६५॥

अभिज्ञस्ता तु सा गर्गा नदी सा बाहुया कृता ।

तस्यास्तु गौरिक पुत्रश्चक्रवर्ती बभूव ह ॥६६॥

माध्याता यौवनाश्वो व भैसोक्यविजयी नृप ।

अत्राप्युवाहरत्नीमौ स्तोकी पौराणिका द्विजा ॥६७॥

यावत्सूय उदयति यावच्च प्रतिष्ठिति ।

सर्वं तद्यौवनाश्वस्य माध्यातु क्षेत्रमुच्यते ॥६८॥

उत्तकु ने उस महान् आत्मा वाले राजा को बरदान दिया था और उसे प्रलय वन तथा धनुषों के द्वारा अर्पित होने का भी बर दिया था । ॥६८॥ मुनि ने राजा को धर्म में प्रमत्त सदा स्वयं में निवास जोकि कभी क्षीण न हो पुत्रों को प्रलय लोक जोकि स्वर्ग में राखे दक्ष हूँ दिया था ॥६९॥ उसके तीन पुत्र गोप रहे उनमें हृद्भास्व कहा जाता है । भद्राश्व और कपिलाश्व दो छोटे बड़े गये हैं ॥६९॥ हृद्भास्व धौधुमारि का और उसका हर्म्यस्व हुआ था । हर्म्यस्व का क्षत्रधम में रति रखने वाला निकुम्भ पुत्र हुआ था । ६१ ६२॥ निकुम्भ का रण विघ्नाश्व परम पहिळत सहताश्व पुत्र हुआ था । सहताश्व के कुशाश्व और अक्षयाश्व ये दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥६३॥ सरयुधो की मति

दृपद्वती हैमवती ग्राम वाली उसकी पत्नी थी जो कि तीनों लोकों में परम विख्यात थी, उसका पुत्र प्रसेनजित् हुआ था ॥६४॥ उसका पुत्र तीनों लोकों में अत्यन्त श्रुतिवाला युवनाश्व हुआ था जोकि अत्यन्त धार्मिक था उसकी पति-
व्रता पत्नी गौरी थी ॥६५॥ वह उसके स्वामी के द्वारा अभिशस्त हुई और वह
बाहुदा नहीं कर दी गई थी । उसका पुत्र गौरिक अकवर्ची हुआ था ॥६६॥
मान्धाता यौवनाश्व यौवनाश्व के विनाश करने वाला राजा हुआ था । यहाँ पर
भी पौराणिक विज्ञ दो श्लोकों को कहा करते हैं ॥६७॥ जब तक सूर्य उदित होता
है और जब तक वह यहाँ प्रतिष्ठित रहता है, वह समस्त यौवनाश्व मान्धाता
का क्षेत्र कहा जाता है ॥६८॥

अथाप्युदाहरन्तीम श्लोक वशविदो जना ।
यौवनाश्व महात्मान यज्वानममितीजसम् ।
मान्धाता तु तनुविष्णोः पुराणज्ञा प्रवक्षते ॥६९॥
तस्य चैश्वर्यो भार्यार्थं शशविन्दो मृताऽभवत् ।
साध्वी बिन्दुमती नाम रूपेणाप्रतिभा भुवि ॥७०॥
पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतस्य सा ।
तस्यामुत्पादयामास मान्धाता त्रीन् सुतान् प्रभु ॥७१॥
पुरुकुत्समम्बरीष मुकुन्दश्च विश्रुतम् ।
अम्बरीषस्य दायारो युवनाश्वोऽपर स्मृत ॥७२॥
हरितो युवनाश्वस्य हारिता पूरय स्मृता ।
एते ह्यङ्गिरस पुत्रा क्षात्रोपेता द्विजाक्षय ॥७३॥
पुरुकुत्सस्य दायारोऽस्वसहस्युर्महायशा ।
तर्मदाया समुत्पन्न सम्भूतस्तस्य चात्मज ॥७४॥
सम्भूतस्यात्मज पुत्रो ह्यनरथ्य प्रतापवान् ।
रावणेन हतो येन त्रिलोकीविजये पुरा ॥७५॥

यहाँ पर वक्ष के वेत्ताजन इस श्लोक को उदाहृत करते हैं । महान्
आत्मा वाला-यज्वान-धर्मित श्रीजवान्ना यौवनाश्व को मान्धाता तो विष्णु का
तनु या पुराणों के ज्ञाता ऐसा कहते हैं ॥६९॥ उसकी चैश्वर्यो भार्या हुई थी

जोकि ससविन्दु की पुत्री थी । यह बहुत ही साध्वी थी और इसका नाम
 मिन्दुनाथी था तथा वह सत्यजन से रूप से यह अनुपम थी ॥७७॥ यह परम प्रति
 प्रत धर्म वाली थी और अपने एक अमृत माह्यो से सबसे ज्येष्ठ थी । उससे प्रभु
 मान्धाता ने तीन पुत्रों को उत्पन्न किया था ॥७८॥ उनके नाम पुण्ड्रकुल-अम्ब
 रीप और मुकुन्द प्रतिष्ठ थे । अम्बरीष का दामाद अपर युवनाश्व कहा गया
 है ॥७९॥ युवनाश्व का हारित था जोकि हारित धूरि कहे गये हैं । वे अगिरा
 के पुत्र आश्रम से युक्त एक शिष्य थे ॥८०॥ पुण्ड्रकुल का दामाद महान्
 यश वाला वसिष्ठ था । यशसे उसका पुत्र सम्भूत नाम वाला उत्पन्न हुआ
 था ॥८१॥ सम्भूत का पुत्र प्रताप से युक्त अमरहव हुआ जिसको कि पहले
 त्रिनोकी के मित्र करने से रावण ने मार दिया था ॥८२॥

सप्तदशवोऽजरभ्यस्व ह्ययवस्तस्य चात्मज ।

इयवत्त इयवत्त्वा जज्ञ वसुमती नृप ॥८३॥

तस्य पुत्रोऽभवद्वाजा विधवा नाम धार्म्मिक ।

भासीत् भीष्म-वनश्यापि विद्यास्त्रय्या रक्षप्रभु ॥८४॥

तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभू महान्त ।

तेन भार्या विदमस्य हुता हुता विवीक्य ॥८५॥

पाणिग्रहणमत्रेण निष्ठा सम्प्रापितेधिह ।

विष्णुपुत्रं सुतस्तस्य विष्णु वृद्धो यत स्मृत ।

एत ह्यङ्गिरस पुत्रा क्षात्रोपेता ममाधिता ॥८६॥

कामाक्षलाञ्ज मोहाञ्ज सरपरावलेन च ।

भाविनोऽयस्य च वत्सत् सत्कृत तेन धीपता ॥८७॥

समधर्मेण समुक्त पिता त्रयोमुखोऽभवत् ।

अपध्वसेति बहुशोऽवदत् कोपसमन्वित ॥८८॥

पितर सोऽवीक नव गच्छामीतिव मुहु ।

पिता चनमबोवाच दनपाक सह वसतः ॥८९॥

नाह पुत्रेण पुत्रार्थं स्वमासि कुसपासन ।

त्युक्त स निराकामन्नगराद्वनान्निगो ॥९०॥

अनरण्य का पुत्र त्रसदस्व हुआ और उसका पुत्र हर्यश्व हुआ था ।
 हर्यश्व से हृषदती से वसुमत नृप ने जन्म ग्रहण किया था ॥७६॥ उसका पुत्र
 परमवार्मिक त्रिघन्वा नाम वाला राजा हुआ । त्रिघन्वा का प्रयी मे विद्वान् रण
 प्रभु पुत्र था ॥७७॥ उसका सत्य व्रत नाम वाला महा बलवान् कुमार हुआ ।
 उसने देवों का हनन करके विदर्भ की भार्या का हरण किया था ॥७८॥ महीं
 पाणिग्रहण के मन्त्रों को निष्ठा सम्प्रापित होने पर उसका विष्णुवृद्ध पुत्र
 कहुलाया गया है । ये सब अङ्गिरा के पुत्र थे जो कि क्षात्रधर्म से युक्त समाधित
 हुए थे ॥७९॥ कामसे-बलसे-मोहसे और शङ्कर्यण बल के द्वारा तया होनेवाले
 धर्म के बलसे उस बुद्धिमान् ने वह सब किया था ॥८०॥ प्रयीगुण पिता ने
 अधर्म से शयुक्त उमको त्याग दिया था और क्रोध से युक्त होते हुए 'अपध्वस्त'-
 अर्थात् बलात्-प्रेमा बहुल बार कहा ॥८१॥ उमने पिता से कहा—मैं कहाँ
 जाऊँ । इसके पश्चात् पिताने इसी कंठा श्वपाको के साथ वरताव कर अर्थात्
 निवास करो ॥८२॥ हे कुलपासन ! मैं तुझ पुत्र से पुत्र का प्रवीं नहीं हूँ ।
 हे विभो ! इस प्रकार से कहागया वह नगर से वचन मानकर निकल गया ॥८३॥

न चैन धारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः ।

स तु सत्यव्रतो धीमान्छ्वपाकायसयान्तिकम् ।

पित्रा मुक्तोऽवसद्वीर पिता चास्य वन ययी ॥८४॥

तस्मिन्तु विषये तस्य नावर्पत् पाकशासन ।

समा द्वादश सपूजास्तिनाधर्म्येण वै तदा ॥८५॥

वारास्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपा ।

सत्यस्थ सामरा नूपे चचार विपुल तप ॥८६॥

तस्य पत्नी गले बद्धा मध्यम पुत्रमीरसम् ।

शिक्षया भरणार्थाय व्यक्रीणाद्योशतेन वै ॥८७॥

त तु बद्ध गले दृष्ट्वा विक्रीत त नरोत्तम ।

महर्षिपुत्र धम्मर्तिमा मोक्षयामास सुव्रत ॥८८॥

सत्यव्रतो महाबुद्धिर्भरण तस्य चाकरोत् ।

विन्दामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च ॥८९॥

मा नवद्गालवा नाम मत्त बद्धा महानया ।

महर्षि कीर्तिक्रान्तात्तन्मन वायेण भाक्षिन ॥६॥

भगवान् ब्रह्मिष्ठ ऋषि न इमका श्रवणम नह्य दिवा श्रीर धामान् बहु
मन्त्रज्ञ विना न द्वाग मुक्त किया था । श्रीर स्वपाका क घर क समीप म
रहल तथा श्रीर नृका निवा बन म धन्य मया था ॥८८॥ उमक उम दण म
हन् न वर्षा नहीं की थीर उम समय उम वषण स बारह वष पूर वर्षा नहीं
हुई ॥८९॥ महान् नवस्वी विन्वामिन न उमक नृ म क्षिजा की छाक कर
सागरानुप म बद्धा नागे उप किया था ॥९०॥ उमकी पत्नी न मध्यम श्रीर
सपुन का गल क बाँधकर छिन्ना स भरसुख क लिय सी भीरें बचविया था ।
मग म श्रष्ट मुरल न उमकी मन म बँधा हुआ श्रीर विस्त्रित दल कर उम महर्षि
पुत्र का पराईना न मुक्त कर दिया था ॥९१-९२॥ महान् बुद्धि वाल सत्य व्रतन
उसका भरण किया था श्रीर बहु विस्वामित्र न उन्मोव तवा अनुकम्पा क लिय
ही किया था ॥ ९३॥ बहु महा उपस्वी मन म बद्ध बाँधव नाम वाला हुआ था ।
महर्षि कीर्तिक उमक तल व कपाकि उमन पराक्रम स मुक्त करवा था ॥९४॥

तस्य व्रतन भक्त्या न कुपया न प्रतिज्ञया ।

विन्वामित्रकसनश्च वभार विनय स्थित ॥९५॥

हत्वा मृगान् वराहान् महिषान् वनचरान् ।

विद्वामित्राश्रमाभ्यां तन्मासमपचक्षत् ॥९६॥

उपाधुव्रतमास्थाय दाक्षा द्वादशवार्षिकीम् ।

पितृनियामादमजन्म तु वनमास्थित ॥९७॥

प्रयोध्यान् व राज्यान् तवचान्त पुर मुनि ।

याज्योपाध्यामस्यगाद्वसिष्ठ परिरक्षित ॥९८॥

सयद्रास्ते वास्यात् बाविनाऽथस्य व वसात् ।

वमिष्ठज्यमिनि मयु धारमाभास मयुना ॥९९॥

पित्रा हस्तग राष्ट्रात् परित्यक्त स्वमात्मजम् ।

न वार्यामास मुनिवसिष्ठ कारणेन व ॥१००॥

उमके व्रत से—यक्ति से—कृपा से और प्रतिज्ञा से विनय में स्थित होकर विश्वामित्र की स्त्री का भरण किया था ॥६१॥ मृगों को बराही को और वनमें विचरण करने वाले महिलाओं को मार कर विश्वामित्र के आश्रम के समीप में उनके मांस को पकाया था ॥६२॥ उपाशु व्रत में आस्थित होकर बारह वर्ष की दीक्षा को राजा के वनमें चले जाने पर पिता की आज्ञा से सेवन किया था ॥६३॥ अयोध्या को—गज्य से तथा जन्तु पुर को याज्योपाध्याय से योग से मुनि वसिष्ठ ने परिरक्षित किया था ॥६४॥ सत्यवत ने वास्याकाल से भावि प्रय के वल से वसिष्ठ पर असत्यविक्रम कोष धारण किया था ॥६५॥ पिता के द्वारा रोते हुए उस समय राजा से परित्यक्त अपने आत्मन को मुनि वसिष्ठ ने कारण वश धारण नहीं किया था ॥६६॥

पाणिग्रहणमन्त्राणा निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे ।
 एव सत्यव्रतस्तान् वै कृतवान् सप्तमे पदे ॥६७॥
 जानन् धर्मान् वसिष्ठस्तु न च मन्त्रानिहेच्छति ।
 इति सत्यव्रते रोप वसिष्ठो मनसाकरोत् ॥६८॥
 गुरुर्बुद्ध्या तु भगवान् वसिष्ठ कृतवास्तथा ।
 न तु सत्यव्रतो बुद्ध्या उपाशुव्रतमस्य वै ॥६९॥
 तस्मिन्मोपरते यो यत्पितुरासीन्महामना ।
 तेन द्वादशवर्षाणि नावर्षत् पाकक्षासन ॥१००॥
 तेन द्विदानी बहुधा दीक्षा ता दुर्वला मुनि ।
 कुलस्य निष्कृति स्वस्य कृतेयञ्च अवेदिति ॥१०१॥
 सतो वसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् ।
 अग्निपेक्ष्याम्यह राज्ञे पश्चादेनमिति प्रभुः ॥१०२॥
 स तु द्वादशवर्षाणि दीक्षान्तामुद्वहन् वली ।
 अविवक्षमाने मासे ॥ वसिष्ठस्य महात्मन ॥१०३॥
 सर्व्वकामदुघा घेनु सददशं नृपात्मज ।
 ता वै क्रोधाच्च मोहाच्च अमार्च्चं व क्षुधान्वितः ॥१०४॥
 पाणिग्रहण के मन्त्रों की निष्ठा सप्तम पद में होती है । इसी प्रकार से

सत्यवत ने सप्तम पद में उनको किया था ॥६७॥ बसिष्ठ मुनि शत्रु को जानते हुए वहीं पर मन्त्री को नहीं चाहते हैं । इसलिये बसिष्ठ ने सत्यवत पर मन से रोप किया था ॥६८॥ भगवान् बसिष्ठ ने उस समय बुद्धि से शुरू किया था । सत्यवत ने इसकी बुद्धि से ज्यादा धन नहीं किया था ॥६९॥ उसके उपरत होने पर जो उसके पिता का महामना था उससे इन्द्रेण धारुण्य तक नहीं बरसे थे ॥१॥ इससे इस समय प्रायः उस दुर्बल दीक्षा को भूमि पर कुलकी धीर अपनी निष्कृति यह भी ॥१॥ होनी चाहिए ॥१०१॥ इसके पश्चात् भगवान् बसिष्ठ ने पिता के द्वारा त्यक्त को निवारण किया था और शत्रु में पीछे में इसको राजासत्त पर प्रविष्टि कर पा-कहा—॥१॥ १॥ वही उसने द्वादश वर्ष तक बीजान्ता को उद्धृत करते हुए महात्मा बसिष्ठ के मास के अविद्यमान होने पर नृपात्मज ने समस्त कामग्रामों के रोहन करने वाली वस्तु को देखा था और उसको देखकर शोधते-शोधते धीरे धीरे अपने सुभा से मुक्त हुआ ॥१॥ ७॥

वस्तुधम्म वली दृष्ट्वा ज्ञानं बलिना वरः ।

स तु मास स्वयं चैव विषयमित्रस्तु चात्मजान् ॥१०५॥

भोजयामास तच्छ्रुत्वा बसिष्ठस्तदात्ययत् ।

प्रोवाच च भगवान् बसिष्ठस्तं नृपात्मजम् ॥१०६॥

पातयेत् ऋरहे ऋर तव शकुमयोमयम् ।

यदि ते त्रीणि शकूनि न स्युहि पुरुषाधम ॥१०७॥

पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोषधीवधेन च ।

अप्रोपितोपयोमाञ्च त्रिविधस्ते व्यतिष्ठन् ॥१०८॥

एव स त्रीणि शकूनि दृष्ट्वा तस्य महावपा ।

निशकुरिति होवाच निशकुरस्तेन स स्मृत ॥१०९॥

विषयमित्रस्तु दाराखामागतो भरलो कृते ।

ततस्तस्मै वरं प्रादात्तदा प्रीतस्त्रिषङ्कवे ॥११०॥

बलियो न भवत् न भवत् वस्तु के धर्म को प्राप्त हुए वेनु हनन किया

और उगने स्वयं माँ को निष्ठापित के मातृमयी को खिलाया था । यह धर्म करक बसिष्ठ ने उगे उगी समय त्याग दिया था और भगवान् उस नृप के

आत्मज से बोले ॥१०५-१०६॥ हे क्रूर ! हे पुरुषो मे अघम ! यदि तुझे तीन शकु नहीं हो तो तुझे शकुमय अय मे पावन करता ॥१०७॥ पिता के अपरितोष होने से—गुरु की योग्नी धेनु के वध करने से और अप्रोपित के उपयोग से तेरा तीन प्रकार का व्यतिक्रम है ॥१०८॥ इस प्रकार से उसके तीन शकुओं को देखकर महातपस्वी उसे निशकु इस नाम से बोले और इससे वह निशकु कहा गया है ॥१०९॥ आगे हुए विश्वामित्र ने दाराओ के भरण करने पर तब निशकु स प्रसन्न होते हुए उसे वरदान दिया था ॥११०॥

छन्धमानो वरेणाथ गुरु ब्रवे नृपात्मज ।

अनावृष्टिभये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके ॥१११

अभिषिष्य राज्ये पित्र्ये याजयामास त मुनि ।

मिपता दैवतानाञ्च वसिष्ठस्य च कौशिक ।

सशरीर तदा त वै दिवमारोपयत् प्रभु ॥११२

मिपतस्तु वसिष्ठस्य तदद्भुतमिवाभवत् ।

अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकी पौराणिका जना ॥११३

विश्वामित्रप्रसादेन निशकुर्दिवि राजते ।

देवै साद्ध महातेजानुग्रहात्तस्य धीमत ॥११४

शनैर्यात्यवला रम्या हेमन्ते चन्द्रमण्डिता ।

अलकृता त्रिभिर्भविस्त्रिशकुग्रहभूषिता ॥११५

तस्य सत्वरता नाम भार्या केरुववशजा ।

कुमार जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥११६

बारह वर्ष के अनावृष्टि के भय के चले जाने पर वर से छन्धमान होते हुए नृपात्मज गुरु से बोला ॥१११॥ पिता के राज्य पर अभिषेक करने कौशिक मुनि ने मिप होने वाले देवताओं के और वसिष्ठ के सिधे यज्ञ करवाया था । तब प्रभु विश्वामित्र ने उस निशकु को शरीर के सहित स्वर्ग में आरोपित कराया था ॥११२॥ मिप होते हुए वसिष्ठ को वह एक अद्भुत कार्य जैसा हुआ था । यहाँ पर भी पौराणिक पुरुष इन दो श्लोको को उदाहृत किया करते हैं ॥११३॥ विश्वामित्र मुनि के प्रसाद से निशकु स्वर्ग में घोषा देता है । परम

धीमान् उसके अनुग्रह से जोकि महान् तेज से युक्त है वह निष्कु देवी के साथ स्वयं में विराजमान होता है ॥११४॥ निष्कु ग्रह से सृष्टि तीन भागों से बल कुन चन्द्र से मण्डित रम्य चक्षुषा हेमन्त में जन जन जाती है ॥११५॥ उसकी सत्य में शत रहने वाली अर्धान् सत्वरता इव नाम वाली गर्वा जोकि केकय के बल में बनी थी उसने कस्मप से रहित हरिश्चन्द्र कुमार को जन्म दिया था ॥११६॥

स तु राजा हरिश्चन्द्रस्त्रीष्वश्रुत्वा इति श्रुत्वा ।

आहूता राजसूयस्य सप्ताहिति परिश्रुत्वा ॥११७॥

हरिचन्द्रस्य तु सुतो रोहितो नाम वीर्यवान् ।

हरितो रोहितस्याप्यचतुहारीत उच्यते ॥११८॥

विजयश्च सुवेवश्च चतुपुत्रो बभूवुः ।

जिता सम्बस्य क्षत्रस्य विजयस्तेन स स्मृत ॥११९॥

वचस्तनयस्तत्र राजा धर्माधिकोविद ।

वचकादभूतक पुत्रस्तस्माद्वाह्यश्च क्षत्रियवान् ॥१२०॥

हेह्यस्तालजङ्घश्च निरस्तो व्यसनी नृपः ।

छकार्यवनकाम्बोजं पारं पल्लवस्तथा ॥१२१॥

नात्मयः च ध्मिकोऽभूत् स धर्म्म्यं सत्ययुवे तथा ।

सगरस्तु सुतो बाहोजङ्ग सह शरेण वै ।

भृगोराश्रममासाद्य त्रुर्वणं परिरक्षितं ॥१२२॥

आग्नेयं मन्त्रं लब्ध्वा तु भागवात् सगरो नृपः ।

जघान पृथिवीं ह्रत्वा साक्षजघान् सहैहयान् ॥१२३॥

वह राजा हरिश्चन्द्र शैश्वर्यवान् इति नाम से प्रसिद्ध हुआ था । वह राजसूय का बाहरण करने वाला तथा सप्ताह परिश्रुत्वा हुआ था ॥११७॥ सम्राट् हरिश्चन्द्र का पुत्र वीर्यवान् रोहित नाम वाला था । रोहित का हरित थाकि चतुहारीत कहा जाता है ॥११८॥ चतु हारीत के विषय और सुवेव दो पुत्र हुए थे । समस्त क्षत्रियो से वह जीतने वाला था इसलिये वह विजय कहा गया है ॥११९॥ वही वच पुत्र हुआ जोकि धर्म और धर्म का परिरक्षक राजा था । वच से

हृतक पुन हुआ और उससे बाहु उत्पन्न हुआ ॥१२०॥ वह व्यसनी राजा हैहय—
तालजङ्ग—शक—यवन—काम्बोज—मारद श्री पल्लवों के द्वारा निरस्त किया गया
था ॥१२१॥ वह अत्यन्त धार्मिक उस धर्म मुक्त सन्त युग में नहीं हुआ था ।
बाहु का पुत्र सगर गरके माय उत्पन्न हुआ था । शृगु के शाश्वत में पदुष कर
तन के द्वारा परिरक्षित हुआ था ॥१२२॥ उस सावर नृप ने भार्गव से धानिप
भस्त्र को प्राप्त कर पृथ्वी पर जाकर उसने तालजङ्गों को हैहयों का हनन किया
था ॥१२३॥

शकाना पल्लवानाञ्च धर्म्मन्त्रिरसदच्युत ।
क्षत्रियाणा तथा सेपा पारदानाञ्च धर्म्मवित् ॥१२४॥
कथ स सगरो राजा गरेण सह जज्ञिवान् ।
किमर्थञ्च शकादीना क्षत्रियाणा महौजसाम् ।
धर्म्मान् कुलोचितान् क्रुद्धो राजा निरसदच्युत ॥१२५॥
बाहोर्भ्यसनिनस्तस्य हृत राज्य पुरा किल ।
हैहयैस्तालजघैश्च शकै साद्धं समागतं ॥१२६॥
यवना पारदाश्चैव काम्बोजा पल्लवास्तथा ।
हैह्यार्थं पराक्रान्ता एते पञ्चगणास्तदा ॥१२७॥
हृत राज्य बलीयोभिरेभिः क्षत्रियपुङ्गवै ।
हृतराज्यस्तदा बाहु सन्यस्य नु तदा नृप ।
वन प्रविश्य धर्म्मात्मा सह पत्न्या तपोञ्चरत् ॥१२८॥
कस्यचिस्त्वय कालस्य तीयार्थं प्रस्थितो नृप ।
वृद्धत्वाद् दुर्बलत्वान्च अन्तरा स ममार च ॥१२९॥
पत्नी तु घादवी तस्य सगर्भा पृष्टोऽन्वगात् ।
सपत्न्या तु गरस्तस्थं दत्तो गर्भं जिघासया ॥१३०॥

अच्युत ने अक्रो को तथा पल्लवों को धर्म्म से निरस्त कर दिया था ।
धर्म के ज्ञाता ने इसी प्रकार उन क्षत्रिय पारदों को भी कर दिया था ॥१२४॥
श्रुपियो ने कहा—वह सगर राजा भर के साथ किस तरह उत्पन्न हुआ था ?
और किसलिये शकादि क्षत्रिय जो महान् श्रौत वासे थे, अच्युत राजा ने क्रुद्ध

होकर कुलोचितो को धर्मों को निरस्त किया था ॥१२१॥ श्री सूतजी ने कहा—
 पहिले समय में व्यसन जाने बस बाहु राजा का सम्पूर्ण राज्य हरण कर लिया
 था और उसके हरण वाले खम्बों के साथ धाये हुए हैं और तालबद्ध थे ।
 ॥१२२॥ यवन-वारह-काम्बोज और पल्लव ये तीन मछ उसमें थोड़े अधिक
 बल बालों के द्वारा उसके राज्य का हरण किया गया था । जब उस समय वह
 राज्य हीन हो गया तो वह बाहु राजा खम्बात प्रहस्य करके बग्न भ प्रविष्ट हो गया
 और धर्माल्पा उसने अपनी पत्नी के साथ तपस्वियों की थी ॥१२३॥ किसी काम
 के बल से लिये राजा ने प्रस्थान किया था किन्तु वह कुछ होने के तथा पूर्वत
 होने के कारण से बीच में मर गया था ॥१२४॥ उसकी पत्नी मावली गम से
 युक्त थी वह भी उनके पीछे से गई थी । उसकी सपत्नी के घर के माथे की
 हस्ता से उसे मर के दिया था ॥१२५॥

सा तु भद्राश्रिता कृत्वा बह्वी त समरोहयत् ।
 प्रीवस्ता भार्गवो हृष्टः कारुण्यादिम्वत्तयत् ॥१२६॥
 तस्याधमे तु तङ्गम सा गरेषु तदा बह्व ।
 व्यकामत महाबाहु सगर नाम धामिकम् ॥१२७॥
 श्रीवस्तु जातर्मादीन् कृत्वा तस्य महात्मन ।
 प्रध्याप्य वेदछात्राणि तताञ्च प्रत्यपादयत् ॥१२८॥
 जामदग्न्यात्तदाग्नेयमभिरुचिं दुःसहम् ।
 ततः तनास्त्रबलेनैव बलेन च समन्वितः ।
 जघान हृष्टमान् कुटोऽस्त्रं पशुगणानिव ॥१२९॥
 ततः गङ्गां समवनान् काम्बोजान् पारदास्तथा ।
 पल्लवाञ्च न निष्पान् कतु व्यवसितो नृप ॥१३०॥
 तं मध्यमाना वारेण सगरेण महात्मना ।
 वसिष्ठ गच्छ सव्यं श्रपणा क्षरत्प्रियम् ॥१३१॥
 यमिष्ठमान् तवेत्युक्त्वा समयन महापुनि ।
 मगर वारदाभासं तथा दत्त्वाऽमयन्तदा ॥१३२॥
 तं वादो न क्षणं दगमो नो विहा क्त्वा चरन्ति मे उनके साथ

रामासुत होयपी नी । जीर्व भर्गव ने उसे देखकर कल्या से उसे निवारण किया था ॥१३१॥ उसके ध्यात्म मे उस समय उसने उन्म मर्थ को मर (विष) के साथ महान् बाहुओं वाले परम बार्मिक समर नाम वाले को जन्म दिया था ॥१३२॥ जीर्व ने उस महात्मा के जात कर्मादि सत्कारों को करके फिर वेद शास्त्रों को पढ़ाया और इसके अनन्तर ग्रन्थों की विद्या सिखाकर अस्त्र दिये ॥१३३॥ जामदग्न्य से वह आग्नेय अस्त्र प्राप्त किया जाकि असुरों को भी चु सङ्ग था । उसने उस ग्रन्थ के वल से ही तथा वल से समन्वित होती हुए अत्यन्त क्रुद्ध होकर जैसे रज्र वलुगलों को हनन करते हैं उसी भाँति उसने ऐह्यो का वध कर दिया ॥१३४॥ इसके धनन्तर खरों को—श्वनों को—काम्बोजों को—पारदों को तथा पल्लवों को सबको नि क्षेप करने का राजा ने स्थिर कर लिया था ॥१३५॥ और और महान् आत्मा वाले सगर के द्वारा बन्धमान वे सब शरणा भी दृग्ग्रा वाले होते हुए वसिष्ठ मुनि की शरणागति से उपरिभूत होमये थे ॥१३६॥ वसिष्ठ मुनि ने उनको 'सुहारी रक्षा मीमी' तथास्तु यह कहकर महामुनि ने प्रतिना की और उन भयको अभय दान देकर सबर को तब कन्ने से पारण कर दिया था ॥१३७॥

सगर स्वाम्भतिज्ञाश्च गुरोर्वस्य निशम्य च ।

धर्मं जपान तेपा वै वेपाम्भत्व चकार ह ॥१३८॥

अर्द्धं शकाना शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् ।

यवनाना शिर सर्व काम्बोजानान्तथेव ॥१३९॥

पादा मुक्तकेशाश्च पल्लवा शमयधारिणः ।

नि स्वाध्यायवपट्कारा कृतास्तेन महात्मना ॥१४०॥

दाका यवनकाम्बोजा पल्लवा पारदै सह ।

केलिस्पर्शा माहिपिका दावाश्रिता खसस्तथा ॥१४१॥

सर्वे ते क्षत्रियमणा धर्मस्तेपा निराकृत ।

वसिष्ठवचनात्पूर्वं समरेण महात्मना ॥१४२॥

स धर्मविजयी राजा विजित्येमा वसुन्धराय ।

अदव विचारयामास वाजिमेघाय दीक्षित ॥१४३॥

तस्य चारयत सोऽश्व समुद्र पूववक्षिणे ।

वेनासमीपेऽप्रवृत्तो भूमिञ्च व प्रवेशित ॥१४४

सगर ने अपनी प्रतिज्ञा को धीरे धीरे के वाक्य को व्यवहृत कर उनके घम का हनन किया और वेपामत्व किया था ॥१४२॥ एक जाति वालों का घामा शिर दुबका कर उन्हें छात्र किया—जबन जाति वालों का समस्त धिर मु श्राव किया और काम्बोजों को भी ऐसा ही किया था ॥१४३॥ पारशो को मुक्त केव और पञ्चशो को एकध्वजारी स्वाध्याय से हीन तथा अपठकार से रहित उस महात्मन ने कर दिया था ॥१४४॥ एक—जबन काम्बोज—पञ्चश पारश—केसिस्वर्ण माहिपिक—राम—बोम और उस से समस्त क्षत्रियों के जो गण थे इन सबका बलिष्ठ भूमि के जपन से महात्मा सगर ने बन्ध निराकृत कर दिया था ॥१४५॥ ॥१४६॥ उस जने से विषय प्राप्त करने वाले राजा सगरने इस समस्त भुनएवस को भीत कर नाबिमम यज्ञ के करने के लिये सीधिव होते हुए उसने यज्ञ के धरप को विचरख कराया था ॥१४७॥ उसका भुमाया जाने वाला वह प्रश्वनेष यज्ञ था जोका पूर्व वक्षिण समुद्र पर वेना के समीप में अवहरण किया गया था और उसे प्रपञ्च करके भूमि के अन्दर प्रवेशित कर दिया गया था ॥१४८॥

स तदीय सुत सर्वे सनयामास पार्थिव ।

भासेदुश्च ततस्तस्मिस्तदन्तस्ते मह्यशुखे ॥१४९

समादिपुरुष देव हरि कृष्ण प्रजापतिम् ।

विष्णु कपिलरूपेण हंस नारायण प्रभुम् ॥१५०

तस्य यज्ञ समावाप्त तेजस्तत् प्रतिपद्यते ।

दग्धा पुत्रास्तदा सर्वे अस्वारस्त्ववशेषिता ॥१५१

बहिर्नेतु सकेतुश्च तथा कर्मरतस्त्रय ।

धूर पञ्चवनश्च व तस्य वशकरा प्रभो ॥१५२

प्रादाञ्च तस्म अगवान् हरिर्नारायणो वरान् ।

अक्षय्य स्वयम्भस्य नाजिमेघजल तथा ।

जिभु पुन समुद्रञ्च स्वर्गे व स तथासयम् ॥१५३

स समुद्रोऽश्वमादायव वन्दे (?) सगितापति ।
सागरत्व च लेभे स कर्मणा तेन तस्य वै ॥१५०॥
॥ चाश्वमेधिक सोऽश्व समुद्रात् प्राप्य पार्थिव ।
भ्राजहाराश्वमेधाना शत चैव पुन पुन ॥१५१॥

सम्राट् सगर ने उसी स्थान को पुत्रों के द्वारा जो कि सख्या में साठ हजार थे खुदवाया था । इसके अनन्तर उस स्थान में उसके नीचे महार्णव में उन्होंने देखा कि वहाँ आदि पुरुष हरि-कृष्ण-प्रजापति-विष्णु-हंस-प्रभु नारायण कपिल मुनि के स्वरूप से स्थित हैं ॥१४५-१४६॥ उनके नेत्र के सामने प्राप्त होते ही उसका तेज ऐसा तीव्र था कि उसी समय वे सब जलकर वरुण एवं भस्मी भूत होगये थे केवल चारही अवशिष्ट बचे थे ॥१४७॥ जो चार बचगये थे वे बह्मिष्ठेय-सकेय-अमररत्न ये तीन थे और चार पञ्चवन था जो कि उसके वश के करने वाले थे ॥१४८॥ भगवान् हरि नारायण ने उसको वरदान दिया था कि अपने वश का अक्षयवत्-सौ-वाजिमेध-विभु पुत्र और समुद्र तथा स्वर्ग में असीम निवास हो ॥१४९॥ वह नदियों का पति समुद्र अक्षय को लेकर आया और वरुणा की । उस कर्म से उसने सागरत्व की प्राप्ति की थी ॥१५०॥ उस राजा ने समुद्र से उस आश्वमेधिक अश्व की प्राप्ति कर फिर बार-बार सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे ॥१५१॥

पष्टिपुत्रसहस्राणि दग्धान्यस्वानुसारिणाम् ।
तेषां नारायण तेज प्रविष्टानां महात्मनाम् ।
पुत्राणान्तु सहस्राणि पष्टिस्तु इति न श्रुतम् ॥१५२॥
सगरस्यात्मजा राज्ञ कथं जाता महावसा ।
विजान्ता पष्टिसाहस्रा विधिना केन वा वद ॥१५३॥
द्वे पत्न्यौ सगरस्यास्ता तपसा दग्धकिन्दिषे ।
ज्वेष्टा विदर्भदुहिता केसिनी नाम नामत ॥१५४॥
कनीयसी तु या तस्य पत्नी परमवर्णिणी ।
अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥१५५॥

शीवस्ताम्या वर प्रादात् नपसाराधित प्रभु ।
 एका जनिष्यते पुत्र वक्षकर्तारमीप्सितम् ।
 पष्टिपुत्र सहस्राणि द्वितीया जनयिष्यति ॥१५६॥
 मुनेस्तु वक्ष्यथ त्वं त्वा केसिनी पुत्रमेककम् ।
 वशस्य कारणां त्वं ह्य जज्ञाह नृपममदि ॥१५७॥
 पष्टिपुत्रसहस्राणि सुपराभगिनी तथा ।
 महात्मनस्तु जज्ञाह सुमति स्वमतिपथा ॥१५८॥

उस प्रसवमेव यज्ञ के यज्ञ के पीछे अनुसरण करने वाले उस राजा के
 साठ सहस्र पुत्र वन्द्य होनेसे और उन महात्माओं में नारायण के लेख ने प्रवेश
 किया था । वे पुत्र साठ हजार वे ऐसा हमने सुना है ॥१५२॥ ऋषियों ने कहा—
 राजा सगर के महत्त्व बलवाने परम विष्णु साठ सहस्र किस विधि से उत्पन्न
 हुए वे कृपा करके यह हम बतावाइये ॥१५३॥ श्री कृत्तवी ने कहा—राजा सगर
 की लक्ष्म्या से पापों को दण्ड करने वाली दो पत्नियाँ थी । उनमें जो ज्येष्ठ थी
 वह विद्वान् की पुत्री नाम से केसिनी थी ॥१५४॥ छोटी या उस राजा सगर
 की पत्नी थी वह बहुत ही अधिक वन वाली थी और अरिष्ट नेत्रि की पुत्री थी
 जो कि इस भूमि में अत्यन्त अप्रतिम रूप—वीर्य से युक्त थी ॥१५५॥ तब से
 आराधना किये हुए प्रभु श्रीव ने उन दोनों को बरदान दिया था कि उनमें से
 एक दो वक्ष के पलाने वाला शशीष्ठ पुत्र जनेगी और दूसरी साठ हजार पुत्रों को
 जनन देगी ॥१५६॥ केसिनी ने कुन्ति के वक्त्र को सुनकर जो कि एक पुत्र वक्ष
 पलाने वाला बताया था उसी बरदान को कुप ससब से उसने स्वीकार कर लिया
 था ॥१५७॥ मुम्ब की भगिनी ने जन्मी अञ्जली अपनी मति को उसके अनुसार
 महारामा के साठ सहस्र पुत्रों वाले बरदान को ग्रहण किया था ॥१५८॥

अथ काले गते ज्येष्ठा ज्येष्ठ पुत्र ध्वजवायत ।

असमञ्ज इति क्वात् काकुत्स्थ सगरात्मजम् ॥१५९॥

सुमतिस्त्वपि जज्ञ व गनन्मुम्ब यत्स्विनी ।

पष्टिपुत्रसहस्राणि तुम्बमध्याह्निनि मृता ॥१६०॥

वृत्तपूर्वेषु कुम्भेषु तान् मर्भान् न्यव्यतत ।
 धात्रीश्चैकैश्च प्रादात् तावती पोषणं नृप ॥१६१॥
 तनो नवमु मासेषु समुत्तम्युर्यवासुगम् ।
 कुमारान्ते महाभागा समरप्रीतिवर्द्धना ॥१६२॥
 कालेन महता चैव यौवनं प्रतिपेदिरे ।
 पुत्रपट्टिगह्वराणि तेषामद्वानुभारिणाम् ॥१६३॥
 स तु ज्येष्ठो नरव्याघ्रं सगरस्यात्मसम्भयः ।
 असमञ्ज इति कथातो वह्निकेनुर्महाबल ॥१६४॥
 पौराणामहिंसे युक्तं पित्रा निर्वासितं पुरा ।
 तस्य पुत्रोऽशुमानाम् असमञ्जस्य वीर्यवान् ॥१६५॥

इसके अनन्तर सभय माने पर जो वजी रानी वी उसने ज्येष्ठ पुत्र को
 उत्पन्न किया और वह सगर का पुत्र काकुत्स्थ असमञ्जस इस नाम से प्रसिद्ध
 हुआ था ॥१५६॥ यद्यस्मिन्नी सुमति ने भी यह था एक तुमा पैदा किया जिस
 तुम्हें से राठ हजार पुत्र निकल पड़े थे ॥१६०॥ वृत्त से भरे हुए कलशों में उन
 गर्भों को रण दिया गया था । राजा ने गरु-एक राय उन सब के पोषण करने
 के लिये देदी वी ॥१६१॥ इसके बाद नीमास के मर्भान् होने पर सगर की प्रीति
 के उठाने घाते महाभाग से मुक्त गुप्त पूवक के समस्त कुमार उठ कड़े हुए थे
 ॥१६२॥ महाम् फाट के व्यतीत होजाने पर वे सब पोचनावस्था को प्राप्त हुए
 थे । उग अश्वमेध के अद्वय का अनुसरण करने वाले थे ही साठ सहस्र सगर के
 पुत्र थे ॥१६३॥ जो सब वे बड़ा सगर का नर व्याघ्र पुत्र था वह 'असमञ्जस'-
 इस नाम से गवान हुआ था । वहिनेषु महान् बलवान् था ॥१६४॥ वह क्योंकि
 नगर तिरागी जनो का महिंसे किया करता था । उसलिये पिता ने उसको
 निकाल दिया अर्थात् देश निकास दे दिया था । उस असमञ्जस का महा परा-
 क्रमी अशुमान् नाम वाला पुत्र हुआ था ॥१६५॥

तस्य पुत्रस्तु चर्मणिमा दिलीप इति विश्रुतः ।
 दिलीपात्तु महातेजा वीरो जातो मगोरथ ॥१६६॥

येन गङ्गा सरिच्छ्र ह्य विमानरूपशोभिता ।
 ईजाग्नेन समुद्राद् दुहितृत्वेन कल्पिता ।
 अत्राप्युदाहरन्तीम इलोक पौराणिका जना ॥१६७॥
 भगीरथस्तु ता गङ्गामानयामास कमणि ।
 तस्माद्भगीरथी गङ्गा कथ्यते वञ्चनितम् ॥१६८॥
 भगीरथमुतत्रापि श्रुतो नाम बभूव ह ।
 नाभागस्तस्य दायारो नित्यं धमपरायण ॥१६९॥
 अम्बरीष सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत् ।
 एव वशपुराणज्ञा नायन्तीति परिधुसम् ॥१७०॥
 नाभागेरम्बरीपस्य भुजाभ्यां परिपानिता ।
 बभूव वसुधात्ययं तापत्रयविवर्जिता ॥१७१॥
 भयुतायु सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्य वीरवान् ।
 भयुतापोस्तु दायारोऽनुपणो महामथा ॥१७२॥

उस अधुनाम् का का पुन राजा दिलीप हुआ जोकि अत्यन्त प्रसिद्ध और
 परम धर्मात्मा हुआ था । दिलीप से अश्वत्थ के बारण करने वाला राजा
 भगीरथ उत्पन्न हुआ ॥१६६॥ जिसने समस्त नवियों में परममहद् गङ्गा को जो
 कि विमानों से उपशोभित इसने समुद्र से दुहिता के स्वरूप में कल्पित की थी ।
 यहाँ पर भी पौराणिक लोग इस स्लोक को उदाहृत किया करते हैं ॥१६७॥
 भगीरथ कर्मों के द्वारा उस गङ्गा को यहाँ आया था । इसीलिये उसके वश के
 आतापी के द्वारा गङ्गा भगीरथी इस नाम से कही जाती है ॥१६८॥ भगीरथ
 का पुत्र सुत नाम वाला हुआ था और उसका दायार नित्य ही धर्म के परामर्श
 नाभाग—इस नाम वाला हुआ था ॥१६९॥ उसका पुत्र राजा अम्बरीष हुआ
 उसका पुन सिन्धुद्वीप हुआ था । इस तरह वश के पुण्य को जानने वाले मान
 करते हैं—यह मुना है नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुआ जिसने भुजाओं से यह
 वसुधा तीनों तापों में रहित होती हुई परिपानित हुई थी ॥१७०॥ उस सिन्धु
 द्वीप का पुन भयुतायु वडा वीरवान् हुआ था और भयुतायु का दायार महार्
 यध वाला अनुपण हुआ था ॥१७१॥

दिव्याक्षहृदजोऽसी राजा ननसम्बो वगी ।
 नली द्वावति त्रिस्थातो पुराणेषु दृढव्रतो ॥१७३॥
 वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेत्वाकु कुलोद्बह ।
 ऋतुपर्णस्य पुत्रोऽभूत् सर्व्वकामो जनेश्वर ॥१७४॥
 सुदासस्तस्य तनयो राजा हसमुखोऽभवत् ।
 सुदामस्य सुत प्रोक्त सोदासो नाम पार्थिव ॥१७५॥
 तथात कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहश्च स ।
 वमिष्ठस्तु महातेजा क्षेत्रे कल्माषपादके ।
 अश्वमेधं जनयामास इक्ष्वाकु कुलवृद्धये ॥१७६॥
 अश्वमेधस्योरकामस्तु मूलकस्तस्मिन्तोऽभवत् ।
 अत्राप्युदाहरन्तीम मूलकं चैव नृप प्रति ॥१७७॥
 स हि रामभयाद्वाजा स्त्रीभिः परिवृतोऽवसत् ।
 विवस्त्रस्त्राणामिच्छन् वै नारीकवचमीश्वर ॥१७८॥
 मूलकस्यापि धर्मात्मा राजा क्षतरथ स्मृत ।
 तस्माच्छतरथाज्जज्ञे राजा चैडविडो बली ॥१७९॥
 आसीत्सर्व्वेष्टिविडः श्रीमान् कृतशर्मा प्रतापवान् ।
 पुत्रो विश्वमहत्तस्य पुत्रीकस्य व्यजायत ॥१८०॥
 यह राजा दिव्याक्ष हृदजं श्रीर ननसम्बो वा । पुराणो मे दृढं व्रतं बाले

वै नल विषयात् है ॥१७३॥ वीरसेन का आत्मज जोकि इक्ष्वाकु कुल का उद्बहन करने वाला था ऐसा सर्व्व काम जनेश्वर ऋतुपर्ण का पुत्र हुआ था ॥१७४॥ उसका पुत्र सुदास हसमुख राजा हुआ था । सुदास का पुत्र सोदास नाम वाला राजा था ॥१७५॥ वह नाम से मित्रसह कल्माषपाद तथा हुआ था । इक्ष्वाकु के कुल की वृद्धि के लिए महान् तेज वाले वसिष्ठ ने कल्माषपादक क्षेत्र में अश्वमेध का जनन कराया था ॥१७६॥ अश्वमेध का उत्तरकाय श्रीर उसका पुत्र मूलक हुआ । मूलक नृप के प्रति यहाँ वह उदाहृत करते हैं ॥१७७॥ वह राजा राम के भय से स्त्रियों से परिवृत होकर रहा करता था । विना वस्त्र वाला नारी के कवच को छपना चाहता हुआ रहता था ॥१७८॥ मूलक के भी धर्मात्मा राजा क्षतरथ कहा गया है । उक्त क्षतरथ से बलवान् ऐष्टिविड राजा ने

ज म बहल किया था ॥१७८॥ ऐगिन्ह प्रतापवान् धीमान् कृतकर्मा वा । उस
पुरीरु का पुन विषय बहान् उत्पन्न हुआ ॥१८॥

दिलीपस्तस्य पुत्रोऽभूत् सटवाङ्ग इति विप्रुत ।

येन स्वर्गादिहागम्य मृत्युत्त प्राप्य जीवितम् ।

त्र शोऽभिसंहिता लोका बुद्ध्या सत्येन च व हि ॥१८१॥

वीरवान् सुतस्तस्य रघुस्तस्मान्जायत ।

अज पुत्री रघोऽपि तस्माज्जज्ञ स वीरवान् ।

राजा वज्रघो नाम इक्ष्वाकुकुलनन्दन ॥१८२॥

रामो वाशरविर्वीरो धर्मज्ञो लोकविप्रुत ।

मरुतो लक्ष्मणश्च व शत्रुघ्नश्च महाबल ॥१८३॥

माधव सत्रल हृत्वा बत्वा मधुवनञ्च तत् ।

शत्रुघ्नेन पुरी तस्य मधुरा सन्निवेशिता ॥१८४॥

मुवाहु धूमसेनश्च शत्रुघ्नसंहिताबुधौ ।

पालवामासतु मूढो वदेह्यौ मधुरा पुरीम् ॥१८५॥

अङ्गान्ध्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजाबुधौ ।

हिमवत्पर्वताभ्यां स्फीती जलपद्मौ तयो ॥१८६॥

अङ्गदस्याङ्गदीया तु देशे कारपथे पुरी ।

अङ्गकेतोस्तु मत्स्यश्च अङ्गवक्ता पुरी शुभा ॥१८७॥

उसका पुत्र दिलीप हुआ जो सटवाङ्ग इस नाम से प्रसिद्ध था जिसने
जन्म से यहाँ भूमण्डल में थाकर मृत्युसंसार जीवन् थाकर बुद्धि से और सत्य से
हीनो लोको को अभिसंहित कर दिया था ॥१८१॥ उस स वाङ्ग का पुत्र वीर
वान् हुआ और फिर उस दोषवान् रघु ने ब्रह्म बहल किया था । राजा रघु
वा ॥ महाद् पराक्रमी था हुआ और उस अज से इक्ष्वाकु कुल का नन्दन
वज्रघ्न राजा हुआ ॥१८२॥ वज्रघ्न के पुत्र वाशरवि राम बड़े वीर-धर्मज्ञ और
लोकविप्रुत हुए और बहान् कर्मान् मरुत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न हुए ॥१८३॥
माधव सत्रल को मारकर और शत्रुघ्न को नाकर शत्रुघ्न ने उसकी पुरी मधुरा
को मन्निवेशित किया था ॥१८४॥ शत्रुघ्न के साथ मुवाहु और धूमसेन बदेह

दोनो पुत्रो ने मधुरगुप्ती रा पानन किया था ॥१८॥ अद्भुत और चन्द्रकेतु ये दो लक्ष्मण के पुत्र हुए थे और उन दोनों के जनपद हिमाचल पर्वत के समीप में विस्तृत हुए थे ॥१८६॥ अद्भुत की काश्यप देश में अद्भुदीया नाम वाली पुरी थी और चन्द्रकेतु की जोकि मल्ल ये युध चद्रवक्त्र नाम की पुरी थी ॥१८७॥

भरतस्यात्मजो वीरो तक्ष पुष्कर एव च ।

गान्धारविषये मित्रे तयो पुयो महात्मनो ॥१८८॥

तक्षस्य दिक्षु विख्याता रम्या तक्षत्रिणा पुरी ।

पुष्करस्यापि वीरस्य विख्याता पुष्करावती ॥१८९॥

गाथा चैवात्र गायन्ति ये पुराणविदो जना ।

रामे निवृद्धास्सत्त्वार्था माहात्म्यात्तस्य भीमत ॥१९०॥

श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषित ।

वाजानुबाहु सुमुख सिंहस्कन्धो महामुज ॥१९१॥

दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् ।

श्रुत्सामयजुषा घोषो ज्याघोषश्च महास्वन ॥१९२॥

यविच्छिन्नोऽभवद्राष्ट्रं दीयता भुज्यतामिति ।

जनस्थाने वसन् कार्यं त्रिदशानाञ्चकार स ॥१९३॥

तमागस्कारिणं पूर्वं पौलस्त्यं मनुजर्षभ ।

सीताया पदमन्त्रिच्छन् निजधानं महायक्षा ॥१९४॥

भरत के पुत्र बहुत वीर तक्ष और पुष्कर नाम वाले दो थे । उन दोनों महान् आत्मा वाले ही गान्धार देश में विद्वत् पुरिषों की ॥१८८॥ तक्ष की समस्त दिशाओं में विख्यात तक्षत्रिणा नगर से मुक्त सुन्दर पुरी थी । वीर पुष्कर की भी पुष्करावती नाम वाली पुरी विख्यात हुई थी ॥१८९॥ जो पुराणों के ज्ञान रखने वाले विद्वान् हैं वे यहाँ इस विषय में गान्धार का गान किया करते हैं । भीमान् राम के माहात्म्य से राम में समस्त सत्तार्थ निबद्ध थे ॥१९०॥ श्याम वर्ण बाले-युवावस्था में सम्मित-सौहित नेत्रों से युक्त-दीर्घयुक्त मुख वाले-मित भाषण करने वाले-जानु पर्वत लम्बी भुजाओं वाले-सुन्दर मुष्ट की आकृति में समन्वित-सिंह के समान कन्धो वाले-महान् युवाओं वाले श्रीराम

ये ॥१६१॥ उन श्रीराम ने दक्ष सहस्र वर्ष तक राज्य किया । श्रीराम के राज्य में शुक-साम और वसुदेव की ध्वनि सदा होती थी और वसुध की प्रत्याशाओं की भी महाद् ध्वनि होती थी ॥१६२॥ श्रीराम के राज्य में उनके शासन के समय में सदा सबका धन दो-गुना करने का व्यवस्थापन होता रहता था । जनो के स्थान में निवास करते हुए उन्होंने देवों का काय किया था ॥१६३॥ मनुष्यों में परमपूज्य महाद् यज्ञ वाले श्रीराम ने सीता के पद धर्मात् स्थान को लोभते हुए पहिले प्रपराय करने वाले उस पुत्रस्य के माता पौत्रस्य राज्य का वध किया था ॥१६४॥

सत्त्वान् गुणसम्पन्नो दीप्यमान स्वतेजसा ।

प्रति सूर्यश्च बह्विज्ज रामो दाक्षरयिबर्मा ॥१६५॥

एवमेव महाबाहुर्दिव्यबाहुकसमन्वन ।

रावण सगरा हृत्वा दिवमाचक्रमे विभु ॥१६६॥

श्रीरामस्यात्मजो जज्ञ कृश इत्यभिधीयते ।

सर्वभ्रान्तो महावीरस्तयोर्वेशी निबोधत ॥१६७॥

कशस्य कोशसा राज्ञ पुरी वापि कशस्वसी ।

रम्या निवेदिता तेन विभ्यष्यतसानुषु ॥१६८॥

उत्तराकोशसे राज्य लवस्य च महात्मन ।

धावस्ती लोकविस्थाता कशवश्च विबोधत ॥१६९॥

कशस्य पुत्रो चर्मात्मा ह्यतिथि शुभ्रियातिथि ।

अतिवेरपि विस्थातो निषघो नाम पार्श्विच ॥१७०॥

निषधस्य नन पत्रो नच पुत्रो नलस्य तु ।

नमस पण्डरोक्तु लेमघवा तत् स्मृत ॥१७१॥

सत्त्वान् गुणसम्पन्नो दीप्यमान स्वतेजसा दाक्षरयिबर्मा । मैं ने सूर्य की और बह्विज्ज के समान सब से दीप्त किया था ॥१६५॥ इसी प्रकार से महाद् बाहु वाले और इत्याहु राजा के कुल को जान-बूझने वाले विभु राम ने अपने गणों के साथ राज्य को बार-बार स्वयं में भेज दिया था ॥१६६॥ श्रीराम का पुत्र कृश इस नाम वाले उत्पन्न हुए । और लव अन्य

महात् धीम वांते पुन वे । धव उनके देशो को भी जान लेना चाहिए ॥१६७॥
 कुष का राज्य कोशल या धीर उसकी पुरी का नाम कुषस्वली थी जिसको कि
 बहुत ही सुन्दर विन्ध्य पर्वत के शिखरो में उसने निवेक्षित किया था ॥१६८॥
 महात्मा जन का राज्य उत्तर कोशल में था धीर उसको पुरी व्यावस्ती नाम
 वाली नोस में परम विख्यात थी । धन कुन के बक्ष को व्यवस्था करें ॥१६९॥
 मुक्ष का धर्मात्मा सुत्रिय अतिवि वाता अतिवि पुन वा । अतिवि का निपथ
 माग वाता पारिष पुन वा ॥२००॥ निपथ का नल पुन हुआ धीर नन का
 नन नाम वाला पुन हुआ था । नन का पुण्डरीक हुआ धीर उसका धेमवत्ता
 हुआ ॥२०१॥

धेमधवसुतो राजा देवानोक्त प्रतापवान् ।

आसीदहीनमुर्नाम देवानो कात्मज प्रभु ॥२०२

अहीनगोस्तु दायाद पारियात्रो महायशा ।

दलस्तस्मात्मजश्चापि तस्मात्क्षेत्रे बलो नृप ॥२०३

श्रींको नाम स धर्मात्मा दलपुत्रो वसूध ह ।

यश्चनाम, सुतस्तस्य शङ्खस्तस्य चात्मज ॥२०४

शङ्खस्तस्य सुतो विद्वान् ध्युपितास्य इति श्रुत ।

ध्युपितादव सुतश्चापि राजा विद्वत्सह, किल ॥२०५

हिरण्यनाम कीशल्पो वसिष्ठस्तसुतोऽभवत् ।

पीनस्य जंभिने शिष्य, स्मृत सर्वेषु धर्मेषु ॥२०६

शतानि सहितानान्तु पञ्च योज्योतवास्तत ।

तस्मादविगतो योगो याज्ञवल्क्येन धीमता ॥२०७

पुष्यस्तस्य सुतो विद्वान् ध्रुवसन्धिश्च तत्सुतः ।

सुदर्शनस्तस्य सुतो अग्निवशः सुदर्शनात् ॥२०८

धमध-वा का पुन प्रतापी देवानीक राजा हुआ धीर देवानीक का

अहीनगु नाम वाला पुन था ॥२०२॥ अहीनगु का दायाद महायश था वाला
 पारियात्र था धीर इसका पुन दल नामक था तथा इससे बल नाम वाला नृप
 उदात्त हुआ था ॥२०३॥ इसके पश्चात् धीर—इस नाम वाला परम धार्मिक

बल का पुत्र हुआ था । उसका पुत्र ~~सुहृन्~~ नाम हुआ और बल नाम का पुत्र
 सहस्रं उत्पन्न हुआ था ॥२॥ ४॥ सहस्रं का पुत्र परम विद्वान् ध्यायिताश्व का
 पुत्र राजा विश्वमन् हुआ ॥२॥ ५॥ निश्चयनाश वीर्यय वसिष्ठ उसका पुत्र हुआ
 जो समस्त शर्मों में जमिनि के शीर का शिष्य कहा गया है ॥२॥ ६॥ जिसने पाँच
 सौ सहिताश्वों का अभ्ययन किया था और उससे भीमान् याज्ञवल्क्य ने योग का
 ज्ञान प्राप्त किया था ॥२॥ ७॥ उसका पुत्र पुण्य का जो विद्वान् था और उसका
 पुत्र ध्रुव सचि नाम का था । उसका पुत्र सुदक्षन् और सुदक्षन् से अग्निवण
 उत्पन्न हुआ था ॥२॥ ८॥

अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु शीघ्रकस्य भनु स्मृत ।

भनुस्तु योगमास्थाय कलापश्राममास्थित ।

एकानविंशप्रयुगे क्षत्रप्रावत्तक प्रभु ॥२॥ ९

प्रभुय तो मनो गन सुसन्धिस्तस्य चात्मज ।

सुसन्धेऽत्र तत्तमय सहस्वान्नाम नामत ॥२॥ १०

भासीत्सहस्रत पुत्रो राजा विभूतवानिति ।

तस्यासीद्विंशतस्त पुत्रो राजा बृहद्वस ॥२॥ ११

एत इक्ष्वाकुदायका राजान् प्रायश स्मृता ।

वशे प्रधाना ये तेऽस्मिन् प्राधान्येन तु कीर्त्तिता ॥२॥ १२

पठन् सन्मगिमा सृष्टिमादिस्थस्य विवम्बत ।

प्रजावानेति सामुख्य मनोर्वैवस्वतस्य स ॥२॥ १३

धातुवैवस्य देवस्य प्रजाना पुष्टिदस्य च ।

विपाप्मा निरजाम्ब व आयुष्मान् भवतश्च्युत ॥२॥ १४

राजा अग्निवर्ण के शीघ्र हुआ और शीघ्रक के भनु उत्पन्न हुआ ।
 भनु तो योग में आस्थित होकर कलाप श्राम में आस्थित होगया था । यह
 उन्नीसवें प्रयुग में क्षत्र प्रावत्तक प्रभु हुआ है ॥२॥ ९॥ भनु का पुत्र प्रभुयुत और
 उसका पुत्र सुसन्धि हुआ । सुसन्धिका धाम्य नाम से सहस्वान् वा सहस्वान् का
 पुत्र राजा विभूतवान् वा और विभूतवान् का पुत्र राजा बृहद्वस हुआ । ये सब
 इक्ष्वाकु वंश के राजाव राजा प्राय कहे गये हैं । जो बल में प्रधान थे वे महा

वताये गये ह । इस आदित्य की मृष्टि को मनी-मति पटन हुए प्रजापति द्वारा वैवस्वत मनु के तथा प्रजापति पुष्टि दन जाने दन नाद्वय के मण्डप्य का प्राप्त होना ह । विषात्मा विरज तथा अमृष्मान् एवं अच्युत होता ह । २/० म २/६।

प्रकरण ५२—सामोत्पत्तिवर्णन

योऽसी निवेशयामास पुरन्देवपुत्रोऽयम् ॥१॥
जयन्तमिति विख्यातं गीतमन्याश्रमाभिन ।
यस्वान्ववाये यज्ञे वै जनकाष्टपिसत्तमात् ॥२॥
नेमिर्नाम सुधर्मात्मा सर्वसत्त्वनमस्कृत ।
आसीत् पुत्रो महाप्राज्ञ इक्ष्वाकोभूरितेजस ॥३॥
स शापेन वसिष्ठस्य विदेह समपद्यत ।
तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनित पवंभिस्त्रिभि ॥४॥
श्रण्या नय्यमानाया प्रादुर्भूतो महायशः ।
नाम्ना मिथिरिति ख्यातो जनताज्जनकोऽभवत् ॥५॥
मिथिर्नाम महावीर्यो येनासी मिथिलाभवत् ।
राजासी जनको नाम जनकाष्टाप्युदवसु ॥६॥
उदावसो सुधर्मात्मा जनितो नन्दिवर्द्धन ।
नन्दिवर्द्धनत शूर सुकेतुर्नाम धार्मिक ॥७॥
सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबल ।
देवरातरय धर्मात्मा बृहदुच्छ इति श्रुति ॥८॥

सूतजी बोले—विदुषि के छोटे भाई निमि के वंश को समझलो ।
इसने देवापुर के समान पुर को निवेशित किया था ॥१॥ जो पीतम के आश्रम के सामने 'जयन्त'—इस नाम से विख्यात था । जिसके अन्ववाय यज्ञ में ऋषियों में श्रेष्ठ जनक से नेमि—इस नाम वाला अत्यधिक तेज वाले इक्ष्वाकु का पुत्र था जो मनी प्रकार से धर्मात्मा-समस्त प्राणियों के द्वारा नमस्कृत अर्थात् समार

प्राप्त करने वाला और महात्मा परित्यक्त था ॥२॥३॥ यह वसिष्ठ के शाप से विदेह हो गये । उसका पुत्र मिथि नाम वाला तीन वर्षों से जन्मा था ॥४॥ घरणी के मपन करने पर यह महान् मख वाला प्रादुर्भूत हुआ था । नाम से मिथि प्रसिद्ध हुआ और जनन होने से जनक हुए थे ॥५॥ मिथि नाम वाले महान् पराक्रम वाले थे जिससे यह मिथिना हुई थी । यह जनक नाम वाला राजा था और जनक से उवाचसु हुआ ॥६॥ उवाचसु से सुन्दर मनमय आत्मा वाला तन्दिबद्ध न जन्मा । तन्दिबद्ध न से धार्मिक और शूरवीर सुकेतु उत्पन्न हुआ ॥७॥ सुकेतु से महान् धनवाला धर्मात्मा देवराज हुआ और देवराज के धर्मात्मा वृहदुष्ण हुआ—यह धृति है ॥८॥

वृहदुष्णस्य तनयो महावीर्य प्रतापवान् ।
 महावीर्यस्य धृतिमान् सुधृतिस्तस्य चात्मज ॥९॥
 सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतु परन्तप ।
 धृष्टकेतु सुसञ्ज्ञापि ह्यश्वो नाम विश्रुत ॥१०॥
 ह्यश्वस्य मह पुत्रो भरु पुत्रे प्रतिश्वक ।
 प्रतिश्वकस्य धर्मात्मा राजा कीर्तिरथ सुत ॥११॥
 पुत्र कीर्तिरथस्यापि देवभीढ इति श्रुत ।
 देवभीढस्य विदुषो विभुषस्य सुतो धृति ॥१२॥
 महाधृतिमुतो राजा कीर्तिराज प्रतापवान् ।
 कीर्तिराजात्मजो विद्वान् महारोमेति विश्रुत ॥१३॥
 महारोम्णस्तु विख्यात स्वणरोमा व्यजायत ।
 स्वणरोमात्मजश्चापि ह्रस्वरोमावन्तप ॥१४॥
 ह्रस्वरोमात्मजो विद्वान् सीरध्वज इति श्रुति ।
 उन्मिन्ना कृपता येन सीता राज्ञा यक्षस्विनी ।
 रामस्य महिषी साध्वी सुवतातिपतिवता ॥१५॥
 कथं सीता समुत्पन्ना कृष्यमाणा यक्षस्विनी ।
 किमयश्चाकृपद्राजा सेन यस्मिन् वभूव ह ॥१६॥

बृहदुच्छ का पुत्र प्रताप वाला महावीर्य हुआ और महावीर्य के वृत्तिमान हुआ और उसके सुधृति पुत्र हुआ था ॥१६॥ सुधृति के धार्मिक और अनुग्रह को तपाने वाला घृष्टकेतु पुत्र हुआ । घृष्टकेतु का पुत्र भी हर्यश्व-इस नाम से विश्रुत होने वाला उत्पन्न हुआ था ॥१७॥ राजा हर्यश्व के मर पुत्र उत्पन्न हुआ और मर के प्रतिस्वक हुआ तथा प्रतिस्वक के परम धार्मिक राजा कीर्तिरथ पुत्र हुआ था ॥१८॥ कीर्तिरथ का पुत्र देवमीड हुआ और देवमीड के विष्णु तथा विद्युत् के धृति नाम वाला सुत उत्पन्न हुआ था ॥१९॥ महाधृति का पुत्र प्रतापी राजा कीर्तिराज हुआ । कीर्तिराज का आत्मज अत्यन्त निद्वान् महारामा परम प्रसिद्ध हुआ था ॥२०॥ महारामा राजा का पुत्र परम प्रसिद्ध स्वर्णरोमा उत्पन्न हुआ था । स्वर्णरोमा का पुत्र राजा ह्रस्वरोमा हुआ ॥२१॥ ह्रस्वरोमा का आत्मज विद्वान् सीरध्वज नाम वाला हुआ था— ऐसी धृति है । जिस राजा ने भूमिका कपण करते हुए अर्थात् जोतते हुए परम यशवाली सीता को उद्भिन्न किया था जो जीता श्रीराम की पटरानी हुई थी और अत्यन्त साध्वी—अति पातिव्रत धर्म का पालन करने वाली एवं सुन्दर व्रत वाली थी ॥२२॥ आशपावन ने कहा— कृष्णमाण होती हुई सीता किस प्रकार से समुत्पन्न हुई थी ? जो कि परम यशस्विनी थी । राजा ने किस लिये भूमिका कपण किया था जिसके करने में वह हुई थी ? ॥२३॥

अग्निक्षेत्रे कृष्णमाणे अश्वमेध महात्मन ।

विधिना सुप्रयुक्तेन तस्मात्ता तु समुत्पिता ॥२४॥

सीरध्वजात् जातस्तु मानुमान्नाम मेधिल ।

भ्राता कुशध्वजस्तस्य स काश्यधिपतिर्नृप ॥२५॥

तस्य मानुमत पुत्र प्रबुध्नश्चप्रतापवान् ।

मुनिस्तस्य सुतश्चापि तस्मादूर्ज्वह स्मृत ॥२६॥

ऊर्ज्वहात् सुतद्वाज शकुनि स्तस्य चात्मज ।

स्वागत शकुनेः पुत्र सुवर्चास्तत्सुत स्मृत ॥२७॥

श्रुतो यस्तस्य दायाद सुयुतस्तस्य चात्मज ।

सुश्रुतस्य जय पुत्रो जयस्य विजय सुत- ॥२८॥

विजयस्य ऋत पुत्र ऋतस्य सुनय स्मृत ।
 सुनयाद्वीतहृष्यस्तु वीतहृष्यात्मजो धृति ॥२२॥
 धतेस्तु बहुलाश्वोऽमूढहृष्यास्वसुत कृति ।
 इत्येते मथिला प्रोक्ता सोमस्यापि निबोधत ॥२३॥

श्री सुतजी ने कहा—महान् यात्रा वाले के धर्ममेव म धर्मि क्षेत्र के कण्ठ करने पर और विवि को जली भाति बुद्धरता के साथ प्रसुक्त करने से सबसे से वह सीता समुत्पित हुई थी ॥१७॥ वीरभञ्ज व भानुमान् नाम वाला मथिल उत्पन्न हुआ था । उसका भाई कुचभञ्ज था और वह काशी का स्वामी हुए था ॥१८॥ उस भानुमान् का पुत्र प्रताप वाला प्रसुम्न था । उसका पुत्र मुनि हुआ और उससे ऊर्ध्ववह हुआ था ॥१९॥ ऊर्ध्ववह से सुतहाज हुआ था उसका पुत्र शकुनि हुआ था । शकुनि का स्वायत्त हुआ और स्वायत्त का सुवर्चा नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥२०॥ उसका अर्थात् सुवर्चा का वामाव (पुत्र) धस हुआ और उसका पुत्र सुवत्त हुआ था । सुवत्त का पुत्र वय हुआ वय का पुत्र विजय हुआ ॥२१॥ विजय के श्वर नामक पुत्र था और श्वर के सुनय पुत्र उत्पन्न हुआ था । सुनय से वीत हृष्य हुआ और वीतहृष्य का पुत्र धृति हुआ ॥२२॥ धृति से बहुलाश्व हुआ और बहुलाश्व का पुत्र कृति नाम वाला था । सबसे महान् यात्रा वाले जनकी का वस सम्भित रहता है । ये इतने मैथिल बनाये गये हैं । अब सोम का वस जान लो ॥२३॥

प्रकरण ५३—सामोत्पत्तिवर्णन

पिता सोमस्य वै विप्रा जज्ञऽग्निमगवानृषि ।
 सोऽति तप्तो सर्वालोका मयवान्त्स्वन तेजसा ॥१॥
 कमणा मनसा वाचा बुभान्येन समाचरन् ।
 काष्ठकुक्ष्यधितामृत ऊढ बाहुमहाधृति ॥२॥
 सुदुश्चर नाम तपो येन तप्त महत्सुरा ।
 प्राणि वपसहस्राणि दिव्यानीति

तस्योद्धरेतसस्तत्र स्थितस्थानिमिषम्पृहम् ।
 सोमत्वतनुरापेदे महाबुद्धिं स वै द्विज ॥८॥
 ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य सोमत्व भावितात्मन ।
 सोम मुन्नाव नेत्राभ्या दक्ष वा द्योतयन् दिश ॥९॥
 त गर्भं विधिनादिष्टा दक्ष देव्यो दद्युस्तदा ।
 समेत्य धारयामासुर्न च ता समश्चकनुवन् ।
 स ताम्य सहस्रेवाय दिग्यो गर्भं प्रभान्वित ।
 यथावभासयैल्लोकाञ्छीताशु सर्वभावन ॥१०॥
 यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ता क्षिय ।
 तत स ताभि शीताशुनिपपात वसुन्धराम् ॥११॥

श्री मूलर्जा ने कहा—हे विप्रो ! सोम के पिता अपि अभिभगवान् ने जन्म ग्रहण किया था । वह अभि भगवान् अपने तेज में समस्त लोकों में अति-स्थित हुए थे ॥१॥ कर्म-मन श्री गन्धर्वा के द्वारा शुभ का भी समाचरण करते हुए महान् धृति वाले ऊर्ध्वबाहु होकर काष्ठ धीर कुक्ष्य शिखा के समान हो गये । ॥२॥ हमने यह सुना है कि तीन हजार दिव्य वर्षों तक जिसने पहिले महान् कठिन तप किया था ॥३॥ वहाँ पर स्थित ऊर्ध्वरेता उसके अनिमिष स्पृह सोमत्व तनु को महान् बुद्धि वाले उस द्विज ने प्राप्त किया था ॥४॥ भावित आत्मा वाले उसके ऊपर सोमत्व चसता था । नेत्रों से दक्षो दिक्षाघ्नो का प्रकाशित करता हुआ सोम अवलोकित होता था ॥५॥ उस गर्भ को उस समय ब्रह्मा के द्वारा आदेश प्राप्त करने वाली दक्ष देवियों में एकत्रित होकर धारण किया था किन्तु वे उसे सहन कर सकीं ॥६॥ इस के अनन्तर उन दिक्षाघ्नो में वह गम महता ही प्रभा से मुक्त हो गया जिससे सबको अचञ्छा करने वाला शीताशु लोकों को अवभासित कर रहा था ॥७॥ जब वे स्थिरा उस गर्भ के धारण करने में समर्थ न हुई तो फिर वह शीताशु उनसे पृथ्वी पर गिर गया था । ॥८॥

पतन्त सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामह ।

रथमारोपयामास लोकाना हितकाम्यया ॥९॥

स हि देवभर्ता विप्रा धर्म्मार्थी सत्य सङ्गार ।
 युक्तो वाजिसहस्र ए सितेनेति हि न श्रुतम् ॥१०॥
 तस्मिन्निपतिते देवा पुत्रेऽग्रे परमात्मानि ।
 तुष्टुवुष ह्यण पुत्रा मानसा सप्त विश्रुता ।
 तत्र वाङ्मिरसस्तस्य भृगोऽत्र वात्मजस्तथा ।
 ऋग्भिषजुभिर्बहुभिरथर्वाङ्मिरसरपि ॥११॥
 तत सस्तूयमानस्य तेज सोमस्य जास्वत ।
 आप्यामामा लोकास्तीन् भावयामास सम्भवा ॥१२॥
 समेन रथमुच्येन सागरास्ता वसुन्धराम् ।
 त्रि सप्तकृत्वो वितुस्तद्भकाराभिप्रदक्षिणम् ॥१३॥
 तस्य यज्ञापि ततश्च पृथिवीमन्वपद्यत ।
 भोवध्यस्ता समुद्रभूतास्तेजसा सज्जन्तुषु ॥१४॥
 ताभिर्भार्यस्य लोकात् प्राग्भापि वसुभिर्भा ।
 पोष्टा हि भगवान् सोमो जगतो हि द्विजोत्तमा ।

समस्त लोको के पिता वह ब्रह्मर्षी ने सोम की मिरस कुप्ता देवकर
 लोको के हित की कामना से रथ को धारोवित कर दिया था ॥१०॥ हे विप्र
 भूष । वह देवों से परिपूर्ण धर्म का धर्मी सत्य सङ्गार और श्रेष्ठ वरुण वाले
 सहस्र धर्मों से युक्त वा-येवा हमने सुना है ॥१॥ उस परमात्मा शक्ति के पुत्र
 के निपतित होने पर जो सप्त ब्रह्म के प्रसिद्ध भाग्यस पुत्र हैं उन्होंने स्तुति की
 थी ॥११॥ वहाँ पर ही वाङ्मिरस और उस श्रुति के पुत्र ने उही प्रकार स
 ऋग्वेद-यजुर्वेद और बहुत से ऋग्भिषो ने स्तवन किया ॥१२॥ इसके अनन्तर
 भली भाँति स्तुति किये गये उस वासमान सोम के तेज ने लोको को आप्यायित
 करते हुए सब और से भावित किया था ॥१३॥ उसने सप्त मुक्षरथ के द्वारा
 सागर पर्यन्त वसुन्धरा की इक्कीस बार प्रदक्षिणा की थी ॥१४॥ उसका जो
 भी तेज था वह पृथ्वी में अनुपम हो गया और वे ओषधियों के स्वरूप में शत्रु
 त्यक्त हुई जा कि अन्त तब से बनी जाति वसित हो रही है ॥१५॥ हे द्विज

तमगुण । उन ओषधियों से यह लोको को चारण करता है और भगवान् सोम चारों प्रकार की प्रधाओं को तथा जम्बू का भी परम पोषक है ॥१६॥

त सन्धतेजास्तपसा सस्तवैस्तैश्च कर्मभिः ।

तपस्तेपे महाभाग पदाना दक्षतीदंश ॥१७

हिरण्यवर्णा या देव्यो धारयन्त्यात्मना जगत् ।

विभुस्तासाम्भवेत्सोम प्रख्यात स्वेन कर्मणा ॥१८

ततस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्मा ब्रह्मविदा वर ।

बीजौपधिषु विप्राणामपाञ्च द्विजसत्तमा ॥१९

सोऽभिपिक्ता महातेजा महाराज्येन राजराट् ।

लोकानां भावयामास स्वभावात्तपता वर ॥२०

सप्तविंशतिरिन्दोस्तु दाक्षायण्यो महाव्रता ।

ददौ प्राचेतसो दक्षा नक्षत्राणीति या विदुः ॥२१

स तत्प्राप्य महद्वाज्यं सोम सोमवता प्रभु ।

समाजज्ञं राजसूयं सहस्रशतदक्षिणम् ॥२२

हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्मा ब्रह्मत्वमेयिवान् ।

सवस्पस्तत्र भगवान् हरिर्नारायणः प्रभु ।

सन्त्कुमारप्रमुखैरार्थं ब्रह्मपिभिवृत् ॥२३

दक्षिणामवदत्सोमस्त्रीत्सोकानिति न धृतम् ।

तेभ्यो ब्रह्मपिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्च वै द्विजा ॥२४

वह सस्तवी और उन कर्मा के द्वारा तथा रूप से तेज प्राप्त करने वाला

होगया और उस महाभाग ने दक्षती दक्ष पक्षी तक तपस्वा की थी ॥१७॥ जो

हिरण्य वरु यात्री देवियों थी उन्होंने जगत् को चारण किया है उनका विभु

सोम हुआ जो अपने कम के द्वारा प्रख्यात है ॥१८॥ ब्रह्म वेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा

ने हे द्विजों में श्रेष्ठ । बीजौपधियों में विप्रों का और जलो का राज्य उसे दे दिया

था ॥१९॥ तपस्या करने वालों में श्रेष्ठ वह अभिपिक्त होता हुआ इस महान्

राज्य से राजाओं का राज्य तथा महान् तेजस्वी स्वभाव से लोकों को आनन्दित

किया करता था । २०॥ प्राचेतम दक्ष ने इन्द्र को महान् व्रत वाली सत्ताईस

दाक्षायणी देवी जो त्रिं नखन नाम से जानी गई है ॥२१॥ सोम वातो के स्वामी उस सोमने उष ब्रह्मन् राज्य को प्राप्त करके सहस्र छत दक्षिणा बना राक्षस्य यज्ञ किया था ॥२२॥ उसमें हिरण्य नख उद्गाता ब्रह्म और ब्रह्मा ब्रह्मत्व को प्राप्त हुए वर्षाद् ब्रह्मा को तथा सनत्कुमार धाति प्रमुख ब्रह्मपित्री से पत भगवान् नारायण प्रभु हरि सर्वस्य हुए थे ॥२३॥ हमने ऐसा सुना है कि सोम ने उन ब्रह्मपि सुख्य सरस्यो के सिधे हे द्विज वृद्ध ! तीनों लोकों को दक्षिणा म बा ॥ २४ ॥

त सिनी च कुहूञ्च व वपु पुष्टि प्रभा वसु ।
कीर्तिवृत्तिश्च सखीञ्च नव देव्य सिधेचिरे ॥२५॥
प्राप्यावभृथमयज्ञ सख्यदेवापिपूजित ।
अतिराजातिराजेन्द्रो वक्षधातापयद्विष ॥२६॥
तदा तत् प्राप्य कुप्रापमश्चयमृपिसस्तुतम् ।
स विभ्रममर्तिविप्रा विनये विनयो हत ॥२७॥
वृहस्पते स वै भार्यान्तारा नाम यक्षस्विनीम् ।
जहार सहस्रा सन्धानवमस्याङ्गिर सुतान् ॥२८॥
स याच्यमानो देवैश्च तथा देवापिभिश्च ह ।
नव व्यमञ्चयत्तारा तस्मात्पाङ्गिरसे तथा ॥२९॥
उक्षणास्तस्य जग्राह पार्थिवमङ्गिरसो द्विजा ।
स हि शिष्यो महातेजा पितु पूव वृहस्पते ॥३०॥
तेन स्नेहेन भगवान् स्रस्तस्य वृहस्पते ।
पार्थिवप्राहोऽमहं व प्रगृह्याज्जगवन्नु ॥३१॥
तेन ब्रह्मपिमुख्येभ्य परमास्म महात्मना ।
उद्दिश्य देवानुत्सृष्ट यनया नाशित यक्ष ॥ २

उन राजा सोम की सिनी-कुहू-वपु-पुष्टि-प्रभा-वसु-कीर्ति-वृत्ति और सखी इन तीं देवियों ने सेवा की थी ॥२५॥ अवभृथ को प्राप्त करके यज्ञप्रता से रहित और समस्त देव तथा ऋषियों के द्वारा पूजित अति राजाओं का अति राजेन्द्र हमने उष प्रचार से विधाओं को तापित किया था ॥२६॥ हे विप्री !

उम समय में ऋषिगो के द्वारा मस्तुत उम दुष्टास गेद्वय को प्राप्त करके वह
 विनय में दत्त तत्र जीनिदोन विषेय स्म स चान्त मतिवान्ना होगया था ॥२७॥
 उमन समस्त आङ्गिर वृद्धो को अयमानित कर वृद्धस्मति की भार्या परम यक्षस्विनी
 तारा नाम धानी का महारा इच्छा किया था ॥२८॥ उम समय में देवों के द्वारा
 तथा गमस्त देवर्षियों के द्वारा उठ यागिन किया गया अर्वात् तारा के चापिन दे
 देने की याचना की गई थी किन्तु उमन उम आङ्गिरस को तारा नहीं छोड़ी
 थी ॥२९॥ ६ द्विज वृद्ध ॥ उम समय उम आङ्गिरस का पक्ष जलया साथ उद्यता
 ने प्रथम किया था वह महारा तेजस्वी वृद्धस्मति के पिता का पहिला शिष्य था
 ॥३०॥ उम स्नेह में भगवान् मद्र देव अजमल धनुष ब्रह्म करके उम वृद्धस्मति
 के पारिजाताम् अर्वात् मद्रासता करने वाले हुए थे ॥३१॥ उम महात्मा ने अर्वापि
 सुगया ॥ विने परम अस्म देवा को उर्देस करके छोडा था निगने इनके मध को
 गह कर दिया था ॥३२॥

मत्र तस्य वृमभवन् प्रत्यक्षान्ताङ्गाभयम् ।
 देवाना दानधानाः लोकायक मठन् ॥३३॥
 तत्र शिक्षास्त्रयो देवास्तुगिताश्च ये स्मृता ।
 अत्राग्न क्षम जग्मुर्गादिदेव पितामहम् ॥३४॥
 ततो निवर्षाशनग मद्र ज्येष्ठश्च ब्रह्मम् ।
 ददायाङ्गिरसे तारा स्वयमेव पितामह ॥३५॥
 शन्तवली च सा दृष्टा तारास्ताराविमाननाम् ।
 गमंमुत्तृजसे न त्व विप्र प्राठ वृद्धस्मति ॥३६॥
 मदीयाया तनो यागो मर्धा चाय कवचन ।
 मनी नावसृजस्तन्तु कुमार दम्पुहन्तमम् ॥३७॥
 ईगिरस्तम्रमामा ॥ ज्वलन्तमिव पावकम् ।
 ज्ञातमात्राय भगवान् देवानामाक्षिणदम् ॥३८॥
 गत मज्जमात्रास्तारागमकवयन् मुरा ।
 सत्यं वृद्धि गुत इमं मामग्याथ वृद्धस्मति ॥

ह्रीयमाणा यदा देवाभ्राह्म सा साध्वसामु वा ।
तदा ता क्षप्तुमार व कुमारो दस्मृहन्तम ॥४०॥

उस समय ब्रह्मा पर देव और दानवों का लोको ने क्षय को करने वाला
महान् प्रलयक्ष तारकामय कुछ हुआ था ॥३३॥ उस समय में तीन शिष्ट देव जो
कि तुषिता कहे जाते हैं चादि देव ब्रह्माभी पितामह की गरुडामणि में प्राप्त हुए
थे ॥३४॥ इसके अनन्तर पितामह ने स्वयं ही उसना को भीर-देह धारण कर
को निवारण कर आक्षिरस के लिये तारा देखी थी ॥३५॥ उस चन्द्रमूली तारा
को उस समय मन्मथी देखकर विप्र बृहस्पति ने उससे कहा कि तू यम का
उत्सर्जन मत करे ॥३६॥ मेरे तनु बोलि ने किसी भी प्रकार से यम धारण
करना चाहिये । इसके अनन्तर उस दस्मृहन्तम कुमार का यमसर्जन नहीं किया
था ॥३७॥ ईषिका-स्तम्भ को पत्कर अग्नि की भाँति उत्पन्न होते ही भगवान्
ने देवों के शरीर पर आलेप किया था ॥३८॥ तबसे सस्य को प्राप्त होने वाले
देवों ने तारा से कहा—तुम सत्य सत्य बतला दो—वह पुत्र किसका है ? बृहस्पति
का है या सोम का है ? ॥३९॥ तब बलिष्ठ होती हुई उसने जो डीक या बेठीक
या देवों को बतला दिया । उस समय कुमार दस्यहन्तम ने उसको दाय देन वा
प्रारम्भ किया था ॥४॥

सन्निवाय तदा ब्रह्मा तारा चन्द्रस्य सस्य ।

यदेन तम्यन्तद्ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ॥४१॥

सा प्रञ्जलिरुवाचेद ब्रह्माण वरद प्रभुम् ।

सोमस्यति महात्मान कुमारन्दस्मृहन्तमम् ॥४२॥

तत स तमुपाघ्राय सोमो दाता प्रजापति ।

बुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमत ॥४३॥

प्रतिपूर्व्वन्च गमने समम्यत्तिष्ठते बुध ।

उत्पादयामास तदा पत्र व राजपत्रिका ॥४४॥

तत्र पत्रो महातया बभूवल् परुरवा ।

उवस्या जनिरे तस्य पुत्रा पट सुमहोवस ॥४५॥

प्रसह्य धर्षितस्तत्र विवशो राजयक्षमणा ।

ततो यक्षमाभिभूतस्तु सोम प्रक्षीणमण्डल ।

जगाम शरणायाथ पितर सोऽत्रिमेव तु ॥४६॥

तस्य तत्पापशमनं चकारात्रिर्महायशा ।

स राजयक्षमणा मुक्त श्रिया जज्वाल सर्व्वश ॥४७॥

एतत्सोमस्य वै जन्म कीर्त्तितं द्विसप्ततमा ।

वशन्तस्य द्विजश्रेष्ठा कीर्त्त्यमानं निबोधत ॥४८॥

धन्वमारोम्यमायुष्य पुण्य कल्मषशोधनम् ।

सोमस्य जन्म श्रुत्वेव सर्वपापं प्रमुच्यते ॥४९॥

उस समय मे ब्रह्माजी मे सन्निवारण कर जो बन्ध का सशय था उनके बिपय मे कहा — हे ताग ! यही पर जो भी तप्य हो वह बतादो कि यह किसका पुत्र है ॥४१॥ वह प्राञ्जलि होकर अर्थात् हाथ जोडकर वर देने वाले प्रभु ब्रह्माजी से यह बोली कि कुमार दस्युहन्तम सोम का ही है ॥४२॥ इसके पश्चात् उनमे अर्थात् ब्रह्मा ने उसका उपाध्याय करके सोमदाता प्रजापति है और उसके भीमात् पुत्र का नाम बुध यह रखवा था ॥४३॥ और प्रतिपूर्व के समय मे बुधो मे समभ्युत्थिन होता है । तब राजिका ने पुत्र को उत्पन्न किया था ॥४४॥ उसका महात् तेज वाला पुच्छरवा ऐल पुत्र हुआ । उसके उवशी मे महात् श्रोज वाले छै पुत्रो ने जन्म ग्रहण किया था ॥४५॥ वही बलपूर्वक राजयक्षमा के द्वारा विवश होते हुए धर्षित किया गया था । इसके अनन्तर राजयक्षमा से अभिभव पाने वाला होकर सोम प्रक्षीण मण्डल वाला हो गया । इसके पश्चात् वह पिता अत्रि के ही शरण मे गया था ॥४६॥ महान् यक्ष वाले अत्रि ने उसके उस पाप का शमन किया था और वह राजयक्षमा से छुटकारा पाकर सब प्रकार ग शोभा जाज्वल्यमान हो गया था ॥४७॥ हे द्विज श्रेष्ठो ! यह मेने सोम का जन्म वतसा दिया है । अब उसका वश द्विजो मे श्रेष्ठ प्राय समझलो जिमको कि मेरे द्वारा कहा जा रहा है ॥४८॥ यह सोम के जन्म की कथा का वर्णन परम धन्व-आरोम्य और आयु देने वाला पवित्र है । यह पापों का नाशक है । मनुष्य सोम के जन्म की कथा को मुद्रण ही समस्त पापों मे छूट जाना है ॥४९॥

ह्योयमाणा यदा देवास्त्राह सा साध्वसानु वा ।

तदा ता क्षन्तुमारब्ध कुमारो दस्युहन्तम ॥५०॥

उस समय वहा घर देव और दानवों का लोको के क्षय को करने वाला
महान् प्रत्यक्ष तारकाशय युद्ध हुआ था ॥३३॥ उस समय में तीन शिशु देव जो
कि युविला कहे जाते हैं आदि देव ब्रह्माजी पितामह की शरणागति में प्राप्त हुए
थे ॥३४॥ इसके अनन्तर पितामह ने स्वयं ही उच्छना को और ज्येष्ठ धातुर वर
को निवारण कर आग्निदेव के किये द्वारा देखी थी ॥३५॥ उस आग्निदेवी तारा
को उस समय बधवती देखकर विप्र बृहस्पति ने उससे कहा कि तू गर्भ का
असहन मत करे ॥३६॥ मेरे तनु जोषि में किसी भी प्रकार से गर्भ धारण
करना चाहिये । इसके अनन्तर उस दस्यु हन्त कुमार का अवतजन नहीं किया
था ॥३७॥ ईषिका-स्तम्भ को पाकर अग्नि की मूर्ति उत्पन्न होते ही भगवान्
ने देवों के शरीर पर मात्सेय किया था ॥३८॥ सबको संग्रह को प्राप्त होने वाले
देवों ने तारा से कहा—तुम सत्य सत्य बतला दो—बहु पुत्र किसका है ? बृहस्पति
का है या सोम का है ? ॥३९॥ तब सम्मिलित होती हुई उनसे जो ठीक या बेठीक
था देवों को बतला दिया । उस समय कुमार दस्युहन्त ने उसको छाप देने का
आरम्भ किया था ॥४०॥

सन्निवाय तदा ब्रह्मा तारा चन्द्रस्य सख्यम् ।

यद्यत्र तप्यन्तद्व हि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ॥४१॥

सा प्रह्लादिस्वाचेद ब्रह्माण् वरद प्रभुम् ।

सोमस्यति ब्रह्मात्मान कुमारो दस्युहन्तमम् ॥४२॥

तत्र स तमुपाधाय सोमो दाता प्रजापति ।

बुध इत्यकरोग्राम तस्य पुत्रस्य धीमता ॥४३॥

प्रतिपूर्वम् च गमने समम्बृत्तिष्ठते बुध ।

उत्पादयामास तदा पुत्रं य राजपुत्रिका ॥४४॥

तस्य पत्नी महातना बभूवस पुरुषवा ।

उवया जनिरे तस्य पुत्रा पट सुमहीवस ॥४५॥

प्रगल्भ धर्मितस्तथा विवक्षो राजयक्षमणा ।

ततो यक्षमाभिभूतस्तु गोम प्रक्षोभमण्डन ।

जगाम जग्मायाव गिर सोऽधिमैव तु ॥६६॥

तस्य तत्प्रापजगम चकाराधिमहायज्ञा ।

न राजयक्षमणा मुक्त श्रिया जज्ज्वात मब्धेज ॥६७॥

एतत्सोमस्य वै जन्म कीर्तित विजरात्तमा ।

वजस्तस्य द्विजश्रेष्ठा कीर्त्यमान निरोधत ॥६८॥

अन्यमागोभ्यमागुस्य पुण्य कर्मणोवतम् ।

सोमस्य जन्म श्रुत्वंय मरंपाप प्रमुच्यते ॥६९॥

उग गमय म श्रद्धाधी न मधिराग्य ह्य आ भूत का मलय वा उगहे
मिषय स कदा—ह नाया । यदा पय आ बी नस्य ता ४३ मलावी हि यत हिम ता
पुन हे ॥६६॥ ४३ प्राञ्जलि होकर सर्वान् हाथ आउकर ४४ वन रात प्रभु
श्रद्धाधी म गत बीनी हि कुमार द्युन्तम भाग हा ही हे ॥६७॥ उगहे
पदवात् इनत सर्वान् श्रद्धा म उमहा उपाद्याम कर ह सामयता प्रजापति हे श्री
उग म भीमा पुत्र हा नाम दुम यह राजा वा ॥६८॥ श्री प्रनिपूत हे समन
मि कुषा म ममस्युमि । हाहा हे ॥६९॥ मरिका न पुत्र का उत्पन्न किया वा
॥६६॥ उग हा मन्दा न मर राग पुच्छवा मर पुत्र दया । उगहे उमहा म मन्दा
आम राग ही पुत्रो न जन्म ब्रह्मण किया वा ॥६७॥ वही धनपूत राजयक्षमा
ह हाय मिरा होने दूध धर्मित किया गया भा । उगहे अन्तर राजयक्षमा ने
मधिरा पाप धावा हाकर नाम प्रक्षोभ यह वा मला होमया । उगहे पदवात्
यत मिरा अभि के हो जग्म म मया वा ॥६८॥ मन्दा यज रागे जनि म उगहे
उग पाप का क्षमन किया वा श्री यह राजयक्षमा ने छुटकारा पाकर सब प्रजा
ने भीगा जागरवमान होमया वा ॥६९॥ हे द्विज श्रेष्ठो । मर मन सोम का
जन्म यतला किया है । अर उगहा यदा द्विजो म श्रेष्ठ आप ममभवा जिमहो हि
मे हाय कदा आ रहा है ॥६६॥ यह नाम हे जन्म ही कथर का यमन परम
पन्थ-आशमर श्री आयु रेन वापा परिय हे । यह पापों का नाशक हे । मनुष्य
सोम न जन्म ही कदा हो गुह्य ही गमस्त पाप म छुट जाता है ॥६६॥

प्रकरण ५३—चन्द्रवंश कीर्तन

सोमस्य तु बुध पुत्रो बुधस्य तु पुरुरवा ।
 तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिण ॥१॥
 ब्रह्मवादी पराक्रान्तः क्षत्रुभिर्बुधो दुजयः ।
 आहर्त्ता चाग्निहोत्रस्य यज्वनाच्च ददौ महीम् ॥२॥
 सत्यवाकः कर्मबुद्धिश्च कान्तः सवृतमथुनः ।
 प्रसीध पुत्रो लोकेषु रूपेणाप्रतिमोऽभवत् ॥३॥
 तं ब्रह्मवादिनः दान्तः धमन्तः सत्यवादिनम् ।
 उवशी वरयामास हित्वा मानं यगस्विनी ॥४॥
 तया सहावसद्वाजा वसवर्षाणि चाष्ट च ।
 सप्त पटं सप्त चाष्टी च वस्र चाष्टी च धीयवान् ॥५॥
 वने चत्ररथे रम्यं तथा मन्दाकिनीतटे ।
 भ्रलकाया विशालाया नन्दने च वनोत्तमे ॥६॥
 गन्धमानपादेषु मेरुभृङ्गं नगात्तमे ।
 उत्तराब्धं कुक्कुन् प्राप्य कनापग्राममेव च ॥७॥
 एतेषु वनमुक्येषु सुरराधरितेषु च ।
 उवश्या सहितो राजा रेमे परमया मुखा ॥८॥

धी मूतवी ने बहा—सोम का पुत्र बुध हुआ और बुध का पुत्र पुरुरवा हुआ जो बहुत ही तेजस्वी—दान देने के स्वभाव वाला—यज्ज करने वाला तथा बहुत दक्षिणा देने वाला था ॥१॥ पुरुरवा ब्रह्मवादी था तथा क्षत्रुओं के द्वारा पराक्रान्त हुआ एवं बुद्धि में वह दुजय था धर्मात् रसभूमि में कोई भी आसानी से उसे जीत नहीं सकता था । वह अग्निहोत्र का आहरण करने वाला था और य-वाधो को उसने भूमि का दान दिया था ॥२॥ वह सत्य वचन बोलने वाला सवृत मथुन मुन्दर और कर्मों के सम्पादन में बुद्धि रखने वाला हुआ था । लोको में ॥३॥ पुत्र मत्वन्त ही रूप से अनुपम हुआ था ॥४॥ उस दमनशील धर्म क पान वाले—मत्ववादी और उहू की चर्चा करने वाले राजा को उवशी ने

मान का त्याग कर गच्छ किया जोकि उर्वशी बड़े ही यश वाली थी ॥४॥
 वीर्य बाजा राजा उसके साथ अठारह वर्ष तथा चलाबीस-चौमठ और अस्सी
 वर्ष तक रहा था ॥५॥ मन्दाकिनी के तट पर, परम रम्य चैत्रगढ़ वन में,
 विशाल अलकापुरी में और वनों में सर्वश्रेष्ठ मन्दन वन में निवास किया था ॥६॥
 सन्ध्यावन पवन की तराई में, मित्रियों में उत्तम भेष के शिखरों पर और उत्तर
 कुक्षी को प्राप्त कर तथा कन्या प्राय में आकर वास किया था ॥७॥ इन उक्त
 मुख्य वनों में जोकि देवों के द्वारा सेविन थे राजा ने प्रेयसी उर्वशी के साथ
 रहन हुए परमानन्द के साथ रमण किया था ॥८॥

गन्धर्वा चोर्वशी देवी राजान मानुष कथम् ।
 देवानुत्सृज्य सम्प्राप्ता तस्यो ब्रूहि बहुश्रुत ॥९॥
 ब्रह्मणापाभिभूता सा मानुष समुपस्थिता ।
 तैल तु त वरारोहा समयेन व्यवस्थिता ॥१०॥
 भारमन जापमोक्षार्थं नियम सा चकार तु ।
 भतानवर्णनश्चैव भक्त्यामात् सह मैथुनम् ॥११॥
 श्री मेघी वायनाभ्यासे स तावद्व्यवतिष्ठते ।
 धूममान तथाहाङ्, कालमेकन्तु पार्श्वेव ॥१२॥
 यद्यपि समयो राजन् यावत्कालश्च ते दृढम् ।
 तावत्कालं तु वरम्यामि एव न समय कृत ॥१३॥
 तस्मास्त समय सर्वं स राजा पर्यपालयत् ।
 गच्छ मा यावत् तस्मिन् पुष्करवसि भामिनी ॥१४॥
 वर्षाब्धय चतुर्षष्टि तद्भुक्त्वा व्यापमोहिता ।
 उर्वशी मानुष प्राप्ता गन्धर्वा अन्तयान्विता ॥१५॥
 चिन्तयन् महाभागा यथा सा तु वराङ्गना ।
 श्रागच्छेत् पुनर्देवानुर्वशी स्वर्गभूषणा ॥१६॥

श्रुतिगा न कृता—४ अनुभूत । यहाँ बहुत अधिक यशों के सुनने वाले
 या जान गाने । उर्वशी देवी तो गन्धर्व जाती ही थी जोकि देवों की ही एक
 भागा हरे जाती विशेष जानि है, उसने मनुष्य जाति के राजा को समस्त

देवताओं को छोड़कर किम तद्गु वरण क्रिया वा धर्मात् किं देवाङ्गना होते ॥१॥
 मनुष्य को कमे प्राप्त होगई—यह स्पष्ट बतलाइये ॥६॥ श्री सुतजी ने कहा—
 वह उबशी ब्रह्म बाण से अभिभूत होकर मनुष्यता को प्राप्त हुई थी उस बरारोहा
 ने (वह जिसके शरीर के अङ्गों का य कृतम प्रागेहण होता है) कुछ समय तक
 नियम-पालनपूर्वक व्यवस्थित होकर ऐत के पास निवास किया था ॥१०॥
 उसने अपने बाण की भुक्ति के लिए कुछ नियम (जैसे किसे ये श्रीर ने ये ये—
 एक तो नातावस्था न रहान नहीं करना था श्रीर वृक्षरा विना काम की वासना
 के मधुन करने का था ॥११॥ वह राजा सयनाभ्यास न हो मय तक व्यवस्थित
 रहता था श्रीर राजा केवल एदवार घुत का ही आहार करने वाला रहता था
 ॥१२॥ उबशी ने ये सबें सब करली थी श्रीर राजा ने कह दिया था कि हे
 राजन् ! आपकी व क्षत जब तक दृष्टा के साथ पासन की जायदी उतने ही
 समय तक मैं आपके साथ निवास करूँगी—यह हमारा किया हुआ समय धर्मात्
 नियम तथा गत है ॥१३॥ उस उबशी के द्वारा किए हुए उस नियम को उस
 राजा ने पूर्ण रूप से पालन किया था श्रीर इस प्रकार से वह भामिनी (उबशी)
 उम पुनरा के पास निवास करती थी ॥१४॥ इसके अनन्तर बाण मोहित
 उबशी की उसकी भक्ति से चौकन्ना बन व्यतीत होयवे वे । उबशी मनुष्य जाति
 के राजा के पास बसी गई—इस बात ॥ यन्मव लोग अन्त्या विता से
 मुक्त होयवे वे ॥१५॥ मन्थर्वों ने कहा—हे महाव् बाण बालो ? ऐसा कोई
 उपाय मोचो कि वह बराङ्गना उबशी जिस रीति से फिर दशों के पास बाणिस
 आयावे क्योंकि यह तो इस स्थलभोक की सोभा करने वाले मृपण के समान
 है ॥१६॥

ततो विश्वावसुर्नाम तत्राह वदता वर ।

तया तु समयस्तत्र क्रियमाणो मतोजनध ॥१७॥

समयव्युत्क्रमात् सा वै राजान यज्यते यथा ।

तद्गु बन्धि व सव यथा त्यज्यति सा नृपम् ॥१८॥

सहसा याममेध्यामि भुज्माक कावसिद्धय ।

एवमुक्त्वा गतस्तत्र प्रतिष्ठान महायणा ॥१९॥

स निशायामथागम्य मेपमेक अहार वै ।

मातृवद्वर्त्तते सा तु मेपयोश्चारुठासिनी ॥२०॥

गन्धर्वागमन ज्ञात्वा शयनस्था यशस्विनी ।

राजानमब्रवीत्सा तु पुत्रो मे ह्लियतेति वै ॥२१॥

एवमुक्तो विनिश्चित्य नग्नस्तिष्ठति वै नृप ।

नग्न द्रक्ष्यति मा देवी समयो वितथो भवेत् ॥२२॥

ततो भूयस्तु गन्धर्व्वा द्वितीय मेपमाददु ।

द्वितीयेऽपहृते मेपे ऐल देवी समब्रवीत् ॥२३॥

पुत्रो मम त्वतो राजपुत्रनायाया इव प्रभो ।

एवमुक्तस्तदोत्थाय नग्नो राजा प्रधावित ॥२४॥

इसके अनन्तर उस समय वहाँ पर बोसने वाली में श्रेष्ठ विद्यापति नाम
 वाला गन्धर्व बोला कि उसने वहाँ पर अथ से रहित समय (नियम या शर्त)
 किया हुआ माना है ॥१७॥ उस किये हुए समय (नियम) के व्युत्क्रम होने से
 ही राजा को त्याग देगी और जिस तरह उस समय का व्युत्क्रम हो सकता है
 वह सब मैं तुमको बतलाता हूँ कि जिसके कारण वह राजा का स्थाय करवे
 ॥१८॥ मैं तुरन्त ही आप लोगों के कार्य की सिद्धि के लिये योग को प्राप्त
 होऊँगा । यह कहकर वह महान् भगवाण विश्वासु उस प्रतिष्ठान पर पहुँच
 गया था ॥१९॥ उसने रात्रि में आकर उन दो मेपों में से एक का हरण कर
 लिया था । वह चाह अर्थात् सुन्दर हास वाली उर्वशी उन दोनों मेपों की माता
 की भाँति रहती है ॥२०॥ शयन में स्थित रहती हुई यशस्विनी उस उर्वशी ने
 राजा से कहा मेरा पुत्र का हरण हो गया है ॥२१॥ इस तरह कहा गया राजा
 नग्न स्थित हो जाता है यह निश्चय करके कि वह देवी मुझे नग्न को देखेगी तो
 जो समय था (अर्थात् क्षत थी) वह क्षत्य हो जायगा ॥२२॥ इसके बाद पुनः
 गन्धर्वों ने दूसरा मेप भी ले लिया था । दूसरे मेप के अपहृत हो जाने पर वह
 देवी उर्वशी ऐल से बोली ॥२३॥ हे प्रभो ! हे राजन् ! अनाया की भाँति मेरे
 दोनों पुत्र अपहृत होगये हैं । ऐसा कहा गया राजा उस समय नग्न हो उठ
 कर दौड़ा ॥ २४ ॥

नहीं है । वह राजा एक रात वहाँ उसके साथ रहा ॥३५॥ वह राजा परम प्रसन्न होता हुआ महान् यज्ञ बाला अपने पुर की नापिस बना गया था । एक वर्ष के समाप्त होवाने पर राजा ऐल पुन वहाँ उर्वशी के पास आया था ॥३६॥ महान् मन बाला वह राजा सर्व एक रात्रि तक वहाँ उसके साथ निवास करके घोर काम से घात होता हुआ बीन होकर उर्वशी से बोला तुम मेरी नित्य ही रहने वाली होनाओ ॥३७॥ घोर इसके अन्तमग्न उर्वशी ने ऐल से कहा उन गन्धर्वों ने बरदान दिया है—उसका बरछ कर—ओ हे महाराज । तुमही इससे कहो ॥३८॥ महात्मा यज्ञर्षी के नित्य सामोक्ष्य को बर । 'तथास्तु'—मह कह कर अर्थात् ऐसा ही होने गन्धर्वों ने कर दिया ॥३९॥ घोर स्वामी को अग्नि से भर कर गन्धर्वों ने उससे कहा—नरो के स्वामी । इससे यजन करके तू उस लोक को प्राप्त हो जायगा ॥४॥

तमावाप कुमारस्तु नगरायोपचक्रमे ।

नि क्षिप्य समरभ्यान्व स पुत्रस्तु गृह मयी ॥४१॥

पुनरादाय हृत्पान्निमस्वत्थ तत्र दृष्टवाम् ।

समीपतस्तु त दृष्ट्वा ह्यवत्थ तत्र विस्मित ॥४२॥

गन्धर्वैर्म्यस्तथाक्यातुमग्निना वा वतस्तु स ।

ध्रुत्वातमयमखिलमरणि तु समादिशत् ॥४३॥

अवत्थादरणि कृत्वा मयित्वाग्नि यथाविधि ।

तेनेष्ट्वा तु सलोक न प्राप्स्यसि त्व नराधिप ।

मयित्वाग्नि त्रिषा कृत्वाह्यवत्स नराधिप ॥४४॥

दृष्ट्वा यज्ञवहुविधगतस्तथा सलोकताम् ।

वासाय च स मन्धव्वस्वेताया स महारथ ।

एकोर्ज्मि पूवमासीद ऐलस्त्री स्नानकल्पयत् ॥४५॥

एवप्रनाओ राजासीदैकस्तु द्विजसत्तथा ।

देवो पुण्यतम च व यर्हुपिभिरलकृते ॥४६॥

राज्य स कारयामास प्रयागे पृथिवी पति ।

उत्तरे यामुन तीरे प्रतिष्ठान महायया ॥४७॥

तस्य पुत्रा बभूवुहि पद्मिन्द्रोपमतेजस ।

गन्धर्व्वलोके विदिता आयुर्दीर्घानमावसु ॥४८॥

विश्वायुश्च यतायुश्च गतायुश्चोर्वशीसुता ।

अमावसोस्तु वै जातो भीमो राजाय विश्वजित् ॥४९॥

उस कुमार को लेकर नगर के लिये चल दिया था वह उस पुत्र को भरणी में डालकर गृह चला गया ॥४९॥ फिर लाकर हव्य अग्नि अश्वत्थ (पीपल) को वहाँ देखा था । समीप से उसे अश्वत्थ को देखकर वहाँ विस्मित होगया ॥४९॥ गन्धर्वों से उस प्रकार से कहने के लिये अग्नि के द्वारा भूमि में गया हुआ वह उस समस्त वर्ष को यवसु कर भरणि को आज्ञा दी ॥४९॥ अश्वत्थ से भरणी में करके और अग्नि को गया विधि के अनुसार मत्थन कर हे नराधिप । तुम उससे यजन करके आप हमारे लोह को प्राप्त हो जाओगे । अग्नि का मन्थन करके उस राजा ने उसके तीन भाग करके यजन किया था ॥४९॥ वह महारथ गन्धर्व बहुत प्रकार के यज्ञों के द्वारा यजन करके वेता में उसकी सलोकता को प्राप्त हुआ और वास के लिये योग्य बना था । पहिले एक अग्नि या राजा ऐश ने उसे तीन बना दिया था ॥४९॥ इस प्रकार के प्रभाव वाला वह राजा ऐश हुआ है । हे द्विज श्रेष्ठो ! राजा ऐश महर्षियों के द्वारा अलङ्कृत और परम पुण्य देश में हुआ था ॥४९॥ वह पहाड़ यक्षवाला भूपति यमुना के उत्तर के तट पर प्रतिष्ठान में प्रवास में राज्य किया करता था अर्थात् उसने अपनी राजधानी प्रमाण को बनाया था ॥४९॥ उसके इन्द्र के समान रौशस्वी छै पुत्र हुए थे जोकि गन्धर्वों के लोक में विदित थे । उनके नाम—आयु—धीमान्—अमावसु—विश्वायु—यतायु और गतायु थे जोकि उर्वशी के पुत्र थे अमावसु से समस्त इस विश्व को जीतने वाला राजा भीम उत्पन्न हुआ ॥४९-४९॥

धीमान् भीमस्य दायामो राजासीत्काञ्चनप्रभ ।

विद्वान्स्तु काञ्चनस्यापि सुहोत्रोऽभून्महाबल ॥५०॥

सुहोत्रस्याभवज्जह्नु केशिकामर्षसम्भवः ।

प्रतिगत्य ततो गङ्गा वितते यज्ञकर्मणि ॥५१॥

प्लावयामास त देश भाविनोयस्य दधानात् ।
 गङ्गाया प्लावित दृष्ट्वा यज्ञवाट समन्तत ॥१२॥
 मीढोत्रिवरद ऋद्धा गङ्गा सरस्तलोचन ।
 यस्य गङ्गा ज्वलेपस्य सद्य फलमवाप्नुहि ॥१३॥
 एतत् विफल सम्ब पीतमग्न्य करोम्यहम् ।
 राजर्षिणा तत् पीता गङ्गा दृष्ट्वा सुरध्वज ॥१४॥
 उपनिन्धुमहाभागा दुहितृत्वेन चाह्वनीम् ।
 यौवनाश्वस्य पीनीन्तु कावेरोच्छ्रव्त्वा रावह्व ॥१५॥
 युवनाश्वस्य क्षापेन गङ्गा येन विनिमये ।
 कावेरी सरिता य छौ जह्नु भार्यामनिन्दिताम् ॥१६॥
 जह्नु च दमित पुत्र सुहोत्र नाम धार्मिकम् ।
 कावेर्या जनयामास भजकस्तस्य चात्मज ॥१७॥

श्रीमान् श्रीम का वायाद अर्षि ॥ का कर्णवज्र राजा वा श्रीर काज्य

गङ्गा राजा का पुत्र महान् बलवान् तथा परम विद्वान् सुहोत्र नाम वासा कुपा
 वा ॥१॥ सुहोत्र का पुत्र कैलाश के नर से उत्पन्न होने वाला जह्नु नाम
 वाला हुआ । जिसके विस्तृत यह कर्म थे गङ्गा ने धाकर उस भाग को होने
 वाले प्रयोजन के दधान के कारण से पुरुष प्लावित कर दिया था । गङ्गा के
 द्वारा सब श्रीर से प्लावित यज्ञवाट को सुहोत्र के पुत्र जह्नु ने देता ॥१॥ १२॥
 बरव जह्नु गङ्गा पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ श्रीर उसके नेत्र को बाधने लगे होने
 थे—उसने कहा—हे गङ्गा । इस समस्त का तू तुरन्त ही फल प्राप्त कर ॥१॥
 यह तेरा जब सब धान कर मैं विफल कर देता हूँ । वेत्तियो ने उस राजर्षि के
 द्वारा गङ्गा को पीत अर्षि पात्र की ॥ देखा ॥१॥ पीत गङ्गा को देखकर
 महान् नाग वाले नुरर्षियो ने जह्नु जह्नु राजा की पुत्री उपनीत विद्या था ।
 जह्नु राजा ने यौवनाश्व की पीत्री कावेरी के साथ विवाह किया था ॥१॥
 युवनाश्व के जिन छाप से गङ्गा ने सब धरिता कावेरी ॥ जह्नु की अनिन्दित
 भार्या बनाया था ॥१॥ जह्नु राजा ने दमित पुत्र जोकि परम धार्मिक था
 एना सुहोत्र नाम वाला कावेरी न उत्पन्न किया था श्रीर उसका प्रसन्न भजक
 हुआ था ॥१॥

अजकस्य तु दायादो वलाकाब्धो महामथा ।
 वभूवुश्च गय शीलः कुजस्तस्मात्समज स्मृत ॥१८
 कुशापुत्रा वभूवुश्च चत्वारो वेदवर्चसः ।
 कुशाक्षि कुशनाभश्च धर्मोत्तरायणोवमु ॥१९
 कुजस्तम्बस्तपस्तेषु पुत्रार्थी राजसत्तमः ।
 पूर्णं वर्षतहस्रे वै शतक्रानुमपश्यत ॥२०
 तनुपतपस दृष्ट्वा सहस्राक्ष पुरन्दरः ।
 समर्थं पुत्रजनने स्वयमेवास्य शाश्वतः ॥२१
 पुत्रत्वं कल्पयामास स्वयमेव पुरन्दरः ।
 गाधिर्नामामवन्पुत्रः क्षौद्रिकः पाकशासनः ॥२२
 पौलस्त्यामवद्भार्या गाधिस्तस्यामजायत ।
 पूर्व कन्या महाभाषा नाम्ना सत्यवती गृभाम् ।
 ता गाधिपुत्रः कान्वाय ऋचीकस्य दवीं प्रभु ॥२३
 तस्या पुत्रस्तु वै भर्ता भार्गवो भृगुनन्दनः ।
 पुत्रार्थं साधयामास चर गाधेस्तपेय च ॥२४
 तथा चाहूय मुष्टिर्ऋचीको भार्गवस्तदा ।
 उपयोज्यश्चरय त्वया मात्रा च ते शुभे ॥२५

अजक का पुत्र महान् यशः वाता वलाकाब्ध हुआ था और उसके पुत्र
 गय-शील तथा कुशक हुए ॥१८॥ कुज के वेदवर्चस वाले कुशाक्ष-कुशनाभ-
 धर्मोत्तर और यशोवसु ये चार पुत्र हुए ये ॥१९॥ चत्वारो ये परमवर्ध कुश-
 स्तम्ब ने पुत्र की प्राप्ति का इच्छुक होते हुए पूरे एक सहस्र वर्ष तक तपस्या
 की थी और इन्द्र का दशन प्राप्त किया था ॥२०॥ सहस्र नेत्रों वाले इन्द्र ने
 उसको उग्र तपश्चर्या करने वाले को देखकर इसके पुत्र उत्पन्न होने में स्वयं ही
 शायित समय होमाया था ॥२१॥ इन्द्र ने स्वयं ही पुत्रत्व की कल्पना की थी
 और पाकशासन (इन्द्र) गाधि नाम वाता क्षौद्रिक पुत्र हुआ था ॥२२॥ पौल-
 स्त्या नाम वाली भार्या थी उससे गाधि उत्पन्न हुए । पहिले महान् भाग वाली
 सत्यवती नाम वाली उस शुभ कन्या को प्रभु गाधि पुत्र ने ऋचीक काव्य का

दी थी ॥६३॥ उससे मृगुनन्दन मरस करने वाले भायव पुत्र हुए । पुत्र के लिए गांधि से चर का साधन किया था ॥६४॥ उस समय सुभृति को बुलाकर श्वचीक मार्गव न रहा—हे भूमे ! इस चर का तुझे और तेरी माता को उपयोग करना चाहिए ॥६५॥

तस्या जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान् क्षत्रियपथ ।
 अथेय क्षत्रियमुद्ध क्षत्रियधर्मसूदन ॥६६॥
 तवापि पुन कल्याणि धृतिमन्त तपोधनम् ।
 शमात्मक द्विजस्य च चरेश विधास्यति ॥६७॥
 एवमुक्त्वा तु ता भार्यामृचीको मृगुनन्दन ।
 तपस्यभिरतो नित्यमरघ्य प्रनिवेश ह ॥६८॥
 गांधि सदारस्तु तदा क्षचीकाधमम्यगात् ।
 तीक्ष्णान्नाप्रसङ्ग न सुता श्रष्टु नरेश्वर ॥६९॥
 चरद्वय गृहीत्वा तु श्वचेः सत्यवती सदा ।
 भर्तु वचनमभ्यगा दृष्टा मात्रे न्यवेदयत् ॥७०॥
 माता तु तस्य दवेन दुहित्रे स्व चर ददौ ।
 तस्याश्वरुमभाज्ञानादात्मन सा चकार ह ॥७१॥
 अथ सत्यवती गम क्षत्रियान्तकर शुभम् ।
 धारयामास दीप्तेन वपुषा शौरदक्षना । ७२॥
 तमृचीवस्ततो दृष्ट्वा योगेनाप्यनुमृश्य च ।
 तदाव्रवीद्विजय च स्वा भार्या नरवरिणीम् ॥७३॥
 भर्तु सिद्धयति ते भद्र चरुव्यत्पासहेतुना ।
 जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्मातिवाक्छ ॥७४॥

उसमे ऐसा एक पुत्र उत्पन्न होगा जो क्षत्रियो मे परमयेव और दीप्तिमान् होगा जिसको मुद्ध म क्षत्रियो के द्वारा जीता नही जा सकता है वह क्षत्रियपथ सूदन होय ॥६६॥ हे कल्याणी ! तुम्हारी भी यह चरधृति वाला—तपोधन शम के स्वरूप वाला और द्विजो मे अद्भुत होगा ॥६७॥ इस प्रकार से भार्या से कहकर श्वचीक मृगुनन्दन नित्य ही उपस्था मे अभिरति रखने वाला

होकर घरण्य मे प्रविष्ट होगये थे ॥६८॥ उस समय गावि पत्नी के साथ ऋचीक के आश्रम मे गये । वह नरेन्द्र तीर्थयात्रा करने से प्रसङ्ग से अपनी पुत्री को देखने के लिये आश्रम मे पहुँचे थे ॥६९॥ सत्यवती ने ऋषि के चरुद्वय अर्थात् दोनों चरुओं को लेकर सदा म्नामी के वचन से अव्यक्त रहती हुई प्रसन्न होकर अपनी माता से निवेदन किया था ॥७०॥ माता ने देववशात् उस बेटो के लिए अपना चरु दे दिया और अज्ञान से उसके चरु को अपना कर लिया था ॥७१॥ इसके अनन्तर सत्यवती ने क्षत्रियों के अन्त तक कर देने वाला शुभ्रगर्भ धारण किया था जिसका शरीर शक्ति दीप्त था और उससे वह शोर ध्वनि वाली थी ॥७२॥ ऋचीक ने उसे देखकर और फिर योग के द्वारा भी विचार कर तब वह द्विशो मे अष्ट अपनी वरवर्णिनी भार्या से बोला ॥७३॥ हे भद्र ! चाक के व्यत्यास (उलट-वसट) के कारण से तुझे माता का चरु प्राप्त हुआ है धन तेरे कुरकर्म करने वाला अत्यन्त दास्य पुत्र पैदा होगा ॥७४॥

माता जनिष्यते वापि तथाभूत तपोधनम् ।

विष्व हि ब्रह्म तपसा मया तत्र समर्पितम् ॥७५॥

एवमुक्ता महाभागा भर्ता सत्यवती तदा ।

प्रसादयामास पति सुतो मे नेहशो भवेत् ।

ब्राह्मणपसवस्त्वन्य इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥७६॥

नैष सङ्कल्पित कामो मया भद्रं तथा त्वया ।

उग्रकर्मा भवेत् पुत्र पितुमस्तुश्च कारणात् ॥७७॥

पुन सत्यवती वाक्यमेवमुक्ताब्रवीदिदम् ।

इच्छेत्लोकानपि मुने सृजेथा. किं पुन सुतम् ॥७८॥

समात्मकमृजु भर्तं पुत्र मे दातुमर्हसि ।

काममेव विध पुत्रो मम स्यात्तु वद प्रभो ॥७९॥

मम्यन्यथा न शक्य वै कर्तुमेव द्विजोत्तम ।

तत प्रसादमकरोत् स तस्यास्तपसो वलात् ॥८०॥

पुन नास्ति विशेषो मे पौत्रे वा वरवर्णिनि ।

त्वया यदोक्त वचन तथा नद्रं भविष्यति ॥८१॥

दी धी ॥६३॥ उमम भृगुनन्दन भगवत् ररन वान भागव पुत्र हृष्ट । पुत्र क निष्ट
गाधि स चरु का माधन किया वा ॥६४॥ उम समम भृगुनि का भुवावर श्रुचीक
भागव न रहा—हे धुमे । हम चरु का तुझे धीर तरी माता को उपयोग करना
चाहिए ॥६५॥

तस्या जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान् क्षत्रियपथ ।

अथैव क्षत्रियमुद्ध क्षत्रियपथमूदन ॥६६॥

तवापि पुन कस्याणि भूतिमन्त तपोधनम् ।

गमात्मक द्विजथ स चरुच विधास्यति ॥६७॥

गवमुक्त्वा तु ॥ माय्यामृचीको भृगुनन्दन ।

तपस्यभिरतो नित्यमरथ्य प्रविशेत् ॥६८॥

गाधि सदास्तु तदा क्षत्रीकायमम्यवात् ।

तीक्ष्णवात्राप्रसङ्ग न सुता द्रष्टु नरेश्वर ॥६९॥

चरुचम गृहीत्वा तु श्रमेः सत्यवती सदा ।

भक्तु वचनमम्यवा दृष्टा मात्रे न्यवेदयत् ॥७०॥

माता तु तस्य एवेन दुहिने स्व चरु ददी ।

तस्याश्चरुमयानायादात्मने सा चकार ॥७१॥

अथ सत्यवती गम क्षत्रिमास्तकर शुभम् ।

चारयाभास बीप्तेन वपुषा धोरदक्षना । ७२

समृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाप्यनुमृष्य च ।

तदाश्रुवीद्विजय स स्वा भाम्या वरवर्णिनीम् ॥७३॥

मातु सिद्धयति ते भद्रे चरुचस्यासहेतुना ।

जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्मातिदास्य ॥७४॥

उसने ऐसा एक पुत्र उत्पन्न होना जो क्षत्रियो मे परमभद्र और दीप्ति
मान् होगा जिसको मुझ मे क्षत्रियो के हाथ जीता नहीं जा सकता है वह
क्षत्रियपथ सुदन होगा ॥६६॥ हे कस्याणी । तुम्हको भी यह चरुधृति माता—
तपोधन गम के स्वरूप वाली और द्विजो मे यह पुत्र होगा ॥६७॥ इस प्रकार
से नार्मा से कहकर श्रुचीक भृगुनन्दन नित्य ही उपस्था मे अभिरति रखने वाली

रेणुकायान्नु कामल्या तपोधृतिसमन्वित ।

धात्रीको जनयामास जमदग्नि सुदारुणम् ॥८७॥

सर्वविद्यान्तर्ग श्रेष्ठ धनुर्वेदस्य पारगम् ।

राम क्षत्रियहन्तार प्रदीप्तमिव पावकम् ॥८८॥

ओर्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्या महामना ।

जमदग्निस्ततो वीर्यज्जिज्ञे ब्रह्मविदा वरः ।

मध्यमश्च शुन शेष शुन पुच्छ कनिष्ठक ॥८९॥

विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथ स्मृतः ।

जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाह सवद्धन ॥९०॥

पट्टिने भृगु के रीढ़ और वैष्णव के वश के व्यत्यास होने पर दक्षिण अग्नि के धमन से जमदग्नि उत्पन्न हुए थे ॥८७॥ कुशिक नन्दन गांधि ने दामाद विश्वामित्र को प्राप्त कर ब्रह्मपियो के सहित ब्रह्मा से वृत्त होकर गया था ॥८४॥ यह सत्यवती परम पवित्र और सत्य के यत्न में परायण थी जोकि कौशिकी इतना नाम से प्रवृत्त यह महानदी कहलाई थी ॥८५॥ सरिताघो से श्रेष्ठ महान् भाग वाली कौशिकी परिस्तुत हुई थी । दक्षिण के वश में वैष्णु नाम वाला राजा हुआ था ॥८६॥ उसकी महान् भाग वाली कन्या कामली नाम वाली रेणुका थी । रेणुका कामलीमें आर्त्तिक जमदग्नि ने जोकि सप और धृति से समन्वित थे, सुदारुण की उत्पत्ति किया था ॥८७॥ जोकि समस्त विद्यागो का पारगामी—शेष और धनुर्वेद के परम पहिष्ठ वे जिनका नाम राम था तथा प्रवीण पावक (अग्नि) के समान एवं क्षणियों का हनन करने वाले हुए थे ॥८८॥ ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ, महान् मन वाले जमदग्नि ने सत्यवती से ओर्व ऋचीक के वीर्य से राम की उत्पत्ति किया था । और मध्यम शुन शेष तथा सबसे छोटा शुन पुच्छ था ॥८९॥ विश्वामित्र तो बहुत ही धर्मविषा थे और नाम से विश्वरथ कहे गये थे । भृगु के प्रसाद से कौशिक से वश के बहाने वाले उत्पन्न हुए थे ॥९०॥

विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुन शेषोऽभवन्मुनिः ।

हरिश्चन्द्रस्य यज्ञे तु पशुत्वे नियुत स वै ।

देवदत्त स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभवत् ॥९१॥

तस्मान् सत्यवती पुन जनयामास भगवन् ।

तपस्यभिरतन्धान्त जमदग्नि ऋमात्मकम् ॥८२॥

तेरी धाना ऐसा परम तपस्वी पुन पैदा करेगी जैन वही तप के द्वारा
ब्रह्म को समर्पित किया है ॥७३॥ इस प्रकार से अपने प्रति क द्वारा बरी ही
सत्यवती उस समय पनि को प्रसन्न करने लगी कि मेरा पुत्र इस प्रकार का धर्म म
लेवे । अन्य ब्राह्मणपुत्र है इस प्रकार से इसे गये मुनि बोले ॥७६॥ हे भते ।
इस प्रकार की यह इच्छा मैने तथा तुने कभी नहीं की थी । उपव्रत करने वाला
पुन पिता और माता के कारण से प्रेमा है ॥७७॥ फिर इस प्रकार न वही
यह सत्यवती यह वचन बोली—हे मुने । इच्छा करते हुए तो लोगों का भी
पूजन करते हैं फिर पुन के विषय म क्या बात है ॥७८॥ हे स्वामिन् । सीधा
और तम स्वरूप वाला पुन मुझे देने के योग्य है । हे प्रभो । इच्छानुकूल इस
प्रकार का पुन मेरा हो जावे प्राप ऐसा कह ॥७९॥ हे द्विजोत्तम । मुझे
अन्यथा नहीं किया जा सकता है । इसके अनन्तर तप क बल से सत्ते उस पर
प्रसन्नता की थी ॥८०॥ हे वरदक्षिणि । मेरे पुत्र यवबा धीन म विराजता नहीं
है । तुने जैसा कहा है हे भद्र । वसा ही वचन होगा ॥८१॥ इससे सत्यवती ने
तप में अभिरति रखने वाला—दान्त और मयात्मक जम वि भगव पुत्र को
जन्म दिया का ॥८२॥

भृगोऽब्रुवन्पयसि रौद्रवध्नायवो पुरा ।

यमनाद् ध्नावस्थाम्नेजमदग्निरजायत ॥८३॥

विश्वामित्र तु दायद गाधि कुक्षिकन्दन ।

प्राप्य ब्रह्मर्षिसंहितो (सन्विता) जगाम ब्रह्मरुद्रा वृत ॥८४॥

सा हि सत्यवती पुण्या सत्यवतनरायणा ।

कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तव महानदी ॥८५॥

परिस्नुता महाभागा कौशिकी सर्वास्ता वरा ।

इध्वाकुवणे त्वभवत्सुवेद्युर्नाम पार्थिव ॥८६॥

तस्या कन्या महाभागा कामली नाम रेगुका ।

रेणुकयात्नु कामलया तपोधृतिममन्वित ।

धार्चिका जनयामास जमदग्नि सुदायणम् ॥८७॥

सर्वविद्यान्तम थोष्ठ धनुर्वेदस्य पारगम् ।

राम धारियहन्तार प्रदोममिव पावकम् ॥८८॥

श्रीध्वस्थेवगृचीकस्य सत्यवत्या महामना ।

जमदग्निस्ततो वीर्याब्जजे ब्रह्मविदा वर ।

गध्यामश्च शुन शेफ. शुन पुच्छ कनिष्ठक ॥८९॥

विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथ स्मृत ।

जज्ञ भृगुप्रसादेन कौशिकाद्भवत्तम ॥९०॥

पक्षिों भृगु के शीर श्रोत्र वैष्णव के जह 'ह' व्यत्यास होने पर उद्गुणव
अग्नि के यमन से जमदग्नि उत्पन्न हुए थे ॥८७॥ कृत्स्नक नन्वन गाधि ने वामाद
विश्वामित्र को प्राप्त कर ब्रह्मणियो के सहित ब्रह्मा से धृत होकर गया था ॥८४॥
पह सत्यवती परम पतिन श्रोत्र साथ के यज्ञ में परायण वी जोकि कौशिकी इस
नाम से पशुत भत्त महानवी कहलाई थी ॥८५॥ सरिताशो से श्रेष्ठ महाव् भाग
वागी कौशिकी परितुत हुई वी । इक्ष्वाहु के वंश में वैशु नाम वाला राजा
हुआ था ॥८६॥ उसकी महाव् भाग वाली कन्या नामकी नाम वाली रेणुका
थी । रेणुका कामाग्रेमे धार्चिक जमदग्नि ने जोकि तप शीर धृति से समन्वित थे,
मुयाएणु को उत्पन्न किया था ॥८७॥ जोकि समस्त विद्याओं का पारगामी—
शेष शीर धनुर्वेद के परम पण्डित थे जिनका नाम राम था तथा प्रदीप्त पावक
(अग्नि) के समान एव क्षत्रियो का हनन करने वाले हुए थे ॥८८॥ प्रह्वेक्षाशो
में श्रेष्ठ, महाव् मन वाले जमदग्नि ने सत्यवती में शीर्ष अचीक के वीर्य से राम
को उत्पन्न किया था । और गध्याम शुन शेफ तथा सबसे छोटा शुन पुच्छ था
॥८९॥ विश्वामित्र तो बहुत ही धर्मात्मा थे शीर नाम से विश्वरथ रहे गये थे ।
भृगु के प्रसाद से कौशिक से यज्ञ के बढ़ाने वाले उत्पन्न हुए थे ॥९०॥

विश्वामित्रस्य पुत्रतु शुन शेफोऽभवन्मुनि. ।

हरिश्चन्द्रस्य यज्ञे तु पशुत्वे निवृत्त स वै ।

देवर्द्धस्य स वै यस्माद् वरातस्ततोऽभवत् ॥९१॥

विश्वामित्रस्य पुत्राणां गुणगणोऽग्रेण स्मृतः ।

मधुच्छन्दो नमश्च व कुतदेवो घ्न वाष्टमी ॥६२॥

कच्छप पूरणश्च व विश्वामित्रसुतास्तु व ।

तेषां गोत्राणि बहुधा कौशिकानां महात्मनाम् ॥६३॥

पाणिना देवराताश्च याज्ञवल्क्या समपरा ।

उदुम्बरा उदुम्बलानास्तारका यममुच्यता ॥६४॥

लोहिण्यो रेणवश्च व तथा कारीषवः स्मृताः ।

वज्रव पाणिनश्च व ध्यानजप्यास्तथैव व ॥६५॥

गालावत्या हिरण्याक्षा स्यङ्कृता गालना स्मृताः ।

देवला यामवृताश्च गालङ्गायनवाप्ससा ॥६६॥

वदाति वादराश्रान्ये विश्वामित्रस्य धीमतः ।

श्रुष्यन्तारविवाह्यास्ते बहुवः कौशिका स्मृता ॥६७॥

कौशिकासोऽथ माश्च व तयान्ये सधवायनाः ।

पौरोरवस्य पुण्यस्य ब्रह्मर्षे कौशिकस्य तु ॥६८॥

विश्वामित्र के पुत्र कुन छेक मुनि हुए थे । वह राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ में पशुत्व में नियुक्त किये थे । देवों के द्वारा यह दिया गया था इनसे तब देवराज हुए थे ॥६१॥ विश्वामित्र के पुत्रों में कुन छेक सबसे बड़ा कहा गया था । मधु मच्छन्द और नव कुतदेव मुवाहक—कच्छप और पूरण ये भव विश्वामित्र के पुत्र थे । उन महाना कौशिकों के बहुत प्रकार के योग हैं ॥६२ ६३॥ पाणिन—देवरात—याज्ञवल्क्य—समपरा—उदुम्बर—उदुम्बलान—तारक—यममुच्यत—लोहिण्य—रेणव—कारीषव—वज्रव—पाणिन—ध्यान जप्य—गालावत्य—हिरण्याक्ष—स्यङ्कृत—गालव—देवला—यामवृत—गालङ्गायन—वाप्ससा और वादर ये धीमान् विश्वामित्र के पुत्रों के गोत्र कहे गये हैं । वे अन्य श्रुति के विवाह के योग्य बहुत कौशिक कहे गये हैं ॥६४ ६५ ॥ ६७॥ पौरोरव पुण्य ब्रह्मर्षि कौशिक के कौशिका सोम्य तथा अन्य सधवायन हैं ॥६८॥

हपद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रात्तथाष्टकः ।

अष्टकस्य सुतो यो हि प्रोक्तो बह्वृगणो मया ॥६९॥

किं लक्षणो न धर्मेण तपसेह श्रुतेन वा ।
 ब्राह्मण्य समनुप्राप्त विश्वामित्रादिभिर्नृपै ॥१००॥
 येन येनाभिधानेन ब्राह्मण्य क्षत्रिया गता ।
 विशेष ज्ञातुमिच्छामि तपसा दानतस्तथा ॥१०१॥
 एवमुक्तस्ततो वाक्यमब्रवीदिदमर्थवत् ।
 अभ्यायोपगतैर्ब्रह्मैराहृत्य यजने धिया ।
 धर्माभिकाक्षी यजते न धर्मफलमश्नुते ॥१०२॥
 धर्मं चैत समाख्याय पापात्मा पुण्यधम ।
 ददाति दान विप्रेभ्यो लोकाना दम्भकारणात् ॥१०३॥
 जप कृत्वा तथा तीव्र धनलोभाभिरकुश ।
 रागमोहान्वितो ह्यन्ते पावनार्थं ददाति य ॥१०४॥
 तेन दत्तानि दानानि अफलानि भवन्त्युत ।
 तस्य धर्मप्रवृत्तस्य हिंसकस्य दुरात्मन ॥१०५॥
 एव लब्ध्वा धन मोहाद्विदतो यजतश्च ह ।
 सकलिष्ठकर्मणो दान न तिष्ठति दुरात्मन ॥१०६॥

विश्वामित्र से उपदृष्टी का पुत्र अष्टक हुआ । अष्टक का जो सुत था वह जह्नुगण में कह दिया है ॥६६॥ श्रुतिमी ने कहा—विश्वामित्र दावि राजाभो ने किम लक्षण वाले धर्म के द्वारा, तपस्या से अथवा श्रुत से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था ॥१००॥ जिन-जिन अविधान से क्षत्रिय लोग ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए थे, तप के द्वारा या दान के द्वारा हुए उसके विशेष को जानने की इच्छा है ॥१०१॥ इन प्रकार से कहे गये वे इनके पश्चात् यह धर्म से युक्त वाक्य बोले— अभ्याय से उपगत ब्रह्मों को लाकर उनसे यजन करने में जो बुद्धि से धर्म का इच्छुक होकर यजन किया करता है वह धर्म का फल नहीं प्राप्त करता है ॥१०२॥ इनको धर्म कहकर जो पापात्मा अवम पुण्य लोको को दम्भ दिखाने के कारण से विप्रों को दान दिया करता है ॥१०३॥ धन के लोभ से निरकुश होकर तथा तीव्र तप करके राग और मोह से युक्त होता हुआ धन में पावन होने के लिये जो दान देता है ॥१०४॥ उसके द्वारा दिये हुए दान विफल होजाया करते हैं ।

कथं धन्वन्तरिर्द्द्वौ मानुषेभ्यो जज्ञिवान् ।

एतद्वदितुमिच्छामस्ततो ब्रूहि प्रिय तथा ॥८॥

श्री सूतजी ने कहा—वे महान् बनवान् महान् आत्मा वास पाँच ॥ पुन
 वे । स्वर्गानु के पुन विप्र नृप ज्ञा से उत्पन्न हुए थे ॥१॥ उनमें पुन धर्म बाना
 प्रथम न हुआ था । महान् मण बाना ॥ मृद्धा मन्त्र सुतहोत्र हुआ ॥२॥ सुतहोत्र
 के दायाद परम धार्मिक तीन हुए थे । बास और लून दो ही थे थे तथा तृतीय
 प्रभु पृथग्भव हुआ था ॥३॥ सुतमन्त्र का भी पुन धुनक हुआ जिसका कि धीनक
 हुआ था । बाह्यरु—सन्निध—वय और बृद्ध इनके वक्ष म हे द्विजाण । अपने
 विभिन्न कर्मों के द्वारा उत्पन्न हुए थे । प्रलक पुन आहिषेय का और उसका पुन
 चरण हुआ था ॥४॥ धीनक और आहिषेय थे राजा धर्म से उत्पन्न द्विजाति
 थे । कथाका दायाद—राष्ट्र तथा दीक्षतपा पुन हुए ॥५॥ दीक्षतपा का धर्म और
 इसके धन्वन्तरि विद्वान् धन्वन्तरि हुआ जो तपसे महान् एवं सुन्दर तेज बाला
 धीमान् बृद्ध न उत्पन्न हुआ था । इसके धन्वन्तरि अग्निवृन् ने फिर श्री सूतजी से
 यह वाक्य बोले ॥६॥ अग्निमी ने कहा—वे धन्वन्तरि न अनुप्यो म कस महर्षि
 जन्म लिया था । हम लोग यह जानना चाहते हैं जो आप यह प्रिय बात कृपा
 करके बताइये ॥७॥

धन्वन्तरे सम्भवोऽयं यथाभिह व द्विजा ।

स सम्भूत समुद्रान्ते भक्ष्यमानेऽमृतं पुरा ॥८॥

उत्पन्न सकलात् पूर्वं सन्वत्तत्र श्रियावृत ।

सन्वत्ससिद्धकाय त दृष्ट्वा विष्टम्भित स्थित ।

अजस्त्वमिति होवाच तस्मादबस्तु स स्मृत ॥९॥

अज प्रोवाच विष्णु त तनयोऽस्मि तव प्रभो ।

विषत्स्व भाग स्थानश्च मम लोके सुरोत्तम ॥१०॥

एवमुक्त स दृष्ट्वा तु तथा प्रोवाच स प्रभुः ।

कृतो यज्ञविभागस्तु यज्ञियहि सुरैस्तथा ॥११॥

वेदेषु विधियुक्तश्च विधिहोत्र महर्षिभि ।

न शक्यमिह होमो न तुल्य कर्तु कदाचन ॥१२॥

अर्वाक्सुतोऽसि हे देव नाममन्त्रोऽसि वै प्रभो ।
 द्वितीयायान्तु सम्भूत्या लोके ख्यातिङ्गमिष्यसि ॥१४॥
 अणिमादिपुता सिद्धिर्गर्भस्थस्य भविष्यति ।
 तेनैव च शरीरेण देवत्व प्राप्स्यसि प्रभो ।
 आहमन्त्रैर्घृतैर्गन्धैर्यस्यन्ति त्वा द्विजातय ॥१५॥
 अथ च त्व पुनश्चैव आयुर्वेद विधास्यसि ।
 अचक्ष्यम्भावी ह्यर्थोऽयं प्राग्दिष्टस्त्वञ्जयोनिना ॥१६॥
 द्वितीयं द्वापरं प्राप्य भविता त्व न सहाय ।
 तस्मात् तस्मै वर दत्त्वा विष्णुरन्तर्दधे तत ॥१७॥
 द्वितीये द्वापरे प्राप्ते सौनहोत्रं स काशिराट् ।
 पुत्रकामं स्तपस्तेपे नृपो दीघतपास्तथा ॥१८॥

श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजभण ! यहाँ पर धन्वन्तरि का यह जन्म सुनो ! वह पहिले समुद्र के लिये समुद्र का मन्थन करने पर समुद्र के मध्य से उत्पन्न हुए थे ॥१६॥ सबसे पूर्व और सर्व प्रकार से श्री से आवृत वह उत्पन्न हुए थे । सब प्रकार से ससिद्ध कामा वाले उनको देखकर अब विहम्भित होगये थे । आप भज हैं—मह बोले—इस कारण से वह भज कहे गये थे ॥१७॥ अथ उन विष्णु से बजे—हे प्रभो ! मैं आपका पुत्र हूँ । हे पुरो मे उत्तम ! आप लोक मे मेरा स्थान और भाग का विधान कर दें ॥१८॥ इस कारण से कहे गये वह प्रभु देखकर इस तरह से बोले—यज्ञिय पुरो के द्वारा यज्ञ का विभाग किया गया है ॥१९॥ वेदो मे विधि से युक्त और विधिहोत्र महर्षियों के द्वारा यहाँ पर होम कभी तुल्य नहीं किया जा सकता है ॥२०॥ हे देव ! हे प्रभो ! आप अर्वाक्सुत हैं और नाम मन्त्र हैं । आप दूसरे जन्म मे लोक मे ख्याति को प्राप्त करेंगे ॥२१॥ आप अब गर्भ मे स्थित रहेंगे तभी आपको अणिमा प्रभृति से युक्त सिद्धि प्राप्त हो जायगी और आप उसी शरीर से देवत्व को भी प्राप्त करेंगे । द्विजाति गए सुन्दर मन्त्रो से—घृत से और गन्धो के द्वारा आपका यजन करेंगे ॥२२॥ इसके अनन्तर फिर आप आयुर्वेद की रचना करेंगे । यह अवश्य ही होने वाला अर्थ है जोकि पहिले ही पण्योनि ब्रह्माने आदिष्ट कर दिया है ॥२३॥ दूसरे द्वापर को

दिया था ॥२७॥ मृतजी ने कहा—राजा दिवादास ने जोकि राजपि था उस नगरी को प्राप्त कर वह महान् तेज वाला राजा स्थित भवति कती पु १ म निवास करता था ॥२८॥ इसी काम म दारा को करन वाले महेश्वर दवा के प्रिय कामना वाले वह सु १ क समीप मे वास करने वाले थे ॥२९॥ देव की धात्रा से लोपोधन विश्वरूप परिषद् पुनोक्त रूप निषयो के द्वारा महेश्वरी को लोप देते थे ॥३॥ उनसे महादेव ता प्रसन्न होत हैं विन्तु मेना प्रसन्न नहीं होती है । वह निश्च ही बेबी और देव की बुराई करती है ॥३१॥ येरे समीप मे मनावार है तुम्हारा स्वामी महेश्वर जो बरिष्ठ है । हे धनधे । यहाँ सभी साधारण ताड करते हैं ॥३२॥ माता के द्वारा उस प्रकार ने बाणी स बही गई देवी सती स्व भाव के कारण सहन करने मे समर्थ न हुई । बरदा ने स्मित करके उसके बाद हर के समीप मे गई थी ॥३३॥ विपाद से मुक्त मुख वाली देवी ने महादेव से कहा—हे देव । मैं यहाँ वास नहीं करूँगी थाप मुझे अपने घर पर ले बसिये ॥३४॥

तयोक्तस्तु महादेव सर्वास्तोकानवेक्ष्य ह ।
 वासार्थं रोचयामास पृथिव्या तु द्विजोत्तमा
 वाराणसी महातेजा सिद्धयेन महेश्वरः ॥३५॥
 दिवो दासेन ता ज्ञात्वा निविष्टाश्रयरी भव ।
 पार्श्वस्था स समाहूय गणेश क्षेमक त्वमीत् ॥३६॥
 गणेश्वर पुरीङ्गत्वा सून्या वाराणसी कुरु ।
 मृदुना चाम्पु पायेन प्रतिवीय स पार्थिव ॥३७॥
 तत्ता गत्वा निष्कुम्भस्तु पुरी वाराणसी पुरा ।
 स्वप्ने सन्दर्शयामास मद्भन नाम नापितम् ॥३८॥
 अ यस्तेऽहं करिष्यामि स्थान मे रोचयानघ ।
 मद्रूपा प्रतिमा कृत्वा नगय्यस्ते निवेशय ॥३९॥
 तथा स्वप्ने यथा दृष्टं सर्व कारितवान् द्विजा ।
 नगरीद्वायनुज्ञाप्य राजानन्तु यथाविधि ॥४०॥

पूजा तु महती चैव नित्यमेव प्रयुज्यते ।

गन्धं धूपं च मातृयश्च प्रेक्षणीयस्तथैव च ॥८१॥

हे द्विजोत्तमो ! उस प्रकार से कहे हुए महादेव ने ममस्त लोको को देवदर वास के लिए तृविध में महान् तेज वाले महेश्वर ने मिथिलेश वागणुमी को पनन्द क्रिया १ दिवोदाम के द्वारा उस नगरी को निरिष्ट जानकर उन महा-देव ने पास में स्थित खेमरु बलेश से कहा ॥८६॥ हे गरुडेश्वर ! गुरी में जाकर वाराणसी को धूम्य करदो । और मृदु अम्बुनाम गं वह पार्थिव मतिवीथ ही गया ॥८७॥ इसके अनन्तर निकुम्भ पुत्री वागणुमी में जाकर पहिले मद्भुत नाम नापित को स्वप्न में दिखाया था ॥८८॥ हे अनन्ध ! मैं तेरा अपे करूँगा, मेरे स्थान को गोपित करो । मेरे रूप बान्नी प्रनिमा को बनाकर नगरी के अन्त में निवेशित करदो ॥८९॥ हे द्विज कृन्ध ! स्वप्न में जैसा देखा था उग प्रकार का सत्र करा दिया था । और यथा विधि राजा को नगरी के द्वार पर अनुज्ञापित करके नित्य ही महती पूजा गन्ध-धूप-दीप और प्रेक्षणीय भात्मो के द्वारा की जाती है ॥९०-९१॥

अन्नप्रदानमुक्तं च अत्यद्भुतमिवाभवत् ।

एव सम्पूज्यते तत्र नित्यमेव शणैश्वर ॥८२॥

ततो वरसहस्राणि नगराणां प्रयच्छति ।

पुत्रान् हिरण्यमायूषि सर्व्वकामास्तथैव च ॥८३॥

राजस्तु महिषो थोष्ठा सुयशा नाम विव्रुता ।

पुत्रार्थमागता साध्वी राजा देवी प्रचोदिता ॥८४॥

पूजान्तु विपुला कृत्वा देवी पुत्रानमाचत ।

पुन पुनरवागम्य बहुश पूजकारणात् ॥८५॥

न प्रयच्छति पुत्रास्तु निकुम्भ कारणेन तु ।

राजा यदि तत् क्रुयेत तत् किञ्चित् प्रवर्त्तते ॥८६॥

अथ दीर्घेण कालेन क्रोधो राजानमाविशत् ।

भूत त्विद महाद्वारि नगराणां प्रयच्छति ॥८७॥

प्रीत्या वराह्य क्षतशो न विक्षित प्रवृत्त त ।

मायक पूज्यत नित्य नमसा मम च न तु ॥४८॥

तर्नाक्षितश्च बहुधा देया भ तन कारणात् ।

न ददाति च पुन मे कुण्डो बहुभाजन ॥४९॥

धृतो नार्हति पूजान्तु भस्वनात् न वशधन ।

तस्मात् नानापिप्यामि तस्व स्थान दुरात्मन ॥५०॥

एव तु स विनिश्चित्य दुरात्मा राज किंलिपी ।

स्थान गणपतस्तस्य नाशयामास कुमनि ॥५१॥

भजनमायतन दृष्ट्वा राजानमगमत् प्रभु ।

यस्माद्वृत्तेऽपराध मे त्यया स्थान विनागितम् ॥५२॥

और सप्त प्रदान से पुनो के द्वारा मत्स्यहनुत की तरह हागया था । इस प्रकार से वहाँ पर निरुद्ध हो गलेधर की बहुत अच्छी तरह पूजा की जाती है ॥४२॥ इसके पश्चात् नवरी की यह सब वरदान देती है । पुनो की-द्विरण्य की-धाम्यु को और समस्त प्रकार के कामों का वरदान देती है । राजा की महिषी (पटाभिषिक्ता रानी) भद्र की जाकि मुख्या इन नाम से विद्युत थी । राजा के द्वारा प्रेरित होकर ताभी रानी पुन के लिये वहाँ आई थी ॥४३॥ ४४॥ इसी न विपुल पूजा करके उसन पुन की याचना की थी और पुन के कारण से बहुत बार वह पुन पुन वहाँ आती थी ॥४५॥ विदुम्भ पुनो की तो कारणवश नहीं देता है । राजा यदि क्रुद्ध होगा तो इसके पश्चात् क्रुद्ध प्रवृत्त होगा ॥४६॥ इसके अनंतर तन्मये समय में राजा के हृदय में लोभ ने प्रवेश किया था । नारो के महा द्वार पर यह मूठ को देता है ॥४७॥ प्रीति से सबको वरदान देता है किन्तु क्रुद्ध होता नहीं है । मेरी नवरी में मेरे लोगों के द्वारा निरुद्ध हो यह पूजित भी किया जाता है ॥४८॥ मेरे कारण से देवी के द्वारा यह बहुत बार पूजित हुआ है किन्तु कुण्ड और बहुत भोजन करने वाला यह पुन नहीं देता है ॥४९॥ इसलिए मेरे द्वारा किसी भी प्रकार से यह पूजा करने के योग्य नहीं है । इससे इस दुरा मा के स्थान को मैं नष्ट कर दूंगा ॥५०॥ इस तरह से राजाओं में पापी दुष्ट उसने निश्चय करके बुद्धि वालों में उस वरुणपति के स्थान को नष्ट कर

दिया था ॥११॥ प्रभु अपने शायतन को भग्न हुआ देखकर राजा के पास आये कि जिससे बिना किसी अपराध के तूने मेरे स्थान को नष्ट करा दिया है ॥१२॥

अकस्मात् तू पुरी शून्या मवित्री ते नराधिप ।

ततस्तेन तु क्षाणेन शून्या वाराणसी तथा ॥१३॥

क्षप्ता पुरी निकुम्भस्तु महादेवमथानयत् ।

शून्या पुरी महादेवो निर्म्ममे परमात्मना ॥१४॥

तुल्या देवविभूत्यास्तु देव्याञ्च महात्मन ।

रमते तत्र वै देवी रममाणो महेश्वर ॥१५॥

न रति तत्र वै देवी समते गृहविस्मयात् ।

देव्या कीदृशीमोशानो देवो वाक्यमवाग्रवीत् ॥१६॥

नाहं देशम विमोक्षयामि अविमुक्त हि मे गृहम् ।

प्रहस्येतामयोषाञ्च अविमुक्त हि मे गृहम् ॥१७॥

नाहं देवि शमिष्यामि गच्छस्वेह रमाभ्यहम् ।

तस्मात्तदविमुक्त हि प्रोक्त देवेन वै स्वयम् ॥१८॥

एव वाराणसी क्षप्ता अविमुक्त च कीर्तितम् ।

यस्मिन् वसति वै देव सर्वदेवनमस्कृत ।

युगेषु त्रिषु वर्मात्मा सह देव्या महेश्वर ॥१९॥

अन्तर्धानि कर्त्तुं याति तत्पुरन्तु महात्मनः ।

अन्तर्हिते पुरे तस्मिन् पुरी सा वसते पुनः ॥२०॥

उद्देशे राजा से कहा है नराधिप । अवलोक लेरी यह पुरी शून्य हो

जायगी । ५० के पक्षान्त उस क्षाप से वाग्यक्षी पुरी शून्य हो गई थी ॥११॥

निष्ठुम्भ क्षाप से युक्त उस पुरी में महादेव को ले आये थे । महादेव ने उस शून्य

पुरी का परमात्मा के द्वारा निर्माण किया व ॥१२॥ वह पुरी देवों की विभूति

के तुल्य थी और महात्मा की देवी के भी तुल्य थी । वहाँ पर महेश्वर के रमण

करने पर देवी रमण करती है ॥१३॥ गृह के विस्मय के कारण से देवी को

रति प्राप्त नहीं होती है । देवी की श्रेष्ठ के लिए देव ईशान (महादेव) यह

वाच्य बोले ॥१४॥ मैं गृह तो त्याग नहीं करूँगा । मेरा घर अविमुक्त है ।

इसके अनन्तर हँस कर बोले मरा बृह भविष्युक्त हुआ है ॥१७॥ हे ऋषि ! मैं नहीं जाऊँगा तुम जामो में वहाँ रमण करता हूँ । इससे देव व स्वयं उस विमुक्त कहा है ॥१८॥ इस प्रकार स वाराणसी पुणे प्राय म युक्त है और वह भविष्युक्त कही गई है । जिस पुणे म समस्त दबो क द्वारा नमस्कृत-तीना यगो मे धर्मात्मा भदेभ्यन्देव देवी के साथ निवास किया करता हैं ॥१९॥ कतिपय म महान् धार्मा वाले वा वह पुर अन्तर्धान को प्राप्त हो जाता है और उस पुर के अन्तर्धान होने पर वह पुणे पुन बस जाती है ॥२०॥

एव वाराणसी क्षमा निवेश पुनरागता ।

भद्रथ प्यस्य पुत्राणा क्षतमुत्तमधन्विनाम् ॥२१॥

हत्वा निवेशयामास दिवादासो नराधिप ।

भद्रथ प्यस्य राज्यं तु तृप्तस्तेन वसीयसा ॥२२॥

भद्रथ प्यस्य पुत्रस्तु दुवमो नाम नामत ।

विबोधासेन धामेति धृणया स विवर्धित ॥२३॥

विबोधासाहपत्न्या वीरो जज्ञ प्रतद् न ।

तेन पुत्रेण बालेन प्रहृत तस्य व पुन ॥२४॥

वरस्यात महाराजा तदा तेन विधत्सता ।

प्रतद् नस्य पुत्रो द्वौ वत्सो गगन्ध विप्रूत ॥२५॥

वत्सपुत्रो ह्यलकस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मज ।

अलर्क प्रति राजर्षिर्वातिलोको पुरातनो ॥२६॥

पष्टिवपसहस्राणि पष्टिक्पशतानि च ।

युवा रूपेण सम्पन्नो ह्यलक काशिसत्तम ॥२७॥

लोपामुद्रा प्रसादेव परमायुरवाप्तवान् ॥२८॥

इस तरह प्राय युक्त [१] फिर निवेश को प्राप्त [२] भद्रथएय के उत्तम धनुषधारी सौ पुत्रों का हनन करके विबोधास राजा ने पुन इसे निवेशित किया था । उस बलवान् ने भद्रथएय के राज्य का हरण कर लिया था ॥२१-२२॥ भद्रथ एय का एक पुत्र नाम से दुवम था । विबोधास ने उसे बालक है—इस धृणा से छोड़ दिया था ॥२३॥ विबोधास से टफट्टी म अतदन नामक वीर पुत्र

धार्मिक हुआ था ॥७॥ मुकेतु का भी पुत्र धमरन्तु हुआ—एमी धृति है ।
 धमकेतु का दायद महारथ था यस्तु हुआ था ॥७१॥ मयन्तु का भी पुत्र प्रजभर
 बिभु नाम वाला हुआ था । बिभु का पुत्र मुविभु था और उसका पुत्र मुकुमार
 था ॥७२॥ मुकुमार का पुत्र का नाम धमरन्तु था व वरुण ही धार्मिक था ।
 धृष्टनेतु के दायद प्रजम्बर देखनेवाला हुआ था वसुधाव र पुत्र का नाम गाय
 प्रख्यात था । गाय की मयभूति और धीमान् धर्म का वास्य था ॥७४॥ उन
 दोनो के पुत्र सुन्दर धम के व वन करने वाले ग्राह्यन् धीर क्षत्रिय व वे बड़े
 विक्रम वाले तथा वसवान् एव सिंह वे समान पराक्रम वाले थे ॥७५॥ ये इतने
 काश्यप वत्सल्ये गये हैं धम रजि के भी समझ लो । भूमरुद्ध म धीपवान् रजि
 के पाँचवी पुत्र थे । मरु के भय होने वाला वह क्षत्र राजेय—इम नाम से विख्यात
 था ॥७६॥

तदा दवा सुरे युद्ध समुत्पन्ने सुदारणे ।
 देवाश्च वासुराश्च व पितामहमथाद्रुवन् ॥७७॥
 भावयोभगवान् युद्ध विजेता को भविष्यति ।
 ब्रूहि न सम्यसोकेन श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥७८॥
 मैषामर्षाय सन्नामे रजिरात्तायुध प्रभु ।
 योत्स्यते ते विजेष्यन्ति श्रीत्सोवाग्नाश्च सगय ॥७९॥
 रजिमतस्ततो लक्ष्मीर्मतो लक्ष्मीस्ततो धृति ।
 यतो धतिस्ततो धर्मो यतो धमस्ततो जय ॥८०॥
 तद् वा दानवा सर्वे ततश्च त्वा रजेजयम् ।
 अभ्ययुजयमिच्छन्तस्तवन्तो राजसत्तमम् ॥८१॥
 ते दृष्टमनस सर्वे राजान देवदानवा ।
 ऊचुरस्मज्जयाम त्व गृहाण वरकामु कम् ॥८२॥
 अहञ्छ ष्यामि नो युद्ध देवान् लक्ष्मणरोगमान् ।
 इद्रो मयामि धर्मात्मा तस्यो योत्स्वामि सयुगे ॥८३॥
 अस्माकमिद्र प्रह्लादस्तस्यार्थे विजयामहे ।
 अस्मिस्त समये राजस्तिष्ठथा देव नोऽदिते ॥८४॥

उस समय परम दास्य दैवामुर बुद्ध के उत्पन्न होने पर देवगण और असुरबृन्द इनके अनन्तर पितामह से बोले ॥७७॥ हे सर्व लोकेश ! भगवान् यतलब्धे कि हम दोनों के बुद्ध में कौन विजयी होगा—यह हम सुनना चाहते हैं ॥७८॥ ब्रह्माजी ने कहा—जिनके लिये सन्नाम में प्रभु रजि हृदिधार ग्रहण करने वाला होकर मुद्र करेगा वे तीन लोकों को जीत लेंगे—इसमें सन्देह नहीं है ॥७९॥ जहाँ रजि है वहाँ सद्यो है मौर जहाँ पर लक्ष्मी है वहाँ पर वृत्ति होती है । जहाँ पर वृत्ति है वहाँ धर्म रहता है और वहाँ धर्म है वही पर जय होती है ॥८०॥ तब तो देवता लोग और दानव सभी रजि की जय श्रवण कर जय की झण्टा करते हुए राजाओं में परम श्रेष्ठ रजि की स्तुति करते हुए बहो गये ॥८१॥ वे सब देव और दानव प्रसन्न मन वाले राजा हो बोले कि हमारे जय के लिये आप श्रेष्ठ धनुष ब्रह्मण करे ॥८२॥ रजि ने कहा—मैं इन्द्र जिनका अग्रगामी है ऐसे देवों को बुद्ध में नहीं जीतूँगा । धर्मात्मा इन्द्र होता है तब बुद्धभूमि में लड़ूँगा ॥८३॥ दानवों ने कहा—हमारा इन्द्र प्रह्लाद है । उसके लिये हम विजय प्राप्त करते हैं । हे राजन् ! इस समय में यदि तू के यहाँ न उठरिये ॥८४॥

स तथेति द्रुक्मनेव देवैरप्यभिचोदित ।

भविष्यसीन्द्रो जित्वेत देवं रपि निमन्त्रित ॥८५॥

जघान दानवान् सर्वान् समक्ष वप्यपाणिन ।

स विप्रनष्टा देवाना परमश्री श्रिय वशी ॥८६॥

निहत्य दानवान् सर्वान् व्याजहार रजि प्रभु ।

त तथा तु रजि तत्र देवैस्तह व्रतकृतु । ८७

रजिपुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वच ।

इन्द्रोऽसि राजन् देवाना सर्वेपालात्र सशय ।

यस्याहमिन्द्रपुत्रस्ते ह्याति यास्यामि शत्रुहन् ॥८८॥

स तु शक्रवच श्रुत्वा वन्धितस्तेन मायया ।

सयेत्येवाब्रवीद्राजा प्रीयमाण शतक्रतुम् ॥८९॥

तस्मिन्स्तु देवसहस्रे दिव प्राप्ते महीपती ।

दायावमिन्द्रादाजह्नु राचार तनया रजेः ॥९०॥

तानि पत्रशतान्यस्य तच्च स्थानं गभीरत ।

समक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम् ॥६१॥

ततः काने बहुतिथे समतीते महाबल ।

हृतराज्योऽश्वीच्छको हृतभागो बृहस्पतिम् ॥६२॥

बहू तथास्तु अर्थात् ऐसा ही होनेवा—यह कहना हुआ तथा देवों के द्वारा भी बहुत प्रेरित हुआ और देवों के द्वारा निमन्त्रित होता हुआ जीतकर इन्द्र होगा यह कहा गया था ॥६१॥ अथवाणि (इन्द्र) के समक्ष में उनमें समस्त राजाओं का हुक्म लिया था । देवों की विषय रूप से यह [६१] श्री को बस रखने वाला यह परम थी होगया ॥६२॥ समस्त राजाओं को मारकर [६२] रवि ने कहा वही उस प्रकार से रवि को देवों के सहित इन्द्र ने मैं रवि का पुत्र हूँ—यह कहकर फिर बचन कहे । हे राजा । आप समस्त देवों के इन्द्र हैं इसमें शक भी नहीं है । हे अश्वि । जिस तरह मैं इन्द्र पुत्र हूँ—यह व्याधि को प्राप्त करूँगा ॥६३॥ यह इन्द्र के बचन को सुनकर उनके द्वारा माया से बन्धित किया गया था । राजा ने तथास्तु—यह ही सत्य कर्तु (इन्द्र) को प्रसन्न करते हुए कहा ॥६४॥ उस राजा के जोकि देव के तुल्य था स्वर्ग में प्राप्त होजाने पर रवि के पुत्रों ने इन्द्र से समस्त आचार को ले लिया था ॥६५॥ इसके उन पाँचवीं पुत्रों यक्षों के पति इन्द्र के उक्त त्वान त्रिविष्टप स्वर्ग लोक को बहुत प्रकार से सक्रान्त कर लिया था ॥६६॥ इसके अनन्तर बहुत काल के व्यतीत होजाने पर महान् बल वाला राम के छिन्न जाने वाला धाम्यहीन इन्द्र बृहस्पति से जाकर बोला ॥६७॥

बदरीफलमात्रं व पुरोडाशं विषत्स्व मे ।

ब्रह्मर्षे मेन तिष्ठेयं तेजसाप्यावितस्ततः ॥६८॥

ब्रह्मन् कृशोऽयं निमना हृतराज्यो हृतासन ।

हृताजा दुर्बलो भूदो रजिपुत्रः प्रसीद मे । ॥६९॥

यद्यपि चोदितं शक्र त्वया स्या पूर्वमेव हि ।

नाभविष्यत् त्वत्प्रियाय नाकृतव्यं ममानघ ॥७०॥

प्रयतिष्यामि देवेन्द्र तद्धितार्थं महाब्रूते ।

यथा भगञ्च राज्यञ्च अचिरात् प्रतिपत्स्यसे ॥६६॥

तथा शक्र गमिष्यामि माभूत्ते विक्लव मन ।

तत् कम्मं चकारास्य तेज सबद्धं न महत् ॥६७॥

तेषाञ्च बुद्धिममोहमकरोद्बुद्धिसत्तम ।

ते यदा ससृता मूढा रागोत्पन्ना विषमिणा ॥६८॥

ब्रह्मद्विवश्च सवृत्ता हतवीर्य्यपराक्रमा ।

ततो लेभे सुरैश्चर्य्यमैन्द्रस्थान तथोत्तमम् ॥६९॥

हत्वा रजिसुतान् सर्वान्कामक्रोधपरायणान् ।

य इव पावनं स्थानं प्रतिष्ठानं शतक्रतो ।

शृणुयाद्वा रजेर्वापि न स दोरात्म्यमाप्नुयात् ॥१००॥

हे ब्रह्मर्षे ! मेरे लिए गहरी फल (जैर) के बराबर पुरोबल करो जिसमे मैं तेज से व्याप्यावित (वृत्त) होता हुआ रहूँ ॥६३॥ हे महान् ! मैं कृपा है—जवाब है—छिने हुए राज्य वाला और छिने हुए भोजन वाला हूँ । रजि के पुत्रों के द्वारा हन भोज वाला—दुर्बल तथा मैं मूढ किया गया हूँ । आप सुभ पर प्रसन्न होइये ॥६४॥ बृहस्पति ने कहा—हे इन्द्र ! यदि इस प्रकार से तेरे द्वारा मैं पहिले ही प्रेरित होता तो हे अनघ ! तेरे द्विम के लिये मेरा भक्तस्य न होता ॥६५॥ हे देवेन्द्र ! हे महान् क्षुति वाले ! उन तेरे हित के लिए मैं प्रयत्न करूँगा जिससे क्षीय ही तेरा भाग और राज्य प्राप्त हो जायगा ॥६६॥ हे शक्र ! उस तरह से मैं आऊंगा तू अपनी मन विक्लव पूर्ण मत करे । इसके पश्चात् इसके महान् तेज के बढ़ाने वाला कर्म किया था ॥६७॥ बुद्धि में परम श्रेष्ठ ने उनको बुद्धि का समोह कर दिया कि जिस समय से पुत्रों के सहित उत्पन्न राग वाले—मूढ तथा विषमर्मी होगये ॥६८॥ वे ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले और वीर्य तथा पराक्रम के नाश कर देने वाले होगये वे फिर इसके बाद देवों के ऐश्वर्य इन्द्र के स्थान को जोकि परमोत्तम था, प्राप्त कर लिया था ॥६९॥ कामवासना और क्रोध की भावना में तत्पर रजि के समस्त पुत्रों को मारकर जो यह पावन

स्थान और इन्द्र का प्रनिष्ठान था प्राप्त कर लिया था । रजि के इधे इतिहास को जो भी चाहे सुनता है वह अभी दुर्गत्या को प्राप्त नहीं होता है ॥१॥

प्रकृत्य ५५—व द्रवश कीर्त (२)

मरुतेन कथं कन्या गङ्गा दत्ता महात्मना ।
 किमोर्षाञ्च महात्मानो जाता मरुतवयका ॥१॥
 आहवन् त मरुत्सोममपकाय प्रजस्वरम् ।
 मासि मासि महातेजा पट्टिबस्मरान् मृष ॥२॥
 तन ते मरुत्स्यस्य मरुत्सोमेन तोषिता ।
 भक्षय्यान् ददु प्रीता सवकामपरिच्छिन्नु ॥३॥
 अप्र तस्य मरुत्स्यवमहोराने न क्षीयत ।
 काष्ठिषो वीर्यमान च सूर्यस्यादयनादपि ॥४॥
 मित्राज्योतिस्तु कन्याया मरुत्स्य च धीमत ।
 तस्माज्जाता महासत्त्वा धर्मज्ञा मोक्षदर्शिन ॥५॥
 सन्धस्य गृहधर्माणि वराम्य समुपस्थिता ।
 यतिधर्ममवाप्येह ब्रह्मभुजाय ये गता ॥६॥
 धनपायस्ततो जातस्तदा धम प्रवत्तवान् ।
 क्षत्रधमस्ततो जात प्रतिपद्मो महातपाः ॥७॥
 प्रीतपसनुतश्चापि सङ्ख्यो नाम विप्र ॥८॥
 सङ्ख्यस्य जय पुत्रो विजयस्तस्य जग्मिवान् ॥९॥
 विजयस्य जय पुत्रस्तस्य हर्षेन्दुत स्मृत ।
 हर्षेन्दुतस्ततो राजा सहदेव प्रतापवान् ॥१०॥
 सहदेवस्य धर्मात्मा अदीन इति विप्रुत ।
 अदीनस्य जयस्तेनस्वस्य पुत्रोऽय सङ्कति ॥११॥

श्रुतिगुरु ने कहा—ब्रह्मा मा मरुत ने राजा को कन्या कस ॥ २१ ॥

और महात्मा मरुत की कन्याएँ जो महात्मा आत्मा वाली थीं किन्तु प्रसार के बीर्य

वाली हुई थी ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—मरुत् नृप ने अन्न की कामना रखते हुए प्रजेभर उस सोम का बाह्वम किया था । महान् तेज वाले राजा ने मास—मास में अर्थात् प्रत्येक मास में साठ वर्ष पर्वन्त ऐसा किया था ॥२॥ इससे वे मरुत् सोम के द्वारा तोषित किये गये थे और परम प्रसन्न होते हुए उन्होंने समस्त कामनाओं का परिच्छेद अक्षय्य धन दे दिया था ॥३॥ उसका एकबार पकाया हुआ अन्न एक अहोरात्र में खीण नहीं होता है और सूय के उदयन से भी करोड़ों को धिया हुआ भी चाहे कभी नहीं खीण नहीं होता है ॥४॥ बुद्धिमान् मरुत् की कथा में मित्राज्योति और उससे मोक्ष के देखने वाले धर्मात्मा महा सत्त्व उत्पन्न हुए ॥५॥ वे गृह धर्मों का भली-भाँति त्याग करके वैराग्य को प्राप्त हुए ये महा पति धर्म को पाकर वे सब ब्रह्म के स्वरूप को पहुँच गये थे ॥६॥ इसके अनन्तर अनपाम उत्पन्न हुआ तब उससे वर्षी प्रवत्तमान् पैदा हुआ उससे फिर क्षत्रवर्म पैदा हुआ और उससे महान् तप वाला प्रति पक्ष ने जन्म ग्रहण किया था ॥७॥ पतिपक्ष का पुत्र भी सजय इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था । सजय के पुत्र का नाम जय था और उस जय के विजय नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥८॥ विजय के पुत्र का नाम जय था और उसके पुत्र का नाम ह्यन्धुत हुआ था ह्यन्धुत के पुत्र का नाम प्रताप वाला सहदेव राजा था ॥९॥ सहदेव के धर्मात्मा अदीन इस नाम से विश्रुत हुआ था । अदीन के पुत्र का नाम जय-सेन हुआ और उसके सकृति नामक पुत्र हुआ था ॥१०॥

सकृतेरपि धर्मात्मा कृतधर्मा महामया ।

इत्येते क्षत्रधर्माश्चो नहुषस्य निबोधत ॥११॥

नहुषस्य ■ दायादा पडिन्द्रोपमतेजस ।

उत्पन्ना पितृकन्याया विरजाया सहोजस. ॥१२॥

यतिर्ययाति स्यातिरायाति पञ्च तुदय ।

यतिष्येष्टस्तु तेषा वै ययातिस्तु ततोऽजर ॥१३॥

काकुत्स्थकन्या गा नाम लेभे पत्नी यतिस्तदा ।

सयार्तिर्भो क्षमास्याय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनि ॥१४॥

तेषां मध्ये तु पञ्चानां ययाति पृथिवीपतिः ।

देवयानिमुक्षन्तस्य सुता भार्यामवाप ह ॥११॥

शर्मिष्ठा मासुरी च ततया नृपपवरा ।

यदु च तुवसु च देवयानिष्यजायत ॥१२॥

इह ह्यनुच पूरुष शर्मिष्ठा वापपवरा ।

अजीजन महावीर्यान् सुतान् देवसुतोपमान् ॥१३॥

रथस्यस्म दही इह प्रीतिं परमभास्वरम् ।

प्रसक्तं काञ्चन दिव्यमक्षयौ च महेषुधी ॥१४॥

संस्कृति के पुत्र का नाम धर्मात्मा एवं महात्मा एवं वाला कृतकर्मा हुआ था । ये होने क्षण कम जाने हुए ये सब महर्ष के बच में जो उत्पन्न हुए थे उनको समझ लो ॥११॥ महर्ष के बचवाट से हुए थे जोकि इन्द्र के समान तेजस्वी थे और वे सब महर्ष शोक वाले पितृ कन्या विरथा थे उत्पन्न हुए थे ॥१२॥ जिनके नाम यनि-ययाति-ययाति-ययाति और पञ्च एवं तुल्य थे । उन सबमें यदि सबसे बड़ा था और ययाति उसके छोटा था ॥१३॥ उस का नाम वाली काकुत्स्थ भी कन्या को यति ने ली के रूप में प्राप्त किया था । ययाति मोक्ष के काम में स्थित होकर ब्रह्मवृत्त भुजि हो गया था ॥१४॥ उन पाँचों के बीच में ययाति जो था वह पृथिवी का स्वामी बना था । उसने उत्तम की पुत्री देवयानी को भार्या के रूप में प्राप्त किया था ॥१५॥ और मासुरी नृपवरी की पुत्री शर्मिष्ठा का प्राप्त किया था । देवयानी ने यदु और तुवसु को उत्पन्न किया था वापपवरी शर्मिष्ठा ने मुह्यधनु और तुल्य को जन्म दिया था जोकि पुत्र महर्ष दीय वाला एवं दह पना के समान थे ॥१६॥ उसके लिए परम प्रसन्न होने वाले भगवद् इन्द्र ने अच्युत भास्वर-सखत्त और काञ्चन दिव्य रथ प्रदान किया था तथा दो अक्षय महेषुधी देने थे ॥१७॥

युक्तं मनो जयद्वैर्येण कथा समुद्भूत ।

ततन रथमुष्येन जिनाय च ततो महीम् ॥१८॥

ययानिषु धि दुद्र पौ देवदानवमानवी ।

पौरवाणा नृपाणाञ्च मर्षेणा सा भवद्वय ॥१९॥

योयत्सुदेवप्रभय कोचो जनमेजय ।

कुरो बुधस्म गभरतु राज पारिक्षितस्तु ठ ।

जगाम स रथो नास्त्र क्षपाद्भाग्यं त्व धीमत ॥२१॥

गाम्यं रथं हि सुत याता स राजा जनमेजयः ।

बुधुं द्विगम्य गामास तोहगन्ध नराविषम् ॥२२॥

स तोहगन्धो राजपि परिणावधितस्ततः ।

गौरजानपदेरत्यक्तो न तेभे क्षमं कर्हिचित् ॥२३॥

तत रा दु स्रसन्तप्तो नागमत्साविद पवचित् ।

शशाप हेतुकृपि क्षण्य व्यधितस्तदा ॥२४॥

यह रथ भय के गमाम जेव जात सदा मे मुक्त था जियमे मन्त्रा रागु-
द्वय किया था । उसने उम मुक्त रथ के द्वारा पक्षी को जीत लिया था ॥२१॥
गामपि यवत्त और दानवा के द्वारा गृह में मरगन्ध कुपल था । पौरवा में और
राजागो मे सन्धि यह रथ हुआ था ॥२०॥ योत्सुदेव से उत्पन्न होन वाला
गौरा जनमेजय था । राज कृष्ण पुत्र और राजा पारिक्षित का यह रथ धीमान्
गाम्यं के साथ से नास के प्राप्त हुआ था ॥२१॥ उस राजा जनमेजय ने वाजक
भी अवस्था में बुधु द्वि होकर गाम के पुत्र तोहगन्ध नराविष की द्रिप्ता की थी
॥२२॥ यह राजपि तोहगन्ध क्षण-क्षण कोऊ हुआ पौरजग पक्षी के द्वारा
लाने हुआ कक्षी पर भी क्षान्ति का पर चरवाण को प्राप्त नहीं हुआ ॥२३॥
इसके अनन्तर दुःख से मरुत होते हुए कक्षी पर भी मविष का प्राप्त नहीं किया
था । पर असन्त व्यथा से मुक्त होकर उसने भरकय हेतुक भूमि में क्षाप व
दिया था ॥२४॥

द्वन्द्वोत्तो नाम विमवातो वांसी मुनिमदारवी ।

भोजयागारा चेन्द्रोत सौमको जनमेजयम् ।

अश्वमेधेन राजान पावनार्थं द्विजोत्तमः ॥२५॥

स तोहगन्धो अन्नक्षत्तम्यावसामेत्य ह ।

रा च दिव्यो रथस्तरगाहसोश्चोदितेस्तदा ॥२६॥

तत पादं तुष्टेन तेभे तस्माद्बृहद्वयः ।

ततो हत्वा जरासन्ध भीमस्त रथमुत्तमम् ।
 प्रददी वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दन ॥२७॥
 स जरा प्राप्य राजपिबयातिनद्रुपात्मज ।
 पुत्र ज्येष्ठ वरिष्ठश्च बहुमित्यब्रवीद्वच ॥२८॥
 जरावली च मा तात पत्नितानि च पर्यगु ।
 काव्यस्योग्नस चापात्र च तृप्तोऽस्मि यौवने ॥२९॥
 त्व यतो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।

जरा म प्रतिगृह्णीष्व त यदु प्रस्थुवाच ह ॥३०॥
 अनिषिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता ।
 सा च व्यायाममाध्या व न ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥३१॥
 जगमा बह्वा दम्पा पान भोजनकारिण ।
 तन्माज्जराभ मे राजन् ग्रहीतुमद्रुमुत्सहे ॥३२॥

जो उधार बुद्धि वाला मुनि इन्द्रोत्त नाम से विख्यात था उस इन्द्रोत्त
 धीर द्विजोत्तम दौनक ने जनमेजय राजा को पावन होने के लिये अरवमेघ यज्ञ
 करने के लिए योजित किया था ॥२३॥ उस सोहृदय ने उसके आवास में
 धीर उस रथ का बिनाश कर दिया था । धीर वह भिष्य रथ वैशिंपति बहुत ही
 धीर इनके घन-तर उसके गुरुत्व कुछ होने वाले इन्द्र ने प्राप्त किया था । इनके
 पश्चात् भीम न जरासन्ध को मार कर उस उत्तम रथ को कौरव नन्दन ने परम
 प्रसन्नता से वासुदेव को दे दिया था ॥२६॥ वह राजपि पिबयाति नद्रुप का
 वृद्धावस्था का प्राप्त कर अपने ज्येष्ठ पुत्र वरिष्ठ पुत्र यदु से यह वचन बोला
 ॥२८॥ हे तात ! यह वृद्धता की अवस्था न चाहे धीर स मुझे धेर लिया है
 धीर पतित बना दिया है मरी यह दम्पा जना काव्य के घाप गई है धीर
 मैं यौवन में अभी मृत नहीं हुआ हूँ ॥२९॥ हे मतो ! तुम इस जरा पश्चात्
 वृद्धता के सहित पाप का ग्रहण करो जब यदु ने उत्तर दिया ॥३०॥ मैंने ब्राह्मण
 की अनिषिष्ट भिक्षा भी प्रीति की है धीर वह व्यायाम क द्वारा ही लाध्य है
 घन मैं इस घाघरी वृद्धता का कुछ नहीं करूँगा ॥३१॥ इन वृद्धता न पान
 तथा भोजन करने का बहुर न लेव होता है इन कारण न है राजन् । मैं उन
 ग्रहण करने का उत्सहित नहीं होता हूँ ॥३२॥

हे ॥३७॥ क्रोधसे यक्त वह राजा इस प्रकार से कहकर अपने यदु को धाप दे दिया कि तू तिरों हृदय से उत्पन्न हुआ था और तू अपना जीवन मुझे नहीं दे रहा है ॥३८॥ हे मूढ ! तू इस कारण से राज्य का भागी नहीं होगा । हे तुवसो ! तू मेरी वृद्धता के साथ मेरे दास पापको ग्रहण कर ॥३९॥ तुवसु ने कहा—हे सात ! काम और मोचो का नाश करने वाली इस वृद्धता को मैं नहीं चाहता हूँ । पान तथा भोजन करने वाला हम जगम बहुत से दोष हुआ करते हैं इससे हे राजन् ! मैं इस जग को ग्रहण नहीं करना चाहता हूँ ॥४०॥

यस्त्व मे रृदयाज्जातो वय स्वन्न प्रयच्छसि ।

तस्मात् प्रजा समुच्छेद तुवसो तव वास्यसि ॥४१॥

असक्नीर्णा च धर्मैः प्रतिशोभवरेषु च ।

पिप्पितादिषु चान्तेषु मूढ राजा भविष्यसि ॥४२॥

गुरुदारप्रसक्तं पु तियम्भानिगतेषु वा ।

पशुधर्मेषु म्लेच्छेषु भविष्यति न सद्यः ॥४३॥

एवन्तु तुवसु शप्त्वा मयापि सुतमात्मनः ।

शमिष्ठाया मुत ब्रूह्मिद वचनमब्रवीत् ॥४४॥

ब्रूह्मो त्व प्रतिपद्यस्व वशकृपविनाशिनीम् ।

जरा वयसहस्रं च जीवनं स्वददस्व मे ॥४५॥

पूर्णे वयसहस्रं ते प्रतिदास्यामि जीवनम् ।

स्वच्छादास्यामि भूयोऽह पाप्मानं जरया सह ॥४६॥

न गजं न रथं नाश्वं जीर्णं मुक्तं न च क्षियम् ।

न सङ्गश्चास्य भवति न जरा तेन कामये ॥४७॥

यस्त्व मे रृदयाज्जातो वय स्वन्न प्रयच्छसि ।

तस्माद्ब्रूह्मो प्रियः कामो न ते सम्पत्स्यते क्वचित् ॥४८॥

मयापि ने कहा—तू मेरे हृदय से उत्पन्न हुआ है और फिर भी अपना जीवन मुझे देना नहीं चाहता है इसके हे तुवसु ! मेरी सन्तान का समुच्छेद हो जायगा ॥४९॥ मेरी प्रजा वय से प्रतिशोभ वरो मे असक्नीर्ण होगी । हे मूढ ! और धर्म पिप्पित्त आदि मे राजा होगा ॥५०॥ मुक्त की वारा मे प्रसक्त वयवा

तिर्यग्योनि मे जाने वाले तथा यज्ञ धर्मों मे एवं म्लेच्छों मे तु होया—इतने
 तनिक भी सन्धय नहीं है ॥४३॥ श्री सूतजी ने कहा—यथाति इस प्रकार से
 तुवंशु को शाप देकर जोकि अपना ही उसका पुत्र था फिर क्षमिष्ठा के पुत्र द्रुह्यु
 से यह वचन बोला ॥४४॥ हे द्रुह्यु ! तु इस मेरी वरुं तथा स्व के विनाश
 करने वाली जरा को एक सहस्र वर्ष के लिये ग्रहण करले और अपना जीवन
 मुझे दे दे ॥४५॥ एक हजार वर्ष पूरे होजाने के पश्चात् तुझे तेरा जीवन वापिस
 दे दूंगा और मैं फिर अपने पाप के सहित वृद्धता को वापिस ले लूंगा ॥४६॥
 द्रुह्यु ने कहा—जरासे जोलें पुत्र्य हाथी—बोझ—रथ और स्त्री किसी का भी
 भोग नहीं कर सकता है और इसका सङ्ग भी नहीं होता है अतएव मैं प्रायकी
 जरा को ग्रहण करना नहीं चाहता है ॥४७॥ यथाति ने कहा—जो तू मेरे हृदय
 से उत्पन्न हुआ है और इस समय मुझे अपना जीवन नहीं देता है इससे हे द्रुह्यु !
 कहीं भी तेरा प्रिय काम नहीं पूरा होगा ॥४८॥

नौप्लवोत्तरसन्धारस्तत्र नित्य भविष्यति ।

अराजभ्राजवशस्त्व तत्र नित्य भविष्यसि ॥४९॥

अनो त्व प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।

एव वर्षसहस्रन्तु चरेय यौवनेन ते ॥५०॥

और्णं शिशुवर दत्ते जरया ह्यशुचि सदा ।

न जुहोति स कालेऽग्निं ता जरात्तामिकामये ॥५१॥

यस्त्व मे रहदयाज्जातो वयं स्वन्नं प्रयच्छसि ।

अरादोषस्त्वयोक्तोऽयं तस्मात्ते प्रतिपत्स्यते ॥५२॥

प्रजा च जीवनं प्राप्ता विनशिष्यत्यस्तव ।

अग्निप्रस्कन्दनपरस्त्व चाप्येव भविष्यसि ॥५३॥

पूरो त्व प्रतिपद्यस्व पाप्मानञ्जरया सह ।

जरावती च मान्तात पलितानि च पर्ययु ॥५४॥

काव्यस्योजनसं शापान्तं च तृप्तोऽस्मि यौवने ।

कञ्चित्कालञ्चरेयं न विषयान् वयसा तव ॥५५॥

पूर्णे वयसहस्रं ते प्रतिदास्यामि यौवनम् ।

स्वस्व व प्रतिपत्स्यामि पाप्मानञ्चरया सह ॥१६॥

वहाँ पर नौकापुत्रव का सञ्चार निब होमा और वहाँ तू धराज धार
वह धारा निय ही रहेगा ॥१६॥ हे भनो । मेरे पाप को जरा के साथ वृ
ग्रहण करके । इस तरह एक सहस्र वय तक मैं तेरे यौवन से भान-द प्राप्त करछु
॥१६॥ भनू बोला—जरा से बीस व्यक्ति सवा जरा से थोड़ा नासक भ्रष्टाचिंता
विया करता है । वह समय पर अग्नि व हवन नहीं कर पाता है इसलिये मैं
ऐसी जरा की इच्छा नहीं करता हूँ ॥१७॥ ययाति बोला—तू मेरे शरीर एव
हवय से उत्पन्न हुआ है और मुझ अपने पिता को अपना यौवन नहीं देता
चाहता है । तुने जो यह जरा के शेष बतला दिये हैं । अच्छा तू इन दोषों को
प्राप्त करेगा ॥१८॥ तेरी सन्तति जब यौवन को प्राप्त होगी तो तब ही जाम्बी
और त भी अग्नि के प्रस्कन्दन में ही परायण रहेगा ॥१९॥ हे पुरो । तू मेरे
पाप को जरा के साथ ग्रहण करके हे तात । यह जरावली ने मुझको सब और
से पतित कर दिया है ॥२०॥ उसना कार्य के नाप से मैंने अपने यौवन में
पुति प्राप्त नहीं की है । मैं यौवन से कुछ समय तक चरछ करछ और विपरीत
का उपभोग करूँ ॥२१॥ एक सहस्र वय के पुरे होजाने पर तेरा यौवन तुझे
दे दूंगा और अपने पाप के साथ जरा को वापिस से छुया ॥२२॥

एवमुक्त प्रत्युवाच पुत्र पितरमस्तुता ।

यथानुमन्यसे तात करिष्यामि तथैव च ॥२३॥

प्रतिपत्स्यामि ते राजन् पाप्मानं चरया सह ।

शृद्वाणं यौवनं मत्तश्चर कामान् यथेप्सितान् ॥२४॥

जस्याह प्रतिच्छन्नो वयोरूपधरस्तव ।

यौवनं भवते दत्त्वा चरिष्यामि यथार्थम् ॥२५॥

पुरो प्रीतोऽस्मि भद्रन्ते प्रीतश्च द ददामि ते ।

सर्वकामसमृद्धा ते प्रजा राज्ये भविष्यति ॥२६॥

पुरोरनुमतो राजा ययाति स्वा जरा तत ।

सक्रामयामास तदा प्रसादाद्भूमवस्थ तु ॥२७॥

यीवनेनाथ वयसा ययातिर्नृपात्मज ।

प्रीतियुक्तो नरश्चेष्टश्चचार विषयान् स्वकान् ॥६२॥

यथाकाम यथोत्साह यथाकाल यथासुखम् ।

धर्माविरोधाद्वाजेन्द्रो यथाहन्ति स एव हि ॥६३॥

देवानतर्पयच्चर्जं पितृवृद्धाद्धैस्तथैव च ।

दीनाभ्यानुग्रहैरिष्टं कामेभ्य द्विजसत्तमान् ॥६४॥

अतिथीनन्तपानेभ्य वेद्याभ्य परिपालनै ।

भानृशस्येन शूद्राश्च दस्यून् सनिग्रहेण च ॥६५॥

धर्मैण च प्रजा सर्व्वा यथावदनुरञ्जयन् ।

ययाति पालयामास साक्षादिन्द्र इवापर ॥६६॥

श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार से कहे हुए पुत्र व सुरन्त ही पिता से कहा—हे तात ! धाम जो भी कहते हैं मैं उसी प्रकार से कहूँगा ॥६७॥ हे राजन् ! मैं आपके पाप को जरा के सहित प्राप्त कर लूँगा । आप मुझसे मेरा जीवन ग्रहण कर लीजिये और यथेष्ट विषयो का उपभोग करें ॥६८॥ मैं इस जरा से प्रतिच्छन्न होता हुआ तुम्हारी वय के रूप को धारण करने वाला आपको जीवन देकर यथाथ श्री भीति चरण कहूँगा ॥६९॥ ययाति बोला—हे पुरो ! मैं तुमसे बहुत ही प्रसन्न हूँ तेरा कल्याण हो, मैं प्रसन्न होकर तुम्हें वरदान देता हूँ कि राज्य में तेरी प्रजा समस्त कामनाओं से समृद्ध होगी ॥७०॥ श्री सूतजी ने कहा—पूरे से अनुमत होने वाले राजा ययाति ने इसके अनन्तर अपनी जरा को उस समय भार्गव के प्रसाद से सञ्जामित करा दिया था ॥७१॥ नहुष का पुत्र ययाति इसके अनन्तर जीवन की अवस्था से वह नरश्रेष्ठ परम प्रसन्नता युक्त होते हुए अपने विषयो के उपभोगों को करने लगा था ॥७२॥ यथा काम और उत्साह के अनुकूल—यथा समय और सुखानुसार धर्म के अनुरोध से वह राजेन्द्र जो भी योग्य होता है वही करता है ॥७३॥ यज्ञों के द्वारा देवों को तृप्त किया और थाद्यों के द्वारा पितरों को सन्तुष्ट किया था और दीनों पर उन्हें अनुग्रह करके तथा इष्टों की कामना को पूर्ण करके द्विज भेदों को सन्तुष्ट किया था ॥७४॥ अतिथियों को अन्न दान तथा पान के द्वारा—वैद्यों को परि-

पानन के द्वारा तथा लूटो की क्रूरता के बर्णन के द्वारा एव दम्पुधो को भरी
भीति निग्रह के द्वारा सन्तुष्ट किया करता था ॥६५॥ धर्म प्रवक्ता अपनी समस्त
प्रजा का धनुरध्वज करते हुए साक्षात् दूसरे इन्द्र के समान राजा ययाति ने
प्रजा का यथावत् पालन किया था ॥६६॥

स राजा सिंहविक्रान्तो युवा विषयगोचर ।
अविरोधेन धर्मस्य चत्वार सुखमुत्तमम् ॥६७॥
स मागमाण कामानामन्तर्दोषनिदशनात् ।
विश्वासहेतो रेमे व बभ्राणे नन्दने वने ॥६८॥
अपश्यत्स यदा सा व बद्धमाना नृपस्तदा ।
गत्वा पुरो सकाश व स्वा जरा प्रत्यपद्यत ॥६९॥
स सम्प्राप्य तु ताम् कामास्तुत शिशश्च पाणिम् ।
कार्त वपसहस्रं च सस्मार मनुजाधिपः ॥७०॥
परितङ्गधाम कालञ्च कसाकाष्ठास्तथैव च ।
पूण मत्वा तत कालं पुरु पुत्रमुवाच ह ॥७१॥
यथासुख यथोत्साह यथाकालमरिषम् ।
सेविता विषया पुत्र यौवनेन मया तव ॥७२॥
पुरो प्रीतोऽस्मि भद्र ते गृहाण त्व स्वयौवनम् ।
राष्ट्रञ्च त्व गृहाणोष त्व हि मे प्रियकृत्सुत ॥७३॥
प्रतिपेदे जरा राजा ययातिर्नृपात्मज ।
यौवन प्रतिपेदे च पुरु स्व पुनरात्मन ॥७४॥

यह राजा सिंह के समान विक्रान्त-युवावस्था में पूरा विषय गोचर था
किन्तु धर्म के विरोध न करने से उसने उत्तम सुख का चरण किया था ॥६७॥
यह कामो की भवदोषों के निवृत्ति से शीघ्र करता हुआ अपने विश्वास के
से वैभवा नन्दन वन में रमण करता था ॥६८॥ जब उस राजा ने उस काम
वासना को बढती हुई ही देखा तो उस समय पुरु के पास आकर अपनी वृद्धता
का पुन उसने प्राप्ति कर लिया था ॥६९॥ उस राजा ने उन कामो को भरी
भीति प्राप्त करके तुष्ट हुआ और शिष्ट भी बचा । उस मनुजों के स्वामी ने अपने

छागो के उपभोग में व्यतीत हुए एक मह्य उपाँ का स्मरण किया था ॥७०॥
 और काल को तथा कला एवं काष्ठाओं की परिग्रहना करके और उगी प्रकार
 ॥ काल को पूरा मानकर फिर अपने पुत्र पूर में बोला ॥७१॥ हे मरिचम ।
 मृग के अनुसार और यबोत्साह तथा काल के अनुकूल भनि तुम्हारे योवन के
 द्वारा हे पुत्र । रिषयो को रूय संजन किया है ॥७२॥ हे पूरो । मैं तुम से यदुत
 ही गगन वृथा न, तुम्हारा ऊरवाण हो, अब तुम अपने योवन को क्षपिण ग्रहण
 करो । और माथ ही दग राम को भी तुम ब्रह्मण करो, तुम ही मेरे प्रिय करने
 वाले पुत्र हो ॥७३॥ दग सरह नहुन के पुत्र ययाति राजा ने अपनी जरा को
 प्राप्त कर लिया था और पूर ने पुत्र अपना योवन प्राप्त कर लिया था ॥७४॥

प्रभिवेकतुकामश्च नृप पून पुत्र कनीयसम् ।

ब्राह्मणप्रमुखा यगर्षा इद वचनमब्रुवन् ॥७५॥

तस्य शुक्रम्य तप्तार देवयान्या सुत प्रभो ।

येऽहं यदुमतिक्रम्य पूरो राज्य प्रदास्यसि ॥७६॥

यदुर्ज्येष्ठस्तत्र युतां जातिस्तमनु तुर्वंसु ।

क्षमिष्टाया सुतो द्रुह्य स्ततोऽनु पूरुरेव च ॥७७॥

कथं ज्येष्ठानतिक्रम्य कनीयान् राज्यमर्हति ।

अतः सम्प्रापयामि त्वा धर्म्मं समनुपालय ॥७८॥

ब्राह्मणप्रमुखा यगर्षा सर्वे शृण्वन्तु मे वच ।

ज्येष्ठं प्रति यथा राष्ट्रं न देय मे कवचन ॥७९॥

माता पित्र्यैर्वचनकृतसं हि पुत्र प्रशस्यते ।

मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालित ॥८०॥

प्रतिगूल पितुर्यश्च न स पुत्र सता मत ।

य पृथ पुत्रवद् यश्च वर्त्तते पितृमातृषु ॥८१॥

यदुनाहमज्ञातस्तथा तुर्वंसुनापि च ।

द्रव्यं गा चानुना चैवमयवज्ञा कृता भृशम् ॥८२॥

अपने छोटे प्रिय पुत्र पुत्र को राज्याधिकार करने की इच्छा वाले राजा
 ययाति ने ब्राह्मण प्रमुखा सभी वण बाब यद वचन बोले ॥७५॥ हे प्रभो । शुरु

के नाती और देवयानी के पुत्र येष्ट यदु का अतिक्रमण करके पूरु को राज्य किस तरह श्राप दे दये ? ॥७६॥ **पुत्र** प्राप्त करना सबसे बड़ा पुत्र उत्पन्न हुआ था । उसके पश्चात् उससे छोटा पुत्रसु पुत्र है । गर्विष्ठा का पुत्र दृष्ट्यु बड़ा है उसके पश्चात् उससे छोटा पूरु है ॥७७॥ श्राप बड़े पुत्रों का सबका अतिक्रमण करके छोटे **पुत्र** को राज्य कसे देने को योग्य होते हैं ? इसलिये हम श्रापको सम्यक प्रकार से जान लेते हैं कि श्राप धर्म का पूर्ण पालन करे ॥७८॥ राजा वसति ने कहा—हे शाश्वत प्रभुओं ? श्राप समस्त वश करते सब मेरे वचन का अवश करे । जैसा कि ज्येष्ठ को राजा दिया जाता है किन्तु मुझे वह किसी प्रकार से भी नहीं देना है ॥७९॥ जो माता और पिता के वचनों का परिपालन करने वाला होता है वह पुत्र प्रथमसर्व भग्न माना जाता है । मेरे 'येष्ट' पुत्र यदु ने मेरे नियोग का अनुपालन नहीं किया था ॥८०॥ जो पिता के प्रतिकूल हो वह सज्जन पुरुषों में पुत्र नहीं माना है । पुत्र वह ही है जो पूरु की भाँति पिता और माता के विषय में व्यवहार किया करता है ॥८१॥ यदु ने तथा तुवन्तु इन दोनों ने मेरी अवज्ञा करनी की और छोटे दृष्ट्यु ने भी इसी प्रकार से मेरी बहुत ही अधिक अवज्ञा की थी ॥८२॥

पूरुणा तु कृत वाक्य मानिता विधेयत ।
 कनीयान् मम राजादो वरा येन धृता मम ।
 सबकाम सबकृत पूरुणा पुत्रकारिणा ॥८३॥
 शुक्राण च वरो दत्त काव्ये भोजनसा स्वयम् ।
 पुत्रो यस्त्वानुवर्त्तत स राजा ते महामते ॥८४॥
 भवतोऽनुभवोऽप्येव पूरु राष्ट्र अभिषिच्यताम् ।
 य पुत्रो गुणसम्पन्नो मातापित्रोर्हित सदा ।
 सवमहति नर ए कनीयानपि स प्रभु ॥८५॥
 मह पूरुर्द राष्ट्र य प्रिय प्रियकृतव ।
 वरदानेन शुक्रस्य न शक्य वक्तुमुत्तरम् ॥८६॥
 पौरजानपदस्तुष्टरित्युक्तो नाहपस्तदा ।
 अभिषिच्य तत पूरु स्वराष्ट्र सुवभात्मन ॥८७॥

दिशि दक्षिणपूर्वस्या तुर्वसु तु न्यवेशयत् ।
 दक्षिणापरतो राजा यदु श्रेष्ठ न्यवेशयत् ॥८८
 प्रतीच्यामुत्तगस्याश्च द्रुह्युश्चानुश्च तावुभौ ।
 सप्तद्वीपा ययातिस्तु जित्वा पृथ्वी ससागराम् ।
 व्यभजत् पञ्चधा राजा पुत्रेभ्यो नाहुपस्तदा ॥८९
 तैरिय पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्न्या ।
 यथाप्रदेश धर्मैर्धर्मैश्च प्रतिपाल्यते ॥९०
 एव विसृज्य पृथिवी पुत्रेभ्यो नाहुपस्तदा ।
 पुत्रसक्रामितश्रीस्तु प्रीतिमानभवन्नुप. ॥९१
 धनुर्न्यस्य पृथक्काञ्च राज्य-र्धं व सुतेषु तु ।
 प्री तमानभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु ॥९२

पूष ने मेरे वचन का पूर्य पालन किया और मेरा पिता की भाँति विशेष रूप से सम्मान किया था । मेरा यह छोटा पुत्र है किन्तु इसने मेरी आज्ञा मानते हुए मेरी वृद्धता को स्वयं भारण किया था । पुत्रकारी पूष ने मेरा समस्त काम किया और सभी भुद्ध किया है ॥८८॥ और उषाना काव्य शुरु ने स्वयं वरदान दिया था कि हे महामते ! जो पुत्र तुम्हारे अनुकूल व्यवहार करे वही राज्य का राजा होगा ॥८९॥ इस तरह से पूष आपका भी अनुमत है उसे राष्ट्र में अभि-पिक्त कर दो । जो पुत्र मुझ से सम्पन्न हो और सदा माता-पिता का हित करने वाला हो वह छोटा भी प्रभु समस्त ऊँचाएँ प्राप्त करने के योग्य होता है ॥९०॥ पूष इस राष्ट्र के प्राप्त करने को योग्य है जो आपके प्रिय करने वाला और आपका प्रिय है । शुक के वरदान से धन कोई भी उत्तर कहा नहीं जा सकता है ॥९१॥ उस समय वीरजान पदों के द्वारा पूषनया सन्तुष्ट होते हुए नहुष के पुत्र ययाति इन प्रकार से कहे गये और उन्होंने अपने पुत्र पूष को राष्ट्र में अभि-पिक्त करके दक्षिण पूव दिशा में तुवसु को निवेशित कर दिया था और दक्षिण से अग्न्य दिशा में राजा ने श्रेष्ठ यदु को निवेशित किया ॥९२॥ पश्चिम में और उत्तर में द्रुह्यु और अनु इन दोनों को भी निवेशित किया था । ययाति ने सागर के नहित सान द्वीप वाली पृथ्वी को जीत कर पाँच प्रकार से उसका

नहुष के पुत्र ने उस समय में पुत्रों के लिये विभाजन कर दिया था ॥८६॥ उनके द्वारा यह समस्त पृथ्वी विषम सात द्वीप हैं उन्हे पत्तनी (नगरी) के सहित प्रदेशों के अनुसार धर्म के ज्ञाताओं उन्हे धर्म पुत्रक प्राप्त कर दिया था ॥८७॥ इस प्रकार से नहुष के पुत्र यथाति ने उस समय पुत्रों के उत्तर पृथ्वी का भार छोड़कर पुत्रों में राज्यधर्म को सन्निहित करने वाला राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ था ॥८८॥ धनुष और पृथ्वी को त्याग कर तथा पुत्रों को राज्य को दीप कर वस्तुओं पर अपना भार छोड़कर राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ था ॥८९॥

अत्र गाथा महाराजा पुरा यीता ययातिना ।
 योऽभिप्रेत्याह्वन् कामान् कूर्मोऽङ्गानीव स्वयम् ॥९०॥
 न जातु काम काम नामुपभोगन शाम्यति ।
 हविषा तृष्णावत्मेव भूय एवाभिव्यदते ॥९१॥
 यत् पृथिव्या ग्रीहिव हिरण्य पञ्चव स्त्रिय ।
 भालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन् मुह्यति ॥९२॥
 यदा तु कुचते भाव सम्भूतेषु पाथकम् ।
 कम्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥९३॥
 यदा पराप्त बिभेति यदा त्वस्मान्न बिभ्यति ।
 यदा नेच्छति न हृष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥९४॥
 या दुस्त्यजा दुष्मतिमिया न जीयति जीर्यते ।
 दोषाप्राणान्तिको रागस्ता तृष्णान्त्यजत सुखम् ॥९५॥
 जीम्यन्ति जीवत केशा दन्ता जीयन्ति जीर्यते ।
 जीवितासा धनाशा च जीम्यतोपि न जीर्यति ॥९६॥
 यज्ञाकामसुख लोके यज्ञ दिव्य महत् सुखम् ।
 तृष्णास्य च सुखस्यैव कसा नार्हति पोकशीम् ॥९७॥

यहाँ पर पहिले यहान् राजा ययाति ने यह गाथा गाई है जिसने अभि प्राय करके सज्जन कामनाओं को धर्म के द्वारा अपने यज्ञों की भाँति सब ओरसे संकुचित कर लिया था ॥९८॥ कभी भी कामों के उपयोग करने उनका समन

नहीं हुआ करता है । कामा के उपभोग में तो उल्टे वे त्रिभिन्न ज्ञान में यमि भी भाँति और अधिक बढ़ जाता है अर्थात् विज्ञान प्रदीप्त होता है ॥६८॥ जो भी द्रव्य पृथिवी में मोक्ष-यव-गुण-पशु और स्त्रियों आदि है पर मय एक जो मूल मय पर्याप्त नहीं है—यह दयालु हृदय मोक्ष को प्राप्त नहीं होता है । ॥६९॥ जिन समय में समस्त भूतों में पायल भाव करता है और वह भी गर्म-मन और घन सभी प्रकार से किया करता है तब वह इस को प्राप्त करता है ॥७०॥ जब परते नहीं उठता है और स्वयं अपना परती नहीं उठता है । जब कोई भी दुष्ट नहीं करता है और न द्वेष करता है तब तब को प्राप्त करता है ॥७१॥ जो कुछ बुद्धि वालों के द्वारा दुष्टत्व से और जो स्वयं जीव होजाने पर जीवों नहीं होता है वह बोधोपार्जितिक राग के अर्थात् प्राणी के अन्त समय तब रहने शक्त राग होता है उस कृपा के त्याग करने वाले को ही गुण होता है ॥७२॥ जरा से जीव होने वाले गुण के लक्ष भी जीव होता है तथा साथ ही जग की जीवता में वस्तु जीव-जीवों को जाता करते हैं किन्तु वह जीवित रहने की लक्ष और न प्राप्त करने की लक्ष जीवों होजाने पर भी श्रुति की जीव नहीं हुआ करती है ॥७३॥ जो समय में कामोपभोग का सुग है और जो विषय महान् सुग है वे दोनों वृक्षा के त्याग के सुग की राजद्वी कला के बगैर भी नहीं है ॥१००॥

तदमुत्त्वा स राजर्षि सदार प्रस्थितो वनम् ।

शृगुत्तुर्न तपस्तप्त्वा तथैव च महायथा ।

पारामित्वा व्रतव्रत तथैव स्वर्गमाप्नुयात् ॥१०१॥

तस्य वक्षास्तु गन्धं ते पुण्या देवपिसरकृताः ।

येर्थासा पृथिवी कृत्वा सूर्यस्येव गमस्तिथिः ॥१०२॥

अथ प्रजावानायुध्यान् कीर्तिमाश्च भवेन्नरः ।

ययात्तेश्चरितं सर्वं पठञ्छब्धन् द्विजोत्तम ॥१०३॥

राजर्षि ने द्रव्य प्राप्ति से कहकर पत्नी के साथ वन में प्रस्थान कर दिया था । शृगुत्तुर्न वह तब करके गौर महान् वन वाले में वहाँ पर ही सी प्रती का पावन करके वहाँ पर ही स्वर्ग की प्राप्ति ही थी ॥१०१॥ उसके ये पावन

वक्ष है जो बड़े पुण्य है और देवर्षि के द्वारा सत्कार पाने वाले हैं जिनसे यह समस्त भूमण्डल व्याप्त हो रहा है जिस प्रकार सूर्य की किरणों से समस्त पृथ्वी व्याप्त होती है ॥१२॥ जो द्विज श्रेष्ठ राजा ब्यासि के इस समस्त परित्र को पढ़ना या सुनना है ॥॥ परम धन्य-प्राप्तावाला-पायु से युक्त और वह मनुष्य कीर्तिमान् होता है ॥१३॥

प्रकरण ५६ —कार्तवीर्य अर्जुन उत्पत्ति

पवोवक्ष प्रवक्ष्यामि यं हस्योत्तमतेजसः ।
विस्तरेणामुपूष्येण गदतो मे निबोधत ॥१॥
यतो पुत्रा बभूवुर्हि पन्थ देवसुतोपमा ।
सहस्रजिदध अष्ट क्रोष्टुर्नीरो जितो सधु ॥२॥
सहस्रजितसुत श्रीमान्छतजिन्नाम पार्थिव ।
शतजितसुता निख्यातास्त्रय परमधामिका ॥३॥
हैहयश्च हयश्च व राजा वेलुहयश्च य ।
हैहयस्य तु दायादो घम्मतस्य इति धृति ॥४॥
घम्मतश्चतु कीर्तितस्तु सनेयस्तस्य चारमव ।
सशवस्य तु दायादो महिध्मान्नाम पार्थिव ॥५॥
मासीन्महिष्मत पुत्रो मद्रश्च पथ प्रतापवान् ।
वाराणस्यविषो राजा कवित पूव एव हि ॥६॥
मद्रश्च पथस्य दायादो दुमदो नाम पार्थिव ।
दुमदस्य ततो घीमान् कनको नाम विश्रुत ॥७॥
कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुता ।
कृत वीर्य कार्तवीर्य कृतवर्मा तथैव च ॥८॥

श्री सूर्य बोले—अब मैं उत्तम तेज वाले—परम श्रेष्ठ ययु के वक्ष का वर्णन करूँगा और उसे विस्तार से तथा अनुपूर्वों के साथ बतलाऊँगा । कहते हुए

मुझसे उसे घाय लोभ जान लो ॥१॥ यदु के देव पुत्रों के समान धान पुत्र हुए थे । उनके नाम सहस्रजित्-वेष्ट-कोप्टु नीन-चित्त और तघु होते हैं ॥२॥ सहस्रजित् का पुत्र श्रीमान् शतविन् नाम वाला राजा हुआ था और शतजित् के परम धार्मिक तीन पुत्र विरयात हुए थे ॥३॥ जिनके नाम हैहय-हय और वेणु-हय ये थे । हैहय का पुत्र नर्मतस्व नाम वाला राजा हुआ था ॥४॥ उसके पुत्र धर्मतप-कीर्त्ति और सज्जय थे । सज्जय के पुत्र का नाम महिष्मान् राजा था ॥५॥ महिष्मान् के पुत्र का नाम भद्रधेय्य था जोकि बड़ा प्रताप वाला हुआ है । यह वाराणसी का स्वामी राजा था जिनको फि पहिले ही बता दिया है ॥६॥ भद्रधेय्य का दायाद दुम्ब नामक राजा था । फिर दुम्ब के धीमान् कनक नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था ॥७॥ कनक राज्य के चार लोक में परम प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके नाम कृतवीर्य-कार्तवीर्य-कृतवर्मा और श्रीपा कृत है ॥८॥

कृतो जातश्चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्यत्तिसोऽजुं न ।

जज्ञे बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृप ॥९॥

स हि वर्पायुत तपसा तप परमदुश्चरम् ।

दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽशिसम्भवम् ॥१०॥

तन्मै दत्तो वरान् प्रादाच्चतुरो भूरितेजस ।

पूर्व बाहुसहस्रन्तु स वज्रं प्रथम वरम् ॥११॥

अधर्मे धीममानस्य सद्भिस्तस्मान्निवारणम् ।

धर्मेण पृथिवीञ्जित्वा धर्मेणैवानुपालनम् ॥१२॥

सग्रामास्तु बहून् जित्वा हत्वा चारीन् सहस्रश ।

सग्रामे युद्धयमानस्य वध स्यादधिकाद्रणे ॥१३॥

सेनेय पृथिवी कृत्स्ना सप्तद्वीपा सपत्नता ।

सप्तोदधिपरिक्षिता क्षात्रेण विधिना जना ॥१४॥

तस्य बाहुसहस्रन्तु युद्धयत किल धीमत ।

योद्धो वज्रो रथश्चैव प्रादुर्भवति भावया ॥१५॥

दण्डयसहस्राणि तेषु द्वीपेषु सप्तनु ।

निरगला स्म निवृत्ता धूयन्ते तस्य धीमत ॥१६॥

सर्वे यना महाबाहोस्तस्यासन् भूगितेजस ।

सर्वे काञ्चनवेदीका सर्वे यूपश्च काञ्चन ॥१७॥

सर्वे देवमहाभागविमानस्वरसकृता ।

न अर्धैरप्सरोग्भिश्च नित्यमेवोपश्रामिता ॥१८॥

अनुप पुन उत उत्पन्न हुमा । इनने कृत धीय से अनुन उत्पन्न हुमा
मिसके एक सहस्र बाहु भी थी यह सातों द्वीपों का स्वामी राजा हुमा था । १६।
उस काजवीय ने उस हजार यूप तक अत्यन्त कठिन तपस्या करके अग्नि के पुत्र
रत्न भी भाराधना की थी ॥१७॥ उसके लिए रत्न ने अधिक तेज से युक्त चार
बरदान दिये । उसने सबसे प्रथम सहस्र बाहु के होवाने का वर बोला था । १८।
अधम में वीरमान का सत्पुत्रों के द्वारा उससे निवारण करना । धम से समस्त
पृथ्वी को जीतकर धम के द्वारा ही उसका अनुपासन करना । १९। बहुत से
सन्नामों को जीतकर और सहस्रों मनुष्यों का हनन करके अग्राम में युद्ध करते
हुए का रणभूमि में अधिक से वन होना ॥२०॥ उसके द्वारा यह पृथ्वी समस्त
सात द्वीप और पक्षियों से युक्त सातों समुद्रों से परिमित क्षत्र विधि से प्राप्त की
धीर इसका पालन किया था ॥२१॥ उस बुद्धिमान् के युद्ध करते हुए सहस्र
बाहु-वीर्यवान् और रथ भागा से प्रादुर्भूत होते थे ॥२२॥ ऐसा सुना जाता है
कि भीमान् उसने रत्न सहस्र वज्र रत्न सात द्वीपों में बिना ही प्रयत्न वाले निवृत्त
हुए थे ॥२३॥ महार् बाहु वाले उसके जोकि एक विशेष तेज वाला था समस्त
यग सुवर्ण की देशी वाले और समस्त सुवर्ण के निरचित धूरे से युक्त थे ॥२४॥
सब यग महार् भाग वाले देवों के द्वारा जोकि विमानों में स्थित होकर वहाँ आये
थ अलंकृत हुए थे तथा न यन और अप्सराओं के द्वारा तो वे नित्य ही शोभिन्
रहा करते थे ॥२५॥

तस्य राजा जगौ याथा गन्धर्वो नारदस्तथा ।

चरित तस्य राजर्षेमहिमान निरीक्ष्य च ॥२६॥

न नून कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति मानवा ।
यज्ञेर्दानेस्तपोमिश्रं विक्रमेण श्रुतेन च ॥२०॥
द्वीपेषु सप्तसु स वै खड्गी वरक्षरासनी ।
रथी राजाप्यनुचरोऽन्योगाञ्चैवानुदृश्यते ॥२१॥
अनष्टद्रव्यश्च वामीनः शोको न च विभ्रमः ।
प्रभावेण महाराजः प्रजा वर्मण रक्षतः ॥२२॥
पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां स नराधिपः ।
सप्त सप्त वारान् सम्राट् चक्रवर्त्तिं बभूव ह ॥२३॥
स एव पशुपालोऽभूत् क्षेत्रपानस्तथैव च ।
स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत् ॥२४॥
स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनेन च ।
भाति रश्मिसहस्रेण शारदेनेव भास्करः ॥२५॥
स हि तामसहस्रेण माहिर्मत्या नराधिपः ।
कर्कोटकसमाज्जित्वा पुरीं तत्र स्थवेषयत् ॥२६॥

उस राजा की गाथा की गन्धर्व तथा तारक गाथा करते थे जिन्होंने उस
राज्यपति के चरित्र और महिमा को देखा था ॥११॥ यज्ञ-तप-दान और विक्रमो
के द्वारा तथा श्रुत के द्वारा मानव निश्चय ही कातवीर्य की गति को नहीं जा
सकेंगे ॥२०॥ सातों द्वीपों में ऐसा अनुदृश्यमान होता है कि वह खड्गधारी-
श्रेष्ठ अनुधारी-रथी-राजा और अन्य अनुचर भी हुआ था ॥२१॥ अर्म पूर्वक प्रजा
की रक्षा करने वाले उस महान् राजा के प्रभाव से सब द्रव्य नष्ट न होने वाले
ये और कोई शोक तथा विभ्रम उसकी प्रथा में नहीं था ॥२२॥ वह नरो का
स्वामी पिचासी हजार वर्ष तक सात-सात बार सम्राट् और चक्रवर्त्ति हुआ था
॥२३॥ वह ही पशुओं का पालन करने वाला हुआ—वह ही क्षेत्रों का पालक
हुआ और वृष्टि से वह ही पर्जन्य योगी होने के कारण हुआ था—वह ऐसा
अर्जुन था ॥२४॥ वह सहस्र बाहुओं से और ज्या (प्रत्यज्ञा) के घात कठिना
से शरत्काल के सहस्र किरणों से सूर्य के समान शोभा देता है ॥२५॥ उस

दशयनसहस्राणि तेषु द्वीपेषु सप्तमु ।

निरगता स्म निवृत्ता श्रूयन्ते तस्य धीमत ॥१६॥

सर्वे यज्ञा महाबाहोस्तस्यासन् भूरितेजस ।

सर्वे कान्धनवेदीका सर्वे गृध्राश्च कान्धन ॥१७॥

सर्वे देवमहाभागविमानस्परलङ्घिता ।

गर्वात्परस्परमिच्छन्ति नित्यमेवोपशमिता ॥१८॥

बहुर्यं पुन कृत उत्पन्न हुआ । इनके कृत बीज से अनेक उत्पन्न हुआ जिसके एक सहस्र बाहु भी यों यह सातों द्वीपों का आसी पड़ा हुआ था । १। उस कात्तवीय ने सब हजार वर्ष तक अत्यन्त कठिन तपस्या करके अग्नि के पुत्र वत्त की आराधना की थी ॥१०॥ उसके लिए वत्त ने अधिक तेज से युक्त बार बार जल दिये । उसने सबसे प्रथम सहस्र बाहु के होवाने का वर बोला था । ११। अथर्व ने भीममान का सप्तगुणों के द्वारा उनसे निवारण करना । धम से समस्त पृथ्वी को जीतकर धम के द्वारा ही उसका अनुपालन करना । १२। बहुर्य से सप्तगुणों को जीतकर और सहस्रों गन्धुषों का हवन करके सप्तगुण में युद्ध करते हुए का एण्डूमि ने अधिक से वध होना ॥१३॥ उसके द्वारा यह पृथ्वी समस्त सात द्वीप और पलनी से युक्त सातों समुद्रों से परिमित आश्रय विधि से प्राप्त की और इसका पालन किया था ॥१४॥ जब बुद्धिमान् के युद्ध करते हुए सहस्र बाहु-वीर्यवान् और एवं आया से प्राप्नुयुक्त होते थे ॥१५॥ ऐसा सुना जाता है कि भीमाद् उसके अन्त सहस्र यज्ञ उन सात द्वीपों में बिना ही भगता वाले निवृत्त हुए थे ॥१६॥ महार्य बाहु वाले उसके जोकि एक विशेष सेवक वाला था समस्त यज्ञ सुवर्ण की देवी वाले और समस्त बुधर्य के विरचित भूतों से युक्त थे ॥१७॥ सब यज्ञ महार्य भाग वाले देवों के द्वारा जोकि निगानों में स्थित होकर वहाँ आये थे अतकृत हुए थे तथा य अथर्व और अम्बरगुणों के द्वारा तो वे नित्य ही शोभित रहा करते थे ॥१८॥

तस्य राज्ञा जगौ गाथा गन्धर्वो नारदस्तथा ।

चरितं तस्य राजर्षेमहिमानं निरीक्ष्य च ॥१९॥

जयध्वजश्च त्री पुत्रा अवन्तिषु विशापते ।

जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घः प्रतापवान् ॥१०॥

पहिले ब्रह्म ने मास्विन उत्तम पुत्र को प्राप्त किया था । वह बसिष्ठ नाम वाला मुनि जनो का आश्रय लेने वाला विस्मात सुना गया गया है ॥४३॥ यहाँ पर आपत्तियों आईं तो विष्णु ने क्रोध से भर्जुन को क्षप्त किया था । हे वैश्य ! यह तेरा यत्न जिस कारण से मेरे यहाँ बर्जित नहीं है ॥४४॥ इसी कारण से तेरा यह दुष्कर कर्म है और इसको कृतमन्य हुनन करेगा । भर्जुन नाम वाला कीन्तेय राजा नहीं होगा ॥४५॥ हे भर्जुन ! प्रहार करने वालो मे परमश्रेष्ठ महान् वीर्य वाले परशुराम जो बली है शीघ्र ही तुझको छेदकर तेरी सहस्र धातुओं को प्रमथित करेगा ॥४६॥ महान् बलवान् तपस्वी और ब्राह्मण तेरा वध करेगा । भीमान् उसके मृत्यु काग से उस समय राग थे ॥४७॥ उस राजा ने पहिले स्वयं ही घर प्राप्त किया था । उसके सौ पुत्र थे जिनमें यहाँ पाँच महारथ थे ॥४८॥ भस्मों के अभ्यास करने वाले—बलयुक्त—शूरवीर—यशस्वी और धर्मात्मा थे सब थे । शूर और सूतेन—वृष्टपाद और वृष तथा जयध्वज भर्जितियों ने उस विद्याम्पति को पुत्र थे । जयध्वज का पुत्र तालजङ्घ प्रतापवाला था ॥४९-५०॥

तस्य पुत्रशत ह्येव तालजङ्घा इति श्रुतम् ।

तेषां पञ्च गणा स्थाप्ता द्वैह्याना महारथनाम् ॥५१॥

वीरहोत्र ह्यसङ्ख्यता भोजाश्चावर्तयस्तथा ।

तुण्डिकेराश्च विक्रान्तास्तालजङ्घास्तथैव च ॥५२॥

वीरहोत्रसुतश्चापि अनन्तो नाम पार्थिव ।

दुर्जयस्तस्मै पुत्रस्तु बभूवामिन्द्रर्षेण ॥५३॥

अनघद्वयता चैव तस्य राज्ञो बभूव ह ।

प्रभावेश महाराज प्रजास्ता पर्यपालयत् ॥५४॥

न तस्मै वित्तनाशश्च नष्ट प्रतिलभेत स ।

कातंवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमत ॥५५॥

गये धीर उहोने धनु न को प्रसन्न किया था । तब राजा ने पुत्रस्य के द्वारा अनुपालित उस वीरस्य (रावण) को छोड़ दिया था ॥३६॥ उसके बाहु सहस्र का ज्या उस का शब्द भुव के अन्त में स्फुटित धम्बुद वृक्ष के वज्र की भाँति था ॥३७॥ धनु (बड़े धारक की बात है) यज्ञ में महान् वीर्य वाले जिसके बाहुओं के सहस्र को हेमताल वन के समान बूढ़ में भागव ने छेदन कर दिया था । ३८॥ किसी समय प्यासे विनभानु ने उससे मिठा मँगी थी । विद्याव्यति ने विनभानु को सात द्वीपों की विज्ञा दे दी थी ॥३९॥ विनभानु ने दिग्गता से उसके वाली में पुर-भोज-नाम धीर पत्तनों को सब धीर से जला दिया था ॥४०॥ उस पुरवैन्द्र के प्रभाव से महान् वज्र वाले उसने काशीवीर्य के शल धीर वनों को भी वध कर दिया था ॥४१॥ ईह्य के साथ उस विनभानु ने वरुण के आत्मन को समस्त भूव वायम को धीर वनों के सहित द्वीपों को जला दिया था ॥४२॥

सलेभे वरुण पुत्र पुरा भास्विनमुत्तमम् ।

वसिष्ठनामा स मुनि स्यात्तत्राप शिव श्रुत ॥४३॥

तत्रापवस्तदा क्रोधावर्जुन शप्तवा विभु ।

यस्मान्न वज्रितमिद वन ते मम हैहय ॥४४॥

तस्मात् ते दुष्कर कम्म कृतमन्यो हनिष्यति ।

धनु नो नाम कीर्त्तेयी न च राजा भविष्यति ॥४५॥

धनु न त्वा महावीर्यो राम प्रहरता वर ।

खिन्वा बाहुसहस्र न प्रमथ्य तरसा वशी ॥४६॥

तपस्वी भाद्रशुक्ल न भविष्यति महाबलः ।

तस्य रामस्तदा ह्यासीन्मृत्युशापेन धीमत ॥४७॥

राश तेन परञ्च स्वयमेव वृत्त पुरा ।

तस्य पुत्रशत ह्यासीत् पञ्च तत्र महारथा ॥४८॥

कृतास्त्रा बलिन शूरा धम्मस्थानो यथास्विन ।

शूरश्च शूरसेनश्च वृष्टनाथ वृष एव च ॥४९॥

जयध्वजश्च वे पुत्रा अवन्तिषु विशापते ।

जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घः प्रतापवान् ॥५०॥

पहिले वरुण ने भास्विन उत्तम पुत्र को प्राप्त किया था । वह वसिष्ठ नाम वाला मुनि जनो का आश्रय लेने वाला विख्यात सुता गया गया है ॥४३॥ यही पर आपत्तियों भाई तो विभु ने क्रोध से अर्जुन को खस किया था । हे हैहय ! यह तेरा यम जिस कारण से मेरे यहाँ वर्जित नहीं है ॥४४॥ इसी कारण से तेरा यह दुष्कर कर्म है और इसको कृतमन्य हनन करेगा । अर्जुन नाम वाला कौन्तेय राजा नहीं होता ॥४५॥ हे अर्जुन ! प्रहार करने वालो मे ररमश्रेष्ठ महान् धीर्य वाले परधुराम जो बसी है शीघ्र ही तुझको खेवतर तेरी लहस बाहुमो को प्रमदित करेये ॥४६॥ महान् बलवान् तपस्वी और आह्वय तेरा वध करेगा । भीमान् उसके मृत्यु क्षाप से उस समय राय थे ॥४७॥ उस राजा ने पहिले स्वय ही वर प्राप्त किया था । उसके सौ पुत्र थे जिनमे वहाँ पाँच महारथ थे ॥४८॥ अश्वो को अभ्यास करने वाले—वधयुक्त—सूरवीर—महास्वी और परमहिमा थे सब थे । सूर और धूसेन—वृष्टबाध और वृष तथा जयध्वज अश्वन्तियों मे उर विशाम्पति के पुत्र थे । जयध्वज का पुत्र तालजङ्घ प्रतापवाला था ॥४९-५०॥

तस्य पुत्रश्चत ह्येव तालजङ्घा इति श्रुतम् ।

तेषा पञ्च भग्न्या स्याता हैहयाना महात्मनाम् ॥५१॥

वीरहोत्र ह्यसङ्घघाता भोजाश्चावर्तयस्तथा ।

तुण्डिकेराश्च विक्रान्तास्तालजङ्घास्तथैव च ॥५२॥

वीरहोत्रसुतश्चापि अनन्तो नाम पाण्डिव ।

दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामित्रदर्शन ॥५३॥

अनष्टद्वन्द्वता चैव तस्य राज्ञो बभूव ह ।

प्रभावंश महाराज प्रजास्ता पर्यपालयत् ॥५४॥

न तस्य वित्तनाशश्च नष्ट प्रतिसमेत स ।

पातंतीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमत ॥५५॥

वित्तवान् भवत्यत्रय धम्मआस्य विवद्व ते ।

त्वष्टा भवेत् यथा दाता तथा स्वर्गे महीयते ॥१६॥

उमके ही पुत्र ही तानवज्ज के यह हमने सुना है । जन महात्मा हैहो के पाँच गण परम विख्यात थे ॥११॥ वीरहोत्र-असक्यात भोज-आवतम-तुष्टिकेर तथा भिक्रान्त तानवज्ज थे ॥१२॥ वीरहोत्र का पुत्र भी राजा धनन्व नाम वाला हुआ था । उसका पुत्र दुर्व्य था जोकि धमिल दशन हुआ था । १५॥ उस राजा के कभी वाश को न प्राप्त होने वाले कम का होना था । वह महाराज उन समस्त प्रजाओं का प्रभाव से परिपालन किया करता था ॥१४॥ उसके वित्त का कभी नाश नहीं होता है और जो कुछ कभी वह भी होगया ॥ तो वह उसे प्राप्त कर लेता है । यही दुष्टिमायु कातवीय के ज म की कथा को जो बोई कहता है वह वित्त वासा यहाँ पर ही होजाता है और इसके धर्म की वृद्धि होती है । जिस प्रकार से त्वष्टा और दाता ही उही तरह से स्वर्ग में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥१५ १६॥

प्रकरण ५७—स्वामि वृषान्त कथन

किमर्थं भुवन दग्धमपवस्य महात्मनाम् ।

कातवीर्येण विक्रम्य तत्र प्रवृहि पृच्छताम् ॥१॥

रक्षिता स तु राजर्षि प्रजानामिति न श्रुतम् ।

कथं स रक्षिता भूत्वानाशयत्तत्तपोवनम् ॥२॥

धादित्यो विप्ररूपेण कातवीर्यमुपास्थित ।

तुष्टिकाम प्रयच्छाममादित्योऽहं न सस्य ॥३॥

भगवन् केन ॥ तुष्टिभवेद् ब्रूहि दिवाकर ।

कीदृशं भोजनं दधि श्रुत्वा च विदधाम्यहम् ॥४॥

स्यान्नर देहि मे सनमाहार ददता वर ।

तेन तृप्तो भवेम च न तुष्येज्येन पार्थिव ॥५॥

न शक्य स्यादवर सर्व्वं तेजसा मानुषेण तु ।
 निर्दग्धु तपता श्रेष्ठ त्वामेव प्रणमाम्यहम् ॥६॥
 तुष्टस्तेऽहं वारान् ददामि अक्षयान् सर्व्वत मुखान् ।
 प्रक्षिप्ता प्रज्वलिष्यन्ति मम तेजःसमन्विताः ॥७॥
 आदिष्ट तेजसा मेघसागर शोधयिष्यति ।
 शुष्क भस्म करिष्यामि तेन प्रोतो नराधिप ॥८॥

अग्निपति ने कहा—कार्तवीर्य न बिक्रम करके महात्माओं के अपवश्य भुवन को किस निचे जलाया था—यह सब पूछने वाले हमको आप बतलाइये ॥१॥ हमने सुना है कि यह राजपति तो प्रजाओं की रक्षा करने वाला था फिर वह रक्तक होकर किस कारण से उसने तपोवन का नाश किया था ॥२॥ सूतजी ने कहा—सूर्य नमस्वाग् ब्राह्मण के रूप से कार्तवीर्य के पास उपस्थित हुए थे—मैं तृप्ति की कामना वाला हूँ—मुझे अन्न दो—मैं आदिष्ट हूँ । इसने कुछ भी सहाय नहीं है ॥३॥ राजा ने कहा—हे दिवाकर । यह बतलाइये आपकी तुष्टि किससे होगी । मैं आपको किस प्रकार का भोजन दूँ और यह सुनकर मैं कहूँगा ॥४॥ सूर्य ने कहा—हे दान देने वालों मे श्रेष्ठ । मुझे समस्त आहार स्यादवर हो । उससे मेरी तृप्ति होगी हे पार्थिव । अन्य किसीसे भी मैं सन्तुष्ट नहीं होऊँगा ॥५॥ राजा ने कहा—हे अपने वालों मे श्रेष्ठ । मानुष तेज से समस्त स्यादवर निर्दग्ध किया नहीं जा सकता है । मैं आपको ही प्रणाम करता ॥६॥ आदिष्ट ने कहा—तुष्ट हुआ मैं तुम्हें सर्व्व ओर से सुख प्रद—अक्षय शरी को देता हूँ वे सेंके हुए मेरे तेज से समन्वित होने वाले प्रज्वलित हो जायेंगे ॥७॥ हे नराधिप । तेज से आदिष्ट मेघ—सागर को शोधित कर देगा । उससे प्रसन्न मैं शुष्क को भस्म कर दूँगा ॥८॥

तत शरानवाहित्यस्त्वर्जुनाय प्रयच्छति ।
 तत सप्राप्य सुमहत्स्वावर सर्व्वमेव हि ॥९॥
 आश्रयमानश्च शमाश्च घोषाश्च नगराणि च ।
 तपोवनानि रम्याणि वनान्युपवनानि च ॥१०॥

एव प्राचीनमदहत्तत सूयप्रदक्षिणम् ।

निवृक्षा निस्तृणा भूमिदग्धा सूयेण तेजसा ॥११

एतस्मिन्न ब कासे तु यपो नित्यमाश्रितः ।

दशद्वयसहस्राणि जलवासा महानृपि ॥१२

पूर्णं व्रते महातेजा उदतिष्ठत्तपोधनः ।

सोऽपश्यदाश्रयं दग्धमजु नेन महानृपि ।

क्रोधाच्छापा राजपि कीर्तितो यथा मया ॥१३

इसके अनन्तर आश्रित्य अजु के लिये शरीर को दे देता है । फिर उठे पाकर सुमहान् समस्त स्वावर को—सामग्री को—बोपों को और नगरों को—तपो वनों को—रम्यतम वनों को और उपवनो को सबको इस प्रकार से प्राचीन की सूर्य प्रदक्षिण को बाह्य कर दिया था । अन्ततः यह भूमि बिना पुरुषों वाली—तुल्य रहित सूर्य के तेज से जली हुई हो गई थी ॥११॥ ११॥ इसी समय में महान् ऋषि यज्ञ के घर में आश्रित होकर और वर सहस्र वर्ष तक जल में ही बाध करने वाले हुए थे ॥१२॥ व्रत के पूर्ण होजाने पर महान् तेज वाले तपोधन उठकर जाते हुए थे । उन महान् ऋषियों ने अजु के द्वारा दग्ध आश्रय को देखा था । तब क्रोध से राजपि को धाव दे दिया था जसा कि मैंने तुमने कहा था ॥१३॥

क्रोष्टो मृगुत राजर्षेर्वधमुत्तमपुरुषम् ।

यस्याववापे सभूतो वृष्णिगृध्रिणकुलोद्बह ॥१४

क्रोष्टोरेकोऽभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महायशाः ।

वाजिनीवसमिच्छन्ति स्वाहि स्वाहोवता वरम् ॥१५

स्वाहे पुत्रोऽभवद्वाजा रक्षावददा वरः ।

पृथग्प्रसूतमिच्छन्ति रक्षादोरग्व मात्मजम् ॥१६

महाऋतुभिरीजे स विविधैरासदक्षिणम् ।

चित्र चित्ररथस्तस्व पुत्रं कम्ममिरन्वित ॥१७

एव चित्ररथो वीरो यज्ञान् विपुलदक्षिणान् ।

दशविन्दुः परवृत्ता राजर्षीणामनुष्ठित ॥१८

चक्रवर्ती महासत्त्वो महावीर्यो बहुप्रज ।

तत्रानुवशश्लोकोऽथ यस्मिन् भीत पुराविदै ॥१६

शशबिन्दोस्तु पुत्राणां शतानामभवच्छतम् ।

धीमतामनुरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम् ॥२०

सूतजी ने कहा—अब राजर्षि क्रौष्टु के उत्तम पृथ्वी वाले वंश का श्रवण करो जिसके अन्वय में वृष्णि कुल का उद्बुद्ध वृष्णि उत्पन्न हुआ था ॥१४॥ क्रौष्टु के एक ही पुत्र था जोकि वृजिनी बाल्य और महान् पक्षवाला था जो वृजिनी वाले स्वाहि को स्वाहो बालों में खेड़ को चाहता था ॥१५॥ स्वाहि का पुत्र दान देने वालों में उत्तम रसादु का सबसे पहिला पुत्र धृत प्रसूत हुआ था ॥१६॥ उसने बड़े बड़े महान् कृत्यों के द्वारा यजन किया था जिनमें बहुत ही अधिक दक्षिणा प्राप्त की गई थी तथा अनेक प्रकार के थे । उसका पुत्र कर्मों से अम्बित भिन्नरथ हुआ था ॥१७॥ इस प्रकार से चित्ररथ वीर ने विशेष अधिक दक्षिणा वाले यज्ञों को करके राजर्षियों द्वारा अनुष्ठित शशबिन्दु नाम वाला पुत्र प्राप्त किया था ॥१८॥ वह शशबिन्दु महान् सत्त्व वाला—चक्रवर्ती—महावीर्य और बहुत सी सन्तति वाला हुआ था । वहाँ पर उसके वंश का यह श्लोक पुरा वेत्ताओं के द्वारा गाय गया है ॥१९॥ शशबिन्दु के परम बुद्धिमान्—बहुत धन एवं तेजवाले तथा अनुरूप सी पुत्र हुए थे ॥२०॥

तेषां पट् च प्रधानास्तु पृथुषाट्का महाबला ।

पृथुश्रवा पृथुयशा पृथुधर्मा पृथुश्रय ॥२१

पृथुकीर्ति पृथुन्दाता राजानः शशबिन्दवा ।

शसन्ति च पुराणानि पार्थश्रवसमन्तरम् ।

अन्तरः स पुरा यस्तु यज्ञस्य तनयोऽभवत् ॥२२

उशना सुतधम्मत्तिमा अवाप्य पृथिवीमिमाम् ।

आजहाराश्रमेधानां शतमुत्तमधार्म्मिक ॥२३

मस्तन्तस्य तनयो राजर्षीणामनुष्ठित ।

वीर कम्बलवर्हिस्तु मस्ततनय स्मृत ॥२४

पुत्रस्तु स्वमकवचो विद्वान् कम्बलबहिष ।
 त्रिहृत्य स्वमकवचं पुरा कवचिनो रणे ॥२५॥
 धन्विनो निक्षिप्तबाणरवाप श्रियमुत्तमम् ।
 ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तमश्नमेवमहायथा ॥२६॥
 राजस्तु स्वमकवचादपरावृत्य वीरहा ।
 पत्निरे पञ्च पुत्रास्तु महासत्त्वा महाबला ॥२७॥
 स्वमेव पृथुस्वमाञ्ज्यामघ परिषो हरि ।
 परिषन्ध हरिश्च व विवेहे स्थापयत्पिता ॥२८॥

उन ती पुत्रों के महान् बल वाले पृथुपाटक छ पुत्र प्रथम ये जिनके नाम
 ये हैं—पृथुधवा—पृथुवधा—पृथुधर्मा—पृथुञ्जय—पृथुकीर्ति और पृथुन्वाता ये सब
 छात्रिनिबन्ध राजा थे । पुराण पृथुधवा के अन्तर नामक पुत्र को बतलाते हैं ।
 अन्तर वह था जो पहिले यज्ञ का पुत्र हुआ था ॥२१ २२॥ सुतधर्मा का दाता
 यजमान ने इस पृथ्वी को प्राप्त करके उत्तम धार्मिक उसने ही अन्तर्मेध यज्ञ किया
 था ॥२३॥ राजपुत्रों का अनुष्ठित भक्त नाम वाला उत्तका पुत्र हुआ था । भक्त
 का पुत्र वीर कम्बलबहि ब्रह्म गया है ॥२४॥ कम्बलबहि का परम विद्वान्
 स्वम कवच हुआ था । स्वम कवच ने पहिले अपने तीसरे बालों के द्वारा रण में
 अभी तथा कवच चारियों को मारकर उत्तम भी की प्राप्त किया था और अन्ध
 मेधों से महान् बल वाले उसने बहुत सा धन ब्राह्मणों को दान में दे दिया था
 ॥२५ २६॥ राजा स्वम कवच से महान् उत्तम वाले तथा महान् बल वाले पाँच
 पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था ॥२७॥ जिनके नाम स्वमेव—पृथुस्वमा—ज्यामघ—
 परिष और हरि ये थे । परिष को और हरि को पिता ने विवेह में स्थापित
 किया था ॥२८॥

ब्रह्म पुरभवब्राजा पृथुस्वमस्तदाश्रयः ।
 तेभ्य प्रवर्जितौ राज्या ज्ज्यामघोऽभवदग्रमे ॥२९॥
 प्रशान्तस्तु बने चोरे ब्राह्मणेनानवोषित ।
 जगाम धनुराण्य देवमध्य रथी ध्वजी ॥३०॥

नर्मदानूप एकाकी मेकलावृत्तिका अणि ।
 अक्षवन्त गिरि गत्वा श्रुक्तिमन्यामयाविशत् ॥३१॥
 ज्यामघस्याभवद्भार्या शैल्या बलवती भृशम् ।
 अत्रोऽपि स वै राजा भार्यागन्या न विन्दति ॥३२॥
 तस्यासीद्विजयो युद्धे तत कन्यामवाप स ।
 भार्यामुवाच राजा स स्नुषेति तु नरेश्वर । ३३
 एामुक्ताग्रवीदेव काम्ये यन्ते स्नुषेति सा ।
 यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तरय भार्या भविष्यति ॥३४॥
 तस्य सा तपसोमेरा शैल्या वैश प्रसूयत ।
 पुत्रं विदर्भं सुभगा शैल्या परिणता सती ॥३५॥
 राजपुत्री तु विद्वासी स्नुषाया ऋशुकीक्षिकी ।
 पुत्री विदर्भोऽज्जनयन्धूरी रणविशारदो ॥३६॥

श्लो० पु० राजा हुआ था उसके बादम में रहने वाला पृथुहर्म था । राज्य
 से प्रश्रजित व्यामघ आश्रम में हुआ था ॥३१॥ घोर यन में प्रशान्त और ब्राह्मण
 के द्वारा यधरोधित वह रथ तथा ध्वज वाला अनुप लेकर देव के मध्य में गया
 था ॥३०॥ नर्मदा के तट पर में एकाकी मेकला वृत्तिवाला अश्रवात् पर्वत में
 जाकर एक अन्य व्यक्ति में प्रवेश कर गया था ॥३१॥ व्यामघ की भार्या बहुत
 ही बल वाली शैल्या थी वह राजा पुत्र हीन भी था किन्तु उसने दूसरी भार्या
 को प्राप्त नहीं किया था ॥३२॥ उसने युद्ध में विजय हुई थी । इसके पदवात्
 उसने एक तन्या प्राप्त की थी । वह नरेश्वर राजा अपनी भार्या से यह स्नुषा
 है—ऐसा बोला था ॥३३॥ इस प्रकार से कही जाने वाली उसने कहा यह
 चाही हुई आपकी स्नुषा है तो जो आपका पुत्र उत्पन्न होगा यह उसकी भार्या
 होगी ॥३४॥ उसके उक्त तपसे शैल्या ने वैश को प्रसूत किया था । परिणत सती
 शैल्या ने विदर्भ नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥३५॥ विदर्भ ने स्नुषा में विद्वान्
 ऋषु और गोशिक दो राजपुत्रों को उत्पन्न किया था जोकि रण के विशारद
 तथा बड़े ही शूरवीर थे ॥३६॥

तीमपाद तृतीयन्तु पञ्चाब्जं सुधामिक ।

लोमपादात्मजोवस्तु राहृतिस्तस्य चात्मज ॥३७॥

कौशिकस्य चिदि पुत्रस्तस्माज्ज्वला नृपा स्मृता ।
 क्रथोविदमपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥३८॥
 कुन्तेष्टु हसुतो जज्ञे पुरोषष्ट प्रतापवान् ।
 घष्टस्य पुत्रो धर्मस्या निवृत्ति परवीरहा ॥३९॥
 तस्य पुत्रो दशार्हस्तु महाबलपराक्रमः ।
 दशार्हस्य सुतो व्योमा ततो जीमूत उच्यते ॥४०॥
 जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथ सुतः ।
 अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो रथवरः क्लृप्तः ॥४१॥
 दाता धर्मरतो नित्य सीनसत्यपरायणः ।
 तस्य पुत्रो नवरथस्ततो दशरथ स्मृतः ॥४२॥
 तस्य धकावशरथः सकुन्तिस्तस्य चात्मजः ।
 तस्मात् करम्बको धन्वी देवरातोऽभवत्ततः ॥४३॥
 देवक्षानोऽभवद्वाजा देवरातिम्महायया ।
 देवक्षानसुतो जज्ञे देवन क्षत्रमन्दनः ॥४४॥

तीसरा पुत्र सोमपाद नाम बाणा पीछे उत्पन्न हुआ था जो बहुत ही
 धार्मिक वृत्ति वाला था । सोमपाद का पुत्र वस्तु हुआ और उसका नाम
 धाहुति हुआ था ॥३८॥ कौशिक का पुत्र चिदि था उससे पैदा राजा कहे गये
 हैं । कथु का पुत्र विदर्भ हुआ और उसका पुत्र कुन्ति नाम वाला हुआ था ॥३९॥
 कुन्ति के पुत्र सुत ने प्रताप बाणा पुरोषष्ट उत्पन्न किया था । पृष्ट का पुत्र
 धर्मरथा परवीरहा निवृत्ति हुआ था ॥३९॥ उसका दशार्ह हुआ था जो बल
 तथा पराक्रम में महायु था । दशार्ह का पुत्र व्योमा नामक था और फिर उसका
 पुत्र जीमूत नाम वाला कहा जाता है ॥४०॥ जीमूत का पुत्र विकृति नामक हुआ
 और उस का पुत्र भीमरथ हुआ था । इसके अनन्तर भीमरथ का पुत्र रथवर
 पदा हुआ ॥४१॥ ॥ बहुत ही दान देने वाला तथा धर्म से रति रखने वाला
 था और नित्य ही सीन एवं सत्य में परायण रहा करता था । उसका पुत्र नव
 रथ हुआ और फिर उसका पुत्र दशरथ हुआ था ॥४२॥ उसके पुत्र का नाम
 एकादशरथ था तथा उसके धर्मरथ सकुन्ति नाम वाले ने जन्म ग्रहण किया

था । उससे धन्वी करम्भक हुआ और इसके पश्चात् उसके देवराज पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥४३॥ देवक्षत्र राजा हुआ था और देवरानि महान् यश वाला था । देवक्षत्र के सुत ने क्षत्रियो को आनन्द देने वाला देवन पुत्र को जन्म दिया था ॥४४॥

देवनात् सु मधुर्जज्ञे यस्य मेघार्थसम्भव ।

मधोश्चापि महातेजा मनुमनुवशस्तथा ॥४५॥

नन्दश्च महातेजा महापुत्रवशस्तथा ।

आसीत् पुरुवशात् पुत्र पुरुद्वान् पुरुषोत्तम ॥४६॥

जज्ञे पुरुद्वत पुत्रो भद्रवत्या पुरुद्वह ।

ऐशाकी स्वभवद्भार्या सत्त्वस्तस्यामजायत ।

सत्त्वात् सत्त्वगुणो पेत सात्त्वत कीर्तिवर्द्धन ॥४७॥

इमा विसृष्टि विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मन ।

प्रजावानेति सायुज्य राज सोमस्य धीमत ॥४८॥

देवन से मधु ने जन्म ग्रहण किया जिसका मेघार्थ सम्भव है । मधु के भी महान् तेज वाला मनु तथा मनुवश हुआ ॥४५॥ और नन्दन तथा महान् तेज वाला महा पुरुवश हुआ था । पुरुवश से पुरुषोत्तम पुत्र विद्वान् पुत्र हुआ था ॥४६॥ पुरुद्वान् से भद्रवती में पुरुद्वह पुत्र ने जन्म लिया था । उसकी भार्या ऐशाकी हुई थी उसमें सत्त्व पैदा हुआ था । सत्त्व से सत्त्वगुण से युक्त कीर्तिवर्द्धन सात्त्वत हुआ था ॥४७॥ महात्मा ज्यामघ की इस विशेष सृष्टि का ज्ञान प्राप्त करके पुरुष प्रजा वाला होना है और धीमान् राजा सोम के सायुज्य को प्राप्त करता है ॥४८॥

प्रकरण—५८ विष्णु वंश वर्णन

सात्वती रूपसम्पन्न कौशल्या सुषुवे सुतम् ।

भजिन भजमान च दिव्य देवानृष नृपम् ॥१॥

मन्थकन्ध सहामोज वृष्णिन्ध यदुनन्दनम् ।

तेषा हि सर्गाश्रित्वार ऋणुच्च विस्तरेण वै ॥२॥

पुराण के ज्ञाता द्विवक्त्र भाषा का गान किया करते हैं ॥१३॥ महान् आत्मा
 बाले देववृष के भी गुणों का कीर्तन करते हुए जैसा ही दूर से सुनते हैं वैसा ही
 समीप में आकर देखते हैं ॥१४॥ ब्रह्म मनुष्यों में बहुत देवों के समान देवावृष
 था । पाँच हजार उत्तर वर्ष तक जो पुरुष अनृतस्व को प्राप्त हुए थे । ब्रह्म देव
 वृद्ध से भी अधिक ब्रह्मा-दानपति-वीर-ब्रह्मण्य-सत्यवचन-दाता-परिहृत-
 भीर्तिमान् और महान् भाव वाला सात्वतो में महारज का ॥१५, १६॥

तस्या बवाये सुमहामोक्षमेवमार्तिकावला ।

गान्धारी च द माद्री च वृधोभर्म्ये बभूवतु ॥१७॥

गान्धारी जनयामास सुमित्र मित्रनन्दनम् ।

माद्री युधाजित पुत्र सा तु च देवमीकुवम् ॥१८॥

अनमित्र सुतश्च च तावुभौ पुर्योत्तमौ ।

अनमित्रसुतो निष्णो निष्णस्य द्वौ बभूवतु ॥१९॥

प्रसेनजित् महाभाग शक्रजित् सुतावुभौ ।

तस्य शक्रजित् पूज्य सत्ता प्राणसमोऽभवत् ॥२०॥

स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिनाचर ।

तौयकूलादप स्प्रधुमुपस्थातु ययौ रथिम् ॥२१॥

तस्योपतिष्ठत् सूर्यो विवस्वानग्रत् स्थितः ।

अस्पष्टमूर्तिभगवा स्तेजोमण्डलवान् विभु ॥२२॥

अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रत् ।

यथैव व्योम्नि पश्यामि त्वामहं ज्योतिषाम्पते ॥२३॥

तेजोमण्डलिनश्च च तप वाप्यग्रत् स्थितम् ।

को जितोपो विवस्वस्ते साक्षादुपगतेन च ॥२४॥

जन्मे सम्भवान् में धार्ति करने वाली धनसाएँ मनीर्भाति भोग के योग्य
 होती थी । गान्धारी और माद्री ये दो माया कृत्स्न की हुई थी ॥१७॥ गान्धारी
 ने मित्रों को जन्म देने वाला सुमित्र पुत्र को उत्पन्न किया था । माद्री ने
 युधाजित पुत्र को जन्म दिया था और उसने तो देवमीकुव को उत्पन्न किया था
 ॥१८॥ और अनमित्र पुत्रको जन्म दिया था । ये दोनों उत्तम पुरुष थे । अनमित्र

ऋक्षवन्त गिरिवर विन्ध्यश्च नगमुत्तमम् ।
 अन्वेपणपत्रिद्यान्त स ददर्श महामना ॥३८॥
 मादव हत प्रमेन त नाविन्दत्तत्र वै मणिम् ।
 यय मिह प्रमेनस्य गरीरम्बाविदूरत ॥३९॥
 ऋक्षेण निहृतो दृष्ट पादेष्वक्षस्य सूचिताम् ।
 पदेरन्वेपयामास गुहामृक्षस्य यादव ॥४०॥

त्रिपुण्ड्र समय उस स्वयन्तक मणि को जागृत कर नूपित हाते द्वारा दिखाए करने के लिये गया था और स्वयन्तक के लिये ही मुद्रास्य वध को सिंह से प्राप्त होगया था ॥३८॥ रीछा के राजा जाम्बवान् ने उस प्रमेन के वध करने वाले मिह को मात्र छाला और उन विन्ध्य मणि को लेकर अपनी गुहा में प्रविष्ट होगया था ॥३९॥ इसके पश्चात् उस कर्म को कृष्ण का गर्भी वृत्ति-अन्वक महत्तर यादव लोग कहते लगे और मणि के लेने वाले कृष्ण को मानते हुए उन्ही पर शक्य करते थे ॥४०॥ उन सभी लोगों की इस तरह अपवाद पूरा झूठी चर्चा को बसवान् अग्निसूदन भगवान् महत् न करते हुए वन में विचरण करने लगे ॥४१॥ और समने प्रसेन की खोज करने का काम किया था । प्रसेन के चरण बिन्ही ने दक्ष कर आसकारी पुरुषों के द्वारा बताये जाने पर गिरियों में श्रेष्ठ ऋक्षवान् तथा उत्तम पर्वत विन्ध्य को खोज से चके हुए उन महानन वाले ने देखा था ॥४२॥ अश्व के सहित मरे हुए उस प्रमेन को देखा किन्तु उस मणि को नहीं देखा था । इसके पश्चात् प्रसेन के मृत शरीर के निकट ही ऋक्षराज मरे हुए सिह को देखा । रीछ के चरण बिन्ही से सूचित भगवान् स्थ में ऋक्षराज की गुहा की खोज की थी ॥४३-४०॥

यह सुनकर उन भगवान् सूर्यदेव ने स्वमन्तक नाम वाली धेनु मणि को अपने कण्ठ से उतार कर राजा के कण्ठ में उस समय बाँध दी थी ॥२५॥ तब तो उस समय में राजा ने देहधारी उनका वचन किया था । इसके बाद उस प्रतिमा को देखकर मूर्त भर राजा ने वसा ही किया ॥२६॥ फिर प्रति प्रस्थित उन कृपदेव से शक्रजित् ने कहा—अग्नि के सपण प्राय जिससे लोको को जामने उस समय वह मणि रत्न आप मुझे देने के बोध्य होते हैं ॥२७॥ भास्कर ने स्वमन्तक नाम वाली मणि उसको देदी थी और वह राजा उसे अपने कण्ठ में बाँध कर नगर में प्रविष्ट हुआ था ॥२८॥ अनुष्य उसके चारों ओर बाँध लगाते थे कि यह छुप जा रहा है । राजा ने अपनी पूरी सभा को विस्मय में डालते हुए तथा पूरी पुरी को विस्मित करके फिर वह अन्तपुर में गया था ॥२९॥ उस परम शिष्य उत्तम भणिरत्न स्वमन्तक को राजा शक्रजित् ने प्रेम से अपने भाई प्रसेनवित्त को देदी थी ॥३०॥ जिसके राज्य में स्वमन्तक नाम वाली मणि स्थित रहती है वहाँ पर पञ्चम (मेष) समय पर बरने वाले होते हैं और तब फिर कोई भी व्याधि का भय नहीं रहता है ॥३१॥ भगवान् गोविन्द ने प्रसेन से उस स्वमन्तक मणि के स्वयं प्राप्त करने की विन्ता की थी किन्तु उसे नहीं प्राप्त किया था और सबसे भाव से शान्ति सम्पन्न होते हुए भी उसका हरण नहीं किया था ॥३२॥

कदा चिमृगया यात प्रसेनस्तेन भूपित ।

स्वमन्तककुले सिंहाद्वय प्राप्त सुदारुणम् ॥३३॥

जाम्बवानुक्षराजस्तु त सिद्ध निजधान व ।

प्राप्ताय च मणि दिव्य स्व वित्त प्रविवेक्ष ह ॥३४॥

तत्कम कृष्णस्य ततो दुष्पय धकमहत्तरा ।

मणौगृध्नुन्तु मन्वानास्तथैव विषयश्चिद्वरे ॥३५॥

मिथ्याभिर्गति तम्यस्ता नववानरिसूदन ।

अमृध्यमाणो भगवान् वन स विचचार ह ॥३६॥

स तु प्रसेनमृगयामचरत्तत्र चाप्यथ ।

प्रसेनस्य पद गृह्य पुंस्य यातकारिणि ॥३७॥

ऋक्षवन्त गिरिवर विन्ध्यश्च नगमुत्तमम् ।
 अन्वेपणपरिथ्रान्तं ह ददर्श महामना ॥३८॥
 साध्व हत प्रसेन त नाविन्दत्तत्र वै मणिम् ।
 अथ सिंह प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरत ॥३९॥
 ऋक्षेण निहतो दृष्ट पादेष्वक्षस्य सूचिताम् ।
 पदेरन्वेपयामास गुह्यामृक्षस्य यादव ॥४०॥

क्रिती समय उस स्वमन्तक मणि को चारख कर भूमित होते हुए निकार
 करने के लिये गया था और स्वमन्तक के लिये ही सुराष्ट्र वध को सिंह से
 प्राप्त होगया था ॥३८॥ रीछो के राजा जाम्बवान् ने उस प्रसेन के वध करने
 वाले सिंह को मार डाला और उस विन्ध्य मणि को लेकर अपनी गृहा में प्रविष्ट
 होगया था ॥३९॥ इसके पश्चात् उस कम को कृष्ण का सभी वृत्ति-सम्पत्ति
 महत्तर प्रादव लोग कहने लगे और मणि के लेने वाले कृष्ण को मानते हुए
 उन्ही पर राजा करते थे ॥३९॥ उन सभी लोगों की इस तरह प्रपण्ड पूर्ण
 झूठी प्रार्थना को बलवात् अतिरुदन भगवान् सहन न करते हुए वन में विश्रान्त
 करने लगे ॥३९॥ और उनने प्रसेन की मोज करने का काम किया था । प्रसेन
 के चरण चिन्हो को देख कर व्यासकारी पुत्रों के द्वारा बताया जाने पर गिरियों
 में श्रेष्ठ ऋक्षवान् तथा उत्तम परित विन्ध्य की खोज से बचे हुए उन महामन
 वाले ने देखा था ॥३८॥ अथ के सन्निध मरे हुए उस प्रसेन को देखा किन्तु उस
 मणि को नहीं देखा था । इसके पश्चात् प्रसेन के मृत शरीर के निकट ही ऋक्ष
 के द्वारा मारे हुए सिंह को देखा । रीछ के चरण चिन्हो से सूचित भगवान्
 श्रीकृष्ण ने ऋक्षराज की गुहा की खोज की थी ॥३९-४०॥

महत्मतिविधे वाणी कुश्राव प्रमदेरिताम् ।
 वाश्या कुमारमादाय सुत जाम्बवतो द्विजा ।
 प्रीतिमत्प्राप्य मणिना मारोदीरित्युदीरिताम् ॥४१॥
 प्रसेनमवधीत् सिंह सिंहो जाम्बवता हत ।
 मुकुमारक मारोदीस्तव ह्येप स्वमन्तक ॥४२॥

व्यक्तीकृतश्च शब्द त तूर्णं सोऽपि ययौ विलम् ।

अपश्यच्च विलाम्बाक्षे प्रसेनमवदारितम् ॥ ४३

प्रविश्य चापि भगवास्तदृक्षन्निलमञ्जसा ।

ददश ऋक्षराजान जाम्बवतमुदारधीः ॥ ४४

मुमुक्षे वासुदेवस्तु नित्ये जाम्बवता सह ।

बाहुभ्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम् ॥ ४५

प्रविष्टे च विस्र कृष्णे वासुदेव पुर सरा ।

पुनर्द्वारिवतीमेत्य हृत कृष्णं ग्यवेदयन् ॥ ४६

वासुदेवस्तु निर्जित्य जाम्बवन्त महाबलम् ।

तेभ्ये जाम्बवती कन्यामृक्षराजस्य सम्मताम् ॥ ४७

भगवत्तजसा प्रस्तो जाम्बवान् प्रसभ मणिम् ।

सुता जाम्बवतीमाशु विज्वक्सेनाय दत्तवान् ॥ ४८

उस बहुत बड़ी गुफा में प्रमदा के द्वारा कही हुई बाखी को सुना था । शीर्ष बाणी कुमार पुन को लेकर हे द्विजगण ! जाम्बवान् की प्राप्ति वाली मणि के द्वारा (यर्षात् उसे दिखाते हुए) वह कह रही थी कि जम्बे ! रोदन मत करे । इस प्रकार कही हुई बाखी थी कृष्ण ने सुनी थी ॥ ४१॥ वाली ने कहा— सिंह ने प्रसेन को मार दिया और जाम्बवान् ने उस सिंह को मार डार वाला है । हे मुकुमार ! अब तू खन मत कर—यह मणि स्वयन्तक तेरी ही है ॥ ४२॥ उस शब्द को स्पष्ट तथा सुनकर शीघ्र ही वह श्रीकृष्ण विज में भग्नर धले गये थे और विल के समीप में अवदारित प्रसेन को देखा था ॥ ४३॥ भगवान् ने उस गुफा में प्रवेश करके जोकि ऋक्षराज के रहने की थी उन उदार बुद्धि वाले श्रीकृष्ण ने रीछो के राजा जाम्बवान् का नहीं देखा था ॥ ४४॥ वासुदेव ने उस गुफा में इतनी हीन दिन तक जाम्बवान् क साथ बाहुभ्यां से मुझ किया था ॥ ४५॥ वासुदेव के पुरस्सर साथ में जाने वाल लोको ने गुप्त में श्रीकृष्ण के प्रवेश करने पर द्वारका में वापिस आकर कुन्स गारे बड़े ऐसा सबसे कह दिया था ॥ ४६॥ वासुदेव ने उस महाद् बलवान् जाम्बवान् को जीतकर ऋक्षराज क द्वारा सम्मत जाम्बवती कन्या की प्राप्ति की थी ॥ ४७॥ भगवान् क तेज स बस्त हो जाने

घाते जाम्बवान् ने धरात् स्वमन्तक मणि को और अपनी पुत्री जाम्बवती को विष्णुसेन के लिए दे दिया था ॥४८॥

मणि स्वमन्तक चैव जगद्वात्मविशुद्धये ।

अनुनीय ऋक्षराज निर्ययी च तदा विलात् ॥४९॥

एव स मणिमादाय विशोद्धात्मानमात्मना ।

ददौ सत्राजिते त वं मणि सात्वतसन्निधौ ॥५०॥

कन्या पुनर्जाम्बवतीमुवाच मधुसूदन ।

तत्मान्मिध्याभिशापात् स न्यमुच्यत जनार्दन ॥५१॥

इमा मिध्याभिशास्ति यः कृष्णस्योह व्यपोहिताम् ।

येद मिध्याभिशास्ते स नाभिशास्यति कर्हिचित् ॥५२॥

दश स्वसृम्यो भाम्याभिः सत्रजितः शत सुताः ।

व्यातिमन्तस्त्रयस्तेषा भङ्गकारस्तु पूर्वज ।

वीरो व्रतपतिश्चैव ह्यपस्वान्तश्च सुप्रिय ॥५३॥

अथ द्वारपती नाम भङ्गकारस्य सुप्रजा ।

सुपुत्रे सा कुमारीस्तु तिस्रो रूपगुणान्विता ॥५४॥

सत्यभामोत्तमा स्त्रीणा व्रतिनीव दृढव्रता ।

तया तपस्विनी चैव पिता कृष्णस्य ता ददौ ॥५५॥

यत्तत् सत्राजिते कृष्णो मणिरत्न स्वमन्तकम् ।

प्रादात्सदाहरद्रत्न भोजेन शतधन्वना ॥५६॥

सदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिन्दताम् ।

अक्रूरो रत्नमन्विच्छन् मणिश्चैव स्वमन्तकम् ॥५७॥

भद्रकार ततो हत्वा शतधन्वा महाबरो ।

रात्रौ त मणिमादाय ततोऽक्राय दत्तवान् ॥५८॥

अपनी मातृभा के विधुत्रि के लिए स्वमन्तक मणि का उतने प्रहण किया था और ऋक्षराज से उसके लिये अनुमति किया था । इसके पश्चात् वह उस गुफा से बाहर निकल गये थे ॥४९॥ इस तरह उतने मणि को रात्रर अपने मातृभा के द्वारा अपने आत्माप जाय का स्त्रोभन करके समस्त सात्वतो की सन्निधि

म उग्र स्यमन्तक मणि को सनाजित् को दे दिया था ॥५८॥ किं मधुसूदन ने
जाम्बवनी नाम वाली रज्ज्या से कहा कि उग्र मिथ्या अभिप्राय से जनादन मर्मात्
मे भव निमुक्त होयथा ॥५९॥ इम कृष्ण के उग्र-अपहित मिथ्याभिप्राय
को कोई ज्ञानता है अर्थात् इसे पढ़ना या सुनना है तब कभी भी मिथ्या अपवा
से दूषित नहीं होता है ॥६०॥ तब बहिन भार्यायो म सनाजित् के सी पुत्र बहुत
ही प्रमिष्टि वाले हुए थे उनमें मङ्गलार सबसे बड़ा था । वह वीर-व्रजपति-
प्रपञ्चाल घोर सुप्रिय था ॥६१॥ इससे अनन्तर मङ्गलार की सुन्दर सन्तति
द्वारवनी नाम वाली म तीन वर्ष घोर गुण से अतः कुमारियो का प्रसव किया था
॥६२॥ स्त्रियो म सति उत्तम प्रत वाली की गर्ति हव वतवाही सत्यभामा की
की परम तर्वास्वनी की उसने उसके रिता ने धीकृष्ण को दे दिया था ॥६३॥
जो मणियो म ममल्ल स्वमन्तक मणि कृष्ण ने सनाजित् को दे दी थी उसे वत
धन्वा ने भोज से दूर कर लिया था ॥६४॥ उस समय स्यमन्तक मणि को चाहते
हुए मन्त्र ने अभिहित सत्यभामा से प्राचना की थी ॥६५॥ तब वतधन्वा ने
जोकि महात् बलवान् का भद्रकार को मारकर रात्रि म उस मणि को साकर
मन्त्र को दे दी थी ॥६६॥

अक्रूरस्तु तदा रत्न मायाय सु नरपम ।
समय कारण चक्रे बोधो नायस्त्वयेत्युत ॥६७॥
वयमम्बुपत्स्याम कृष्णेन त्व प्रथपित ।
मम च द्वारका सर्वा वक्षे तिष्ठन्त्यसशयम् ॥६८॥
इते पितरि दुःखार्ता सत्यभामा मध्वस्विनी ।
प्रययौ रयमाह्वय नगर धारणावतम् ॥६९॥
सत्यभामा तु तदवत्त भोजस्य शतधन्वन ।
मनु निवेद्य दुःखार्ता पादवस्थायूप्यवतयत् ॥७०॥
पादवानान्तु दग्धाना हरि कृत्वादकक्रियाम् ।
तुल्यायै चव भ्रातृणा नियोजयति सात्यकिम् ॥७१॥
ततस्त्वरितमागम्य द्वारका मधुसूदन ।
पूर्वजं हस्तिन श्रीमान्दि वचनमब्रवीत् ॥७२॥

हत प्रमेन गिहेन सत्राजिच्छतवन्वना ।

स्वगन्तरुमह मार्ग तस्य प्रहर द्वे प्रभो ॥६१॥

तदारोह रथ शीघ्रम् भोज कृत्वा महावताम् ।

स्यमन्तको महाबाहो तदास्माक भविष्यति ॥६२॥

उग नगरे मे वेष भ्रूण मे उच समय उग रत्न को लेकर प्रतिज्ञा करगई
मा दाता राजाजी की छि देखके प्राप्त होनेका कारण कुछ अन्य किसी को भी नहीं
ज्ञात कराना चाहिये ॥६१॥ हम अभ्युपपन्न करने में । कुछ ही क्षण में प्रवर्तित
हिया है । अब यह समय द्वारका निस्संशय मेर पक्ष में रहेगी ॥६०॥ अपने
पिता का मारे जाने पर अस्मिन्नी सत्यमाता दुःख से पीड़ित हुई रथ पर सवार
होकर राजाजी नगर में गई थी ॥६१॥ सत्यमाता ने शतवन्वा भोज का यह
समय प्राप्त नहीं में निवेदन किया और दुरा से आरत होकर वाता में स्थित
होते हुए मधुपान किया था ॥६२॥ यह हुए पाए जाये की उचक किया को हुरि
ने पूर्ण करने भाग्यो के तुरन्त भय मे सात्त्विक को नियोजित किया था ॥६३॥
दशम पदमान् मधुपान तुरन्त ही द्वारका में आकर अपने बच्चे भाई बलरामजी
से यह उचक को—॥६४॥ हे प्रभो ! गिह ने प्रमेन को मार दिया था और
शतवन्वा ने सत्राजिन् को मार दिया है । उचके स्वमन्तक को भी लोचता न,
बाप प्रहार करिये ॥६५॥ सो अब आप रथ पर आगे बढ़ करिये और महान्
बादमान् को भोज को शीघ्र मार कर दे महाबाहो । सब यह स्वमन्तक हमारी
हुआ जायगी ॥६६॥

तत प्रवृत्ते मुनेषु तुमुले भोजकृष्णयो ।

शतवन्वा न चाक्रूरमवदात् सर्वतो दिशि ॥६७॥

अनष्टा दशवरोहन्तु कृत्वा भोजजनार्दनी ।

शक्तोऽपि साध्याद्वाह्वं क्वाच्चाक्रूरोऽभ्युपपद्यत ॥६८॥

अपयाने ततो बुद्धि भूयश्चक्रे मथान्वितः ।

योजनाना शत साध्र यथा च प्रत्यपद्यत ॥६९॥

यिजातहृदया नाम शतयोजनगामिनी ।

भोजस्य वज्रवादित्यो यथा कृष्णमयोवयत् ॥७०॥

प्रवद्वेगा बद्धवा त्वध्वना शतयोजनम् ।
 दृष्ट्वा रथगतिस्तस्य शतघन्वानमर्हयत् ॥७१॥
 ततस्तस्य हयास्ते तु श्रमात् शेदाञ्च व द्विजा ।
 खमुत्पेतु रथप्रासा कृष्णो राममयाव्रवीत् ॥७२॥
 तिष्ठस्वेह महाबाहो दृष्टदोषा मया हया ।
 पद्मपा मत्वा हरिध्यामि मणिरत्न स्यमन्तवस् ॥७३॥
 पद्मपामेव ततो मत्वा शतघन्वानमभ्युत ।
 मिथिलाधिपति त व जघान परमास्त्रवित् ॥७४॥

इसके पश्चात् भोज और कृष्ण का तुमुन यज्ञ प्रवृत्त हो जाने पर गत
 भवा ने समस्त विशाखो ने झकूर को नहीं देखा था ॥६७॥ भोज और जनार्दन
 नष्ट न होने वाले बन्धो वा ध्वरोह करके बल होते हुए भी साम्ब बाधक्य से
 झकूर ध्वनुपपन्न नहीं हुआ ॥६८॥ भय में मुक्त होते हुए फिर उसने अपमान
 करने में बुद्धि ली थी । सी योजन जाने जिसके प्रतिरक्त होगया ॥६९॥ विनाश
 हुआ—इस नाम वाली छी योजन तक वसन करने वाली भोज की बद्धवा भी
 जिनके द्वारा उसने श्रीकृष्ण के साथ बद्ध निचा था ॥७०॥ बड़े हुए वेग वाली
 बद्धवा (बोली) भी जिनने उसके रथ की बलि मार्ग के सी योजन में देखी थी
 उसने शतघन्वा को धर्मित कर दिया था ॥७१॥ हे द्विजगण ! इसने पश्चात्
 रथ के प्राण स्वक्य उसके बोले शय से और शेष के होने से आकाश में उड़ गये
 थे । श्रीकृष्ण राम के बोले ॥७२॥ हे महाबाहो ! वहाँ पर ठहरो मैंने बन्धो के
 दोषो को देख लिया है । मैं परो से जाकर मणिरत्न स्यमन्तक का हरण करूँगा
 ॥७३॥ इसके पश्चात् परो से ही जाकर अभ्युत ने मिथिला के अधिपति शत
 घन्वा को मरु विशा के परम परिचित श्रीकृष्ण ने मार दिया था ॥७४॥

स्यमन्तकं न चापश्यद्वत्वा भोज महावसम् ।
 निवृत्त चाव्रवीत् कृष्ण रत्न देह्यति लाङ्गली ॥७५॥
 नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो स्यान्वित ।
 धिकस्रव्यमसकृत् पून्य प्रत्युवाच जनार्दनम् ॥७६॥

आतृत्वान्मर्पयाम्येव स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ।

कृत्य न मे द्वारकया न त्वया न च वृष्णिषमि ॥७३॥

प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्दन ।

सर्वकामैरुपहृतैर्मैथिलेनैव पूजित ॥७८॥

एतस्मिन्नेव काले तु वभ्रुर्मन्तिमत्तावर ।

नानारूपान् क्रतून् सर्वानाजहार निरगलान् ॥७९॥

दीक्षामय सकवच रक्षार्थं प्रविवेश ह ।

स्यमन्तककृते राजा गाधिपुत्रो महायथा ॥८०॥

अर्धान् रत्नानि चाग्रधारिण् द्रव्याणि विविधानि च ।

पष्टिपर्यगते काले यज्ञेषु विन्ययोजयत् ॥८१॥

अक्रूरयज्ञ इत्येते ख्यातास्तस्य महात्मन ।

बह्वर्णदक्षिणा मय्ये सर्वकामप्रदायिन ॥८२॥

श्रीर नहान् बलवान् भोज को भार कर स्यमन्तक मणि को नहीं देखा था । लौटे हुए कृष्ण से लाजसंधारी बभ्रुगम ने कहा रत्न जो वेदो ॥७५॥ श्रीकृष्ण ने कहा वह मणि नहीं है । तब तो वक्षराम शेष से युक्त हो उठे । बार-बार धिक्—इस शब्द को पड़िते कहते हुए जनार्दन से बोले ॥७६॥ मेरे भाई के होने के कारण से मैं यह सहन करता हूँ । तुम्हारा कल्याण हो—मैं तो घब जाता हूँ । मुझे छान्का से कोई काम नहीं है, न तुझसे और न वृष्णिषो से कुछ प्रयोजन है ॥७७॥ इसके पश्चात् बलराम ने जोकि शत्रुघो के भर्षन करने वाले थे मिथिला में प्रवेश किया था और वहाँ समस्त कामना भागे उपहृतो के द्वारा मैथिल से ही पूजित हुए थे ॥७८॥ इसी बीच में बुद्धिमानों ने श्रेष्ठ बभ्रु ने अनेक रूप वाले निरगल सभी क्रतुघो को ग्राह्य किया था ॥७९॥ महान् यज्ञ वाले राजा गाधि पुत्र ने स्यमन्तक के लिये दीक्षामय सकवच को रक्षा के लिये प्रविष्ट किया था ॥८०॥ साठ वर्ष के काल में यज्ञो में धनो को—रत्नो को और उत्तम विनिघ भाँति के द्रव्यो को विनियोजित किया था ॥८१॥ उस महान् आत्मा वाले थे स्व 'अक्रूर यज्ञ' इस नाम से ख्यात हुए थे । जिनमें बहुत सा भद्र और दक्षिणा वाले तथा समस्त कामनाओ को देने वाले थे यज्ञ थे ॥८२॥

अथ दुर्योधनो राजा गत्वाऽयं मिथिला प्रभु ।
 गदाशिक्षा ततो दिव्या बलमद्वादवासवान् ॥८३॥
 प्रसाद्य तु ततो विशा वृष्णन्वकमहारथ ।
 आनीतो द्वारकायैव कुण्डेन च महात्मना ॥८४॥
 अक्रूरमन्धक सङ्घं मुपायात् पुरुषपथ ।
 युद्धं हत्वा तु अशुभं सह वधुमता वसी ॥८५॥
 अपस्तकतनयायान्तु नराया नरसत्तमी ।
 भङ्गकारस्य तनयो विद्युतो सुमहावसी ॥८६॥
 जज्ञातेऽन्धकमुच्यस्य सशुभो वधुमाश्रयौ ।
 वधाय भङ्गकारस्य कुण्डो न प्रीतिमान् भवेत् ॥८७॥
 क्षातिमेवमवाङ्गीत समुपेक्षितवास्तथा ।
 अपयाते तथाक्रूरे नावपत्पाकसासन ॥८८॥
 अनावृष्ट्या ह्यतः साहूभमवसिष्ठभोचतम् ।
 ततः प्रसादयामासुरक्रूरं कुकुरान्वका ॥८९॥
 पुनर्द्वारवती प्राप्ते तथा दानपती तथा ।
 प्रववप सहस्राक्षं कुक्षौ जलनिधेस्ततः ॥९०॥

इसके पश्चात् प्रभु राजा दुर्योधन ने मिथिला में जाकर बलवद् से दिव्य
 गदा की शिक्षा को प्राप्त किया था ॥८३॥ हे विश्वेश्वर ! इसके अनन्तर बुद्धि
 धरणा और महारथों के द्वारा बलरामजी को प्रसन्न करके महामा कुण्ड के
 द्वारा उन्हें फिर द्वारकापुरी में ही वापिस ले जाने दिये थे ॥८४॥ उस पुरुषों के
 भङ्ग बनी बलराम ने युद्ध में अशुभान् के साथ वे अशुभ को मार कर अन्धकों
 के साथ अक्रूर के पास पहुँचे थे ॥८५॥ अपस्तक की सभा में नरायण भङ्गकार के
 नरपद महात्मा बल जाने एवं प्रसिद्ध को उन्मत्त हुए ॥८६॥ उस धरणा में मुरख
 अशुभ और अशुभान् ने दो पुत्र थे । भङ्गकार के वध के लिये इच्छा प्रीति जाने
 नहीं हुए थे ॥८७॥ क्षाति के श्रेय के भय से डरे हुए उसकी उस प्रकार ॥ उपेक्षा
 करदी थी । अक्रूर के अपयाज होजाने पर इन्द्र ने वर्षा नहीं की थी ॥८८॥
 अनावृष्टि से ह्यतः साहू ने उसके वध करने की समायी की थी । उस कुकुराच

को ने अक्रूर को प्रसन्न किया था ॥८९॥ तब उस समय फिर दानपति के द्वारका
पुरी में प्राप्त हो जाने पर फिर जननिर्मि की कुक्षि में द्रुपद देव ने जूब वर्षा
की थी ॥९०॥

कन्याञ्च वामुदेवाय स्वसार शीलसम्मताम् ।

यक्रूरः प्रददौ श्रीमान् प्रीत्यर्थं यदुपुङ्गव ॥९१॥

अथ विज्ञाय योगेन कृष्णो बभ्रुवत मणिम् ।

सभामभ्ये तदा प्राह समक्रूर जनार्दन ॥९२॥

यच्च रत्न मणिवर तव हस्तगत प्रभो ।

तत् प्रयच्छस्व मानाहं विमतिञ्चात्र मा कथा ॥९३॥

गृष्टिबर्पणते काले यद्रोपोऽभून्मदा मम ।

सुसंकुटं सकृत् प्राप्तस्तस्काङ्क्षाविस्थं स महान् ॥९४॥

ततः कृष्णस्य वचनात् सर्व्वसात्वतसंसदि ।

प्रवदौ त मणिं बभ्रुरक्लेशेन महामति ॥९५॥

ततः श्राज्जवसप्राप्तवभ्रुहस्तादरिन्दम ।

ददौ प्रहृष्टमनसा त मणिं वभ्रवे पुन ॥९६॥

स कृष्णहस्तात् सप्राप्य मणिरत्नं स्यमस्तकम् ।

भावद्रव्यं गान्दिनीपुत्रो धिरराजाशुमानिव ॥९७॥

इमा मिथ्याभिवास्ति यो विशुद्धामपि चोत्तमाम् ।

वेद मिथ्याभिवास्ति स न व्रजेच्च कथञ्चन ॥९८॥

यद्युमा ने चौध अक्रूर ने अपनी कन्या और शील से सम्मत रहिल को
वामुदेव के लिये उनकी प्रीति के लिये देदी थी ॥९१॥ इसके अनन्तर श्रीकृष्ण
ने योग के द्वारा वभ्रु के पास मणि होने को जानकर जनार्दन ने सभा के मध्य
में उस अक्रूर से कहा ॥९२॥ हे प्रभो ! और रत्न योष्ट मणि तुम्हारे हाथ लग
गई है हे मानाह ! उसे अब वेदो और इस काम में यहाँ कोई भी विमति मत करो
॥९३॥ साठ वर्ष के समय में तब जो मुझे रोष हुआ है एकबार प्राप्त होजाने
वाला यह इस लक्ष्मण का सहारा पाकर वह बहुत ज्यादा होते हुए भली भाँति
ते रूठ होगया है ॥९४॥ इसके पश्चात् ममस्त सात्वतो की संसद में श्रीकृष्ण के

इन बचनो से महा बुद्धि वाले बभ्रू ने बिना किसी क्लेश के उस मणि को दे दिया था ॥१६३॥ इसके पश्चात् सरयता से बभ्रू के हाथ से प्राप्त हुई उस मणि को भरिन्ध्र ने बड़े ही प्रसन्न मन से पुनः उस मणि को बभ्रू को दे दी थी ॥१६४॥ उस गान्दिनी पुत्र ने श्रीकृष्ण के हाथ से उस मणिरत्न स्वयम्भक्त को पाकर धीर कण्ठ में बांधकर असुमान् की तरह सुखोन्मत्त हुए ॥१६७॥ इस मिथ्यानि शक्ति को जो कोई विभु को भी उत्तम को जानेवा बहू कभी मिथ्यानिशक्ति को प्राप्त नहीं होगा ॥१६८॥

अनिमित्राच्छिनिभञ्ज कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दमात् ॥१६९॥

सत्यवाक सत्यसम्पन्न सत्यकस्तस्य चारुमज्ज ।

सात्यकियु युधानस्य तस्य भूति सुतोऽभवत् ॥१७०॥

भूतेषु गन्धर्वा पुत्र इति भोत्या प्रकीर्तिता ।

कक्षाते तनयौ पृष्णे श्वफल्कश्चित्रकश्च य ॥१७१॥

श्वफल्कस्तु महाराजो धर्मरमा यत्र वर्तते ।

नास्ति श्माधिभय तत्र न चावृष्टिभय तथा ॥१७२॥

कदाचित् काशिराजस्य विभोस्तु द्विजसत्तमा ।

भीष्टि वर्षाणि विषये नावर्षत्पाकशासन ॥१७३॥

स तत्र वासयामास श्वफल्क परमाचितम् ।

श्वफल्कपरिवासेन प्रावर्षत्पाकशासन ॥१७४॥

श्वफल्क काशिराजस्य सुता भार्यामिनिन्दिताम् ।

गान्दिनी नाम मा सा हि धनौ विप्राय नित्यश ॥१७५॥

सा मातुष्पदस्था च बहुवर्षं यतान् किल ।

वसति स्म न वै जज्ञ गन्धर्वान्ता पितामहीत् ॥१७६॥

राजा अनमित्र से छिनि का जन्म हुआ चोकि वृष्णि का सबसे छोटा पुत्र था ॥१६९॥ उसके पुत्र सत्यवाक-सत्यसम्पन्न धीर सत्यक थे । युधान का सात्यकि पुत्र हुआ था । धीर उसका पुत्र भूति नाम वाला उत्पन्न हुआ था ॥१७०॥ भूति का पुत्र युवधर नामक हुआ । ये सब संसार में भोत्य इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे । प्रसिद्ध के श्वफल्क धीर चित्रक थे जो पुत्रों का जन्म हुआ था

॥१०१॥ जहाँ महाराज अफल्क तो घमत्तिया हुए है । वहाँ पर किसी भी व्याधि का कभी कोई भय ही नहीं हुआ था तथा न कभी अनावृष्टि (वर्षा होने का अभाव) ही हुई थी ॥१०२॥ हे द्विजवरण । किसी समय मे विष्णु काशिराज के समय मे तीन वर्ष तक देश मे इन्द्रदेव ने वर्षा ही नहीं की थी ॥१०३॥ उसने वहाँ पर अफल्क को भली भाँति समर्पित करके बसाया था । फिर अफल्क के परि निवास होने से पाकघासन ने वर्षा की थी ॥१०४॥ अफल्क ने काशिराज की सुता को आनन्दित भावों गान्दिनी नाम वाली की थी । वह एक गी रोज ही ब्राह्मण को दिया करती थी ॥१०५॥ वह माता के उदर मे ही बहुत से सैकड़ों वर्ष तक स्थित रही थी और उसने जन्म ही ग्रहण नहीं किया था तब उदर मे स्थित उससे उसके पिता ने कहा था ॥१०६॥

जायस्व क्षीघ्र भङ्गन्ते किमर्थं चापि तिष्ठसि ।

प्रोवाच चैन गर्भस्था सा कन्या गौर्दिने दिने ॥१०७

यदि दत्ता तदा स्या हि यदि स्यामीहृता पित ।

सथेत्युवाच ता तस्या पिता काममपूपुरत् ॥१०८

दाता यज्वा च क्षुरश्च श्रुतवानतिथिप्रिय ।

तस्या पुत्र स्मृतोऽङ्कूर स्वफल्को भूरिदक्षिण ॥१०९

उपमनुस्तथा मगुर्मृदुरश्चारिमेजयः ।

गिरिरक्षस्ततो यक्ष शत्रुघ्नो वारिमर्द्द्वनः ॥११०

धर्ममृच्च शृष्ट्वमो वर्ममोचस्तथापर ।

आवाहप्रतिवाहौ च वसुदेवा वराङ्गना ॥१११

अङ्कूरादुग्रसेन्यान्तु सुतौ द्वौ कुलनन्दिनौ ।

देवश्चानुपदेवश्च जज्ञाते देवसमितौ ॥११२

चित्रकस्याभवन् पुत्रा पृथुर्विपृथुरेव च ।

अश्वघ्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपाश्वर्कगवेपथो ॥११३

अरिष्टनेमिरश्वश्च सुवर्मा वर्मचर्मभृत् ।

अभूमिर्बहुभूमिश्च अविष्ठाथवरणो स्वियौ ॥११४

हे पुत्री ! तुम जन्म ग्रहण करो तुम्हारा स्थाण होगा । क्या कारण है जिससे तुम उदर से बाहिर नहीं निकल रही हो और वहाँ पर बठी हो ? तब उस गम मे स्थित कम्पा ने इस अपने पिता से कहा था कि यदि रोज रोज गो का दान करने वाला हो तो मैं जब सूँगी । हे पिता ! मैं यही चाहती हूँ । तब उसके पिता ने ऐसा ही होवा—बहु बहुर उतकी जायना को पूगु किया था ॥१७१॥ उसका पुत्र अकर अकर बहुन दाता—यज्जा—गूर—शास्त्री का जाता—बहुत शक्तिखा देने वाला और प्रतिभियो का प्रिय हुआ था ॥१८॥ उपमगु—मगु—मृदुर—आशिमजय—गिरिरस और उससे यक्ष—अधुध—आरि मधन—धमभुत्—मृषचय तथा दूसरा नममोच—आवाह और प्रतिवाह तथा बराजूना वसुदेवा हुए थे ॥१९॥ १९१॥ अकर से उरसेनी मे कुन की भार्गवत करने वाले हो पुत्र पदा हुए थे निमका नाम देव और अनुपदेव था और वे दोनों देवों के समान थे ॥१९२॥ निमक के पुत्र—विपुत्र—अभ्यग्रीव—अभ्यबाहु—मुपावक—गवेपण—भरिहमेमि—अश्व—गुवर्मा—वमचयभृत्—अभूमि—बहुभूमि पुत्र उत्पन्न हुए थे । शविष्ठा और अश्वणा हो भिर्मा थी ॥१९३॥ १९३॥

सत्यकात् काण्डिदुहिता सेमे सा चतुर स्तान् ।

बकुव मजमानश्च समीव बलबहिषी ॥१९५॥

ककुदस्य सुती वृष्टिर्दृष्टु तनयोऽभवत् ।

कपोतरोमा तस्याश्च रेवतोऽभवदात्मज ॥१९६॥

तस्यासीसुम्बुस्तस्या विद्वान् पुत्रोऽभवत्किम् ।

श्यायते यस्य नाम्ना स च दनोदकदुःखिः ॥१९७॥

तस्माद्वाभिजित पुत्र उत्पन्नस्तु पुनवसु ।

अश्वमेधन्तु पुत्रार्थं आजहार नरोत्तम ॥१९८॥

तस्य भव्यैर्ऽतिराजस्य सदोमध्यात्समुत्पितम् ।

ततस्तु विद्वान् घमजो दाता यन्वा पुनवसु ॥१९९॥

तस्यापि पुत्रमिधुन बाहुवाणाजित कित ।

आहुकआहुकी चैव श्यातौ भतिमतावरी ॥२००॥

इमाश्चोदाहरन्त्येव इतोऽप्यनु प्रति तमाहुः ।

सोपासद्दानुष्माणि सन्वजाना वरुणिनाम् ॥१२१॥

रथाना मधघोषाणा सहस्राणि दर्शय तु ।

नासात्यवादी द्यामीतु नायज्वा नागहयदः ॥१२२॥

नायुचिर्नायवर्गात्मा नायिद्वान कृशोऽभवत् ।

आहुःकरेण वृत्तिः पुन इत्येवमप्युच्यते ॥१२३॥

सत्यम् ये तानि दुहिते न चरन् पुनो नो प्राप्तं हिता या जिहते नाम
 अहुः—अथवा गोप दामोदर उवाच वनमध्यं ये ॥१२४॥ अहुः हा पुन वृद्धि
 नाम बापा दुगा श्रीर वृद्धि हा पुन ह्यनिराम दुगा भा श्रीर उम हा पुन स्वत
 दुगा भा ॥१२५॥ उसके पुत्रकुल गगा परम मित्रान् पुत्र उत्पन्न दुगा भा जिहते
 नाम से वनमध्यं अहुः प्रमिद दुगा दे ॥१२६॥ गोप उमसे भविष्यत् पुन
 दुगा श्रीर पुनम् उत्पन्न दुगा भा ? उम नरोत्तम न पुत्र के मित्र अथवा यम
 मित्रा भा ॥१२७॥ उम मातंगी के मन्त्र मे सवामग य समुत्थित दुगा वा ।
 उमसे परम मित्रान्—दामोदर उवाच—उम हा श्रुता श्रीर गजा पुनम् दुगा भा
 ॥१२८॥ उमसे भी पुनो हा जो ? अहुः वामाहित दुगा जो ? आहुः श्रीर
 आहुः—इत नामा मे भविष्यत् मे गन्धर्वेष्ट रथात् दुगा ने ॥१२९॥ यही पर उम
 माधुक के प्रति मे द्योत उवाहृत हाते है । उसने उवाहृत मुद्राणा के मन्त्रित
 रथा वज्राणा के संहित मन्त्रियों के गोप मातंगी वरि रथो के वन राहृत मे ।
 यम अमलवादी नहीं भा । अ ममवा तथा अमलद नही पर, न यम अथुनि
 श्रीर न अमर्त्या ही था, यह अमिद्वान उवाच गगा भी नहीं दुगा वा । आहुः
 हा पुन गति दुगा भा—यही क्षय गुन्ते दे ॥१२१-१२२-१२३॥

दयेतेन परिचारेण किशोऽप्रतिमान् हयान् ।

अशीतियुतानियुतान्याहुःप्रतिगोऽव्रजत् ॥१२४॥

पुर्वेस्मान्दिक्षि नामाना भोजस्य प्रतिगेषिरे ।

रथकाधनकक्षाणा सहस्राण्येकनिक्षति ॥१२५॥

तावन्त्येव सहस्राणि उत्तरस्यान्तथा दिक्षि ।

शूणिपारास्य भोजस्य उत्तिष्ठेत् किङ्किणी क्रिदा ॥१२६॥

विदुर पुन ह्वा ना । उष गूर वे चषिक वसवान् पुन उत्पन्न ह्ये ये जिनके
 नाम वात निवात-शोणित-स्नेहबाह्व-शमी-वदवर्मा-निहत और शक्रशक्रवि
 ये । शमी के पुत्र प्रतिक्षित हुआ और प्रतिक्षित का आत्मज स्वयम्भोज हुआ
 तथा स्वयम्भोज से हृषिक पुत्र उत्पन्न हुआ था । हृषिक के भीम के ममान परा
 क्रम वाले दान पुत्र हुए थे ॥१३५ से १३८॥ उनके नाम ये हैं—कृतवर्मा-कृत
 जोकि उनसे मध्यम था—देवाह-अनाह-निघर-इतरथ-मुदान्त-धियान्त-
 नक्तान्-वनोज्ञ के नाम हैं । देवाह का पुन वन विज्ञान् कम्बलवर्हिप नाम
 वाला हुआ था ॥१३९ १४॥ उषका पुत्र असमीज और सुमहीजा विभक्त हुए
 अपुत्र असमीजस के लिये भज दिये थे । सुवह्-सुवप और हृष्ण ये सब असक
 रह गये हैं ॥१४१॥ अ नको के इस वन का निज ही कीलन वाला पुत्र
 अपना बहुत बल प्राप्त किया करता है—इसमें कुछ सख्य नहीं है ॥१४२॥

अस्मक्या जनयामास शूरो व देवमानुषिम् ।

माध्यान्तु जनयामास शूरो व देवमीदुषम् ॥१४३॥

माध्यान्तु जज्ञिरे शूराः श्लोकाया पुण्या दया ।

वसुदेवो महाबाहु पूवमानकदुन्दुभि ॥१४४॥

जज्ञ तस्य प्रसूतस्य दुन्दुभि प्राणवर्हिषि ।

मानकानाञ्च सहाय मुमहानभवर्हिषि ॥१४५॥

पपात पुष्पवपञ्च शूरस्य भवने महत् ।

मनुष्यलोके कस्तेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि ॥१४६॥

यस्मासीत् पुण्याश्च यस्य कीर्तिश्च द्रमसो यथा ।

देवभागस्ततो जने ततो देवधवा पुन ॥१४७॥

अनादृष्टिश्च द्रम व नन्दनश्च व भृक्षिव ।

श्याम शमीको गण्डूष चतसस्तु वराङ्गना ॥१४८॥

पृषा च यत्तवेदा च यत्तवीत्ति यत्तथवा ।

राजाधिदेवी च तथा पञ्च ता वीरमातर ॥१४९॥

पृषा दुहितृ चक्र कुन्तिस्ता पाण्डुरावहत् ।

अनपत्याय दृढाय कुन्तिभोजाय ता ददौ ॥१५०॥

विदुर पुत्र हुआ था। उस शूर के अधिक बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए थे निनके नाम बात निबाठ—सोणित—स्वेतवाहन—शमी—गदवर्मा—निहात और शक्रशक्रजित् थे। शमी के पुत्र प्रतिक्षित हुआ और प्रतिक्षित का शासक स्वयम्भोज हुआ तथा स्वयम्भोज से हृदिक पुत्र उत्पन्न हुआ था। हृदिक के भीम के ममान पराक्रम वाले बल पुत्र हुए थे ॥१३५ से १३८॥ उनके नाम ये हैं—कृतवर्मा—कृतजोकि उनसे मध्यम था—देवाह—वनार्ह—मिषर—इतरम—सुदात—धियान्त—नकबात—ननोद्भूत ये नाम हैं। देवाह का पुत्र बल विद्वात् कम्पसर्वाह्य नाम वाला हुआ था ॥१३९॥ १४॥ उसका पुत्र असमीज और मुमहोज विभूत हुए अपुत्र असमीजस के लिये जन दिये थे। सुवहू—सुवहू और कुष्ण ये सब सम्भक्त कहे गये हैं ॥१४१॥ शमीको के इस बल का नित्य ही कीलन वाला पुत्र अपना बहुत बल प्राप्त किया करता है—इससे कुछ संशय नहीं है ॥१४२॥

अस्मक्या जनयामास शूरो व देवमानुषिम् ।

माध्यान्तु जनयामास शूरो व देवमीडुपम् ॥१४३॥

माध्यान्तु जनिरे शूराङ्गोजाया पुरुषा वक्ष ।

वसुदेवो महाबाहु पूवमानकदुन्दुभि ॥१४४॥

जन तस्य प्रसूतस्य दुन्दुभि प्राणदहिवि ।

मानकानाञ्च सङ्गाद मुमहानभबदिवि ॥१४५॥

पपात पुण्यवपञ्च शूरस्य भवने महत् ।

मनुष्यलोके कस्तेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि ॥१४६॥

यस्मासीत् पुरुषाग्र यस्य कीर्तिमन्दमसौ यथा ।

देवभागस्ततो जज्ञे ततो देवभवा पुन ॥१४७॥

अनादृष्टिश्चङ्ग व नन्दनञ्च व भृञ्जिन ।

इयाम शमीको गण्डूष चतसस्तु वराङ्गना ॥१४८॥

पृथा च य तवेदा च श्रुतकीर्ति श्रुतथवा ।

राजाधिदेवी च तथा पञ्च ता वीरमातर ॥१४९॥

पृथा दुहितृ चक्र कुन्तिस्ता पाण्डुरावहत् ।

अनपत्याय दृढाय कुन्तिभोजाय ता ददौ ॥१५०॥

शूर ने अस्मरी में देव मानुषी को जन्म दिया था । और मापी में शूरने देगमीनुप को समुत्पन्न किया था ॥१४३॥ मापी में भोजा में शूर से दश पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था । महान् बाहु वाले वसुदेव पहिले भ्रानक दुन्दुभि हुए ॥१४४॥ उसके प्रसूत होने के समय में देवलोक में दुन्दुभि बजाई गई थी और भ्रानको का वधा भी ३ शब्द दिवि में हुआ था ॥१४५॥ उम समय शूर के भवन में पुष्यो की वर्षा हुई थी । समस्त मनुष्य लोक में रूप में उसके समान कोई भी नहीं था ॥१४६॥ उस पुष्यो में थोड़ा कीर्त्ति चन्द्रमा के समान थी । इसके पश्चात् देवभाग ने जन्म लिया और फिर देवश्रवा ने जन्म ग्रहण किया था ॥१४७॥ अनाहृष्टि कड-नन्दन-वृज्जिन-व्याम-समीक-गण्डूष और चार बराङ्गता जोकि नाम से पृथा-श्रुतयेदा-श्रुतकीर्त्ति-श्रुतश्रवा और राधिदेवी ये पाँच बीर मातामें हुई हैं ॥१४८-१४९॥ दुहिता पृथा कुन्ति को पाण्डु ने व्याहा था । अनपरम अर्थात् बिना सन्तति वाले वृद्ध कुन्ति भोज के लिये उसको दे दिया था ॥१५०॥

तस्मात् कुन्तीति विख्याता कुन्तीभोजात्मजा पृथा ।

कुरुवीर पाण्डुमुख्यस्तस्माद्भार्यामविन्दत ॥१५१॥

पृथा जज्ञे तत पुत्रान् श्रीनग्नि समतेजस ।

लोकेऽप्रतिरथान् बीरान् शक्रतुल्यपराक्रमान् ॥१५२॥

धर्माशु धिष्ठिर पुत्र मास्ताच्च वृकोदरम् ।

इन्द्राद्धनञ्जयश्चैव पृथा पुत्रानजीजनत् ॥१५३॥

मातृवत्पान्तु जनितावाश्विनाविति विश्रुतम् ।

तकुल सहदेवश्च रूपसत्त्वगुणान्वितौ ॥१५४॥

जज्ञे च श्रुतदेवाया तनयो वृद्धशर्मणः ।

करूपाधिपतिर्वीरो दन्तवक्त्रो महाबल ॥१५५॥

कैकेया श्रुतकीर्त्यान्तु जज्ञे सन्तदन पुन ।

चेफितानवृहत्क्षत्रौ तथैवान्यौ महाबलौ ॥१५६॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ भ्रातरी सुमहाबली ।

य तथवाया चैवस्तु शिशुपालो बभूव ह ॥१५७॥

दमघोषस्य राजप पुत्रो विख्यातपौरुष ।

य पुरासीद्विष्वग्नीव सनभूवारिमदन ॥१५८

इसी कारण से वह कुन्ती-इस नाम से विख्यात थी क्योंकि वह
मुन्तिभोज की आत्मजा पृथा थी । कुन्ती म बीर पाण्डुमुख्य ने इससे उसे भार्या
के रूप में प्राप्त किया था ॥१५१॥ उससे पृथा ने भूमि के समान प्रवीण तेज
वाले तीन पुत्रों को जन्म दिया था जोकि उसार में अर्पितरत्न-बीर और इन्द्र के
समान पराक्रम वाले हुए थे ॥१५२॥ पृथा ने घन से मुनिष्ठिर पुत्र को मातृ से
बुकावर को और इन्द्र से यमज्जय को इस तरह से पृथा ने पुत्रों को जन्म दिया
था ॥१५३॥ मातृवती ने दो अश्विनी-इस नाम से विद्युत् रूप तथा गुण से
अभित नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए थे ॥१५४॥ और अतसेवा में बुद्धिमान
का पुत्र कश्यप अश्विपति-बीर एवं महाय बलवाला बलवन्म उत्पन्न हुआ था
॥१५५॥ कश्यप भूत कीर्ति में फिर मन्त्र न उत्पन्न हुआ था । तथा अन्य महाय
बल वाले वैकितान और बृहन्न उत्पन्न हुए थे ॥१५६॥ विन्द और अश्विन्व
आत्मे उत्पन्न होने वाले अर्वात् सबसे छोटे पुनहाय बल वाले दो भाई थे ।
अतसेवा में चक्षु शिशुपाम हुआ था ॥१५७॥ यह राजर्षि दमघोष का विख्यात
पौरुष वाला पुत्र था जो पहिले धनुषों का भव व करने वाला यशस्वीव रावण
हुआ था ॥१५८॥

यदुथमानुजस्तस्य रुक्मस्योऽनुजस्तथा ।

पत्न्यस्तु वसुदेवस्य त्रयोदश वराङ्गना ॥१५९

पौरवी रोहिणी च व मदिरा चापरा तथा ।

तथैव मद्रा वशास्त्री देवकी सप्तमी तथा ॥१६०

सुगन्धिवनराजी च व चान्ये परिचारिके ।

रोहिणी पौरवी च व वात्सीकस्यात्मजामवत् ॥१६१

ज्येष्ठा पत्नी महाभागा दयितानकदुन्दुमे ।

ज्येष्ठ नेमे सुत राम सारण निधव तथा ॥१६२

दुद्म दमन सुभ्र पिष्टारककुशीतकी ।

चित्रा नाम कुमारीश्च राहिष्यष्टी व्यनायत ॥१६३

पौत्री रामस्य जज्ञाते विज्ञातो निश्चितोत्सुको ।
 पार्थी च पार्श्वनन्दी च शिशु सत्यवृत्तिस्तथा ॥१६४
 मन्दवाहोऽथ रामाणगिरिको गिर एव च ।
 शुक्लगुल्मेति गुल्मश्च दरिद्रान्तक एव च ॥१६५
 कुमार्यश्चापि पञ्चाद्या नामतस्ता निवोद्यत ।
 अर्चिष्मती सुनन्दा च सुरसा सुवचास्तथा ॥१६६
 तथा गतवला चैव सारणस्य सुतास्त्विमा ।
 भद्रकवो भद्रगुप्तिश्च भद्रविघ्नस्तथैव च ॥१६७
 भद्रादाहुर्भद्ररथो भद्रकरपस्तथैव च ।
 सुपाद्वक कीर्तिमाश्च रोहिताश्वश्च भद्रज ॥१६८
 दुर्म्मदश्चाभिभूतश्च रोहिष्या कुलजा स्मृता ।
 मन्दोपनन्दी मित्रश्च कुक्षिमिन्तथाचल ॥१६९
 विप्रोपचित्रे कन्ये च स्थित पुष्टिरथापर ।
 भदिराया सुता ह्येते सुदेवोऽय विजज्ञिरे ॥१७०

उसका अनुज यदुयका था तथा अनुज रुक्मकन्या हुआ था । वसुदेव की
 दत्त भद्र वाली तेरह पत्नियाँ थी ॥१५६॥ उन पत्नियों के नाम इस प्रकार हैं—
 पौरवी—रोहिणी और अन्य अमरा तथा मदिरा थी । उसी प्रकार से भद्रा—
 वैशाखी—सातवी देवकी थी ॥१६०॥ सुगन्धी—धनराणी और दो अन्य परिचानि
 कार्यें थी । रोहिणी और पौरवी वाल्मीक की आत्मजा थी ॥१६१॥ आनक
 दुन्दुभि की ज्येष्ठ पत्नी महाभाग वाली दयिता थी । उसने ज्येष्ठ पुत्र राम की
 तथा शारण और निश्व को प्राप्त किया था ॥१६२॥ वुर्दम—दमन—शुभ्र—पिशङ्गा-
 रक और कुशीतक और कुमारीबिन्दा को इस तरह रोहिणी ने आठ को उत्पन्न
 किया था ॥१६३॥ राम के दो पौत्र प्रसिद्ध निश्चित और उत्सुक नाम वाले
 उत्पन्न हुए थे । पार्थी—पार्श्वनन्दी—शिशु सत्यवृत्ति—मन्दवाह—रामाण—गिरिक
 और गिर—शुक्लगुल्मा—और गुल्म दरिद्रान्तक ये पुत्र तथा पञ्चाद्य कुमारियाँ भी
 उत्पन्न हुई थी जिनको नाम से समझ लो । अर्चिष्मती—सुनन्दा—सुरसा—सुवचा
 तथा दत्तरत्न ये शारण की पुत्रियाँ थी । भद्रा—भद्रगुप्ति—तथा भद्रविघ्न—भद्र-

बाहू-भद्ररथ-भद्रकल्प-सुपाश्र क-कीर्तिमान् और रोहिताश्र और भद्रज दुमद-
और भ्रमिभूत ये सब रोहिणी के कुलज रहे गये हैं । नद-उपनद-मिन-कुक्षि
मित्र-तथा वचस-चिना और उपचिना दो कनारों-मित्र और दूसरा पुष्टि ये
पुन मदिरा के उत्पन्न हुए थे इसके अनन्तर सुव्रत हुआ था ॥१५४ १५५ १५६
॥१५७-१५८-१५९-१७०॥

उपविम्बोऽथ विम्बश्च सत्त्वदन्तमहीजसौ ।

वत्सार एते विख्याता भद्रापुत्रा महावला ॥१७१

वशास्या समदाश्चौरि पुत्र कीर्तिकमुत्तमम् ।

देवक्या जज्ञिरे शौरि सुपेण कीर्तिमानपि ॥१७२

तदयो भद्रसेनश्च यजुदायश्च पञ्चम ।

पद्मो भद्रविदेकश्च कस सर्वास्त्रिषान तान् ॥१७३

अथ तस्यामवस्थायामायुष्मान् सबभूव ह ।

लोक नाथः पुनर्विष्णु पूवकृष्ण प्रजापति ॥१७४

अनुजाताऽभवत् कृष्णा सुभद्रा भद्रमापिणी ।

कृष्णा सुभद्रेति पुनर्म्याख्याता वृष्णिनन्दिनी ॥१७५

सुभद्राया रथी पार्थादभिमन्युरथायत ।

वसुदेवस्य भार्यासु महाभागासु सप्तसु ।

ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्ताश्चिबोधत ॥१७६

अताऽस्य सह देवाया शूरो जज्ञम्भयासस ।

प्राङ् देवाननन्तम्बु शौरी जज्ञ कुलोद्बहम् ॥१७७

उपसङ्ग वसुन्नापि तनयो देवरक्षितौ ।

एव देश सुतास्तस्य कसस्तानप्यचातयत् ॥१७८

उपविम्ब-विम्ब-सत्त्वदन्त-महीमा के चार पुत्र जो महान् बल वाले थे
भद्रा के सुत कहे गये थे ॥१७१॥ वशासी के समक से शौरि ने उत्तम कीर्तिक
पुत्र को उत्पन्न किया था । देवकी में शौरि-सुपेण-कीर्तिमान्-तदय-भद्रसेन-
यजुदाय पाँचवाँ तथा छठा भद्रविदेक था । कस ने उन सभी पुत्रों को मार दिया
था ॥१७२ १७३॥ इसके अनन्तर उस अवस्था में आयुष्मान् हुआ था । लोक-

नाथ—किर विष्णु—पूव रुप्स्य श्रीर प्रजापति ह्य ॥१७५॥ पीत्र उत्पन्न हाने वाली रुप्सा—मुभद्रा—भद्रभाषिणी—रुप्सा—मुभद्रा ये किर यान्त्रात वृणिग नन्दिनी यी ॥१७५॥ मुभद्रा मे पाव (सत्रु न) ने रवी ग्रामिण्यु उत्पन्न हुआ था । वसुदेवकी महान् भाग वाली मात मायाप्रो म जो पुत्र उत्पन्न हुए ने उन्हें अय नाम से समझ लो ॥१७६॥ इसलिये इसके महत्वा म म् वर वभगावध उत्पन्न हुआ था । शीरी मे कुल का उद्गार करने माह्म दमाजनन्याम्बु ता जन्म दिया था ॥१७७॥ उपसन्न श्रीर वसु भी दो तनय (पुत्र) ये जा दमा र द्वारा रक्षित हुए थे । इन प्रकार ने वनक दम पुत्र थे । कम व उनका भी मार गिराया ॥१७८॥

विजय रोचनश्चैव वर्द्धमान तयैव च ।

एतान् सञ्चान् महाभागानुपदेवा व्यजायत ॥१८६॥

स्वगाहव महात्मान वृक देवी न्वाजायत ।

आगाही च स्वसा चैव सुरुपा सिङ्गिगमिणी ॥१८७॥

सप्तम देवकीपुत्र सुनाया मृपुत्रे भुवम् ।

गवेपण महाभाग तड् ग्रामे चित्र योनिम् ॥१८८॥

श्राद्धदेव पुरा येन बने विरचिता द्विजा ।

शंभायामददच्छ्रीर पुत्र कीजिस्मभ्यम् ॥१८९॥

सुगन्धी वनराजी च शीरेरास्ता परिग्रह ।

पुण्ड्रश्च कपिलश्चैव वसुदेवात्मजौ हि तौ ।

तयो राजाऽभवत् पुण्ड्र कपिलस्तु वन ययो ॥१९०॥

तस्या सममवद्वीरो वसुदेवात्मजो वली ।

राजा नाम निपादोऽगो प्रथम स धनुर्द्धरः ॥१९१॥

विख्यातो देवरातस्य महाभाग सुतोऽभवत् ।

पण्डिताना मत प्राहुर्देवश्रवसमुदभवम् ॥१९२॥

अस्मक्या लभते पुत्रमनार्हाष्टि यशस्विनम् ।

निवर्त्त शक्रश्चक्रुध्न श्राद्धदेव महाबलम् ॥१९३॥

उपदेवा ने विजय—रोचन—वर्द्धमान् इन सबको महान् भाग वाली को

उत्पन्न किया था ॥१७६॥ वृकदेवी ने महान् आत्मा बानि स्वभाह्व को उत्पन्न किया था । आत्माही एक स्वसा जी थी जो सुन्दर रूप वाली शिशिरावली थी ॥१८॥ सुनासा ने सारथ देवकी के पुत्र को भुव को प्रसूत किया था । गन्धेश महामाग श्रीर उग्राय ने चित्रबोधी श्रीर आद्भदेव को उत्पन्न किया था जिन्होंने कि पहिले वन में द्विज बनाये थे । शम्भु ने शौरि ने अश्वमेध कौशिक पुत्र को किया था ॥१८१॥ सुगन्धि श्रीर वनराजी ने शौरि का परिग्रह था । पुण्ड्र श्रीर कपिल ने दो वसुदेव के पत्र थे । उन दोनों ने वसुदेव तो राजा हुआ था श्रीर कपिल वन में चला गया था ॥१८३॥ उससे श्रीर वसुदेव का पुत्र हुआ था जो बहुत बल वाला था । वह निपाद नाम वाला राजा था जो प्रथम राजा था हुआ था ॥१८४॥ देवराज का महाभाव विख्यात पुत्र हुआ था । शेषध्व ने समुद्रज वाला परिग्रहो का मत कहते हैं ॥१८५॥ निराल ने अस्मकी में अनाद्वि-यवास्मिनी-सक समुद्रों के नासक एवं महा बलवाद् आद्भदेव पत्र को प्राप्त किया था ॥१८६॥

अजायत आद्भदेवो निपचादियत् धृत ।

एकसम्यो महावीर्यो निपाद परिवर्द्धित ॥१८७॥

गण्डूपायानपत्याय कृष्णस्तुष्टोऽश्वत् सुतो ।

वासवेभ्यश्च साम्बश्च कृतास्त्रो सस्तनधारी ॥१८८॥

तस्मिजस्तन्तिमालम् स्वपत्नी कनकस्य तु ।

वस्तावनेस्त्वपुत्राय वसुदेव प्रतापवान् ।

सौतिर्ददौ सुत वीर शौरि कौशिकमेव च ॥१८९॥

तपाञ्च कोषन्तु च विरजा स्थामसृष्टिमी ।

अनपत्योऽभवच्छायाम श्यामकस्तु वनययो ।

जुगुप्समानो भोजत्वं राजपितृमवाप्नुयात् ॥१९०॥

य इदं जन्म कृष्णस्य पठते नियतव्रत ।

आवनेद्वाहायश्चापि सुमहत्पुण्यमाप्नुयात् ॥१९१॥

देवदेवो महातेजा पूज्य कृष्ण प्रजापति ।

विहाराय मनुष्येषु जज्ञ नारायण प्रभु ॥१९२॥

देवमया वसुदेवेन तपसा पुष्करेक्षणा ।

चतुर्बाहु स विज्ञेयो दिव्यरूप त्रियान्वित ॥१६३॥

प्रकाशो भगवान् योगी कृष्णो मानुषभागत ।

अव्यक्तोऽव्यक्तनिर्गुणश्च स एव भगवान् प्रभु ॥ १६४ ॥

यस्योक्ति गंगा धृत है कि ब्राह्मदेव निगल के पङ्क्ति हुआ था । महान् भीरु वाला पञ्चलध्व निपातो के द्वारा गरिर्गर्द्धन किया गया था ॥१६३॥ यिना सन्तानि प्राप्त गरुडूप के भिये सन्तुष्ट कृष्ण न बानो पुन दे दिये थे । ये दोनों पात देवता श्रीर ताम्र ये जो प्रताप एव अस्र लक्षण वाले थे ॥१६४॥ तन्तिज श्रीर सन्निमाज वरतात्रि ऊनर के अगन दो पुत्रों को प्रतापवान् वसुदेव ने पुत्र हीन न किए दे दिया था श्रीर सौमि ने श्रीर श्रीर और सौमिक पुत्र को दे दिया था ॥१६५॥ तपा—दोस्तु विरजा—श्याम श्रीर सुखिम हुए उनमे श्याम सन्तति हीन था सो नरु श्यामरु वन में चला गया था । भोजत्व की पुगुप्ता करता हुआ उगने रात्रि हीने का वद प्राप्त कर लिया था ॥१६६॥ श्री इत गुण के शम्भ को निवत तत बाना होते हुए पकता है और किसी ब्राह्मण को इसे श्रवण कराता है यह महान् सुख का प्राप्त किया करता है ॥१६७॥ महान् लेज वाले बेरो के भी देव प्रजापति कृष्ण पङ्क्ति विहार करने के भिये प्रभु नागवसु ॥ मनुष्यों में जन्म ग्रहण किया था ॥१६८॥ वसुदेव से देवकी में तप के द्वारा पुष्कर के समान सुन्दर नेत्रो वाला—श्री से अन्वित—चार भुजाओं से युक्त तथा दिव्य रूपवारी वह विज्ञेय है ॥१६९॥ प्रकाश, योगी, भगवान् कृष्ण मानुष के रूप में प्राप्त होगये । वन प्रभु भगवार् ही जो अव्यक्त है और अव्यक्त चिह्नो में स्थित है, मानुष रूप में आय थे ॥१७०॥

नारायणो यतश्चक्रं प्रभव चाव्ययो हि स ।

देवो नारायणो भूत्वा हरिरासीत्सनातन ॥१७१॥

योऽमृजद्वादिगुह्य पुरा चक्रं प्रजापतिम् ।

अदितेरपि पुनस्त्वमेत्य यादवनन्दन ।

देवो विश्वरुतिरुपात्त शक्रादवरजोऽभवत् ॥१७२॥

प्रसादज यस्य विभारदित्या पत्रकारणम् ।
 वषार्थं सुरसङ्गणा दैत्यदानवरक्षसां ॥१६७॥
 ययातिवशजस्याथ वसुदेवस्य घीमत् ।
 कुल पुष्य यत् कम भेजे नारायण प्रभु ॥१६८॥
 सागरा समकम्पन्त चेलुश्च धरणीधरा ।
 ज्ज्वलुश्चाग्निहोत्राणि जायमाने जनादन ॥१६९॥
 शिवाश्च प्रववुर्वाता प्रशान्तिमभवद्भज ।
 ज्योतीष्यभ्यधिक रेजुर्जायमाने जनादन ॥ २००॥
 अभिजिज्ञाम नक्षत्र जयन्ती नाम धवरी ।
 मुहूर्त्तो विजयो नाम यत्र जानो जनादन ॥२०१॥
 अभ्यक्त क्षात्र्यत कुम्भो हरिनारायण प्रभु ।
 जायते स्मव नगवान् नयनर्नोहमन् प्रजा ॥२०२॥

क्योंकि अथर्व नारायण ने प्रभव किया अर्थात् जन्म ग्रहण किया था
 नारायण होकर सनातन हरि हुए थे ॥१६७॥ जिसने पहिले आदि पुरुष
 प्रजापति का सुजन किया था वह यादव भवन अविति के भी पुत्र के स्वरूप को
 प्राप्त कर वेव विष्णु नाम से प्रसिद्ध हुए थे और दम्भ के छोटे भाई बन गये थे
 ॥१६८॥ जिस किशु के अविति के पुत्र होने का कारण केवल प्रसाद ही है ।
 जोकि देवी के शत्रु दत्य-दानव और राक्षसी के वध करने के लिये ही हुआ था
 ॥१६९॥ राजा ययाति के वध में जन्म लेने वाला भीमान् वसुदेव का कुल बहुत
 पुण्य शाली है और पवित्र है जिससे कि प्रभु नारायण ने जन्म ग्रहण कर कर्म
 किया था ॥१७०॥ नगवान् जनादन के उत्पन्न होने के समय में समस्त सागर
 कम्पमान हागये थे और सब पर्वत जलायमान होयसे थे और चारों ओर अग्नि
 होत्र ज्वलित होगये थे ॥१७१॥ कल्याण कर वायु बहने लगी रज ने
 प्रशान्ति प्राप्त करली थी नववान् जनादन के जायमान होने पर ज्योतिर्मा अत्य
 अधिक रूप से प्रकाश वाली होकर ज्वलित हो रही थी ॥२००॥ उस समय में
 अभिजित् नाम वाला नक्षत्र था—जयन्ती नाम की धवरी थी और विजय नाम
 वाला मुहूर्त्त था जिस समय में नववान् जनार्दन ने अपना जन्म ग्रहण किया

था ॥२०१॥ अव्यक्त-आश्रित-प्रभु नारायण हरि योकृष्ण भगवान् नेनो के द्वारा प्रजा को मुक्त करते हुए उत्पन्न हुए थे ॥२०२॥

आकाशात् पुष्पवृष्टीश्च ववर्ष त्रिदशेश्वर ।

गोभिर्मङ्गलयुक्ताभि स्तुवन्तो मधुसूदनम् ।

महर्षय सगन्धर्वा उपतस्थु सहस्रश ॥२०३॥

वसुदेवस्तु त रात्रौ जात पुत्रमधोक्षजम् ।

श्रीवत्सलक्षणं दृष्ट्वा दिवि दिव्ये सुलक्षणम् ।

उवाच वसुदेव स्व रूपं सहारं वं प्रभो ॥२०४॥

भीतोऽहं कसतस्तात एतदेव ब्रवीम्यहम् ।

मम पुत्रा हतास्तेन ज्येष्ठास्तेऽद्भुतदशना ॥२०५॥

वसुदेववच श्रुत्वा रूपं स हृतयान् प्रभु ।

अनुज्ञात पिता त्वेन नन्दगोपगृहं गत ।

उग्रसेनमते तिष्ठन् यशोदायं तदा ददौ ॥२०६॥

तुल्यकालन्तु गर्भिण्यौ यशोदा देवकी तथा ।

यशोदा नन्दगोपस्य पत्नी सा नन्दगोपते ॥२०७॥

त्रिदशेश्वरो ने आकाश से पुष्पो की वर्षा की थी और भगवान् मधु-सूदन की मङ्गलमयी बाणियों के द्वारा स्तुति की थी । उस समय सहस्रो ही महर्षिगण-गन्धर्व लोक वहाँ पर स्तवन गान करने के लिये उपस्थित होगये थे ॥२०३॥ वसुदेव ने तो रात्रि के समय में भगवान् अधोक्षज को पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए देखकर जोकि श्रीवत्स के चिह्न से युक्त और समस्त अन्य दिव्य लक्षणों से भद्रित थे वसुदेवजी ने कहा—हे प्रभो ! इस समय आप इस अपने स्वरूप का सहस्रश वर्णित ॥२०४॥ हे तात ! मे शत्रु कस से भयभीत हो रहा हूँ यही कारण है कि मैं इस समय आपसे यह निवेदन कर रहा हूँ । इस कस ने अद्भुत दर्शन वाले मेरे आपसे ज्येष्ठ पुत्रों को मार डाला है ॥२०५॥ वसुदेव के इस विनिवेदित वचन गो सुनकर भगवान् ने अपने उस स्वर्ण का सवरण कर लिया था । उनके द्वारा पिता वसुदेव अनुज्ञात होकर इनको लेकर नन्दगोप के गृह पर चले गये थे । उग्रसेन के मत में रहते हुए उस समय उन्हें यशोदा के

लिये दे दिया था ॥२६॥ यशोदा और देवकी दोनों ही एक ही समय में
गमिली हुई थी । यह यशोदा गोपनि नंद की पत्नी थी ॥२७॥

यामेव रजनी कृष्णो जज्ञ वृष्णि कुलप्रभु ।

तामेव रजनी कन्या यशोदापि व्यजायत ॥२०८॥

त जात रक्षमाणस्तु वसुदेवो महायशः ।

प्रादात् पुत्र यशोदायै कन्यान्तु जगृह स्वयम् ॥२०९॥

इत्थन नन्दगोपस्य रक्ष भामिति चाब्रवीत् ।

सुतस्ते सम्बन्ध्याणो याववाना अभिष्यति ।

अथ स गर्भो देवक्या अस्मत्पत्नेषाम् हनिष्यति ॥२१०॥

तद्वसेनात्मजायाञ्च कन्यामानकदुन्दुभे ।

निवेदयामास तथा कन्येति शुभलक्षणा ॥२११॥

स्वसाया तनय कसो जात नवावधारयत् ।

अथ तामपि कुष्टात्मा ह्युत्ससज मुवाचिवत् ॥२१२॥

हता व या यदा कन्या अपत्येय वृषामति ।

कन्या सा नवृधे तत्र वृष्वितचनि पूजिता ॥२१३॥

पुत्रवत्परिपालयन्ता देवा देवान् यथा तदा ।

तामेव विधिनोत्पन्नमाहु कन्या प्रजापतिम् ॥२१४॥

एकावशा तु जज्ञ वै रक्षार्थं केववस्य ह ।

ता व सर्वे सुमनस पूजयिष्यन्ति यादवा ।

देवदेवो दिव्यवपु कृष्ण सरश्चितोज्जया ॥२१५॥

वृष्णि कुल के स्वामी जिस रात्रि में उत्पन्न हुए थे उसी रात में यशोदा
ने भी एक कन्या को जन्म दिया था ॥२६॥ उन समुत्पन्न श्रीकृष्ण बालक की
रक्षा करते हुए वसुदेवजी ने जिनका महान् बंध था वह बाल कृष्ण पुत्र तो
भी यशोदा की दे दिया था और उस यशोदा के मन में प्रसूत कन्या की स्वयं
ग्रहण कर लिया था । २६॥ इस शालकृष्ण बालक को नन्दगोप को देकर वसु
देवजी ने कहा—येरी रक्षा करिये । तुम्हारा वह पुत्र समस्त बत्त्याणों के करने
वाला है जोकि यादवों का मङ्गल करनेवाला होगा यह देवकी का यह गर्भ है जो

समस्त हमारे यत्नेको का हनन कर देगा ॥२१०॥ श्रीर उग्रसेन की आत्मजा देवकी को आनन्द दुःखि ने वह कन्या लाकर दे दी थी और उस समय में वह कन्या शुभ नक्षत्र वाली उत्पन्न हुई है—ऐसा ज्ञात कराया गया था ॥२११॥ कदा ने अपनी बहिन के पुत्र हुआ है—यह निश्चय नहीं किया था । इसके अनन्तर उस दुष्टात्मा ने मुदान्वित होते हुए उमरों भी उत्पन्न कर दिया था । जिस समय में जो कन्या हत हुई यह वृथा बुद्धि वाला मन में विचार करता है कि दुष्णिग के घर में पूजित वह कन्या बकी हुई है ॥२१२-२१३॥ उस समय देवों की भांति देव पुत्र के समान परिपालन करते हुए विप्र के द्वारा उत्पन्न कन्या को प्रजापति से चोने ॥२१४॥ यह भारहृषी केशव की रक्षा के लिये उत्पन्न हुई है । उसको फिर सभी सुमनस पादव पूजेंगे कि देवों के देव कृष्ण इसके द्वारा शक्ति हुए हैं ॥२१५॥

किमर्थं वसुदेवस्य भोजं कसो नराधिप ।

जघान पुत्रान् बालान् वै तन्नो व्यभ्यातुमर्हसि ॥२१६

शृणुष्व ये यथा कस पुत्रानानकदुःखे ।

जाताञ्जाताञ्छून् सर्वान् निष्पिपेप वृथामति ॥२१७

भयाद्यथा महाबाहुर्जातं कृष्णो विवासित ।

तथा च गोपु गोविन्द सबद्ध पुरुषोत्तम ॥२१८

उक्तं हि किल देवक्या वसुदेवस्य धीमत ।

सारथ्यं कृतवान् कसो युवराजस्तदाऽभवत् ॥२१९

ततोऽन्तरिक्षे वागासीद्दिव्या भूतस्य कस्पचित् ।

कसो यया सदा भीतः पुष्कला लोकसाक्षिणी ॥२२०

यामेता वहसे कस रथेन परकारणात् ।

अस्या यः सप्तमो गर्भः स ते मृत्युर्भविष्यति ॥२२१

ता श्रुत्वा व्यथितो वाणी तदा कसो वृथामति ।

निष्क्रम्य खड्गं तां कन्यां हन्तुकामोऽभवत्तदा ॥२२२

तमुवाच महाबाहुर्वसुदेवः प्रतापवान् ।

उग्रसेनात्मजः कसः सौहृदात्प्रणयेन च ॥२२३

शब्द्या सुदेवी माद्री च सुशीला नाम चापरा ।

कालिन्दी मित्रविन्दा च सक्षमणा जालवासिनी ॥२३४

एवमादीनि देवाना सहस्राणि च पोटथ ।

चतुर्दश तु मे प्रोक्ता मर्यामाप्सरसा दिवि

विचिन्त्य दत्त शङ्करा विशिष्टास्त्विह प्रपिता ॥२३५

सूतजी ने कहा—वक्ष्य के पुरुष ने और अदिति की स्त्रियाँ थी । इसके अनन्तर महाबाहु ने देवकी के कामो का सम्बन्धन किया था ॥२३॥ योगात्मा उसने अपनी योगशक्ति से समस्त प्राणिमो को रोहित करते हुए मानुष शरीर में प्रवेश करके उस देव ने भूमि में विचरण किया था ॥२३१॥ यम के गृह हो जाने पर भगवान् विष्णु ने स्वयं वृष्णि कुल में उस समय जन्म लिया । वह जन्म ग्रहण यम की आज्ञास्वा करने के लिये तथा असुरों का विनाश करने के लिये ही हुआ था ॥२३२॥ अमियकी कन्या का आह्वान किया गया था उस समय में नभ्य बितर्ही सत्या सजाविन् की सम्प्रभाया आम्बवती और रोहिणी साईं गई थी ॥२३३॥ शब्द्या—सुदेवी—माद्री—सुशीला—कालिन्दी—मित्रविन्दा—सक्षमणा—जालवासिनी—एवमादि देवो की लोकहृत्कार थी । बीसहू तो दिवलोक में अप्सराओं के गण रहे जाते थे देवों के द्वारा और इन्द्र के द्वारा विशेष रूप से चिन्तन करके वो निश्चित ही के वहाँ प्रेषित करदी गई थी ॥२३४ २३५॥

पत्न्यथ वासुदेवस्य उत्पन्ना राजवेक्ष्मसु ।

एता पत्न्यो महाभागा दिव्यवक्त्रेणस्य विद्युता ॥२३६

प्रद्युम्नश्चास्तेभ्यश्च सुदेव्यश्च वरय स्तथा ।

चाक्षश्च चाक्षमत्रश्च मन्त्रवाक्स्तथाअर ॥२३७

चारुविष्णुश्च रुक्मिण्या कन्या चारुमती तथा ।

सानुर्भानुस्तमालश्च रोहितो मन्त्रयस्तथा ॥२३८

जरान्धकस्ताम्रवक्षा भीमरिश्च जरन्धम ।

अतस्रो जनिरे तेषा स्वसारो गह्वर्ध्वजात् ॥२३९

भानुभी मरिका चव ताथपर्णी जरन्धमा ।

सत्यभागभुतानेताश्चाम्बवस्या प्रजा शृणु ॥२४०

भद्रश्च भद्रगुप्तश्च भद्रविन्द्रस्तथैव च ।

सप्तबाहुश्च विख्यात कन्या भद्रावती तथा ।

सम्बोधनी च विख्याता श्रेया जाम्बवतीमुता ॥२४१॥

सग्रामजित् शतजित् तथैव च सहस्रजित् ।

एते पुत्रा सुदेव्याश्च विष्वक्सेनस्य कीर्तिता ॥२४२॥

वृको वृकाश्वो वृकजिद्वृजिनी च तुराङ्गना ।

मित्रबाहु सुनीयश्च नाम्नजित्वा प्रजास्त्वह ॥२४३॥

ये सब यहाँ राजाओं के भयभो में वामुदेव की पत्नी बनने के लिये उत्पन्न हुई थी । ये महात्मा भाव वाली पत्नियाँ विष्वक्सेन की प्रसिद्ध हुई थी ॥२३६॥ प्रद्युम्न-चारवेणु-सुदेव-सरभ-बाह-बाहभद्र और चारुविन्ध्य वनिमगी में पुत्र उत्पन्न हुए तथा एक चारुमती नाम वाली कन्या उत्पन्न हुई थी । सानुर्भातु-अक्ष-रोहित-मन्त्राय-जरान्धक-ताम्रवक्षा-भीमरि और जरन्धम ये सप्तभामा के पुत्र हुए ये और इनकी चार बहनें गरुध्वज से उत्पन्न हुई थी जिनके नाम भानु-भीमरिका-ताम्रवर्णी और जरन्धमा ये—सप्तभामा के सुत हो बतला दिये गये हैं सब जाम्बवती के पुत्रों को श्रवण करो ॥२३७-२३८-२३९-२४०॥ भद्र-भद्रगुप्त-भद्रविन्द्र-सप्तबाहु ये सब जाम्बती के विख्यात पुत्र थे । भद्रावती कन्या थी जोकि सम्बोधनी-दम नाम से विख्यात जाम्बवती के जानने योग्य थे ॥२४१॥ सग्राम जित्-शतजित्-सहस्रजित् ये सुदेवी के पुत्र थे जोकि विष्वक्सेन के कहे गये हैं ॥२४२॥ वृक-वृकाश्व-वृकजित् और वृजिनी सुराङ्गना-मित्रबाहु-सुनीय ये नाम्नजित् की सम्पत्ति यहाँ पर हुई थी ॥२४३॥

एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निबोधत ।

प्रयुतन्तु समाख्यात वासुदेवस्य ये सुता ॥२४४॥

अयुतानि तथाष्टौ च शूरा रणविशारदा ।

जनादनस्य वशो व कीर्तितोऽयं यथातथम् ॥२४५॥

बृहती नर्तकोन्नेयी मुनये सङ्गता तथा ।

कन्या सा बृहदुच्छ्रत्य सौनेयस्य महात्मनः ॥२४६॥

तस्या पुत्रास्तु विख्यातास्त्रय समितिशोभना ।

अङ्गद कुमुद श्वेत कन्या श्वेता तथैव च ॥२४७॥

अवगाहश्च चित्रश्च शूरश्चित्रवरश्च य ।

चित्रसेन सुतश्चास्य कन्या चित्रवती तथा ॥२४८॥

तुम्बश्च तुम्बवाणश्च जनस्तम्बश्च तावुभौ ।

उपाङ्गस्य स्मृतौ द्वौ तु वज्जार क्षिप्र एव च ॥२४९॥

भूरीन्द्रसेनो भूरिश्च गवेषस्य सुतावुभौ ।

युधिष्ठिरस्य कन्या तु सुतनुर्नाम विप्रुता ॥२५०॥

तस्यामश्वसुतो जज्ञ वध्नो नाम महायज्ञा ।

वध्नस्य प्रति बाहुस्तु सुचारस्तस्य चात्मज ॥२५१॥

एवमादि सहस्रो पुत्र ये ऐता ज्ञान मो । वासुदेव के जो पुत्र हुए वे थे प्रभुत थे ऐता समाख्यात हैं ॥२४४॥ उनमें धावुत और धाठ ती बड़े ही भर दया दयाविधा के विद्यारथ थे । मैने धार कोणो से यह जनपदन के बरा बरा ठीक ठीक बराबर कर दिया है ॥२४५॥ बृहती गर्वको-मेयी जो सुतय के साथ सङ्गत थी वह महात्मा धीमेय बृहद्ब्रह्म की कन्या थी ॥२४६॥ उसके तीन समित की सुसीमित करने वाले पुत्र विख्यात हुए थे । जिनके नाम अङ्गद-कुमुद और श्वेत ये थे तथा एक श्वेता नाम वाली कन्या थी ॥२४७॥ और इसके पुत्र अवगाह-चित्र-शूर-चित्रवर और चित्रसेन थे तथा एक चित्रवती नाम वाली कन्या थी ॥२४८॥ तुम्ब-तुम्बवाण और जनस्तम्ब ये बोलो उपाङ्ग के पुत्र बड़े बड़े हैं जिनके नाम वज्जार और क्षिप्र हैं ॥२४९॥ भूरीन्द्रसेन और भूरि ये भी गवेष के पुत्र थे और युधिष्ठिर की जो सुतनु नाम से विप्रुत थी एक कन्या हुई थी ॥२५०॥ उसमें महाव्र वध्ननामा वध्न नामक अश्वसुत उत्पन्न हुआ था । वध्न के प्रति बाहु हुआ और उसका पुत्र सुचार उत्पन्न हुआ था ॥२५१॥

कादमा सुपाश्व तनय जज्ञ साम्बा सरस्विनम् ।

तिस्र कोट्यस्तु पुत्राणा यादवाना महात्मनाम् ॥२५२॥

पटिष्ठतसहस्राणि वीर्यवन्तो महाबला ।

दवाणा सञ्च एवेह उत्पन्नास्त महोचस ॥२५३॥

देवागुरो हता ये च अमृता ये महातपा ।
 उहोत्पन्ना मनुष्येषु वाचन्ते सद्यमानवान् ।
 तेषामुत्तमादनायन्तु उत्पन्ना यादवे नृपे ॥२५८॥
 कुन्तानि दद्युर्चेष्ट्य यादवाना महान्मनाम् ।
 सर्वं मे ककुलं यद्वद्वतते वैष्णवे कले ॥२५९॥
 विष्णुस्तेषां प्रमाणं च प्रभुत्वे च व्यवस्थितम् ।
 निदेशश्चायिभिस्तस्य वदुर्गन्ते सर्वमानुषा २६०॥
 इति प्रभूतिर्गुणैर्गोना गमानव्यामयोगतः ।
 कीर्तिता कीर्तनाच्चैव कीर्त्तिनिद्रिमभीप्सिताम् ॥२६१॥

काह्या ने गुणार्थ लभ्य को उत्पन्न किया था और माया ने तन्मयी पुत्र को जन्म दिया था । महार् माया रात्रि वाचरी के नीचे तनीष्ट पुत्रा की सत्पा दी ॥२५८॥ साठ हजार बीस बार और महार् वर वाले थे । य तनी महार् प्रोज रात्रि यहाँ देवी के ही भव उत्पन्न हुए थे ॥२५९॥ देवामुर युद्ध में जो महार् तप धर्म प्रभु माय गये थे वे गये यहाँ मनुष्यों में उत्पन्न हुए थे जोकि नमस्त मनुष्यों वा रा दिया करते हैं । उनके उत्पादन करने के लिये ही यादव कुल में उत्पन्न हुए थे ॥२६०॥ महारमा यादवों के ग्यात्र कुल हुए थे । वे सत्र वैष्णव कुल में एक कुल में एक कुल की भाँति वसतमान रहते हैं ॥२६१॥ उन सत्र प्रमाण में और प्रभुत्व में विष्णु व्यवस्थित हुए थे । उसने निदेश में स्थित रहने वालों के द्वारा गमस्त मनुष्य वच द्विष जाते हैं ॥२६२॥ यह वृष्णिषा की प्रभूति है जिसका वरुण सखेय और विस्तार से कीर्त्ति हुआ है । जो कीर्त्ति और मिद्धि न चाहते वासे हैं उनको इसके कीर्त्तन करने से प्राप्त होती है ॥२६३॥

प्रकरण ५६—शम्भुस्तोत्र कीर्तन

मनुष्यप्रकृतीन् देवान् कीर्त्यमानान्निबोधत ।
 सङ्क्षेपेण वासुदेव प्रबुध्न साम्ब एव च ॥१॥

अनिरुद्धश्च पञ्च ते वशवीरा प्रकीर्तिता ।
 सप्तपथ कुबेरश्च यक्षो भणिवरस्तथा ॥२
 शालकी बदरश्च व बिश्वान् धन्वन्तरिस्तथा ।
 नन्दिनश्च महादेव शालकुमान उन्मते ।
 प्रादिदेवस्तदा विष्णुरेभिश्च सह दधत ॥३
 विष्णु किमथ सम्भूत स्मृता सम्भूतय कति ।
 भविष्या कति वाये तु प्रादुर्भावा महात्मन ॥४
 ब्रह्मसेने युधान्तेषु किमर्थमिह जायते ।
 पुन पुनन्मनुष्येषु तत्र प्रचक्षि पृच्छताम् ॥५
 विस्तरेणैव सर्वाणि कर्माणि रिपुधातिन ।
 श्रोतुमिच्छामहे सम्भग् देहै कथ्यस्य धीमत ॥
 कर्मणामानपूज्यश्च प्रादुर्भावाश्च ये प्रभो ।
 या चास्य प्रकृति सूत ताश्चास्मान् वक्तुमुहसि ॥६
 कथ स भगवान् विष्णु मुरेध्वरिनिपूदम ।
 धनुदेवकले धीमान् बाहुदेवस्त माणत ॥७

मनुष्य की प्रकृति वाले देवों को जब बताया जाता है उन की रचनाओं को जमी भीति समझ लो । लक्ष्मण-बाहुदेव-मनुष्य-सामन् और अनिरुद्ध ये पाँच वशवीर कहें गये हैं । सप्तपि कुबेर-यक्ष-भणिवर-शालकी-बदर-विश्वान् धन्वन्तरि-नन्दिन-महादेव और शालकुमान रहें जाते हैं । उस समय इन देवों के साथ विष्णु धाति देव थे ॥२ ३ ॥ श्रुतिपों ने कहा—भगवान् विष्णु ने किस प्रयोजन की विधि के लिये जन्म ग्रहण किया था और उनके कितने जन्मावतार हैं तथा महान् भाग्य वाले विष्णु के अथ कितने प्रादुर्भाव भविष्य में होने वाले हैं ? ॥४॥ युधान्तों ने ब्रह्मसेन के यहाँ निज कारण से जान लते हैं जोकि मनुष्यों ने बार बार जन्म ग्रहणों से लिया करते हैं इसका क्या कारण है—यह पूछने बात हमनों जब बतलाएँ ॥५॥ धनुषों के बात करने वाले धीमान् इच्छ के पारीशो क द्वारा जो कर्म होते हैं उन सबको विस्तार के साथ हम लोग सुनना चाहते हैं ॥६॥ हे प्रभो ! उनके कर्मों की बाहुपूर्वा-प्रादुर्भावा

और जो इनकी प्रकृति है वह सब हे सूतजी । हमको आप बताने को योग्य होते हैं ॥७॥ वह भगवान् सुरु मे शत्रुओं के नाश करने वाले धीमान् विष्णु वसुदेव के कुल मे वसुदेवत्व को कैसे प्राप्त हुए थे ? ॥८॥

अमरै सूत कि पुण्य पुण्यकृद्भिरलकृतम् ।

देवलोक समुत्सृज्य मर्त्यलोकमिहागत ॥९॥

देवमानुपयोर्नेता भूर्भुव प्रसवो हरि ।

किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुषे समवेशयत् ॥१०॥

मश्नक वर्तयत्येको मनुष्याणां मनोमयम् ।

मनुष्ये स कथं बुद्धिं चक्रे चक्रभृता वर ॥११॥

गोपायनं यः कुरुते जगतां सार्वभौतिकम् ।

स कथं नागतो विष्णुर्गोपमन्वकरोत्प्रभु ॥१२॥

महामृतानि मृतात्मा यो दधार चकार ह ।

श्रीगर्भे स कथं गर्भे स्त्रिया भूचरया धृत ॥१३॥

येन लोकात् क्रमं जित्वा त्रिभिस्त्रिस्त्रिदक्षेप्सया ।

स्थापिता जगतो मार्गास्त्रिवर्गप्रवरास्त्रय ॥१४॥

योऽन्तर्काले जगत्पीत्वा कृत्वा तोयमयं वपु ।

लोकमेकार्णाव चक्रे दृश्यादृश्येन वर्त्मना ॥१५॥

यः पुराणो पुराणात्मा वाराह वपुरास्थितः ।

वदौ जित्वा वसुमतीं सुराणां सुरसत्तम ॥१६॥

हे सूतजी । पुण्य करने वाले देवों से प्रलकृत पुरणतम देवलोक का त्याग करके यहाँ मनुष्य लोक में आये थे अर्थात् विष्णु ने मनुष्यों में अवतार लिया था ॥९॥ भूर्भुव प्रसव हरि जो देव और मनुष्यों के नेता हैं उनमें किस जिसे अपने दिव्य आत्मा को मनुष्य रूप में सन्निविष्ट किया था ॥१०॥ जो एक मनुष्यों के मनोमय चक्र को चलाता है उस चक्रभृता में परम श्रेष्ठ ने मनुष्य बुद्धि कैसे की थी ॥११॥ जो प्रभु जगतों का सार्वभौतिक गोपायन अर्थात् संरक्षण किया करता है वह प्रभु विष्णु किस निमित्त से भूमि में जाकर अर्थात् मानुषावतार लेकर गोप का अनुकरण करता था ? ॥१२॥ जो भूतों की आत्मा

महामूतो को बनाता है और धारण किया करता है श्रीमन्न वह भूचरी के द्वारा गर्भ में कैसे धारण किया गया था ? ॥१३॥ देवों की इच्छा से जिसने तीन क्रदमों से प्रधादि तीन पद से तीन लोको को जीतकर जगत् के त्रिवर्ग प्रवर तीन मार्ग स्थापित किये थे ॥१४॥ जो अन्त समन में तोमरूण शरीर बनाकर इस समस्त जगत् का पालन कर लोक को दृष्ट्य और अदृष्ट्य भाग से एक समुद्र के स्वरूप में कर देता था ॥१५॥ जो पुराण में पुराण आत्मा वाला है और बाराह के शरीर में स्थित हुआ था तथा सूरों में बहने समुमती को जीत कर जिसने सूरों को देवी थी ॥१६॥

येन सह यपु कत्वा द्विधा कत्वा च यत्पुन ।
 पूर्ववत्स्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुहृत ॥१७॥
 यः पुराह्मणलो भूत्वा श्रीम्ब सवत्तको विभु ।
 पातालस्थोऽर्जुनगत पपी तोयमय हवि ॥१८॥
 सहस्रधरण्य देव सहस्राणु सहस्रपा ।
 सहस्रधिरस देव यमाहुर्व युगे युगे ॥१९॥
 नाम्यारण्या समुद्रभूत यस्य पतामह गृहम् ।
 एकाण्यवगते लोके तत्पञ्चजयपञ्चजम् ॥२०॥
 येन ते निहता दस्या सन्नामे तारकामये ।
 सव्यदेवमय कत्वा सर्वायुधधर यपु ॥२१॥
 गरुडस्थेन धोत्सिक्त कान्तनेषिनिपाति
 उत्तराशे समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतोदधे ।
 यः शेते शास्वत योगमास्थाय तिमिर
 पुरारणी गममधस्त दिव्य तप ॥२२॥
 शक्रश्च यो दत्यमण्यवरुद्ध गर्भाविमानेन ॥
 जिसने सम्ब को क

बनाया था और पहिल दाय
 ॥१७॥ जो पहिले सवत्तक
 स्थित तथा अर्जुन यत होता

युग-युग में जिन हो मरग्य अणु वाना देव-महस्य अणु में युक्त-सहस्र सिर वाला
 कहते हैं ॥१६॥ जिससे नाभि की धरणी ल अर्थात् कमल नाल ल पितामह
 का घर उत्पन्न हुआ था और वह मिना ही पद के उत्पन्न होने वाला परब्रह्म
 एतत्तत्त्व लाल में था ॥२०॥ जिसने तारकामय मद्यम में गरुड वृक्ष और
 समस्त प्राणियों के धारण करने वाले अणु हो बनाकर देवों का जनन किया था
 ॥२१॥ गरुड पर स्थित जिनने अमृत का उरधि और सागर समुद्र के उत्तराश्र
 में उत्तिष्ठ कावनेमि हो विपातित कर दिया था जो मक्षान् तिमिर (अन्धकार)
 में योग में आस्थित होकर शाश्वत क्षयन किया करता है ॥२२॥ पट्टिने धरणी
 ने जिसको विद्य गन्ध के रूप में धारण किया था और तपस्या का प्रार्थ से
 जिसने अदिति गन्ध धारण किया था । जिसने गर्भ के अवमान से दाद को
 देव के द्वारा अग्रणी किया था ॥२३॥

यदानिस्तो लोकायानि स्थास्य चकारदंस्यान् सलिलेशयास्तान् ।

कुत्सादिदेवस्त्रिदिवस्य देवाश्चक्रे सुरेश पुरुषतमेव ॥२४॥

साहंभार्येन विविना अन्धाह्वार्येण कर्मणा ।

अग्निमाहवनीयश्च वेदिश्च व कुशस्रग् ॥२५॥

प्रोक्षणीय शुचश्च व अवगृह्य तथैव च ।

अथ त्रीनिह यश्चक्रे हव्यभाग प्रदान्मरो ॥२६॥

हव्यादाश्च सुराश्चक्रे कव्यादाश्च पितृनपि ।

भोगार्थं यज्ञयिविना यो यज्ञो यज्ञकर्मणि ॥२७॥

सूयान् समित्युव सोम पवित्र परिधीनपि ।

यज्ञियानि च द्रव्याणि यज्ञीयान्च तथानलान् ॥२८॥

सदस्यान् यजमानान्च यश्वमेधान् ऋतूतमान् ।

दिवश्चाज पुरा यश्च पारमेष्ठ्येन कर्मणा ॥२९॥

युगानुरूपं य कृत्वा श्रीरौतोकान् हि यथाक्रमम् ।

क्षणा निमेषा काष्ठाश्च कलास्त्रैकालमेव च ॥३०॥

गुह्यर्तास्तिथयो मारुता दिनसवत्सरास्तथा ।

श्रुतव कालयोगाश्च प्रमासु विविधन्तथा ॥३१॥

आयु क्षत्राण्युपचय लक्षण रूपसौक्ष्मम् ।

मघा वित्त च सौम्यश्च आस्त्रस्यव च पारणम् ॥३२॥

जब प्रतिल ने सोफ पदो का धुरण करके उन रत्नो को सलितेय
कर दिया था तब आदि देव ने त्रिदिव के देवो को करके पुरुषूत को ही सुपे
वा र्था कर दिया था ॥२४॥ बाह्यपक्ष विधि से और अन्वाहाय कम से मणि
को आह्वनीय को और वेदि को कुशलन को—ओलखीय लव को तथा ब्रह्म
भूष हो जिसने यहाँ तीन को मन्त्र ने हृष्य भाग को देने वाला किया था ॥२५॥
२६॥ और ह्वर के सेने वाले देवो को बनाकर कर्म के लने वाल पितृभो को
दिया था । यज्ञ के ब्रह्म ने यज्ञ की विधि से भीम के लिये जो यज्ञ स्वरूप है
॥२७॥ दूर-समित्-सूय-पवित्र सोम और परिधियो को मणिय द्रव्यो को
और मशीय अनलो को—सदस्यो को और वज्रमातो को—भद्र कर्तु मन्त्रमेषो
पारमेष्ठय कम से जो पहिले विधावित करता था ॥२८॥ जो युगो के अनुक्रम
मयाक्रम तीन जोको को बनाकर शस्त्र-निवेप-काष्ठा-कला और तीन कासो को
धिमने बनाया था ॥३॥ मुहूर्त-तिथियाँ-मास-दिन-सम्बत्सर-श्रुतये-काल
योग और तीन प्रकार के प्रमाण जिसने सुचित किये थे ॥३१॥ आयु-क्षेत्र
उपचय-लक्षण-रूप का तीक्ष्ण-मेषा-वित्त-शूरता और शास्त्र का पारण जिसने
दिया था ॥३२॥

त्रयो वराक्षियो सोकास्त्र विद्य पावकास्त्रत ।

व कात्य त्रीणि कर्माणि तिस्रो मायास्त्रयो गुणा ॥३३॥

सृष्टा लोका मुरात्र व येनात्य तेन कम्मथा ।

सम्बभूतगणा सृष्टा सम्बभूतगणात्मना ॥३४॥

नृणामिन्द्रियपूर्व्वण यामेन रमते च य ।

गतागताना यो नेता सम्बन्न विविधेश्वर ॥३५॥

यो गतिधमयुक्तानामगति पापकम्मणाम् ।

चातुवप्स्यस्य प्रमथन्नातुवर्ष्यस्य रक्षिता ॥३६॥

चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता चतुरायमसमय ।

न्गिन्तर नमो भूमिरापो वायुविभावसु ॥३७॥

चन्द्रमूर्ध्निद्वय ज्योतिर्युगेश क्षणदाचर ।

य पर ध्रूयते देवो य पर ध्रूयते तप ॥३८

य परन्तपस प्राहुय परम्परमात्मवान् ।

आदित्यादिस्तु यो देवो यश्च दैत्यान्तको विभु ॥३९

युगान्तेष्वन्तको यश्च यश्च लोकान्तकान्तक ।

सेतुर्यो लोकेसेना मेघ्यो यो मेघ्यकर्मणां ॥४०

वेद्यो यो वेदविदुषा प्रभुर्य प्रभवात्मनाम् ।

सोमभूतस्तु भूतानामग्निभूतोऽग्निवर्चनाम् ॥४१

मनुष्याणा मनोभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम् ।

विनयो नयतुमाना तेजस्तेजस्विनामपि ॥४२

तीन बरों—तीन लोक—तीन विद्या—तीन पापक—तीन काल—तीन कर्म—
तीन भाषा और तीन गुण जिनमे निर्मित किये थे ॥३३॥ जिसने अत्यन्त कर्म
मे लो हो और सुख का सुख किया था । सबभूत गणारमा ने समस्त भूतगणों
को बनाया था ॥३४॥ नरो के इन्द्रिय ध्रुव योम से जो रमण करता है गत और
प्रागतो का जो विविधेश्वर सर्वप्र नेता है ॥३५॥ जो धम मे युक्तो का गति है
और पाप कम वाली का अगति है । चातुर्वर्ण्य का जो प्रभव है और चारो
वरों का जो रक्षा करने वाला है ॥३६॥ जो चार विद्याओं का जानने वाला
और चारो आश्रमों का सधम है जो विज्ञाओं का अन्तर-नभ-भूमि-जल-वायु-
विभावसु है ॥३७॥ जो अग्नि और सूर्य दोनों की ज्योति-युगो का स्वामी—
क्षणदाचर है और जो परदेव सुना जाता है और जो पर तप सुना जाता है
॥३८॥ जो परन्तपस और जो परम्परमात्मवान् कहा जाता है । जो देव आधि-
त्यादि है जो विभु दैत्यान्तक है ॥३९॥ युगो के अन्त मे अन्त करने वाला है
और जो लोकों के अन्तक का भी अन्त करने वाला है । लोकसेतुओं का जो
सेतु है और जो मेघ्य कर्मों का मेघ्य है ॥४०॥ वेद के विद्वानों का जो जानने के
योग्य है और जो प्रभवात्माओं का प्रभु है । भूतों का जो सोमभूत है और अग्नि-
वर्चतो का जो अग्नि भूत है ॥४१॥ जो मनुष्यों का मनोभूत और तपस्वियों

का लपोभूत है । जब से इस पुष्पी का विनय और तेजस्विनी का भी जो है
है ॥४२॥

विग्रहो विग्रहाणा यो भक्तिर्भतिभतामपि ।

आकाश प्रभवो वायुर्वायुप्राणा हुताशन ॥४३॥

दिवा हुताशन प्राणा प्राणोज्ज्वलमधुसूदन ।

रमोऽभवच्छोणित व शोणिता मासमुच्यते ॥४४॥

मासात्तु मेदसो जन्म मेदसोऽस्थि निरूप्यते ।

अस्थ्ना मज्जा समभवन्मज्जात शुक्रसम्भव ॥४५॥

शुक्राद्गर्भं समभवद्भ्रूयुक्तेन कम्मणा ।

तत्रापि प्रथमश्चापस्ता शीम्यराशिरुच्यते ॥४६॥

गर्भोऽप्यसम्भवो ज्ञेयो द्वितीयो राशिरुच्यते ।

शुक्र सोमात्मक विद्यादातव पावकात्मकम् ॥४७॥

मासौ रसानुगावेतौ शीम्यं च शशिपावकौ ।

कफवर्गोऽभवच्छुक्र पित्तवर्गं च शोणितम् ॥४८॥

कफस्य तृदय स्थान मास्या पित्त प्रतिष्ठितम् ।

वेहस्य मध्ये तृदय स्थानन्तु मनस स्मृतम् ॥४९॥

गान्धिकोष्टान्तरं यत्तु तत्र देवो हुताशन ।

मन प्रजापतिर्ज्यै कफ सोमो विद्यात्म्यते ॥५०॥

जो विग्रहो का विग्रह है और भक्तिमानों का भी गति है । आकाश में उत्पन्न होने वाला वायु है और वायु प्राण वाता हुताशन (अग्नि) है ॥४३॥ हुताशन का प्राण श्वा है और अग्नि का प्रसन्न मधुसूदन है । रस से शोणित (रक्त) हुता और शोणित रक्त को कह्य जाता है ॥ ४४॥ शीम से मेद की उत्पत्ति होती है और मेद से अस्थि निरूपित की जाती है । अस्थि से मज्जा हुई और मज्जा से शुक्र का जन्म हुआ करता है ॥४५॥ शुक्र से यद्य रस मूल कर्म ॥ हुता या । वहाँ पर जो प्रथम प्राण (जन्म) है वह शीम्य राशि कहा जाता है ॥४६॥ शीम्य की उष्मा से सम्भन वाला द्वितीय राशि है । शुक्र को सोमात्मक जानो और घातव को शिवभक्तक जानना चाहिए ॥४७॥ रसानुग ये जो दो भाव

होते हैं और बीच में शक्ति तारा पावक है । कफ वर्ग में युक्त होता है और पित्त वर्गमें शोणित होता है ॥४८॥ कफ का स्थान हृदय है और पित्त नाभी में प्रतिष्ठित गृहा करता है । देह के मध्य में हृदय होता है जो मन का स्थान कहा गया है ॥४९॥ नाभिकोप का अन्तर जो होता है वहाँ देव हुताशन रहता है । मन को प्रजापति जानना चाहिए और कफ सोम विभाजित किया जाता है ॥५०॥

पित्तमग्नि स्मृतावेतावग्निसोमात्मक जगत् ।

एव प्रवर्तितो गर्भो वर्ततेऽम्बुदसन्निभ ॥५१॥

वायु प्रवेक्ष्य चक्रं सङ्गत परमात्मना ।

स पञ्चधा शरीरस्थो विद्यते बद्धयेत् पुन ॥५२॥

प्राणापानौ समानश्च उदानो व्यान एव च ।

प्राणोऽस्य परमात्मान बद्धयन् परिवर्तते ॥५३॥

अपान पश्चिम कायमुदानोर्द्धशरीरम् ।

व्यानो व्यानस्वते येन समान सर्व्वेनन्विपु ॥५४॥

भूतावाप्तिस्तत्तस्तस्य जायतेन्द्रियगोचरा ।

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥५५॥

सर्व्वेन्द्रिया निविष्टास्त स्व स्व योग प्रचक्रिरे ।

पार्थिव देहमाहुस्त प्राणात्मान च मास्तम् ॥५६॥

छिद्राग्न्याकाशयोनीनि जलास्त्राव प्रवर्तते ।

नेजश्चक्षु बिबता ज्योत्स्ना तेषा यन्नामत स्मृतम् ।

सङ्ग्रामा विषयाश्च यस्य बीर्यात्प्रवर्तिता ॥५७॥

इत्येतान् पुरुष सर्व्वान् सृजेल्लोकान् सनातन ।

नैधनेऽस्मिन् कथ लोके नरत्न विष्णुरागत ॥५८॥

पित्त अग्नि है । ये दोनो अग्नि और सोम के स्वरूप वाला जगत् कहा

गया है । इस प्रकार से प्रवर्तित गर्भ अम्बुद (मेघ) के समान होता है ॥५१॥

परमात्मा ने सङ्गत वायु ने प्रवेक्षण किया था । वह वायु शरीर में स्थित पाँच प्रकार का होता है और फिर वदता है ॥५२॥ प्राण-अपान-समान-उदान और व्यान ये पाँच वायु हैं । इसका प्राण परमात्मा को चर्द्धित करता हुआ परि-

वर्तित होता है ॥१३॥ अपण पीछे को शरीर के और उदान धावे शरीर में गमन करने वाला होता है । ध्यान वह है जिससे वह ध्यानस्थमान किया जाता है और शरीर की समस्त छवियों में रखा करता है ॥१४॥ इसके पश्चात् उसकी भूतदाहि इन्द्रिय बोनर होती है । पृथिवी-वायु-आकाश-जल और वाँचवाँ ज्योति में भट होते हैं ॥१५॥ सबस्त इन्द्रिया उसमें निविष्ट होती हुई अपने अपने योग को किया करती हैं । उसको पार्थिव कहते हैं और आकाश को प्राण स्वल्प कहते हैं ॥१६॥ छिद्र आकाश वीनि होते हैं जिनसे जलान्नाम प्रवृत्त होता है । तेज बभ्रुयो में होता है जो ताम से उनकी ज्योत्स्ना कही गई है । सपाम और विषय ही में जिसके बीच से प्रवर्तित होते हैं ॥१७॥ समाप्तमं प्रभु इन सब लोगों को सुह करता हुआ इस लक्षण (सुत्पुद्गल) लोक में विष्णु कसे धामने में ? ॥१८॥

एष न सक्षयो धीमन्नेष च विस्मयो महाम् ।
 कथ गतिगतिमतामापन्नो मामुपी तनुम् ॥१९॥
 भोतुमिच्छामहे विष्णो कर्म्मणि च यथाक्रमम् ।
 प्राञ्जय्याणि पर विष्णोर्वेददेवञ्च कथ्यते ॥२०॥
 विष्णोस्तपनिमाञ्जय्यं कथयस्व महामते ।
 एतवाञ्जय्यमाख्यानं कथ्यता च सुखावहम् ॥२१॥
 प्रख्यातयलवीर्यस्य प्रादुर्भावा महात्मन ।
 कर्म्मणाञ्जय्यभूतस्य विष्णो सत्त्वमि होष्यताम् ॥२२॥
 महत्त्वं कीर्त्तयिष्यामि प्रादुर्भावं महात्मन
 यथा स भगवाञ्छातो मानुषेषु महातपा ॥२३॥
 सप्तसप्ततप प्रोक्ता भृगुधापेन मानुषे ।
 जायते च युगान्तेषु देवकाय्याषिसिद्धये ॥२४॥
 तुस्य दिव्यतनुं विष्णोर्गदतो मे निबोधत ।
 युगधर्म्म परावृत्त काले च शिषिते प्रभु ॥२५॥
 - कनु धम्मव्यवस्थान जायते मानुषेऽपिह ।
 भृगो नापनिमित्तं न देवामुरकृतं च ॥२६॥

कथं देवामुत्कृते मध्याह्नारमवाप्नुयान् ।

एतद् दितुमिच्छामो वृत्तं देवासुर कथम् ॥६७॥

देवासुर मवावृत्तं वृत्तस्तस्मिन्नवोक्तम् ।

द्विरण्यरुक्षिपुर्वत्यम्नं लोकेय प्राक् प्रक्षामति ॥६८॥

हे धीमान् ! यह ही हमारा एक बहुत भारी वजन है और एक बहुत अधिक विस्मय भी होता है । गतिमानों की मानुषी तनु की गति की कैम प्राप्त हुआ था ? ॥६९॥ हम सब भवसार सिन्धु के कर्मा का यथाक्रम मुक्तता चाहते हैं । सिन्धु ही एक परम आश्रय की जानते हैं और वेदा के द्वारा कह जाते हैं ॥६०॥ हे महात्मन् ! सिन्धु की उत्पत्ति एक बड़ा आश्चर्य है उसे प्रायः बनाये गये आश्रय आश्रय गूण है या मुख्य देने जान उसे प्रायः कह ॥६१॥ प्रख्यात बन और दीप जाने महार आत्मा स यत्क भवसार सिन्धु के जाति कम में आश्रय भूत हैं, प्रादुर्भावों की ओर उनके गण्य यों यहाँ बताइए । श्री मूगजी ने कहा—मैं उन महार आत्मा पाने के प्रादुर्भावों को कटूया बिम तर्क महात्मन् जाने यह भवसार मनुष्या में उत्पन्न हुए थे ॥६३॥ गत गत तप यह गये भृगु के प्राय में मानुष लोक में युगों के अस्त मयया में देवों के वारों की सिद्धि के लिये जगत् गहन करते हैं ॥६४॥ उत्तमात् हुए मुष्म तुम लोग उन सिन्धु के दिव्य तनु की भली-भाँति समझ लो । प्रभु मुग यम व परावृत्त हो जान एक और भाव के सिद्धि होत पर कम की व्यवस्था करने के लिये यहाँ मनुष्या में जन्म लिया करते हैं यह जन्म बहल भी देवासुरों के द्वारा कृत और भृगु के प्राय के निमित्त से होता है ॥६५॥ श्रुतियों ने कहा—देवामुत्कृत युद्ध में कैम मध्याह्नार की प्राप्त होते हैं । हम यह जानना चाहते हैं कि देवासुर युद्ध कैसे हुआ था ? ॥६७॥ मूगजी बोले—देवासुर युद्ध जिस तरह से हुआ था यह बताने वाले मुष्मे सब तुम जान लो । पहिले द्विरण्यरुक्षिपु राजा सीनो लोको पर प्रक्षामत कहता था ॥६८॥

वलिनाविष्टि गच्छ पुनर्जाकथये कथात् ।

सम्पमामीत्यं तेषां देवानामसुरैः सह ॥६९॥

सवृतान् दानवाञ्च व सङ्गतान् कृत्स्नशश्च तान् ।
 तथा विष्णुसहस्रेण महेन्द्रेण निर्वाहिता ॥८४॥
 हतो ध्वजो महेन्द्रश्च मायाच्छ्वभश्च योधमन् ।
 ध्वजे लक्ष्य समाविश्य विप्रवर्त्तिमहामुज ॥८५॥
 व त्याञ्च दानवाञ्च व सङ्गतान् कृत्स्नशश्च तान् ।
 रजि कालाहले सर्वान् देव परिकृतोऽजमसु ।
 यज्ञामृतेन विजितौ पण्डामाकी तु व वत ॥८६॥
 एते व वासुरा वृत्ता सुप्रामा द्वापव तु ।
 देवासुरक्षयकरा प्रजस्तप्तमधिवाय च ॥८७॥
 हिरण्यकशिपू राणा वर्षाणामबु द बभौ ।
 तथा शतसङ्क्राणि ह्यधिकानि द्विसप्तति ।
 यथोति च महन्नाग्निं प्र लोकस्येश्वरोऽभवत् । ८८॥
 पर्याये तस्य राजाञ्च बलिवर्षाबु द पुन ।
 पश्चि ज्व सङ्क्राणि त्रिशत निपुतानि च ॥८९॥
 बले राज्याधिकारस्तु यावत्कास्य बभूव ह ।
 प्रह्लादेन गृहीतो भूताम्बुकात् सदासुरै ॥९०॥

महम ने अनुर-राजस्य और अश्वकारक जीत हुए मनुष्य और देवी
 तथा चित्तुराजी से सङ्गत तथा सङ्गत दानवों को और पूरा रूप से सङ्गत उष
 सवर्गों विष्णु की सहायता प्राप्त करने वाल ब्रह्म व निर्वाहित किया था ॥८४॥
 ८४॥ माया ने धातु-धाम्बन युद्ध करते हुए महेन्द्र ने मारा था । ध्वज ने लक्ष्य
 व नमावेष्ट करके महामुज विप्रवर्त्ति हुआ था ॥८५॥ वस्य और पूर्ण रूप से
 सङ्गत ममस्त दानवों को देवी के द्वारा परिकृत रजि ने कालाहल से जीता था
 यज्ञामृत से देवी ने पराक्रान्तों को जीता था ॥८६॥ ने इतने प्रजापति के
 अमङ्गल करने के लिये देव और अनुरों के छत्र करने वाले दारह सदाय हुए थे
 जानि दवाभुर इस नाम से कहे गए हैं ॥८७॥ हिरण्यकशिपु राजा एक प्रभु व
 वष मर मुनीजित रहा था और इती प्रकार से ही सङ्क्र-बहुतर अधिक और
 प्रसी सहस्र तक जैलोकम का स्वामी रहा था ॥८८॥ पर्याय से उनके पत्न्या

राजा बलि फिर एक अश्वमेध कर नया नाठ हजार तीन मी नियुक्त पयन
रहा था ॥६६॥ बलि का राज्याधिकार बलिन समय नरु रहा था तब तक उस
समय अश्वमेध से वह प्रह्लाद के डरग गहीन रहा म ॥६७॥

इन्द्रास्त्रयस्ते विल्याता अश्वमेधमा महीजस ।

दंत्यसस्थमिद सर्वमासीदशयुग किन ॥६७॥

असपत्न तत् सर्वं राष्ट्र दशयुग पुरा ।

त्रैलोक्यमव्ययमिद महन्द्रेण तु पाल्यते ॥६८॥

प्रह्लादस्य तनश्चादस्त्रे लोन्य कालपर्ययात् ।

पर्यायेण च संप्राप्ते त्रैलोक्ये पाकशासन ॥६९॥

ततोऽसुरान् परित्यज्य यज्ञे देवा उपागमन् ।

यज्ञे देवानथ गते काव्य ते ह्यसुराब्रुवन् ॥६९॥

कृत नो मिपता राष्ट्र त्यक्त्वा यज्ञं पुनर्यता ।

स्थातु न शक्नुमो ह्यद्य प्रविशामो रसातलम् ॥६९॥

एवमुक्तोऽश्वमेधेयान् विपण्ण सान्त्वयन् विरा ।

मार्गं धारयिष्यामि तेजमा स्वेन चासुरा ६६

वृष्टिरोपधयश्च व रसा वसु च यद्द्वयम् ।

कृत्स्ना मयि च विष्ठन्ति पादस्तेषा सुरेषु वै ।

मुष्मदथ प्रदास्यामि तत्सर्वं वार्यते मया ॥६७॥

ततो देवासुरान् दृष्ट्वा धृतान् काव्येन धीमता ।

अमन्त्रयस्तदा ते वै सविम्ना विजिगीषया । ६८

वे महान् भोज वाले अश्वमेध के तीन इन्द्र विल्यात हुए थे । यह समस्त

वश युग तक दीरघों के कब्जे में रहा था ॥६९॥ पहिले यह समस्त राष्ट्र अश्वमेध

में रहित रहा था । यह अव्यय त्रैलोक्य महन्द्रे के द्वारा ही पालित होता था

॥६९॥ इसके पश्चात् प्रह्लाद के कालपर्यय से इस त्रैलोक्य पर पर्याय से पाक-

शासन (इन्द्र) ने शासन प्राप्त कर लिया था ॥६९॥ इसके अनन्तर अश्वमेध का

स्पाग कर देवगण यज्ञ में उपागत हुए थे । देवों के यज्ञ में जावे पर काव्य

(युष्म) से अश्वमेध ने कहा ॥६९॥ राष्ट्र को त्याग कर मूल करने वाले हमारे

किये हुए यज्ञ को हुए चले गये । यात्र हम ठहर नहीं सकते हैं रसातल में प्रवेश करे ॥६५॥ इस प्रकार वे गहे गये विषाद वक्त सुक ने इनसे वाणी द्वारा सान्त्वना देते हुए कहा—अरे मर्त वह सब हे शत्रु । मेरे द्वारा अपने देव से वारण किया जा रहा है ॥६६॥ धृति-रस-श्रीपवित्रा और जो दोनों प्रकार का घन है वे सब पूछ मुझ ही रहा करत हैं उनका बहुत मान देवगण ने रक्ता है । तुम्हारे निम्ने मैं हुआ । वह सब बड़े द्वारा वारण किये जाते हैं ॥६७॥ इसके अनन्तर बीमायु काव्य क द्वारा वृत्त देवासुरो का देखकर तब उन्होंने विशेष रूप से जीनने की इच्छा से समिप होते हुए मन्त्रणा की थी ॥६८॥

एष काव्य इव सब व्यावलयति नो बलात् ।
 साधु गच्छामहे तूष्ण क्षीण/आप्याययस्व तान् ।
 प्रसङ्ग हत्वा शिष्टान् व पाताल प्रापयामहे ॥६९॥
 ततो देवा सुसरभा दानवानमिसृत्वा व ।
 जघ्नुस्त वध्यमानास्ते काम्यमेवाभिदुर्धु ॥१०॥
 तत काम्यस्तु ता-इष्टा तूष्ण देवरभिन्न तान् ।
 समरेज्ज सतातीस्तान् देवेभ्यस्तान् दिते सुतान् १०१
 काम्यो हृष्टा स्थितान् देवान् तत्र देवोऽम्बधिन्मयम् ।
 तानुयाच ततो भ्यात्वा पूववृत्तमनुस्मरन् ॥१०२॥
 त्र लोच्य विजित सब वामनन त्रिभि काम्य ।
 बलिबद्धा हतो जम्भो निहृतश्च विरोचन ॥१०३॥
 महार्हपु द्वादशसु सवामपु सुहृता ।
 तस्तरूपामभृ पितृ निहृता य प्रघातत ॥१०४॥
 किञ्चिच्चिष्टास्तु व युय मुद्ध ध्वन्तेषु व स्वयम् ।
 नीति वो हि विनास्यामि काम्य कश्चित्प्रतीभ्यमानम् ॥१०५॥

वह काम्य इस सबको बलसे हमको देवा देवे । जम्भी बाट है सीधे जाये और उन क्षीणों को भी तृप्त करे वसुधैव कुटुम्बक विद्यो का वरण करके पाताल में प्रवेश करा देव ॥६९॥ इनक देवों ने पुनरुत्थ होते ए दानवों पर अभि

किये हुए यज्ञ को पुनः जले गये । आज हम ठहर नहीं सकते हैं रसातल में प्रवेश करे ॥६५॥ इस प्रकार ॥ कहे गये विषाद मल्ल शुक ने हमसे बाणी द्वारा सांगवना देते हुए कहा—अब मत बह तब हे अशुरो ! मेरे द्वारा अपने तेज ॥ धारण किया जा रहा है ॥६६॥ दुर्हि—रस—बीषधियाँ और जो दोनों प्रकार का घन है ये सब पूर्ण भुज्जमे ही रह करती हैं जबकि जलुम भाग देवगण में रहता है । तुम्हारे लिये मैं हूँ बा । यह जब नरे द्वारा धारण किये जाते हैं ॥६७॥ इसके अनन्तर भीमात् नाभ्य क द्वारा धृत देवासुरो को देखकर तब उन्होंने विशेष रूप से जीतने की इच्छा से अभिन्न होते हुए मन्त्रणा की थी ॥६८॥

एष काव्य इव सख यावत्तयति नो वसात् ।
 साधु गच्छामहे तूख क्षीणानाप्यामवस्व तान् ।
 प्रसह्य हत्वा शिष्टान् न पातालं प्रापयामहे ॥६९॥
 ततो मेवा मुसरथा दानवानभिसृत्य च ।
 जघनुस्त वध्यमानास्ते काव्यमेवाभिदुहूवु ॥१००॥
 तत काव्यस्तु ता इष्टा तूख देवरमिह तान् ।
 समरेऽर्जुनतातास्तितान् देवेभ्यस्तान् दिते सुतान् १०१॥
 काव्यो दृष्ट्वा स्थितान् देवान् तत्र देवाऽम्बपिस्तयत् ।
 तानुवाच ततो भ्यात्वा पूववृत्तमनुस्मरन् ॥१०२॥
 न लाक्य विजित सख वामनन त्रिभि जयम् ।
 वलिवदो हतो जम्मा निहृत्तत्र विरोचन ॥१०३॥
 महाहर्षेण दादासु सन्नामेपु सुरहता ।
 तैस्तरुपार्यभू यिष्ठा निहता य प्रधानतः ॥१०४॥
 किञ्चिच्छिष्टास्तु च युयु मुह्यन्त्येषु च स्वयम् ।
 नीति नो हि विवास्यामि कास कञ्चित्प्रतीक्ष्यताम् ॥१०५॥

यह काव्य इस तकको जलते लपकी गया देखे । अच्छी बात है शीघ्र जाये और उन क्षीणों को भी तूत नरे वसपूर्वक शिष्टा का हरण करके पाताल में प्रवेश करा देव ॥६९॥ इनके देवी ने मुसरथा होते ए दानवी पर भनि

तरण करके मार दिया था और उन देवों के द्वारा वध्यमान वे नाभ्य के ही पास होत थे ॥१००॥ इसरूप पदचाम् देवों के द्वारा भगाये गये उनको शुक ने सीधे दण्डर जोकि ममर अम्बा के दाता से दु गित ये और ये दिति के पुत्र देवों के द्वारा अभिद्रुत बिसे हुए थे ॥१०१॥ वहाँ पर स्थित हुए देवों को काव्य ने देखकर सोचा और फिर ध्यान करके पूव वृत्त का अनुस्मरण करते हुए उनमें धीमे ॥१०२॥ याम्य ने इन ममस्त ओन्नोष्य की तीन कदमा में ही जीत लिया है । वलि को बाँध दिया गया है और जम्भ तथा बिरोचन को मार दिया गया है ॥१०३॥ महाहं बारह सत्राग्री मे देवों के द्वारा ये सब मारे गये हैं । जो प्रधान वे वे उन-उन उपायों के द्वारा बहुत से मारे गये हैं । तुम लोग कुछ शोटे से शेष रह गये हो । अब अन्तिम युद्धों में अग्रे की नीति से मैं स्वयं ही धारण करूँगा कुछ समय प्रतीक्षा करो ॥१०४-१०५॥

यास्याम्यहं महादेव मन्त्रार्थे विजयाय च ।

अग्नि माप्याययेद्धोता मन्त्रैरेव बृहस्पति ॥१०६॥

ततो यास्याम्यहं देव मन्त्रार्थे नीललोहितम् ।

युष्माननुग्रहीष्यामि पुन पश्चादिहागत ॥१०७॥

यूय तपश्चरध्वं सवृता वल्कलैवने ।

न वै देवा बधिष्यन्ति यावदागमन मम ॥१०८॥

अप्रतीपान्ततो मन्त्रान् देवात् प्राप्य महेश्वरात् ।

योस्यामहे पुनर्वैवास्तत प्राप्स्यथ वै जयम् ॥१०९॥

ततस्ते कृतसवादा देवान् कुस्ततोऽनुरा ।

न्यस्तवादा वय सर्वे लोकान् यूय क्रमन्तु वै ॥११०॥

वय तपश्चरिष्याम, सवृता वल्कलैवने ।

प्रह्लादस्य वच श्रुत्वा सत्यव्याहरण तु तत् ॥१११॥

ततो देवा निवृत्ता वै विज्वरा मुदिताश्च ह ।

न्यस्तशस्त्रेषु दंत्येषु स्वान् वै जग्मुर्यथागतान् ॥११२॥

ततस्तानब्रवीत्काव्य कञ्चित्कालमुपास्यताम् ।

निरस्तुःस्तपोयुक्तं कालं कार्याथसाधकं ।

पितुममाश्रमस्था वै सर्वे देवा सवासवा ॥११३॥

स सन्दिप्यासुरान् काव्यो महादेव प्रपद्य च ।
प्रणम्यनुवाचाभ्यं जयन्तमवमीश्वरम् ॥११४॥

मैं प्राय जोनों की विजय के लिए अन्नाय हैं महादेव हैं पास जाऊँगा ।
होता बृहस्पति मन्त्रों से ही यन्त्रि को पाण्ड्यादिष्ट करते हैं ॥११४॥ इनसे मैं
मन्त्राय के लिए नील सोहित (महादेव) के समीप में जाऊँगा । आप लोगों के
ऊपर अनुग्रह करूँगा और फिर पीछे वहाँ जाऊँगा ॥११५॥ तुम लोग मत मैं
बलकली से सपुत होने हुए भर्षादि वृत्तों की छान के चक्कर पहिणते हुए तपस्या
करो फिर देवता लोग अब नहीं करते अब तक कि मेरा आगमन यहाँ होता
है ॥११६॥ महाेश्वर देव से समीप मन्त्रों को प्राप्त करके भर्षात् वायु नामक
मन्त्रों की मानकर के फिर देवों के साथ युद्ध करेंगे और फिर अबस्य ही विजय
प्राप्त करेंगे ॥११७॥ इससे अनन्तर सम्वाद करते करते असुर वैवश्या से बोले—
तुम लोग सब भनका छोड़ने वाले हो गये हैं अब तुम लोग समस्त लोकों की
प्राप्त कर लोग करो ॥११८॥ हम लोग सब तपस्या करते हैं और १ वन
बनो से सपुत होते हैं । महाेश्वर के भजन की सुनकर जो कि बि-कुल सब ही
बचन पा ॥११९॥ इनके पश्चात् कुछ रहित एक परम प्रबल देवता लोग
निवृत्त होगये थे । देवों के आश्रय त्याग देने वाले हो जाने पर वैवश्या अपने
स्वामी को जैसे वे धाये थे वैसे गये थे ॥ ११२॥ इसके अनन्तर शुक्राचार्य ने
उन से (वत्सों से) कहा कि तुम लोग कुछ समय तक निरस्तुक-रूप से कुछ
मीर कार्याय के साधन होते हुए उपस्थित करो । इस के संहित समस्त देव
गण इस समय मैं मेरे पिता के आश्रय में स्थित हैं ॥११३॥ यह नाम्य (बुद्धि
वाय—न गुण) वसुरों की सम्येष्ट देकर महाेश्वर हैं पास गये और वहाँ पहुँच
कर हमको प्रत्यक्ष करके उपस्थित करके शत्रुव द्वावर महाेश्वर से कहा—॥११४॥

मन्त्रानिच्छाम्यह देव मे न सन्ति बृहस्पती ।
परामवाय देवानामसुरेष्वमवावहान् ॥११५॥
एवमुक्तोऽब्रवीद् वो मन्त्रानिच्छसि व द्विज ।
अनन्तर मयादिष्ट महानारो समाहितः ॥११६॥

पूर्ण धर्मसहस्र ये कुण्डधूमगवान्क्षिराः ।
 मधुपारयमि भद्रन्ते गतो मन्त्रमवाप्यसि ॥११७॥
 तथाक्तो देव देवेन स शुभ्रस्तु महातपा ।
 पादौ रासृष्ट्य देवस्य बाह्वग्निरग्न्यभापत ॥११८॥
 अतः रागाग्न्यहं सेषं यथोद्दिष्टोऽस्मि वै प्रभो ।
 ततो नियुक्तो देवेन कुण्डपारोऽग्न्य धूमकृत् ॥११९॥
 अरुणाणां हितार्थमि तस्मिञ्छुभे गतो तदा ।
 मन्त्रार्थं तत्र वराति शस्त्रनयै महेश्वर ॥१२०॥
 राक्षसुनां नातिपूर्वस्तु राज्यं न्यरत तदागुरे ।
 तस्मिञ्छुभे तदाभर्गा देवास्तात् सगभिद्रवत् ।
 निक्षिप्तास्ताशुनां सर्वं बृहस्पतिपुरोगमा ॥१२१॥
 एष्ट्यागुरगणां देवान् प्रगृहीतायुधान् पुनः ।
 सरण्युः सहसा सर्वं सन्प्रस्तास्यो ततोऽभवत् ॥१२२॥

हे देव ! मैं मन्त्रों का पाहता हूँ बृहस्पति के रहते हुए मेरे पास मन्त्र
 नहीं हैं मैं ऐसा मन्त्रों को पाहता हूँ जो असुरों को अभय देने वाले हो और देवों
 का पराभन करने वाले हो ॥११७॥ जब इन तरह से महादेवजी से कहा गया
 तो महादेव बोले—हे शिष्य ? यदि इस प्रकार के मन्त्रों की चाहते हो तो मेरे
 यशाम हुए राज का सङ्गनारी गौर पूर्ण समाप्ति होती हुए आपरण्य करो
 ॥११८॥ पूरे एक सत्सर्व गर्व एक अवस्था क्षिण होते हुए कुरङ्ग धूम की यदि
 उपागमा करना हो पुष्पहार कदमाग्य होना और शुभ से मन्त्रों को प्राप्त कर
 लोग ॥११७॥ उस प्रकार मैं देवा क देव महादेव के द्वारा कहें जाने पर महान्
 सगरजी सुक्रापाय मैं महादेव के चरणों का संरक्षण करके “महान् भच्छा”—मह
 कहा था ॥११८॥ मैं क्षेम राज का चरण कर्मों का है प्रभो ! जैसा भी आपने
 द्वारा आदि किया गया है । इसके पक्षपात् महादेव ने इसको पूरा कृत कुरङ्ग
 भार नियुक्त किया था ॥११९॥ असुरों क हित के दिखे तब उस शुक्राचार्य के
 साथ जाने पर कर्म के शिष्य महेश्वर महा ब्रह्मनय में निवास करते हैं ॥१२०॥
 यह आगकर कि सर्वात् पूर्ण के एक असुरों क द्वारा राज्य नहीं न्यरत किया गया

था । उस क्षिप्र में उसके अग्रगण्य वाले देवों ने बृहस्पति को अग्रगामी बनाकर
 और तीव्र वायुओं को ग्रहण करके उन असुरों को सदेव किया था ॥ १२१ ॥
 तब असुरों ने देवों को पुनः वायु ग्रहण करने वाले दक्षक सहसा सब उत्पन्न
 करने लगे और वे एकदम संपन्न हो गये थे अर्थात् बहुत ही दर गये थे
 ॥ १२२ ॥

यस्तद्यस्ते जये दत्त आचार्यप्रतमास्थिते ।
 सन्त्यय समय देवास्ते सपत्नविधापव ॥ १२ ॥
 भनाचार्यास्तु भद्र वो विष्वस्तास्तपसि स्थिता ।
 श्रीरवत्वाजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहा ॥ १२४ ॥
 रणो विजेतु देवान् न न शक्याम कथञ्चन ।
 प्रशुद्ध न प्रपद्याम शरणा काव्यमातरम् ॥ १२५ ॥
 नापयामस्तर्षिर यावदावमन गुरो ।
 विनिवृत्त तत्र कामे योत्स्यामो युधि तान् सुरान् ॥ १२६ ॥
 एकमुक्त्वा सुरान् योग्य शरणा काव्यमातरम् ।
 प्रापद्यन्त ततो भीतास्तदा च व सदाऽभयम् ॥ १२७ ॥
 दत्त-तेषान्तु भीताना दत्ता नामभयाधिनाम् ।
 न भेतव्य न भेतव्य भयन्त्यजत दानवा ॥ १२८ ॥
 मत्सर्पिषी मत्ता वो न भीममितुमहति ।
 भयात्ताप्यभियन्तास्तान् दृष्ट्वा देवासुरास्तदा ॥ १२९ ॥
 समिजामु प्रसह्य तानविभ्राज जलावनम् ।
 तास्त्रस्तान् वध्यमानाश्च देवदृष्ट्वासुरास्तदा ॥ १३० ॥
 देवी कदात्रयीदेगाजनि द्रुत्व करोम्यहम् ।
 सस्ताम्य शीघ्र शरणादिद्र साऽभ्यशरतत ॥ १३१ ॥

असुरों द्वारा जलो के त्याग देने पर जब के दे देने पर और आचार्य
 के व्रत में आस्थित होने पर उन देवताओं ने व्रत का त्याग करने वायुओं के
 मारने की इच्छा करली थी ॥ १२३ ॥ आचार्यजन से हीन आपका कल्याण हो इस

तदहं ॥ पूर्णं विद्वस्त तपश्चर्या मे स्थित-चौर और बलवान् के धारण करने वाले, क्रिया से रहित और बिना परिग्रह वाले हम किसी प्रकार से भी देवों को युद्ध में जीत नहीं सकेंगे इसलिये अब असुद्ध के द्वारा कान्य की माता के धारण में चले ॥१२५॥ अब तक युद्ध का आत्मन हो इस मत को ज्ञापित करें । बुद्धाचार्य के वापिस खीट घाने पर हम उनसे देवों से रण भूमि में युद्ध करेंगे ॥१२६॥ इस प्रकार से देवों से कहकर योग्य धरण (रक्षक) बुद्धाचार्य की माता को धारणागति में प्राप्त हुए थे उस समय वे एकदम डरे हुए थे । अभय के चाहने वाले भीत उन दैत्यों को उस समय में ही अभय दिया गया । हे बानवो ! मत डरो-मत डरो, भय का त्याग कर दो ॥१२७-१२८॥ आप लोग मेरे पास रहो, आपको कोई भी भय नहीं हो सकता है । भय से अभिपन्न उन देवासुरों को उस समय में देखकर देवी ने ऐसा कहा था ॥१२९॥ बलावल का विचार न करके इनके ऊपर बल करके अभिगमन किया था । उस समय में डरे हुए और देवों के द्वारा वृध्यमान होते हुए उन असुरों को देखकर क्रुद्ध होते हुए देवी इनसे बोली मैं अनिग्रह्य अर्थात् इन्द्र का सर्वथा अभाव कर दूँगी । उसने शीघ्र ही इन्द्र को सरम्भ से (क्रोध से) स्तम्भित करके अभिधरण किया था ॥१३०॥

ततः सस्तम्भित दृष्ट्वा शक्र देवास्तु भूपतम् ।

व्यग्रवन्त ततो भीता दृष्ट्वा शक्र वशीकृतम् ॥१३२॥

गतेषु सुरसन्धेषु विष्णुरिन्द्रमभाषत ।

मां त्वं प्रविश भद्रन्ते नैध्यामि त्वा सुरेश्वर ॥१३३॥

एवमुक्तस्ततो विष्णु प्रविवेश पुरन्दर ।

विष्णुना रक्षित दृष्ट्वा देवी क्रुद्धा वचोऽब्रुत् ॥१३४॥

एषा त्वा विष्णुना सार्द्धं दहामि मघवानिव ।

मिषता सर्वभूताना दृश्यता मे तपोवतम् ॥१३५॥

तयामिभूती तौ देवाविन्द्रविष्णु जजल्पतु ।

कथं मुञ्च्येव सहितौ विष्णुरिन्द्रमभाषत ॥१३६॥

इ द्रोऽब्रवीज्ज ह ह्य ना यावद्यौ न दहेद्विमो ।
 विशयेणाभिभूतोऽमृतस्त्वच्च हि मा चिरम् ॥१३७॥
 तत समीक्ष्य ता विष्णु स्त्रीवध वत्तु मास्मिन् ।
 अभिष्याम ततश्चक्रमापन्न सत्वर प्रभु ॥१३८॥
 तस्या सत्वरमत्स्याया शीघ्रकारी मुरारिहा ।
 स्त्रिया विष्णुस्ततो देव्या क्रूर वृद्धा चिकीर्षितम् ।
 मृदुस्तद्वत्समाचिक्षेप शिरश्चिच्छेद माधव ॥१३९॥

इतक मन्तर देवी न यूप की मूर्ति इन्द्र को सतन्त्रित देखकर डरे हुए होकर शक्त की बलीकृत देववर के वहाँ से न ब न्धिये थे ॥१३७॥ देव समूहों के चले जाने पर विष्णु इन्द्र से बोले—हे भुरेश्वर ! तुम मुझ में प्रवेश कर जाओ—तारा भला होना—मैं तुमको के जाऊँगा ॥१३८॥ इस प्रकार से विष्णु के द्वारा बहुत पर इन्द्र ने विष्णु में प्रवेश किया था । विष्णु के द्वारा रक्षित इन्द्र की देखकर देवी ने क्रोध होकर यह वचन कहा ॥१३९॥ यह मैं आज समस्त भूतों के देखते हुए नभवाद् की तरह तुमको विष्णु के साथ बनाती हूँ यह मेरा उपोबन्ध देवी ॥१४०॥ उस देवी के द्वारा अभिभूत के दोनों देव इन्द्र और विष्णु बोले । सहित दोनों कहे छोड़ें यह विष्णु ने इन्द्र से कहा था ॥१४१॥ इन्द्र ने कहा देवियों ! इसे स्वाम को जब तक हम दोनों दण्ड न हों । ॥ विशेष कर के अभिभूत हूँ और तुम अधिक मत्त होओ ॥१४२॥ इसके पश्चात् उस देवी की देखकर भगवाद् विष्णु स्त्री का वध करने के लिए अस्थित हो गये थे । यह कहकर इसके उपरांत प्रभु विष्णु ने शीघ्र चक्र की उठाया था ॥ १४३ ॥ सत्वरभाण उससे भी शीघ्रकारी मुरासुतों के नाशक विष्णु ने देवी स्त्री के क्रूर चिकीर्षित की जानकर क्रोध किया और उस अस्त्र को चलाकर माधव ने शिर काट काटा था ॥१४४॥

त हृष्टवा स्त्रीवध घोर कुतोप मृदुरीश्वर ।
 ततोऽभिष्यस्ता मृगुणा विष्णुर्मायावधे तदा ॥१४॥
 यस्मात्ते जानता धर्मानवध्या स्त्री निपूदिता ।
 तस्मात्त्व सप्तहृत्वा न मानुदेषु प्रपत्स्यसि ॥१४५॥

तीत करके जब लेकर यह बोले ॥१४३॥ यह विष्णु के द्वारा सत्य मे तुम
 तुम मे सज्जीवित करता है । यदि मैं पूर्ण जग का आनन्द ही किया है और
 धर्म को जान रखता हूँ तो उस सत्य से जीवित हो जा-जाँ मैं यह सत्य बोलता
 हूँ ॥१४४॥ सत्य से अभिप्राय है उसकी देवी उस समय सजीवित होगई थी ।
 फिर इसने पश्चात् उस समय उसका जीवन बच ॥ प्रोत्साह करके जीवित
 रही — यह शुक्राचार्य ने कहा था ॥१४५॥ इसके अनन्तर समस्त प्राणीयुक्त
 होकर उठी हुई थी मति उस देवी को देखकर — हाय हाय अर्थात् बहुत
 अ-छ-म-छा ऐसी बाणियों को कहकर वे सबकी सब दिशाओं से दूनाई थी
 थी ॥१४६॥ इस प्रकार वे पुत्र ने उस समय मे उस देवी को सज्जीवित वक्त
 कर समस्त प्राणियों के दकते हुए वह कार्य एक भद्रकृत की तरह हुआ था
 ॥१४७॥ अथवा ज्ञान युक्त के द्वारा उनकी पत्नी की सजीवित होकर काव्य के
 मय से फिर शान्ति प्राप्त नहीं की थी ॥१४८॥ अन्तर्गत मे वह ने अपनी पुत्री
 अपनी से कहा । अन्तर्गत उस मतिमान् पाक साधन की कथा थी । उसने कहा
 यह शुक्र राज के अभाव के लिये दक्ष से कर रहे हैं । हे मुनि ! इस कारण
 से मैं बहुत ही अधिक व्याकुल हूँ । यह प्रतिपाद ने यह वक्त दयावा कर लिया
 है ॥१४९॥

गन्ध सन्ध्यावयस्वन अभावमयनं धुमं ।

तस्तमनोगुहनेत्रं ह्युपचारयतिशिव ॥१५०॥

देवी सा हीन्दुहिता जयन्ती शुभचारिणी ।

युक्तध्यानं च काम्यं तं दुस्तं प्रतिमास्थितम् ॥१५१॥

पिना यथोक्तं काव्यं सा काव्यो कृतवती तदा ।

गोमिद्वयानुक्तानि स्तुवती वसुमापिणी ॥१५२॥

गानसदाह्नं कान्ते सेवमाना मुक्तावहे ।

शुभं धन्यनुकूलं च उवाच बहुसा समा ॥१५३॥

पूर्णे धूमवते चापि धीरे वसुहसिके ।

दरेण चन्द्रयामास काव्यं प्रीतोऽववसवा ॥१५४॥

एव द्रुवस्त्वयैकेन चीरार्णं नान्येन केनचित् ।

तस्मात्त्वं तपसा बुद्ध्या श्रुतेन च बलेन च ॥१५६॥

तेजसा चापि विबुधान् सर्वानभिभविष्यसि ।

यच्च किञ्चिन्मम ब्रह्मान् विद्यते भृगुनन्दन ॥१५७॥

साङ्गञ्च सरहस्यञ्च यज्ञोपनिषदान्तथा ।

प्रतिभास्यति ते सर्वं तच्चाद्यन्तं न कस्यचित् ॥१५८॥

सो तुम वहाँ जाओ और इसको सुभ्रूषम के अपनयनों के द्वारा सम्पादित करो । उन-उन उसके मन के अनुकूल उपचारों से उसे प्रसन्न करो किन्तु इस कार्य में अतन्द्रित अर्थात् आत्मस्थ रहित होकर लग जाना ॥ १५१ ॥ यह देवी इन्द्र की पुहिता जयन्ती शुभ कारिणी थी । पुष्ट ध्यान वाला-धाम्य-बुद्धल-धृति में आस्थित उस काम्य का जैसा पिता के द्वारा कहा गया था उसने काम्य के विषय में उस समय किया । अनुकूल भाणियों के द्वारा वस्तुभाषिणी उसने उसकी स्तुति की थी ॥१५२-१५३॥ सुख प्रदान करने वाले गात्र सबान्तों के द्वारा समय पर सेवा करती हुई और सुश्रूषा करती हुई तथा अनुकूल रहती हुई बहुत वर्षों तक उसने वहाँ निवास किया ॥ १५४ ॥ एक सहस्र वर्ष वाले परम और पूज्यत के पूर्ण हो जाने पर तब महादेव से प्रसन्न होकर काम्य को वरदान से सम्पन्न किया था ॥१५५॥ वरदान देने के समय में ऐसा कहते हुए कि यह जल कुछ एक ने किया है अन्य किसी ने पूर्ण नहीं किया है । इसलिए तू तप, बुद्धि, श्रुत, बल और तेज से भी समस्त देवों को अभिभूत कर देगा और जो भी कुछ है भृगुनन्दन । हे ब्रह्मात्मा मेरे पास है साङ्ग और रहस्य के सहित यह सब तथा यज्ञोपनिषद् मुझे प्रतिभासित हो जायेंगे और वह आदि से अन्त तक किसी को-सी नहीं होते हैं ॥१५६॥१५७॥१५८॥

सर्वाभिभावी तेन त्वं द्विजभ्रष्टो भविष्यसि ।

एव दत्त्वा वरास्तस्मै भार्गवाय पुन पुन ॥१५९॥

अजेयत्वं अनेकत्वमवष्टयत्वं च वै ददौ ।

एतान् लब्ध्वा वरान् काव्यं सम्प्रदृष्टतनुष्ह ॥१६०॥

हर्षात् प्रादुर्बभौ तस्य देवस्तोत्रं महेश्वरम् ।
 तदा स्थितस्थितस्त्वेष तुष्टुवे नीलसोहितम् ॥१६१॥
 नमोऽस्तु शितिविष्टाय सुरापाय सुवचसे ।
 रिच्छिहाणाय सोपाय वत्सराय जगत्पते ॥१६२॥
 कर्पदिने ह्युद्धं रोम्प्ये ह्याय करणाय च ।
 सस्कृताय सुतीर्थाय देवदेवाय रहसे ॥१६३॥
 उष्णीषिणे सुवचनाय सहस्राक्षाय मीढुवे ।
 वसुरेताय श्वाय तपसे चौरवाससे ॥१६४॥
 हस्ताय मुक्तकेषाय सेनान्ये रोहिताय च ॥१६५॥
 कवये राजवृद्धाय तक्षकग्रीवनाय च ।
 गिरिशायामकनेषाय यतिने वाम्बवाय च ।
 सुवृत्ताय सुहस्ताय चन्विने भागवाय च ॥१६६॥

इससे पूरा सबको अभिभूत करने वाला दिव्यबल हो जायगा । इस प्रकार
 से वायव के लिये बार-बार बरी को लेकर अजेयत्व-अनेकत्व और अचम्यत्व का
 भी बरदान दे दिया था । इन समस्त बरी को प्राप्त कर काव्य सम्प्रबुद्ध तनूवर्द्धी
 बाला अर्थात् अत्यन्त प्रसन्नता से प्रफुल्लित होगये ॥१६६-१६७॥ हर्ष के प्रतिरेक
 होने से उसके हृदय में महेश्वर हेमस्तोत्र का प्रावृत्ति हुआ । तब तिरछा स्थित
 होकर इस प्रकार से नीलसोहित की स्तुति की थी ॥१६८॥ सुरापाय करने वाले
 सुन्दर वचन वाले तथा शितिविष्ट से मुक्त के लिये नमस्कार है । रिच्छिहाण-
 सोप-वत्सरा और अक्ष के वृत्ति के लिये नमस्कार है ॥१६९॥ कर्पदी-उद्ध रोम्प
 वाले-हृद-प्रीर वरुण के लिये नमस्कार है । सस्कृत-सुनील-रह प्रीर देवों के
 भी देव ॥ लिये नमस्कार है ॥१७०॥ उष्णीषी सुवचन वाले-सहस्र नेत्री वाले
 मीढुव-वसुरेता-श्व-चौरी के बल धारण करने वाले श्व के लिये नमस्कार है
 ॥१७१॥ हस्त-मुक्त केशी वाले-सेनानी-रोहित के लिये नमस्कार है ॥१७२॥
 कवि-राजवृद्ध-तक्षक के पिताने वाल-गिरिश-अक्षनेत्र-यति-वाम्बव के लिये
 नमस्कार है ॥१७३॥

सहस्रबाह्वे चैव महामामलचक्षुषे ।

सहस्रकुक्षये चैव सहस्रचरणाय च ॥१६७॥

सहस्रजिह्वे चैव बहुरूपाय वेद्यसे ।

भवाय विश्वरूपाय श्वेताय पुष्पाय च ॥१६८॥

निपङ्क्तिणे कवचिने सूक्ष्माय क्षणाय च ।

ताम्राय चैव भीमाय उग्राय च जिवाय च ॥१६९॥

वज्रवे च पिशाङ्गाय पिङ्गलायारणाय च ।

महादेवाय शर्वाय विश्वम्पशिवाय च ॥१७०॥

हिरण्याय च जिष्ठाय श्रेष्ठाय मध्यमाय च ।

पिनाकिने चैषुमते चित्राय रोहिताय च ॥१७१॥

दुन्दुभ्यायैकपादाय अर्हाय वृद्धये तथा ।

मृगव्याधाय सर्पाय स्वाणवे भीषणाय च ॥१७२॥

बहुरूपाय चोप्राय त्रिनेत्रायेस्वराय च ।

कपिलायैकवीराय मृत्युवे त्र्यम्बकाय च ॥१७३॥

वास्तोष्पते विनाकाय शङ्कराय शिवाय च ।

आरण्याय मुहुस्वाय यतिने ब्रह्मचारिणे ॥१७४॥

सहस्र बाहुओं वाले—सहस्र निर्मल नेत्रों वाले—सहस्र कुक्षि धीरे सहस्र चरणी बालि के लिये नमस्कार है ॥१६७॥ सहस्र शिर वाले—बहुत में रूप वाले वैद्या—भव—विश्वरूप—श्वेत और पुरुष के लिये नमस्कार है ॥१६८॥ निपङ्क्ती—कवची—सूक्ष्म—क्षण—ताम्र—भीम—उग्र और शिव के लिये नमस्कार है ॥१६९॥ वज्र—पिशाङ्ग—पिङ्गल—अरुण—महादेव—शर्वा और विश्वरूप शिव के लिये नमस्कार है ॥१७०॥ हिरण्य—जिष्ठ—श्रेष्ठ—मध्यम—पिनाकी—इषुमान्—चित्र और रोहित के लिये नमस्कार है ॥१७१॥ दुन्दुभ्य—एकपाद—अहंबुद्धि—मृगव्याध—सर्प—स्वाणु और भीषण के लिये नमस्कार है ॥१७२॥ बहुरूप—उग्र—त्रिनेत्र—ईश्वर—कपिल—एकवीर—मृत्यु और त्र्यम्बक के लिये नमस्कार है ॥१७३॥ वास्तोष्पति—विनाक—शङ्कर—शिव—आरण्य—गुह्य में स्थित रहने वाले—यति और ब्रह्मचारी के लिये नमस्कार है ॥१७४॥

साङ्ख्याय च व योगाय ध्यानिने दीक्षिताय च ।
 अन्तर्हिताय सर्वाय मायाय मासिने तथा ॥१७१॥
 बुद्धाय च व बुद्धाय मुक्तये केवलाय च ।
 रोषणे चैकितानाय ब्रह्मिष्ठाय महवये ॥१७२॥
 चतुष्पादाय मेध्याय धर्मिणे क्षीघ्राय च ।
 शिखण्डिने व पात्साय नष्टिरो दिश्वनेषसे ॥१७३॥
 अग्रतीघाताय बीजाय भास्कराय सुमेषसे ।
 क्रूराय विहृताय च बीभत्साय क्षिमाय च ॥१७४॥
 सौम्याय चैव पुण्याय धार्मिकाय सुभाय च ।
 धनम्याय मृताङ्गाय नित्याय शास्वताय च ॥१७५॥
 साध्याय शरभार्ये च दूषिने च त्रिचक्षुषे ।
 सोमपायाय यपाय च धूमपायोष्मपाय च ॥१७६॥
 शुचये रैरिहाणाय सद्योजाताय मृत्पथे ।
 पिशिताशाय सर्वाय मेधाय वष्टुताय च ॥१७७॥
 आश्रिताय अविष्टाय भारतायान्तरिक्षये ।
 क्षमाय सहमानाय सत्याय तपनाय च ॥१७८॥
 त्रिपुरङ्गमाय दीप्ताय चक्राय रोमपाय च ।
 त्रिगुणायुधाय मेध्याय सिद्धाय च पुनस्तये ॥१७९॥

साङ्ख्य-योग-ध्यानी-दीक्षित-अन्तर्हित-सर्व-माया-तथा माती के लिये
 नमस्कार है ॥१७१॥ बुद्ध-बुद्ध-मुक्ति-केवल-रोष-चैकितान-ब्रह्मिष्ठ और
 अर्हण के लिये नमस्कार है ॥१७२॥ चतुष्पाद-मेध-धर्म-क्षीघ्र समन करने
 वाले-शिखण्डो-नष्ट-अष्टि और दिश्वनेष के लिये नमस्कार है ॥१७३॥
 अग्रतीघात-बीज-भास्कर-सुमेष-करबिहृत-बीभत्स और शिष के लिये नमस्कार
 है ॥१७४॥ सौम्य पुण्य धार्मिक-धुम-धन्य-मृताङ्ग-नित्य और शाश्वत के
 लिये नमस्कार है ॥१७५॥ साध-शरभ-दूषी-वीर नेत्रों वाले-सोमपान करने
 वाले-युतपान करने वाले-धूम-उष्म के लिये नमस्कार है ॥१७६॥ शुचि-
 रैरिहाणा-सद्योजात-मृत्-साह ११ धवन करने वाले-अर्ध-मेध और वैद्य के

लिये नमस्कार है ॥१८१॥ व्याघ्रित-शशिष्ठ-मागध-अन्तरिक्ष-क्षम-महमान-
सत्य और तपन के लिये नमस्कार है ॥१८२॥ त्रिपुर के नाश करने वाले-क्षीत-
चक्र-रोमश-तिग्मबाधुष वाले-मेघ्य-मिष्ट और पुलस्ति के लिये नमस्कार
है ॥ १८३ ॥

रोचमानाय स्रष्टाय स्फीताय अघमाय च ।
भोगिने पुञ्जमानाय शान्तार्यवोद्धरेतसे ॥१८४
अघघ्नाय मलघ्नाय मृत्यवे यज्ञियाय च ।
कृशानवे प्रचेताय बल्लये किशलाय च ॥१८५
सिकत्याय प्रसन्नाय वरेष्मार्यं च चक्षुषे ।
क्षिप्रयवे सुधन्वाय प्रमेध्याय पित्राय च ॥१८६
रक्षोघ्नाय पशुघ्नाय विघ्नाय क्षयनाय च ।
विभ्रान्ताय महन्ताय अन्तये दुर्गमाय च ॥१८७
वृक्षाय च जघन्याय लोकानामीश्वराय च ।
अनामयाय चोद्धाय सहस्राधिष्ठिताय च ॥१८८
हिरण्यवाहवे चैव सत्याय क्षमनाय च ।
प्रसिकत्याय माघाय रीरिण्यायैकचक्षुषे ॥१८९
श्रेष्ठाय वामदेवाय ईशानाय च धीमते ।
महाकल्पाय दीप्ताय रोदनाय हृसाय च ॥१९०
वृत्तधन्वने कवचिने रथिने च वरुचिने ।
भृगुनाथाय शुक्राय वह्निरिष्टाय धीमते ॥१९१
अघाय अघशसाय विप्रियाय प्रियाय च ।
दिग्वास कृत्तिवासाय भगघ्नाय नमोऽस्तु ते ॥१९२

रोचमान-खण्ड-स्फीत-अपम-भोगी-पुञ्जमान-शान्त -- ऊर्द्धरेता--
अर्षों के नाशक-मल के नाश करने वाले-मृत्यु-यज्ञिय-कृशानु-प्रचेत-वह्नि और
किशलय के लिये नमस्कार है ॥१८४-१८५॥ सिकत्य-प्रसन्न-वरेण्य चक्षु-
क्षिप्रगु-सुधन्वा-प्रमेध्य-पित्र-रक्षोघ्न-पशुघ्नों के हनन करने वाले-विघ्न-क्षयन
विभ्रान्त-महन्त-अन्ति और दुर्गम के लिये नमस्कार है ॥१८६-१८७॥ दक्ष-

तत सोऽतर्हिते तस्मिन् बनेशानुचरे तदा ।
 तिष्ठन्ती प्राञ्जलिभूत्वा जयन्तीमिदमब्रवीत् ॥१॥
 कस्य एव सुमग का वा दुःस्थिते मयि दुःखिता ।
 महता तपसा युक्त किमथ माञ्जुगोपसि ॥४॥
 अनया सतत भक्त्या प्रश्रयेण दमेन च ।
 स्नेहेन च सुयोणि प्रीतोऽस्मि वरवर्णिनि ॥५॥
 तिमिरच्छसि वरारोहे कस्ते काम समृध्यताम् ।
 त ते संपूरयाम्यद्य यद्यपि स्यात् सुदुर्लभम् ॥६॥
 एवमुक्ताऽऽब्रवीदेन तपसा ज्ञातुमर्हसि ।
 धिकीर्षित मे ब्रह्मिष्ठ एव हि वेत्थ यथातथम् ॥७॥

श्री सुतजी ने कहा—इस प्रकार से देवों के एक नीलमोहित ईशान की
 माराधना करके उसके निचे रह्य इस भावसे प्रयुक्त हुआ था और हाथ जोड़कर
 बोला ॥१॥ महादेव ने परम प्रीति युक्त होकर अपने हाथ से शूकाचार्य के शरीर
 का स्पर्श किया था और पूरा रूप से वर्णन देकर फिर वह वही पर ही अन्तर्धान
 होगये थे ॥२॥ इसके बत्वाय देवेशानुचर उसके अन्तर्हित होजाने पर वह सामने
 खड़ी हुई जयन्ती से प्राञ्जलि होकर वह बोला—॥३॥ हे सुमग ! तू किसी की
 है और वीर है अपना दुःखित होखी है ? महात् तपसे युक्त मुझको तू किस
 प्रदीपन के निचे रखा बखी है ? ॥४॥ इस तेरी निरन्तर होने वाली भक्ति से—
 प्रथम—अमग और स्नेह से हे सुयोणि ! हे वरवर्णिनि ! मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ
 हूँ ॥५॥ हे वरारोहे ! तू क्या चाहती है और तेरी क्या कामना बड़ी है ?
 मैं तूसे उस मनोरथ को पूरा करूँगा यदि उसे ही वह कता भी दुर्लभ क्यों न
 हो ॥६॥ जब इस प्रकार से वह जयन्ती नहीं गई तो उसने युक्त से कहा आप
 मेरे मनोरथ को तपोवन से जानने के योग्य होते हैं । हे ब्रह्मिष्ठ ! आप मेरे
 धिकीर्षित को ठीक ठीक जानते हैं ॥७॥

एवमुक्ताऽऽब्रवीदेना दृष्ट्वा दिव्येन यक्षुषा ।
 माहेन्द्री एव वरारोहे मञ्जितामिहामता ॥८॥

मया सह ल्मुष्योऽपि दश वर्षाणि भाषिणि ।
 श्रद्धयः सर्वभूतेस्तु सप्रयोगमिहेच्छसि ॥८
 देवेन्द्रानलवशाभि वरागेहे सुलोचने ।
 इमं वृणीष्व काम ते मत्तो वै वरगुभाषिणि ॥९०
 एव भवतु गच्छामो गृहान् वै मत्तकाक्षिणि ।
 ततः स्वगृहमागम्य जयन्त्या सहित प्रभु ॥९१
 स तथा सद्यः सद्देव्या दश वर्षाणि भाषण ।
 श्रद्धयः सर्वभूतानां मायया सवृतस्तदा ॥९२
 कृतार्थमागतं दृष्ट्वा काव्य सर्वे दिते सुता ।
 अभिजातुर्गृहं तस्य मुदितास्ते दिदृक्षुः ॥९३
 गता यदा न पश्यन्तो जयन्त्या सवृतं गुरुम् ।
 दाक्षिण्यं तस्य तद्वबुध्या प्रतिजग्मुर्मयागतम् ॥९४

जय जयगी मे इस तरह शुक से कहा तो उसने दिव्य बल से देस कर
 दासि कहा—हे वरारोहे । तू महेन्द्र की पुत्री है और मेरे हितके लिये ही यहाँ
 पर आई है ॥८॥ हे भाषिणी । हे सुषोणि । तू मेरे साथ, जोकि समस्त प्राणियों
 से महद्वय रहना, दश वर्ष तक सम्म योग की इच्छा करती है ॥९॥ हे देवेन्द्र ।
 अनल प्रभो । हे वरारोहे । हे सुन्दर नेत्रो वाली । हे बलगुभाषण करने वाली ।
 तब ही तू मुझसे इस कामना की प्राप्त कर ॥१०॥ हे मत्तकाक्षिणी । ऐसा होवे
 अवगुही की चले । इसके अनन्तर अपने घर में आकर प्रभु शुक जयन्ती के
 साथ रहे ॥११॥ फिर वह उस देवी के साथ भाषण दश वर्ष तक निवास कर
 रहे थे और उस समय वह समस्त प्राणियों के महद्वय तथा माया में सवृत रहते
 थे ॥१२॥ समस्त दिति के पुत्र दैत्य सफल होकर साथे हुए काव्य की देसकर
 उसके घर में देखने की इच्छा रखते हुए परम प्रसन्न होकर गये थे ॥१३॥ वे
 सम यहाँ गये तो जयन्ती के द्वारा सवृत शुक को उन्होंने जब गृही देखा या तो
 उनके उस दाक्षिण्य की जान कर जैसे ही साथे थे वापिस चले गये ॥१४॥

बृहस्पतिस्तु सरुहं ज्ञात्वा काव्यं चकार ह ।

पित्रर्चं दश वर्षाणि जयन्त्या हितकाम्यया ॥१५॥

बुद्ध्वा तदन्तर सोऽथ दत्त्वानामिव चोदित ।
 काव्यस्य रूपमास्थाय सोऽसुरा समप्रापत ॥१६॥
 तत समागतान् दृष्ट्वा बृहस्पतिस्त्वान् सान् ।
 स्वागत मम याज्याना सप्राप्तोऽस्मि हिताय च ॥१७॥
 अहं बोध्यापयिष्यामि प्राप्ता विद्या मया हि सा ।
 ततस्ते तदृष्टमनसो विद्यायमुपपेदिरे ॥१८॥
 पूरणकामस्तदा तस्मिन् समये दक्षवापिने ।
 यमो च समकाल स सद्योत्पन्नमतिस्तदा ॥१९॥
 समयान्ते देवयानो सद्यो गता मुता तदा ।
 बुद्धि चक्र ततश्चापि याज्याना प्रत्यवेक्षणौ ॥२०॥

बृहस्पति ने तो यह जान लिया था कि हित की कामना वही जयन्ती
 के द्वारा पिता के लिए काव्य को सख्त किया गया है ॥१५॥ इसके अनन्तर
 वह जानकर दसों की भाँति प्रेरित होकर काव्य के स्वरूप की धारण कर
 मनुष्य से बोला ॥१६॥ फिर जाने हुए उससे बृहस्पति ने कहा—मेरे पाप
 धर्मों यजमानों का स्वागत है । मैं तुम्हारे सबके हित सम्पादन करने के लिये
 यहाँ भागया हूँ ॥१७॥ मैंने जो वही विद्या प्राप्त की है उसे आप लोगों को
 सबको बताऊँगा । इसके प्रसन्न भित्त पावे वे सब असुर विद्या ग्रहण करने के
 लिये उपस्थित हुए थे ॥१८॥ उस समय में दक्ष वापिक समय में पूरा काम
 सद्योत्पन्न मति वाला समकाल ही में वहाँ गया था ॥१९॥ समय के अन्त में
 सब देवयानी मुता सब उत्पन्न हुई और इसके पश्चात् वायु के प्रत्यवेक्षण करने
 के साथ में अपनी बुद्धि की भी ॥२०॥

दक्षि गच्छामहे द्रष्टु तव याज्यान् बुचिस्मिते ।
 विभ्रा-तप्रसिते सार्ध्व निवर्णयत्तलोचने ॥२१॥
 एवमुक्ताश्रवीद्देवी मज्ज मक्तान् महावत ।
 एष ब्रह्मन् सता धर्मो न धम लोपयामि ॥२२॥
 तता गत्वाभ्युपगच्छन् दवाचार्येण भीमता ।
 सन्निभान् वाग्रस्परेण वेधसाभ्युगमयतीत् ॥२३॥

काव्य मा तात जानीध्व एष ह्याङ्गिरसो भुवि ।
 वञ्चिता वत यूय वै मयि शक्ते तु दानवा ॥२४॥
 श्रुत्वा तथा नृबाणन्त सम्भ्रान्ता दितिबास्तत ।
 प्रेक्षन्ते स्म ह्य भी तत्र सितासितशुचिस्मिती ॥२५॥
 सम्प्रमूढा स्थिता सर्वे प्रापद्यन्त न किञ्चन ।
 तत्तरतेषु प्रमूढेषु काव्यस्तान् पुनरब्रवीत् ॥२६॥
 आचार्य्यो वो ह्यह काव्यो देवाचार्य्योऽयमङ्गिरा ।
 अनुगच्छत मा सर्वे त्यजसैन बृहस्पतिम् ॥२७॥

श्री धृतराष्ट्र ने कहा—हे देवि ! हे शुचिस्मिता वाली ! तेरे यात्रियों को
 देवर्षि के लिये शय्य जाते हैं हे विभ्रान्त प्रेक्षित वाली ! हे सावित्री ! हे त्रिवर्णा-
 यस्त लोचने हृम चलते हैं ॥२४॥ जब इस प्रकार देवी से कहा गया तो वह
 बोली हे मद्भ्राता ! अपने चलो की देवी ! हे ब्रह्मा ! यह सत्पुरुषों का धर्म
 होता है और मैं आपके धर्म का लोभ नहीं करूँगी ॥२५॥ सूनवी ने कहा—
 इसके पश्चात् धृतराष्ट्र ने आकर धमुगों को देखा जोकि परम भीमान् देवों के
 आचार्य्य बृहस्पति के द्वारा वञ्चित किये गये थे और काव्य के स्वरूप को धारण
 करके यह प्रवचनना की थी । तब वे पा धमुगों से बोले ॥२६॥ हे तात ! मुझे
 ही यथाथ म काव्य समझो यह तो भूमि में धमिरा का पुत्र बृहस्पति है । हे
 दानवो ! आप लोग समय मेरे गृहे हुए वञ्चित किये गये हो ॥२७॥ उस तरह
 से दौलते हुए दगरा वचन सुनकर उस समय में दिति के पुत्र सह बहुत ही
 भ्रान्ति से पूर्ण होगये थे । तब वे बड़ा उस समय में उन दोनों को जो दिति
 एवं अंगित शुचिस्मिता नामे के उनकी वीर्य्य दैत्य रहे थे ॥२८॥ वे सब सम्प्रमूढ
 होने हुए म्रियत होगये और किन्ही निरुत्थ पर नहीं प्राप्त हुए । इसके अनन्तर
 उनका प्रवृत्त रूप से भूत हो जाने पर काव्य ने उनसे पुन कहा ॥२९॥ आपका
 आचार्य्य मैं ही और यह अङ्गिरा देवाचार्य्य है । आप सब मेरा अनुगमन करो
 और इस बृहस्पति का ध्यान कर दो ॥३०॥

एवमुक्तामुरा सर्वे तावुमी समवेक्षत ।

तदाऽमुरा विशेषन्तु न व्यजानस्तथोद्दयो ॥३०॥

बृहस्पतिश्वाचतानसम्भ्रान्तोऽयम्झिरा ।
 काव्योऽहं यो गुरुर्देव्या मद्रपोऽयं बृहस्पति ॥२६॥
 स मोहयति रूपेण मामकेनच बोऽसुरा ।
 श्रुत्वा तस्य ततस्ते व समञ्थायचचोऽब्रुवन् ॥३॥
 अमभो दश वर्षाणि सततं शास्ति व प्रभु ।
 एष व गुरुरस्माकमन्तरेऽसुरस्य द्विज ॥३१॥
 ततस्ते दानवा सर्वे प्रणिपत्यामिवाद्य च ।
 वचनं जगद्वृत्तस्य शिराम्यासेन माहिता ॥३२॥
 ऊनुस्तमसुरा सर्वे ब्रूया सरत्तलोचना ।
 अयं गुरुर्हितोऽस्माकं गच्छ त्व नासि नो गुरु ॥३३॥
 भागवोऽङ्गिरसो वाय भवत्वेव नो गुरु ।
 स्थिता वम निदेशोऽस्य गच्छ त्व साधु मा शिरम् ॥३४॥
 एवमुक्त्वासुरा सर्वे प्रापद्यन्त बृहस्पतिम् ।
 यदा न प्रतिपद्यन्ते तेनोक्तं तमहृदितम् ॥३५॥

इस तरह से कहे गये तब असुर उन दोनों को देखने लगे । तब असुरों ने उन दोनों ने विशेषता कुछ भी नहीं बानी थी ॥३५॥ बृहस्पति ने इन असुरों से कहा—यह अंगिरा है और मेरा स्वक्य इसने चारण कर लिया है ऐसा इस बृहस्पति समझी । हे दत्ती ! जो तुम्हारा गुरु है वह मैं ही काव्य हूँ ॥३६॥ हे असुरों ! यह वह है जो मेरे रूप से आपको मोहित कर रहा है । इसके पश्चात् उन्होंने अकेले कर और उसके अर्थ वचन को भली भाँति विचार कर के बोले ॥३१॥ इसने दश वर्ष तक निरन्तर प्रभु ने हमको शिक्षा दी है । इसी कारण से यही हमारा गुरु है और यह द्विज मन्तरेऽसुर है ॥३१॥ इसके अनन्तर वे समस्त दानव प्रणिपात एवं अभिवादन करके विरकास से माँटित होते हुए उसके अर्थात् बृहस्पति के वचन को बहल करने लगे वे ॥३२॥ समस्त असुर सान नेत्रों वाले प्रत्यन्त क्रुद्ध होते हुए उससे बोले—यह हमारे द्विज न गुरु है तुम पहले जाओ तुम हमारे गुरु नहीं हो ॥३३॥ बाहे आर्य हो अथवा आङ्गिरस हो हमारा यह ही गुरु है । हम इनके ही निदेश हैं । शिराम है तुम जाओ अथ

भलाई इसी में है कि अपने चले जाने में विलम्ब मत करो ॥३४॥ इस प्रकार शुक से समस्त असुरों ने कहकर वे बृहस्पति को ही प्राप्त हुए थे । वे प्रतिपन्न नहीं होते हैं जब उसने उनका महान् हित कहा था ॥३५॥

चुकोप भार्गवस्तेषामवलेपेन वै तदा ।

बोधिता हि यथा यस्मान्न मा भजत दानवा ॥३६॥

तस्मात् प्रनष्ट सत्ता वै पराभवञ्जमिष्यथ ।

इति व्यावहृत्य तान् काव्यो जयामाथ यथागतम् ॥३७॥

शात्वाऽभिलस्तानसुरान् काव्येन तु बृहस्पतिः ।

कृतार्थः स तदा दृष्ट स्व रूप प्रत्यपद्यत ।

बुद्ध्वाऽमुरास्तदा भ्रष्टान् कृतार्थोऽन्तरधीयत ॥३८॥

ततः प्रनष्टे तस्मिंस्ते विभ्रान्ता दानवास्तदा ।

अहो धिग्धम्बिता स्मेह परस्परमभाङ्मुक्नु ॥३९॥

पृष्ठतो विमुखाश्चैव ताडिता वेधसा वयम् ।

दग्धाश्चैव वीषयोगाच्च स्वेस्वे चार्थेषु मायया ॥४०॥

ततोऽसुरा परिव्रस्ता देवेभ्यस्स्वरिता ययुः ।

प्रह्लादमग्रतः कृत्वा काव्यस्यानुगम पुनः ॥४१॥

तब तो भार्गव शक से उन असुरों पर अत्यन्त क्रोधित हुए । मैं उन्हें खूब समझाया तो भी दानव शुकको नहीं भजते हैं ॥३६॥ इस कारण से सत्ता नष्ट करने वाले निसन्देह वे परामव को प्राप्त होये । काव्य ने इन तरह ये वचन उन असुरों से कहे और जैसे ही वह आये वे चले गये ॥३७॥ काव्य के द्वारा अभिलस्त असुरों को बृहस्पति ने जानकर अपने आपको परम सफल समझते हुए अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने ही स्वरूप को प्राप्त हुए । तब असुरों को भ्रष्ट जानकर कृतार्थ हुए अन्तर्धान होयये थे ॥३८॥ इसके बाद उसके प्रनष्ट होने पर उन समय दानव विभ्रान्त होयये और वे आपस में कहने लगे कि हम लोगों को धिक्कार है माज नित होयये है ॥३९॥ पीछे से हम विमुक्त होयये और वेधा के द्वारा हम ताडित हुए हैं । और अपने-अपने उपयोग से हम अर्थों में माया से

बृहस्पतिश्वाचतानसम्भ्रान्ताश्रमङ्गिरा ।
 काव्योऽहं यो गुरुर्देव्या मद्रपोज्य बृहस्पति ॥२६॥
 स मोहयति स्मेण भामकेनप वोऽसुरा ।
 श्रुत्वा तस्य ततस्ते व समभ्रातृवचाञ्जुवन् ॥३॥
 अयश्चो दश वर्षाणि सततं नास्ति व प्रभु ।
 एष व गुरुरस्माकमन्तरेप्सुरय द्विज ॥३१॥
 ततस्ते दानवा सर्वे प्रणिपत्यामिवाद्य व ।
 वचनं जगृह्वस्तस्य विदाम्यासेन माहिता ॥३२॥
 कबुस्तमसुरा सर्वे ऋद्धा सरस्त्वलोचना ।
 अयं गुरुरहितेऽस्माकं गच्छ त्वं नासि नो गुरु ॥३३॥
 भागवोऽङ्गिरसो वाय भवत्येवमप नो गुरु ।
 स्थिता वयं निदेशेऽस्य गच्छ त्वं साधु मा विरम् ॥३४॥
 एवमुक्त्वासुरा सर्वे प्रापद्यत बृहस्पतिम् ।
 यथा न प्रतिपद्यन्ते तेनोक्तं तं महद्विषम् ॥३५॥

इस तरह से कहे गये सब असुर उन दोनों को देखने लगे । तब असुरों
 ने उन दोनों में विशेषता कुछ भी नहीं बानी थी ॥२६॥ बृहस्पति ने इन असुरों
 से कहा—यह अंगिरा है और मरु स्वल्प इतने धारण कर लिया है ऐसा इसे
 बृहस्पति समझी । हे काव्यो ! जो तुम्हारा गुरु है वह मैं ही जानूँ ॥२६॥
 हे असुरों ! यह वह है जो मेरे रूप से आपको मोहित कर रहा है । इसके
 पश्चात् उन्होंने अनुरोध कर और उसके सर्व वचन को भली भाँति विचार कर
 के बोले ॥३॥ इसने दश वर्ष तक निरन्तर प्रभु ने हमको चिता भी है । इसी
 कारण से यही हमारा गुरु है और यह द्विज अन्तरेप्सु है ॥३१॥ इसके अनन्तर वे
 समस्त दानव प्रणिपात एवं शनिवादन करके निरकाश से मोहित होते हुए उसके
 अर्थात् बृहस्पति के वचन को ग्रहण करने लगे वे ॥३२॥ समस्त असुर लाल
 नेत्रों वाले अत्यन्त क्रुद्ध होते हुए उससे बोले—यह हमारे हित में गुरु है तुम
 बने जाओ तुम हमारे गुरु नहीं हो ॥३३॥ बाहे भावैव हो भयवा आङ्गिरस
 हो हमारा यह ही गुरु है । हम इनके ही निदेश में ही स्थित है तुम जाओ सब

भलाई इसी में है कि अपने चले जाने में विस्मय मत करो ॥३४॥ इस प्रकार
शुक्र ने समस्त असुरों ने कहकर वे वृहस्पति को ही प्राप्त हुए थे । वे प्रतिपन्न
नहीं होते है जब उसने उनका महान् हित कहा था ॥३५॥

चुकोष भार्गवस्तेषामवसेपेन वै तदा ।

बोनिता हि मया यस्मान्न मा भजत दानवा ॥३६॥

तस्मात् प्रनष्ट सत्ता वै पराभवङ्गमिष्यथ ।

इति व्यावृत्त्य तान् काव्यो जगामाथ यथागतम् ॥३७॥

ज्ञात्वाऽभिषस्तानसुरान् काव्येन तु वृहस्पतिः ।

कृतार्थं स तदा रष्ट स्व रूप प्रवपद्यत ।

बुद्ध्वाऽमुरास्तदा भ्रष्टान् कृतार्थोऽन्तरधीयत ॥३८॥

तत प्रनष्टे तस्मिन्ने विभ्रान्ता दानवास्तदा ।

अहो धिग्वन्विता स्मेह परस्परमयाद्रुवन् ॥३९॥

पृष्ठतो विमुखाश्चैव ताडिता वेधसा वयम् ।

वरधाश्चैवोपयोगान्न स्वेस्वे चार्थेषु मायया ॥४०॥

ततोऽमुरा परिभ्रस्ता देवेभ्यस्त्वरिता ययुः ।

भ्रष्टादमग्रत कृत्वा काव्यस्यानुगम पुनः ॥४१॥

तब ही भार्गव गव से उन असुरों पर अत्यन्त क्रोधित हुए । मैंने उन्हें
खुश समझाया ही भी दानव मुझको नहीं भजते हैं ॥३६॥ इस कारण से सत्ता
नष्ट करने वाले निमन्देह वे पराभव को प्राप्त होगे । काव्य ने हम तरह से बल
उन असुरों से कहे और जैसे ही वह आये वे चले गये ॥३७॥ काव्य के द्वारा
अभिषस्त असुरों को वृहस्पति ने जानकर अपने आपको परम सफल समझते
हुए अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने ही स्वरूप को प्राप्त हुए । तब असुरों को भ्रष्ट
जानकर गुनाह हुए अन्तर्धान होगये थे ॥३८॥ इनके बाद उसके प्रनष्ट होने पर
जब समय दानव विभ्रान्त होगये और वे आपस में कहने लगे कि हम लोगों को
धिक्कार है आज वंचित होगये हैं ॥३९॥ पीछे से हम विमुख होगये और वेधा
के द्वारा हम ताड़ित हुए हैं । और अपने-अपने उपयोग से हम अर्थों से माया से

दम्ब होगये हैं ॥४॥ इसके अनन्तर देवी स परिचर्य धमुर प्रह्लाद की प्राप करके क्षीघ्रता वाले होकर काव्य के अनुपम का पुन मये ॥४१॥

तस काव्य समासाद्य अभितस्थु रबाड मुसा ।

ठानागतान् पुनह द्वा काव्यो याज्यानुवाच ह ॥४२॥

प्रयापि बोधिता काले यतो मा नामिन दय ।

ततस्तैनावलेपेन गता यूय परामबम् ॥४३॥

प्रह्लादस्तमथोवाच मान त्व त्यज मागव ।

स्वान् याज्यान् भजमानाश्च यक्ताश्च व विशेषत ॥४४॥

त्वया पृष्टा यम तेन देवाचार्येण मीहिता ।

भक्तानहसि नस्मात्तु शास्त्रा दीर्घेण चक्षुषा ॥४५॥

यदि नस्तव न कुर्ये प्रसाद भृशुन दन ।

अपभ्यातास्त्वया ह्यद्य प्रवेक्षामो रसावसम् ॥४६॥

शास्त्रा काव्यो यथास्तव काव्येनानुकम्पया ।

एवमुत्तरेजुनीत स स्तुत कोप न्ययच्छत ॥४७॥

सवाचेदन्न भैतव्य न गन्तव्य रसातलम् ।

अवश्यम्भावी ह्यर्थोऽयं प्राप्नो वो भवि जगति ॥४८॥

इसके अनन्तर काव्य के समीप से जाकर नीचे की ओर मुक्त वाले होते हुए बह गये । उन वाचो को फिर आगे हुए देवकर काव्य समझ बोले ॥४२॥

मेरे द्वारा गनी भाति समझये हुए भी तुम बोवो ने समय पर जिस कारण से अभिमान नही दिया वा जधी हेतु के फल से तुम अभिमान के बरा होकर परा

भव की प्राप्त हुए हो ॥४३॥ इसके उपरान्त प्रह्लाद ने उनसे कहा—हे मागव । प्राप अब मान की परित्याग कर दीर्घिण्या और अपने याज्यो को जो अभिमान

है और विशेष रूप से मछ है यज्ञीकार कीर्षिण्या ॥४४॥ आपने जब पूछा वा उस समय हम उस देवाचार्य बृहस्पति के द्वारा बोधित होगये थे । अब दूर की

सम्मी दृष्टि से सभी बात जानकर हम मछो की रक्षा करने के प्राप योग्य होते हैं ॥४५॥ हे भृशु नन्द । यदि प्राप हमारे ऊपर प्रसन्न नही होते हैं वा हम अब आपके द्वारा अप भ्यात होते हुए पाव ही रसातल से प्रवेक्ष कर जायेंगे ॥४६॥

आपके द्वारा अप भ्यात होते हुए पाव ही रसातल से प्रवेक्ष कर जायेंगे ॥४६॥

सूतजी ने कहा—कान्ध ने यथा तत्त्व को सब कुछ जानकर कष्टना और कृपा से इस तरह कहे जाने पर बहुत अनुनय किया हुआ होकर तथा स्तुत होते हुए उसने जो असुरों पर बड़ा भारी क्रोध हो रहा था उसको त्याग दिया ॥४७॥ और वह यह बोला—डरो मत और रसातल को भी नहीं जाना चाहिए । मेरे जाग्रत रहते हुए भी यह कुछ अवश्यमावी अर्थ ही था जोकि आप लोगों को प्राप्त होगया है ॥४८॥

न शक्यमन्यथा कर्तुं विष्ट हि बलवत्तरम् ।

सञ्ज्ञा प्रनष्टा या वीर्य्य काम ता प्रतिलप्स्यथ ॥४९॥

प्राप्त पर्यायकालो व हति ब्रह्माऽभ्यभाषत ।

मत्प्रसादाच्च युष्मामिभुंक्त त्रैलोक्यमूर्ज्जितम् ॥५०॥

युगाख्यो दक्ष संपूर्णो देवानाक्रम्य मूर्द्धनि ।

तावन्तमेव कालं वै ब्रह्मा राज्यमभाषत ॥५१॥

सार्वाणिके पुनस्तुभ्य राज्यं किल भविष्यति ।

लोकानामीश्वरो भावी पीत्रस्तव पुनर्वलि ॥५२॥

एव किलमहं प्रोक्त पीत्रस्ते ब्रह्मणा स्वयम् ।

तथादृष्टेषु लोकेषु तयोऽस्य न किलाभवत् ॥५३॥

यस्मात् प्रवृत्तयश्चास्य न कामानभिसन्धिता ।

तस्मादजेत प्रीतेन दत्तं सार्वाणिकेऽन्तरे ॥५४॥

देवराज्यं बलेर्भाव्यमिति मामीश्वरोऽब्रवीत् ।

तस्माददृष्टयो भूतानां कालाकाङ्क्षी स तिष्ठति ॥५५॥

प्रीतेन चाभिरत्वं वै दत्तं तुभ्यं स्वयम्भुवा ।

तस्मान्निस्तमुकस्त्व वै पर्यायि सह माकुल ५६

यव अन्यथा नहीं किया जा सकता है क्योंकि भाग्य सबसे अधिक बलवान् होता है । आज जो आप लोगों की सञ्ज्ञा प्रनष्ट हुई उसको फिर कामना पूर्वक प्राप्त करलीये ॥४९॥ आपको पर्याप्त काल प्राप्त होगया है—यह ब्रह्मा ने कहा—और मेरे प्रवाद से इस कर्जित त्रैलोक्य का आप लोगों ने भोग किया है ॥५०॥ देवों को आक्रान्त करके उनके मूर्द्धा पर सम्पूर्ण दक्ष युगाख्य होगया

है । उतने ही बाल तब ब्रह्मा ने रात्र बोला था ॥११॥ मार्त्तण्डिक मनु के समय
 में फिर तेरे लिये राज्य होगा । तुम्हारा पौत्र बलि फिर लोको का ईश्वर होने
 वाला होगा । १२॥ ब्रह्मा के द्वारा स्वयं तेरा पौत्र इस तरह से मुझे कहा गया
 है । तथा आह्वरण किये बने लोको में इसका तब निश्चय ही नहीं हुआ था
 ॥१३॥ जिस कारण से इसकी प्रवृत्तियाँ कामो को अभिसन्धित नहीं थी इससे
 प्रसन्न होने वाले ब्रह्म ने ताम्रशिरः अन्तर में दिया है ॥१४॥ ईश्वर ने मुझसे
 कहा है कि बलि का देवराज्य होगा । इससे भूगो को अदृश्य वह काल की
 आकाश या रहने वाला स्थित है ॥१५॥ स्वयम्भू ने परम प्रसन्न होकर तेरे
 निम्न समस्त को प्रधान किया है इसलिये निस्तुक्त वृ पर्याप्त को सहज वर और
 वैश्वेन मत्त हो ॥१६॥

न च शक्य मया तुभ्य पुरस्ताद्विषयितुम् ।
 ब्रह्मणा प्रतिपिडोऽस्मि भविष्य जानता प्रभो ॥१७॥
 इमौ च सिध्यौ द्वौ मह्य तुत्यावेतौ बृहस्पते ।
 दत्त सह सरथान् सर्वान् वो धारमिष्यत ॥१८॥
 एवमुक्तास्तु दत्तेषा काव्येनाकिलष्टकम्महा ।
 ततस्ताम्या यमु साह प्रह्लादप्रमुखास्तदा ॥१९॥
 प्रवक्ष्यन्भाषमभाष्य श्रुत्वा धुक्काञ्च वानवा ।
 सकृदाशसमानास्ते जय काव्येन भाषितम् ॥२०॥
 दक्षिता सायुषा सर्वे ततो देवान् समाह्वयन् ।
 अथ देवासुरान् दृष्ट्वा सग्राभिः समुपस्थितान् ॥२१॥
 ततः सवृतसन्नाह्वा देवास्तान् समयोधयन् ।
 दवासुरे ततस्तस्मिन् वत्तमाने शत समा ।
 अजयन्नसुरा देवान् मन्वा देवा अमन्त्रयन् ॥२२॥
 पण्डामाकप्रभाष न जानीमस्त्व सुरवयम् ।
 तस्माद्यज्ञं समुद्दिष्व काम्य चात्महितञ्च यत् ॥२३॥
 तज्ज्ञानादृष्टावेतौ कृत्वा जेध्यामहेऽसुरान् ।
 अयोपासन्मयन् देवा पण्डामाकी तु तावुभौ ॥२४॥

मुकुते तेरे लिये पहिले विसर्पण नहीं किया जा सकता है ब्रह्मा के द्वारा मैं प्रतिषिद्ध किया हुआ हूँ हे प्रभो । क्योंकि ब्रह्माजी समस्त भविष्य में होने वाली बातों को जानते हैं ॥५७॥ वे दो शिष्य मेरे लिये बृहस्पति के तुल्य हैं देवों के साथ सरन्ध्र आप सबको धारण करेंगे ॥५८॥ अविलष्ट कर्मा काव्य के द्वारा इस तरह कहे गये दिति के पुत्र उम समय वे सब जिनमें प्रह्लाद प्रमुख थे उन दोनों के साथ उस समय चले गये थे ॥५९॥ दानवों ने सुक्राचार्य गुरु से अवश्यम्भाय अर्थतय को सुनकर काव्य के द्वारा आपित जय को एकबार गहूँते हुए जा रहे थे ॥६०॥ दक्षित और आयुषों से सुनजित उन्होंने देवों का समाह्वान किया । इसके पश्चात् सगाम भूमि में उपस्थित असुरों को देखकर सवृत्त सभाद वैद्यगण ने उनसे वहाँ आकर युद्ध किया था । उस दैवासुर सगाम में जो सगा-तार सौ वर्ष तक चलता रहा था असुरों ने देवों को जीत लिया था और भग्न हुए देवों ने विचार किया था ॥६१-६२॥ देवों ने कहा—हम असुरों के द्वारा पराहामक का जो प्रभाव है उसे नहीं जानते हैं इससे यज्ञ का उद्देश्य करके और जो आत्महित हो उसे ही करना चाहिए ॥६३॥ सौ हम दोनों को आना-हुत करके असुरों को जीत लेंगे । इसके उपरांत देवगण ने उन दोनों पराहामकों को उपामन्त्रित किया था ॥६४॥

यज्ञे समाह्वयिष्यामस्त्यजतमसुरान् द्विजौ ।
 प्रह त वा ग्रहीष्यामो ह्यनुजित्य तु दानवान् ॥६५॥
 एव तत्यजतुस्ती तु षण्डामाकौ तदासुरान् ।
 ततो देवा जय प्राप्ता दानवाश्च पराभवम् ॥६६॥
 देवासुरान् पराभाव्य षण्डामाकानुपागमन् ।
 काव्यशापामिभूताश्च ह्यनाधाराश्च ते पुन ॥६७॥
 वक्ष्यमानास्तदा देवैर्विविधुस्ते रसातलम् ।
 एव निरुद्धमास्ते वै कृता शक्रेण दानवा ।
 ततःप्रभृति शापेन भृगुनैमित्तिकेन च ॥६८॥
 यज्ञे पुन पुनर्विष्णुयज्ञे च सिधिले प्रभु ।
 कर्तुं धर्मव्यवस्थानमवधर्मस्य च नाशनम् ॥६९॥

प्रह्लादस्य निदेशे तु मेऽमुरा न व्यवस्थिता ।
 मनुष्यवर्ग्यास्तान् सर्वान् ब्रह्मा पाहास्यत् प्रभु ॥७०॥
 धर्माधारावणस्तस्मात् सम्भूतश्चास्य वेऽन्तरे ।
 यश्च प्रवतयामास चतस्रे बवस्वतेऽन्तरे ॥७१॥

हे द्विजो ! इस पाप दोषों को मग्न य क्रुताग्रये अतः अमुरों की स्तुति
 की । अथवा उस ब्रह्म की वाच्यो को जीव कर ब्रह्म कर लगे ॥७०॥ इस तरह
 से उस समय य उन दोनों परब्रह्मात् ब्राह्मणों ने अमुरों को त्याग दिया था ।
 इसके परन्तत् वेकता जब को प्राप्त होकरे और दामन सब पराभूत होगये थे
 ॥७१॥ वेदापुरो को पराभूत करके परब्रह्मात् आगये थे किन्तु वे काण्ड के
 नाप थे अभिभूत और फिर वे भिराचार होगये थे ॥७२॥ तब उस समय न
 वेवगणों के द्वारा सम्मान होते हुए वे असुर रसात्मक य प्रवेश करते लगे थे ।
 इस तरह से उद्यमहीन उन असुरों के समूह द्वाद के द्वारा बेचार कर दिये गये
 थे । तब से लेकर वे शत्रु निमित्त य नाप से पूरा प्रभावित होगये थे ॥ ७३॥
 अथवा विष्णु ने बार बार यज्ञों के विविध हो जाने पर धर्म की व्यवस्था
 करने के लिए तमा कर्म का समूहोन्मूलन करने के लिये जन्म ब्रह्म किया
 था ॥७४॥ जो असुर प्रह्लाद के निदेश में स्थित नहीं रहे थे उन सबको प्रभु
 ब्रह्मा ने मनुष्यों के द्वारा बध करने के योग्य बताया था ॥७५॥ बाण्डव अन्तर
 में यम के मारायण समूह द्वाद और बवस्वत अन्तर में बस्य में उन्मोले यज्ञ
 को प्रवृत्त कराया था ॥७६॥

प्रादुर्भवि तदा यस्य ब्रह्म वासीत् पुरोहितः ।
 अतुर्भान्तु मुगास्यापामापन्नं पुरोध्वज ॥७७॥
 सम्भूत स समुद्रान्तर्हिरण्यकशिपोर्वचः ।
 द्वितीयो नरसिंहोऽगूढ इ सुरपुरस्तर ॥७८॥
 बलिसस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमे युगे ।
 दत्यस्त्र लोक्य आकान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् ॥७९॥
 सक्षिप्यात्मानमङ्गं य वृहस्पतिपुरस्तरम् ।

यजमानन्तु दैत्येन्द्रमदित्याः कुलनन्दन ।
 द्विजा भूत्वा शुभे काले बलि वैगेचनधुग ॥७७॥
 प्रै लोचयस्य भवान् राजा त्वयि सर्व्वं प्रतिष्ठितम् ।
 दातुमर्हसि मे गजन् विक्रमाश्रीनिति प्रभु ॥७८॥
 ददामीत्येव त गजा वनिर्वैगेचनोऽश्ववीत् ।
 घामनन्त च विज्ञाय ततोऽनुमुदित स्वयम् ॥७९॥
 रा घामनो दिव ग च पृथिवी च द्विजोत्तमा ।
 प्रिभि क्रमे विद्वमिद जगदाक्रमत प्रभु ॥८०॥
 अरयन्निवसत भूतात्मा भास्कर स्वेन तेजसा ।
 प्रकाशयन् दिग सर्व्वां प्रदिशश्च महायया ॥८१॥

इसके उपरान्त भगुर्वी भुगार्या मे समुगो क घावन्न होने पर उग समय
 घग्न क प्राकृर्भीर होने पर गजा ही पुगेहित हुए थे ॥७७॥ द्विजवनिधु के
 यथ मे गह समुद्र के गम से गम्भूत हुए थे । द्वितीय भुग पुग्गार गह बागिह
 हुआ था ॥७८॥ गगन युग मे येना मे लोको के वनिमय होने पर दैत्यो के
 द्वारा तीनों लोको को आक्रान्त कर मेन पर तृतीय वामन के रूप मे अवतीर्ण
 हुए थे ॥७९॥ ब्रह्मवति के पुग्गार गगो मे अपने आपो सक्षित करके अदिति
 के कुल नन्दन मे दैत्या के दशमी बलि की भजमान बनाया था । स्वय एक द्विज
 होकर शुग समय पड़ित वैगेचन उगि के पास पहुँचे थे ॥८०॥ श्री राजा बलि
 से वामन दश ने एक ब्राह्मण क स्वरूप मे जाकर कहा—अप तीनो लोको के
 राजा है । आपने सभी कुछ प्रतिष्ठित है अर्थात् आपके पास सभी कुछ है । हे
 राजा । प्रभु आप मुझे तीन पैर भूमि को दान देने के योग्य होते है ॥८१॥
 उग समय मे वैगेचर गजा वनि ने उनमे यह वचन कहा—हाँ, मैं आपको
 तीन पैर भूमि का दान दता हूँ । श्री उग ब्राह्मण को वामन (तीना) जानकर
 स्वय अनुमुदित हुआ था ॥८०॥ हे द्विजगम्भी । उग वामन देव ने दिव—आकाश
 श्री पृथिवी को तीन ही पैरों मे प्रभु न उग विश्व समस्त जगत् को आक्रान्त
 कर लिया था ॥८१॥ उग भूगो के आत्मा ने अपने तेज मे आकर को भी

प्रह्लादस्य निदेशे तु येऽमुरा न व्यवस्थिता ।
 मनुष्यवध्यास्तान् सर्वान् ब्रह्मा बाह्यारजत् प्रभु ॥७०॥
 धर्माभ्यारामणस्तस्मात् सम्भूतश्चाह पेक्षन्तरे ।
 यज्ञ प्रवर्तयामास चत्वे नवस्वतेऽन्तरे ॥७१॥

हे द्विजो ! इध आप दोनों को यज्ञ में बुलायने पर अमुरों को खाह
 थी । जबकि उस ऋषि को दानवों को जीत कर ग्रहण कर लिये ॥६५॥ इस तरह
 से उस समय में उन दोनों परब्रह्मार्क ब्राह्मणों ने अमुरों को बाह्य दिया था ।
 इसके पश्चात् देवता जब को प्राप्त होगये और दानव सब बरामृत होगये थे
 ॥६६॥ देवांसुरों को परामृत कराके परब्रह्मार्क आपने थे किन्तु वे नाश के
 खाप से अभिभूत और फिर वे निराधार होगये थे ॥६७॥ सब उस समय में
 देवगणों के द्वारा नष्टमान होये हुए वे अमुर रक्षात्मक में प्रवेश करने लगे थे ।
 इस तरह से उद्यमहीन उन अमुरों के समूह इन्द्र के द्वारा बेकार कर दिये गये
 थे । तब से शेर के चतुर्निमित्तक आप से पुण्य प्रभावित होगये थे ॥६८॥
 अतएव विष्णु ने बार बार यज्ञों के सिद्धि हो जाने पर यज्ञ की व्यवस्था
 करने के लिए तथा यज्ञ का समुत्थान करने के लिये जन्म ग्रहण किया
 था ॥६९॥ जो अमुर प्रह्लाद के निदेश से स्थित नहीं रहे थे उन सबको प्रभु
 ब्रह्मा ने मनुष्यों के द्वारा नष्ट करने के योग्य बताया था ॥७०॥ चातुप चन्तर
 में जब से नारायण सम्भूत हुए थे और नवस्वत अन्तर में चत्वे में उन्होंने यज्ञ
 को प्रवृत्त कराया था ॥७१॥

प्राकृभवि तथा यस्य ब्रह्म वासीत् पुरीहित ।
 चतुर्ध्यात्तु मुगास्यायामापन्न ध्वसुरेष्वय ॥७२॥
 सम्भूत स समुद्रान्तर्हिरण्यकशिपोनमे ।
 द्वितीयो नरसिहोऽमृदं च सुरपुरन्तर ॥७३॥
 बलितस्त्वेपु नोनेपु वेताया सप्तमे युगे ।
 दत्यस्त्र लोक्य आक्राते तृतीयो वामनोऽभवत् ॥७४॥
 सक्षिप्वात्मानमङ्गं बु नृहस्पतिपुरस्सरम् ।

यजमानन्तु दैत्येन्द्रमदित्याः कुन्तनन्दन ।

द्विजा भूत्वा शुभे काले वलि वेंगेचनम्पुग ॥७५॥

यैन्दोबयरय भवान् राजा त्वयि सर्व्व प्रतिष्ठितम् ।

दातुमर्हमि मे राजन् विक्रमाश्रीनिति प्रभु ॥७६॥

ददामीत्येव त राजा वलिर्वेंगेचनोऽब्रवीत् ।

यामनन्त च विज्ञाय ततोऽनुमुदित स्वयम् ॥७७॥

त यामनो दिव न च पृथिवी च द्विजोत्तमा ।

श्रिभि क्रमेदिव्यमिद जगदाक्रामत प्रभु ॥७८॥

प्रत्यगिच्छत भूसात्मा भास्कर स्वेन तेजसा ।

प्रकाशयन् दिव मर्वा प्रविशन्न महायया ॥७९॥

उपरो उपरान्त अशुभी युगात्मा वे यमूगे के धारण होने पर उस समय धर्म के प्रादुर्भाव होने पर राजा ही पुनर्जित हुए थे ॥७५॥ विश्वकर्मापि पुनः न मे यत् समुद्र के मध्य में मग्न हुए थे । द्वितीय मूर पुनर्जित पर नगतिह हुआ था ॥७६॥ तबसे युग में जेना में लोको के बलिगम्य होने पर दैत्यो के शाग लीनो लोको को आक्रान्त कर देने पर तृतीय यामन के रूप में प्रवर्तीत हुए थे ॥७७॥ बृहस्पति के पुनर्जित अगो में अक्स धारणो मधित करके अदिति के कुल लम्बन में दैत्या के स्वामी बलि की यजमान बनाव था । स्वय एक द्विज होकर शुभ समय पड़ित वैरोचन त्रि के पास पहुँचे थे ॥७८॥ श्री राजा बलि ने यामन वन में एक आश्रम के रूप में आकर कहा—आप तीनों लोकों के राजा हैं । आपमें सभी कुल प्रतिष्ठित है अर्थात् आपके पास सभी कुल हैं । हे राजन् । प्रभु आप मुझे तीन पैट भूमि की दान देने के योग्य होते हैं ॥७९॥ उग समय में वेंगेचन राजा बलि ने उनमें यह वचन कहा—हाँ, मैं आपको तीन पैट भूमि का दान देता हूँ । श्री उग आश्रम को यामन (बोना) जानकर तब अनुमुदित हुआ था ॥८०॥ हे विश्वकर्मा ! उग यामन देन ने दिव-आकाश और पृथिवी को तीन ही पैटो में प्रभु न हम विश्व समस्त जगत् को आक्रान्त कर दिया था ॥८१॥ उग भूतो के आत्मा ने अपने तेज में आकाश को भी

मरिच्छित्त कर दिया था । उन महान् याग वाले प्रभु वायन ने दिया और
प्रदिशाघो को अपने तेज से ब्रह्मा मुक्त कर दिया था ॥७६॥

शुशुभे स महाबाहु सम्बलोकान् प्रकाशयन् ।

आमुरो श्रियमास्तृत्वा व्रील्लोकाञ्च जनादन ।

सपुत्रपोत्रानसुरान् पातासतलमानियत् ॥७७॥

अमुचि शम्बरञ्च व प्रह्लादञ्च व विष्णुना ।

मूरा हृदा निनिष्ठू ता विश सप्रतिपेदिरे ॥७८॥

महानूनानि भूतात्मा सविशेषाणि माधव ।

कालञ्च सप्तम विप्रास्तत्राहुतमवशयत् ॥७९॥

तस्य गात्रे जगत्सर्वमात्मानमनुपस्पति ।

न किञ्चिदस्ति लोकेषु यदध्याप्तं महात्मना ॥८०॥

तत्र रूपमुपेद्रम्य देवदानवमानवा ।

हृष्ट वा सन्मुमुहु सर्वे विष्णुतेजोविमोहिता । ८१॥

बलिं हिस्रो महापाणः सर्वघ्न ससृद्दगण ।

विरोचनं कुलं सव पात्राले सन्निवेशितम् ॥८२॥

ततः सर्वामरण्यै रत्नेभ्यः प्राय महात्मने ।

मानुषेषु महाबाहु प्रादुरासीज्जनादन ॥८३॥

एतास्तिल स्मृतास्तस्य विख्या सम्भूतम भुजा ।

माशुष्या सप्त मास्तस्य द्यौपयास्ताभिबोधत ॥८४॥

उक्त समय भगवान् जनादन तीनों लोकों को और अमुरों की समस्त
भी का बाहरण करके महान् बाहु वाले समस्त लोकों को प्रकाश देते हुए परम
शोभा को प्राप्त हुए थे । तथा पुर एव पौत्रों के सहित समस्त अमुरों को पाताल
लोक में ले आये थे ॥८५॥ विष्णु के द्वारा जगुबिषम्बर और प्रह्लाद जो भी
कर वश्य थे वे मार दिये गये थे शेष विभिन्न त होकर विद्यागो में चले गये थे
॥८६॥ माधव ने जो कि समस्त जूनों के आत्मा हैं सविशेष महानूनों को तथा
समस्त काम की बहों पर ब हुओं को अपना एक अहुत ही स्वरूप बिलवाया
था ॥८७॥ उन वाय देव के शरीर में द्रव्य समस्त जगत् को आत्मा देखता है ।

लोकों में कुछ भी ऐसी वस्तु नहीं है जो इन महान् आत्मा के द्वारा व्याप्त न हो
 अर्थात् सभी कुछ उसमें व्याप्त था ॥८३॥ उस ज्येष्ठ भगवान् के स्वरूप का
 दर्शन कर सभी देव-दानव और मानव विष्णु भगवान् उसके अद्भुत तेज से
 विशेष रूप में मोहित होते हुए अत्यन्त मुग्ध होगये थे ॥८४॥ राजा बलि उसके
 समस्त बन्धु धीन मित्रमण्डल के सहित महापाशों से बद्ध किया हुआ तथा पूर्ण
 विरोचन-कुल पातान लोह में सन्निवेशित कर दिया गया था ॥८५॥ इसके
 पश्चात् समस्त देवों के द्वारा समस्त वैभव महान् आत्मा वाले इन्द्र के लिये लेकर
 महान् बाहु वाले भगवान् जगद्वन मानुषों में प्राकट्य हुए थे ॥८६॥ ये तीन
 उनकी दिव्य एक जुग सन्निभूतियाँ कहो गई हैं । उनकी जो सात मानुष्य हैं
 उनको आपण समझना चाहिए ॥८७॥

त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह ।

नष्टे धर्मे चतुर्थश्च मार्कण्डेयपुर सरः ॥८८॥

पञ्चम पञ्चदश्या तु त्रेताया सन्धभूव ह ।

माध्वातुश्चकवर्तित्वे तस्थौ तथ्यपुर सुर ॥८९॥

एकोनविंशे त्रेताया सार्धशत्रान्तकोऽभवत् ।

जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुर सरः ॥९०॥

चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा ।

सप्तमी रावणस्यार्धे जज्ञे दशरथात्मज ॥९१॥

अष्टमी द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पराक्षरात् ।

वैदव्यामस्ततो जज्ञे जातूकर्णपुर सरः ॥९२॥

तथैव नवमी विष्णुरदित्याः कक्षपात्मज ।

देवक्या वसुदेवात् ब्रह्मगार्भ्यपुर सरः ॥९३॥

दशम त्रेता युग में दत्तात्रेय हुए थे । जबकि महीं धर्म का नाश होगया

था उस समय में मार्कण्डेय को आगे रखने वाला यह चतुर्थ अवतार था ॥८८॥

पौर्वी पञ्चदशी में त्रेता में हुआ था जोकि मान्वाता के चकवर्ती होने पर तथ्य

का पुरासर करने वाला स्थित हुआ था ॥८९॥ उन्नीसवें त्रेतायुग में समस्त

क्षत्रियों का अन्ध कर देने वाला अवतार हुआ था जोकि जमदग्नि से हुआ था

भीम विश्वामित्र को पुरस्सर रखने वाला छद्म अवतार था ॥६॥ चौबीसवें
त्रेतायुग में पुरोहित बसिष्ठ के द्वारा श्रीराम हुए थे । यह द्वापर महाकाव्य के
पुनः श्री रामचन्द्र के लिये अर्थात् द्वापरीय के भव करने के लिये सातवाँ
अवतार हुआ था ॥६१॥ अट्ठाईसवें युग में द्वापर में परात्मार से विष्णु का
आठवाँ अवतार हुआ था । इसके पश्चात् जानूकाल पुरस्सर श्री वेणु व्यास ने
जन्म ग्रहण किया था ॥६२॥ उसी प्रकार से नवम अवस्था ऋषि का पुनः अविति
से विष्णु का अवतार हुआ था ॥६३॥

अप्रमेयो नियोज्यश्च यत्र कामचरो बन्धी ।

श्रीवते भगवांस्लोके बालः श्रीभक्तकरिम् ॥६४॥

न प्रमासु महाबाहुः शक्योऽपि मधुसूदन ।

परं परममेतस्माद्विद्वत्स्वरूपात्त विद्यता ॥६५॥

अष्टाविंशतिमे तद्वद्वापरस्याशसदृशये ।

तच्छेधमे तदा जज्ञ विष्णुवृत्तिर्लकुले प्रभु ॥६६॥

कस्तु धमव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ।

मोहयन् सर्वभूतानि योगास्या योगमायया ॥६७॥

प्रविष्टो मानुषीं योनिं प्रच्छन्नश्चरते महीम् ।

विहारार्थं मनुष्येषु सान्दीपनिपुर सरम् ॥६८॥

यत्र कस्यचिन्नात्त्वञ्च द्विविदञ्च महासुरम् ।

परिष्टं कृषमञ्च व पूतनां केशिम हयम् ॥६९॥

नाग कुवलयपीड मल्लराजगृहाधिपम् ।

दस्यान् मानुषदेहस्थान् सुदयामास वीरवान् ॥७०॥

बभूवैव से देवकी से लक्ष्मी और शर्व को पुरस्सर रखने वाला अवतार
हुआ था जो अप्रमेय अर्थात् बुद्धि में न घटने के योग्य श्रीर नियोज्य था । जिस
अवतार में कामचर बन्धी भगवान् बाल स्वरूप में स्थित होते हुए लोक में श्रीभक्त
को अर्थात् मिलीतो से कीड़ा किया करते हैं ॥६४॥ यह महाबाहु मधुसूदन
भगवान् प्रमा का विषय नहीं हो सकता है । इस विश्वरूप से परम पर कोई भी
नहीं है ॥६५॥ अट्ठाईसवें उस द्वापर युग के अक्ष के अक्षय के समय में धर्म के

नष्ट हो जाने पर तब समय में प्रभु विष्णु ने वृत्तियों के कुल में अपने जन्म का ग्रहण किया था ॥६६॥ भगवान् विष्णु ने विनष्ट धम को सम्हालित करने की व्यवस्था करने के लिये और महान् दुष्ट असुरों का नाश करने के हेतु योगात्मा ने अपनी योग माया से गभस्त प्राणियों को मोहित करने हुए इस मानुषी योनि में प्रवेश किया था और वह प्रच्छन्न होकर ही भूमण्डल में विचरण करते हैं । सान्दीपनि के पुरस्तर मनुष्यों में बिह्वार करने के लिये ही अपने जन्म लिया था ॥६७-६८॥ जहाँ पर कम-जातक-द्विविध महामुर-मरिच-वृषभ-पूतना-हृयकेशी-कुवलयपीठ हाथी-मत्स्यगजमुहाधिप इन सब मानुष देह में स्थित ईश्वरों को बीर्यवान् ने निहत्त किया था ॥६९-१००॥

श्लिष बाहुसहस्रश्च बाणस्याद्रुतकर्मण ।

नरकश्च हत सङ्ख्ये यवनश्च महाबल ॥१०१॥

रट्टानि च महीपाना सचरन्तानि तेजसा ।

दुराचाराश्च निहता पार्थिवा ये रसातले ॥१०२॥

एते लोकहितायै प्रादुर्भावा महात्मन ।

अस्मिन्नेव युगे क्षीणे सन्ध्यादितेष्टे भविष्यति ॥१०३॥

कल्किर्विश्रुयशा नाम पाराशर्यं प्रतापवान् ।

दशमो भाग्यसम्भूतो याज्ञवल्क्यपुर सर ॥१०४॥

अनुकर्पन् सर्वसेना हस्त्यश्वरथसङ्कुलाम् ।

प्रगृहीतायुधैर्विप्रैर्वृत शतसहस्रश ॥१०५॥

नात्यर्थं धार्मिका ये च ये च धर्मद्विष क्षत्रिः ।

उदीच्यान्मध्यदेशाश्च तथा विन्ध्यापरान्तिकान् ॥१०६॥

तथैव दाक्षिणात्याश्च द्रविडान् सिंहलं सह ।

गान्धारान् पारदाश्चैव पहलवान् यवनाञ्चकान् ॥१०७॥

तुषारान् बर्बराश्चैव पुलिन्दान् दरदान् खसान् ।

सम्पाकानन्धकान् रुद्रान् किराताश्चैव स प्रभु ॥१०८॥

प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद्वली ।

अदृश्यः सर्वभूताना पृथिवी विचरिष्यति ॥१०९॥

अत्यन्त अद्भुत कर्म करने वाले वायु के सहस्र बाहुओं का धेवन किया था धीर युद्ध भूमि में नरकासुर का वध कर दिया था तथा महान् बलवान् यवन का हनन किया था ॥१०१॥ अपने तेज से महीपाचा के समस्त उत्तरी का दूरण कर लिया था । जो रसातल में कुछ भ्रान्तार वाले राजा थे वे सब मार जाने थे ॥१२॥ महान् ब्रह्मा वाले विष्णु भगवान् के समस्त प्रादुर्भाव लोकी के हित-सन्नाहक के हुए थे । विष्णु का यह अवतार इत ही युग में सध्या से क्लिष्ट एवं भीषण हो जाने पर होया ॥१३॥ विष्णुयुग नाम वाला प्रतापवाला पाराशर्य कलिक वंश में राजवन्धु पुरस्सर जसम्भूत है जोकि भाविष्य में होने वाला है ॥१४॥ सायुध ग्रहण करने वाले सहस्रों की सख्या में ब्राह्मणी से यत्न प्रणीत भिरे हुए कि ई में हाथी-मध्य भीर रथों से सज्जत समस्त सेना को समु कपित कर दिया था ॥१५॥ जो राजा अरन्ध भाविक नहीं थे भीर जो नहीं भय से हृष करने वाले लोग थे । उत्तर दिशा में होने वाले—मध्य देश के रहने वाले तथा जो विध्यावरात्मिक थे भीर उची प्रकार से वासिष्ठात्म्य एवं विह्वली के साथ इन्द्रिज के आचार-पारद-बल्लव-यवन-वाक-सुदार-बभर-मुनिव-बरव जस-लम्पक-कचक-रत्न भीर किरात इन सबकी अत प्रभु ने ध्वस्त करने के लिये जो वक्ता की बजाने वाला—महाबल वाले-बखी भीर म्लेच्छों व भन्त करने वाले थे समस्त प्राणिनों के द्वारा न देखने के योग्य होते हुए पृथिवी पर विचरण करते ॥१६॥ १२ ॥

मानव स तु सज्ज देवस्यासेन धीमत ।

पूवज-मनि विष्णुर्ध्वं प्रमितिर्नाम वीरवान् ॥११०॥

मात्रेण च च-द्रसम पूर्णं कलिमुगेऽभवत् ।

इत्येतास्तस्य देवस्य दक्ष सम्भूतय स्मृता ॥१११॥

त त कालश्च कावश्च तत्तदुद्दिश्य कारणम् ।

अशेन त्रिषु लोकेषु तास्ता योनी प्रपत्स्यते ॥११२॥

पञ्चविंशोत्थिते नल्पे पञ्चविंशति वै समा ।

दिनिघ्नन् सज्जमृताति मानुषानेव सम्बध ॥११३॥

कृत्वा बीजावक्षेपान्तु मही कूर्गेण कर्मणा ।
 सदातायत्वा वृषलान् प्रायशस्तानवाम्भिकान् ॥११४॥
 ततः स वे तदा कर्त्तिकश्चरितार्थं ससैनिक ।
 कर्मणा निहता ये तु सिद्धारते तु पुन स्वयम् ११५
 अकस्मात् फुषितान्योन्य भविष्यन्ति च मोहिता ।
 क्षययित्वा तु तान् सर्वान् भाविनार्थेन बोदितान् ॥११६॥
 गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठा प्राप्स्यति सानुम ।
 ततो ज्येष्ठीते कस्को तु सामान्यं सह सैनिकैः १११७
 नृपेण्यथ विनष्टेषु तदा त्वप्रग्रहा प्रजा ।
 रक्षणे विनिवृत्ते तु हत्वा चान्योन्यमाहवे ॥११८॥

बीमाय देव के प्रसन्न से उग आनन्द ने जन्म ग्रहण किया था । जो शिशु
 पहिले जग में बीर्य आला प्रमिति नाथ वाला था ॥११०॥ पूर्ण फलियुग में
 शरीर ने शत्रुता के सुर्य हुआ था ये इतने उस देव के जन्म (प्रवृत्ता) कहें
 गये हैं ॥१११॥ उस-उग उगन की और उस-उग कार्य को उन-उग कारण का
 उद्देश्य करके सींगी सींगी में अथ से उन-उन मोनियों को प्राप्त करेंगे ॥११२॥
 पञ्चीमरे करण के उद्विग्न होने पर पञ्चीस वर्ष जब होने तक समस्त प्राणियों
 को हनन करने हुए सब ओर में मनुष्यों की ही बीजावक्षेप वाली मही को करके
 दूर कम में युग युग मेंको तथा प्राय जो धर्माधिक से उन रात्रिों मारकर
 दगके पदचात् उस समय वह कलिक सत्ता के सहित चरितार्थ हुए थे । जो कर्म
 से निहत्त हुए थे वे पुन स्वयं मित्र हाथये थे ॥११३-११४-११५॥ मनुष्य अचा-
 न्त ही परस्पर में फुषित हो जाने वाले और मोहित हो जायेंगे । भावी और
 अथ में प्रेरित उन सबको गमास करने गङ्गा और यमुना के मध्य में सानुम के
 सहित वह निष्ठा को प्राप्त करेंगे दगके उपरान्त सामान्य गैरिकों के साथ कल्कि
 के ज्येष्ठ हो जाने पर और दगके अनन्तर राजाओं के विनष्ट हो जाने पर उस
 समय समस्त प्रजा अप्रग्रह (निष्कृष्ट) हो जायगी । रक्षक के समाप्त हो जाने पर
 आपग में ही युद्ध रङ्गे हनन करने मगये ॥११६-११७-११८॥

परस्परतृहताश्वासा निराक्रन्दा मुहुः क्षिता ।
 पुराणि ह्रित्वा ग्रामाश्च तुल्यास्ता निष्परिश्रहा ॥११६॥
 प्रनष्टश्च तिघर्माश्च नष्टधर्माश्चमास्तथा ।
 ह्रत्वा भक्ष्यामुषश्च व वनौवस इमे स्मृता ॥१२॥
 सरित्पततसेवित्र्य पत्रमूलफलाक्षना ।
 भीर पत्राजिनधरा सञ्चुर धोरमास्थिता ॥१२१॥
 मत्स्यामुषो नष्टवार्ता बहुवाधा मुहुः क्षिता ।
 एव वष्टमनुप्राप्ता कलिसंध्यक्षके तथा ॥१२२॥
 प्रजा क्षय प्रमास्यति साठ कलियुगेन तु ।
 क्षीणे कलियुगे तस्मिन् प्रवृत्त च कृते पुन ॥१२३॥
 प्रपत्स्यते यथा याम स्वभावादेव नायथा ।
 ह्येतत् कीर्तितं सर्व देवाभुरविशेषितम् ॥१२४॥
 यदुवक्ष्यप्रसङ्गं न महद्दोष्य एव यथा ।
 तुवसोस्तु प्रवक्ष्यामि पुरोद्गृह्योरनोस्तथा ॥१२५॥

परस्पर में तृहताश्व-निपात-य अर्थात् निरन्तर चलने वाले भीर
 परम दुःखित लोग वनो को भीर प्रायो को त्याग करके सब समान निष्परिश्रम
 हो जायेंगे ॥११६॥ सब लोग ऐसे हो जायेंगे जिनका अतिधन नष्ट होगया है
 भीर आत्मन मम नष्ट होजाने वाले हैं—कहने बहुत ही छोटे—अप चापु वाले
 एकछतरहू अगनी जीवों की भाँति ये बड़े भये हैं ॥ १२ ॥ मही भीर
 पर्वतो पर रहने काम-पत्त-मूल भीर पत्तों की पसख करने वाले—भीर पत्र
 तथा वन की धारण करने वाले भीर पदम धोर सञ्चुर अवस्था में आस्थित
 हो जायेंगे ॥१२१॥ बहुत ही बोली उम्र वाले वह वार्ता वाले—बहुत बाधाओं
 से यत्त-अल्पत दुःखित होते हुए उस समय में कलियुग की संधि के प्रश में
 सब लोग कष्ट को प्राप्त होने वाले होंगे ॥१२२॥ इस धोर कलियुग के साथ ही
 समस्त प्रजा क्षय हो जायगी । उस कलियुग के क्षीण होजाने पर भीर
 पुन कृत युग की प्रवृत्ति होती है ॥१२३॥ अब इस युग प्रवृत्त होगा तो फिर
 ग्राम के अनुसार स्वभाव से ही सब ठीक होजायेंगे भीर कोई भी प्रमाणा नहीं

रहेगा । यह ममस्त देशमुख निवेष्टित का धर्मन कर दिया है ॥१२४॥ अब भी यदुवन के प्रसङ्ग से ध्यान लोको से महान् वैष्णव यदा तुवगु-गू-द्रुष्टु धीर अनु का यदा वक्ष्यते ददंगा ॥१२५॥

प्रकरण ६१—अनुपमपाद समाप्ति

तुर्वसोस्तु सुतो बल्लिर्बल्लेर्गोभानुगतमज ।
 गोभानोस्तु सुतो वीरन्त्रिसानुरपराजित ॥१॥
 करन्धमस्त्रिसानोस्तु मरुत्तस्तम्य चात्मज ।
 अम्यस्त्ववीक्षितो राजा मरुत्त कथित पुरा ॥२॥
 अनपत्यो मरुत्तस्तु स राजासीदिति श्रुतम् ।
 दुष्कृत पीरव चापि सर्वे पुत्रमकल्पयन् ॥३॥
 एव ययातिशापेन जराया सक्रमेण तु ।
 तुर्वसो पीरव वक्ष प्रविवेश पुरा किम् ॥४॥
 दुष्कृतस्य तु दायादः शरुथो नाम पाथिव ।
 शरुथास्तु जनापीडश्चत्वारस्तस्य चात्मजा ॥५॥
 पाण्ड्याश्च केरलश्चैव चोस कुल्यस्तथैव च ।
 तेषा जनपदा कुल्पा पाण्ड्याश्चोसा सकेरला ॥६॥
 द्रुहोस्तु तनयी वीरी बभ्रुः सेतुश्च विश्रुतो ।
 अरुद्ध सेतुपुत्रस्तु बाभ्रवो रिपुरुच्यते ॥७॥
 यौवनाश्वेन समिष्टि कृच्छ्रेण निहतो वली ।
 युद्धं मुमहदासीत्तु भासान् परि चतुर्दश ॥८॥

श्री सूतजी ने कहा—तुर्वसु का पुत्र बल्लि या धीर बल्लि का आत्मज गोभानु हुआ था । फिर गोभानु का पुत्र अपराजित तथा वीर त्रिसानु नाम वाला उत्पन्न हुआ था ॥१॥ त्रिसानु का पुत्र करन्धम हुआ और उसका पुत्र मरुत्त नामक उत्पन्न हुआ । पहिले मरुत्त राजा अम्यस्त्ववीक्षित कहा गया था ॥२॥

वह मरुत राजा सन्तान हीन था— ऐसा सुना गया है । दुष्कृत और पौरव ने भी सबने पुत्र को कल्पित किया था ॥३॥ इस प्रकार से यशानि के शाप से जरा के सक्रमण से तुषसु से पौरव वध में पहिले प्रवेश किया था ॥४॥ दुष्कृत का दायाद धर्षात् पुनः शक्य नाम वाला राजा हुआ और शक्य से जनापीठ हुआ । उसके चार पुत्र हुए थे ॥५॥ पारुष्य—ऊरल—बोल और दुस्य में उन चारों के नाम थे । उनके जनपद भी दुस्य—पारुष्य—बोल और सकेरल एगही नामों से हुए थे ॥६॥ दुस्य के दो बेटे पुनः हुए थे जो बभ्र और सेतु इन नामों से प्रसिद्ध थे । सेतु का पुनः भरद्वाज और बभ्र का रिपु इस नाम से कहा जाता है ॥७॥ योगनाथ के द्वारा समिति कठिनाई से वली सिद्ध हुआ था और बीसह मास तक बहुत बड़ा यज्ञ हुआ था ॥८॥

भरद्वाजस्य तु दायादो गांधारो नाम पार्थिव ।
 स्थायते यस्य नाम्ना तु गांधारविषयो महान् ॥९॥
 गांधारदेशजाश्चापि तुरगा बाजिना वरा ।
 गान्धारपुत्रो धम्मस्तु धृतस्तस्य सुतोऽभवत् ॥१०॥
 धृतस्य दुश्मो जज्ञः प्रचेतास्तस्य चात्मजः ।
 प्रचेतसः पुत्रशतं राजानः सब एव सौ ॥११॥
 स्नेच्छराष्ट्राधिपा सर्वे ह्युदीची दिशमाश्रिताः ।
 मनो पुत्रा महात्मानस्तथ परमधार्मिकाः ॥१२॥
 समानरश्च पक्षश्च परपक्षस्तथैव च ।
 समानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृपः ॥१३॥
 कालानलस्य धर्मात्मा सृष्ट्यो नाम धार्मिकः ।
 सृष्ट्यस्याभवत् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जयः ॥१४॥
 जनमेजयो महासत्त्वः पुरञ्जयसुतोऽभवत् ।
 जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवन्नृपः ॥१५॥
 आसीदिन्द्रसना राजा प्रतिक्रियथा दिवि ।
 महामना सुतस्तस्य महाशालस्य धार्मिकः ॥१६॥

अनङ्ग का दायाद गान्धार नाम वाला नृप हुआ था । जिसके नाम में एक बहुत बड़ा देश प्रसिद्ध है । ६॥ गान्धार देश में उत्पन्न होने वाले घोड़ों में परम श्रेष्ठ नुरग होते हैं । गान्धार का पुत्र धर्म था और उसका सुत धृत नामक हुआ था ॥१०॥ धृत के दुर्दम ने जन्म लिया और दुर्दम ने जन्म लिया और दुर्दम का पुत्र प्रचेता हुआ । प्रचेता के एक ही पुत्र हुए थे और वे सभी राजा हुए थे ॥११॥ वे मय स्लेज्ड राष्ट्रो के स्वामी हुए थे और उनमें उत्तर दिशा का आश्रय लिया था । धनु के परम धार्मिक महान् आत्मा वाले तीन पुत्र हुए थे ॥१२॥ उन तीनों के नाम समानर-पञ्च और पञ्च पञ्च थे । समानर के यहाँ उसका पुत्र परम विद्वान् वात्सानल नृप हुआ था ॥१३॥ वात्सानल का वरमात्म सृञ्जय नाम वाला धार्मिक पुत्र हुआ था । सृञ्जय का पुत्र भीर पुरञ्जय ? राजा हुआ था ॥१४॥ महान् मत्स्य वाला जनमेजय पुरञ्जय का पुत्र उत्पन्न हुआ था । राजर्षि जनमेजय का पुत्र महामातल नाम वाला नृप हुआ था ॥१५॥ यह राजा दिवलोक प्रतिष्ठित यज्ञ वाला इन्द्र के सपान हुआ था । उस महा-पालका महामना नामक परम धार्मिक पुत्र हुआ था ॥१६॥

समद्वीपेश्वरो राजा अक्रवर्ती महायशः ।

महामतास्तु पुत्री द्वी जनयामास विश्रुती ॥१७॥

उशीनरश्च धर्मज्ञ तितिक्षुर्धैव धार्मिकम् ।

उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजा ॥१८॥

मृगा कृमी नवा दवा पञ्चमी च ह्यपद्वती ।

उशीनरस्य पुत्रान्तु पञ्च तामु कुसोद्वहा ।

तपसा ते सुमहता जातवृद्धाश्च धार्मिका ॥१९॥

मृगायास्तु मृग पुत्रो नवाया नव एव ह ।

कृम्या कृमिस्तु दवाया सुव्रतो नाम धार्मिक ॥२०॥

ह्यपद्वतीमुत्तश्चापि शिविरीक्षीनरो द्विजा ।

शिवे शिवपुर स्यात् यौघेयन्तु मृगस्य तु ॥२१॥

नवस्य नवराष्ट्रन्तु कृमेस्तु कृमिस्तु पुरी ।

सुव्रतस्य तथा वृष्टा शिविपुत्रान्निबोधत ॥२२॥

शिवेस्तु शिवय पुत्राभ्रत्वारो लोकसम्मता ।
 वृषदभ सुवीरस्तु केकयो मद्रकस्तथा ॥२३॥
 सेपाञ्जनपदा स्पीता केकया माद्रकास्तथा ।
 वृषदर्भा सूचिदर्भास्तितिक्षो भृशगुत प्रजा ॥२४॥

यह महामना सातों छोटे का स्वामी महान् यज्ञ वाला यक्षवर्ती राजा हुआ था । उस महामना ने परम प्रसिद्ध दो पुत्रों को जन्म दिया था यर्षाद उत्पन्न किया था ॥१७॥ एक का नाम यर्म का ज्ञाता उशीनर था और दूसरा परम धार्मिक तिलक्षु हुआ था । उशीनर की राजपत्नियों के बस में उत्पन्न होने वाली पाँच पत्नियाँ थी ॥१८॥ उनके नाम भृगा-कुमी-नवा-वर्षा और पाँचवीं ह्यहती था । उशीनर के उन पत्नियों में कुलके उद्वहन करने वाले पाँच पुत्र हुए थे । वे महाशू तपसे जातहुँद और धार्मिक हुए थे ॥१९॥ भृगा के भृग पुत्र था और नवा के नव-इस नाम वाला ही पुत्र हुआ था । कुमी के कुमि और वर्षा के धार्मिक सुवत पुत्र हुआ ॥२०॥ हे विजयशो ! ह्यहती का पुत्र भी उशीनर शिवि हुआ था । शिवि का तिकपुर और नृप का पीदेय पुर हुए ॥२१॥ नव का नवराज था और कुमी की कुमिधा नाम वाली पुत्री थी । सुवत की बृहा पुरी थी । यम शिवि के पुत्रों को बतलाया जाता है उन्हें समझ लो ॥२२॥ राजा शिवि के शिवय नाम के चार पुत्र लोक सम्मत हुए थे जिनके नाम— वृषदर्भ-सुवीर-केकय और मद्रक थे वे ॥२३॥ उनके बड़े ही विस्तृत (फलेहुए) जनपद केकय-माद्रक-वृषदभ और सूचिदर्भ इन नामों वाले हुए थे । यम भागे तिलक्षु के सन्तान के विषय में व्यवहार करो ॥२४॥

शतिक्षुरभयद्राजा पूवस्यादिशि विद्युत ।
 उशद्राजो महाबाहुस्तस्य हेम सुतोऽभवत् ॥२५॥
 हेमस्य सुतपा जज्ञ सुत सुतमशा वक्षी ।
 जातो मनुष्ययोन्या य क्षीणे वशे प्रवेक्षया ॥२६॥
 महायोगी स तु बभिवदो य स महामना ।
 पुत्रानुत्पादयामास चातर्वर्ष्यकरान् भुवि ॥२७॥

उस रौद्रास्व के पुत्रों का भी ज्ञान प्राप्त करनी । रौद्रास्व ॥ बुक से बुताभी नाम
 वाली अष्टरा ने इस पुत्रों ने नाम ब्रह्म विद्या था ॥४४॥ उन दश पुत्रों के
 नाम—रजेयु-कृतेयु-ज्योत-स्वहिहनेय-कृतेयु-ज्योत-धीर सातनी स्वलेयु था
 ॥४५॥ धर्म-सन्नेय तथा रजनी जनेयु था । कदा-कृदा-मदा-धुमा-जाम
 सना-तना-सना-जे सात धीर गोपचना कही गई थी तथा तामरसा धीर
 बसी ही रत्नकूटी थी ॥४६॥ ४७॥ यह से पापेय ब्रह्मकर नाम वाला उनका
 स्वामी था । अनरुह राजपि रिमेयु उसका पुत्र था ॥४८॥

रिमेयोज्ज्वलना नाम भार्या व तक्षकात्मजा ।

यस्या देया स राजर्षी रन्ति नाम स्वजीवनत् ॥४९॥

रन्तिर्नारि सरस्वस्या पुत्रानजनयच्छुमान् ।

असु तथा प्रतिरथ ध्रुवश्च वातिधामिकम् ॥५०॥

गौरी कन्या च विख्याता माम्घातुजननी क्षुभा ।

असु प्रतिरथस्यापि कण्ठस्तस्याभवत् सुत ॥५१॥

मेधातिथि सुतस्तस्य यस्मात् काण्ठायना द्विजा ।

इतिनानुमनस्यासीत् कथा साजनयत्सुताम् ॥५२॥

असु सुवयित पुत्र मनिन ब्रह्मवादिनम् ।

अपदात् ततो लेने चतुरस्त्विति सात्मजात् ॥५३॥

सुध्वन्तमथ दुध्वन्त प्रवीरजनचक्षुषा ।

अश्रुवर्ती ततो जज्ञ दौष्यन्तिनृ पसत्तम ॥५४॥

शकुन्तलाया भरतो यस्य नाम्ना तु भारतम् ।

दुष्यन्तं प्रति राजान वागुवाचाशरीरिणी ॥५५॥

माता भस्मा पितु पुत्रो येन जात स एव स ।

भरस्व पुत्र दुष्यन्त सत्यमाह शकुन्तला ॥५६॥

रेतोषा पुत्र नयति भरदेव यमक्षयात् ।

त्वन्धारस्य माता गर्भस्य मायमस्या शकुन्तलाम् ॥५७॥

रिमेयु की ज्योतना—इस नाम वाली तक्षक पुत्री भार्या ॥ थी । उस
 राजपि रिमेयु ने जिस ज्योतना देवी के रन्ति नाम वाली पुत्र उत्पन्न किया था

ये जोर परम घम के मानने वाले थे। उन छीनों के नाम यजमीढ-हिमीढ तथा पुष्मीढ थे वे ॥७३॥ यजमीढ के जो पुत्र हुए वे वे बहुत ही पुत्र और कुम के उद्बल करने वाले थे। सुमहान् तप के शक्त वे बृद्ध राजा के वारिक हुए थे। ॥७४॥ वे यज्ञ के ब्रह्मा से ही हुए वे सब उनका विस्तार का व्यवस्था करो। यजमीढ नाम वाले के वैशिमी ने कण्डवाम भारी उत्पन्न हुआ था ॥७५॥ यशस्विनि नाम वाला उसका पुत्र था। उससे फिर कण्डवाम हिम उत्पन्न हुए थे ॥७६॥

बृहदसोमृ हृदिष्णु पुनस्तस्य महाबल ।

बृहत्कर्मा सुतस्तस्य पुनस्तस्य बृहद्वय ॥७७॥

विश्वजित्तनयस्तस्य सैनजित्तस्य चारमज ।

अथ सैनजित पुनाश्वत्वारो लोकविश्रुता ॥७८॥

चबिराश्वश्च काम्यश्च रामो हृदयनुन्तथा ।

वत्सभावन्तको राजा यस्य ते परिवत्सरा ॥७९॥

चबिराश्वस्य शम्बादः पृथुषेणो महायथा ।

पृथुषेणस्य पारस्तु पारासीपोऽथ बसिबान् ८०

यस्य बभशयश्चासीत् पुषाणामिति न श्रुतम् ।

मीपा इति समाख्याता राजान सव एव ते ॥८१॥

तेषां वशाकरः श्रीमान् राजासीत्कीर्तिवद्व न ।

काम्पित्ये समरो नाम स वेष्टसमरोऽभवत् ॥८२॥

समरस्य पर पार सत्त्वदश्व इति त्रय ।

पुत्राः सर्वगुणोपेता पारपुत्रो नृपुर्वमी ॥८३॥

नृपोन्तु सुकृतिर्नाम सुकृतेनह कर्मणा ।

अज्ञ सवगुणोपेतो विद्याजस्तस्य आत्मन ॥८४॥

यजमीढ के पुमिमी ने बृहदसु राजा ने बभशय किया था ॥७७॥

बृहदसु ने ॥७८॥ हिष्णु पुत्र हुआ था जो महान् बल वाला था उसका पुत्र बृहत्कर्मा

हुआ और फिर उसका पुत्र बृहद्वय नाम वाला हुआ था। उसका अश्वोत् बृहद्वय

का तनय विश्वजित् हुआ और उसका नेवजित्त चारमन हुआ था। इसके उप

रान्त किं मेनजित् के नोऽ म पश्य प्रमिद्ध नां पुत्रो १ जन्म शरण रिया था ॥७८॥ उन चारो पुत्रो के नाम मनिगन्ध-नात्य-गाम श्रीर हृद मृ प ३ । यम आवन्तरु राजा था जिसके य पग्निस्मर हृष्ट है ॥७९॥ मनिगन्ध का दायाद महात् यश दाता पृथुमेन था । पृथुमेन का पात्र हृष्टा श्रीर पात्र के नीप म जन्म लिया था ॥८०॥ जिसके एक दान पुत्र हृष्ट थे—यह हमने सुना गया है । ये ममस्त राजा लोग नीपा—नाम से ममायान हृष्ट थे ॥८१॥ उनका वध ता करने अर्थात् करने वाले बाबा श्रीभाम् श्रीतिग्मम राजा हृष्टा था तान्त्रिक म समर नाम बाबा वह सर्वेश्व उमर हृष्टा था ॥८२॥ ममर के पर पात्र श्रीर सत्त्वद थे तीन आत्मज हृष्ट थे । ये ममम्य पुत्र मवगुण गस्त से ममरध थे । पात्र का पुत्र वृषु मुधोभिष्ठ हृष्टा था ॥८३॥ वृषु का मुरनि नामक पुत्र यही मुरन कम के दादा ममस्त गुणो से युक्त हृष्टा था श्रीर उमर पुत्र विभ्राज नाम बाबा हृष्टा था ॥८४॥

विभ्राजस्म तु दायादस्त्वगुहो नाम पार्थिव ।
 वभूव शुक्रजामाता ऋषीभर्ता महायया ॥८५॥
 अगुहस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महातपा ।
 योगसूनु मुनस्सस्य विष्वक्मेनोऽभवन्पुत्र ॥८६॥
 विभ्राजपुत्रा राजान मुकुत्सेनेह कर्मणा ।
 विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्मेनो वभूव ह ॥८७॥
 भल्लटस्तस्य दायादो येन राजा पुरा हत ।
 भरलाटस्य तु दायादो राधासीज्जनमेजय ।
 उग्रायुधेन तस्यार्थे सर्वे नीपा प्रणाशिता ॥८८॥
 परीक्षितस्य दायादो वभूव जनमेजय ।
 अतसेनस्य दायादो भीमसेनोऽपि नामत ॥८९॥
 जहनुस्त्वजनयत्पुत्र मुरथ नाम भूमिपम् ।
 मुरथस्य तु दायादो वीरो राजा विदूरथ ॥९०॥
 विदूरथसुतश्चापि सार्वभौम इति श्रुति ।
 सार्वभौमाज्जयत्सेन आराविन्तस्य चात्मज ॥९१॥

आराधितो महामत्स्व अयुतायुस्तत स्मृत ।

अकाशमोऽयुतायास्तु तस्माद् देवातिथि स्मृत ॥६२॥

देवातिथेस्तु दायाद ऋक्ष एव बभूव ह ।

भीमसेनस्तथा ऋक्षाद्विलीपस्तस्य चात्मज ॥६३॥

दिलीपसूनु प्रतिपस्तस्य पुत्रास्त्रय स्मृता ।

देवापि घातनुश्च व बाह्लीवश्च ते त्रय ॥६४॥

विभ्राज का दायाद अगुह नामधारी राजा हुआ था । अकृष्ण माता की और महाय यशवाला ऋषीज भर्ता ॥६२॥ अगुह का दायाद (पुत्र) महाय तपस्वी ब्रह्मवत् हुआ था और उसका तनय सोम सूनु और उसका पुत्र विध्वज सेन नृप हुआ था ॥६३॥ विभ्राज के पुत्र सब वहाँ सुकृत कर्म के द्वारा राजा हुए थे । विध्वजसेन का पुत्र उदकसेन हुआ था ॥६४॥ उसका दाराव भस्माट का मिश्रण पहिले राजा का हवन किया था भस्माट का दायाद राजा जनमेजय था । उसके लिए उग्रपुत्र ने समस्त मीनो प्रसङ्ग कर दिया था ॥६५॥ श्री सूतजी ने कहा—परीक्षित का दायाद जनमेजय नाम वाला हुआ था । अतसेन का पुत्र नाम से भीमसेन हुआ था ॥६६॥ जहनु ने सुरथ नाम वाला राजा पुत्र ॥ रूप ने उत्पन्न किया था । सुरथ का दायाद परम वीर राजा विदूरथ हुआ था ॥६७॥ विदूरथ का पुत्र स बभीष था—ऐसी भूति है । सावर्भीम से जयसेन उत्पन्न हुआ और उस जयसेन का पुत्र आराधि नाम वाला हुआ था ॥६८॥ आराधि से अयुताय हुआ था जो महाय सत्त्व वाला कहा गया है । फिर उस यवताय का अक्रोचन पुत्र हुआ और उस अक्रोचन ॥ देवातिथि पुत्र हुआ था ॥६९॥ देवातिथि का पिता ऋक्ष नाम वाला हुआ था । ऋक्ष स भीमसेन की उपाधि हुई और उसका पुत्र विलीप नामधारी हुआ था ॥७०॥ विलीप का पुत्र प्रतिप हुआ और उस प्रतिप के तीन पुत्र रहे यने हैं । जिनके नाम देवापि-घातनु और बाह्लीक के तीन थे ॥७१॥

बाह्लीवस्य तु विजये सप्तबाह्लीकधरो नृप ।

बाह्लीकस्य सुतश्च व सामवत्तो महायना ॥७२॥

सध्वमश्वकमुखाणां सध्वमङ्गनिवासिनाम् ।
 सध्वस्य मध्यदेशानां त्रिसर्वा वनमेजय ।
 विपादाद् ब्राह्मणैः साद्व ममिषस्त क्षय ययौ ॥११६॥
 तस्य पुत्र घतानीकौ बलवान् सत्यविक्रम ।
 ततः सुत घतानीक विप्रास्तमभ्यषेचयत् ॥११७॥
 पुत्रोऽश्वमेध दत्तोऽभूच्छतानीकस्य वीर्यवान् ।
 पुत्रोऽश्वमेधदत्ताद् जात परशुरजय ॥११८॥
 अभिसामकृष्णो धर्मात्मा साम्प्रतोऽय महामथा ।
 यस्मिन् प्रज्ञासति मही युष्माभिरिवमा हृतम् ॥११९॥
 दुराप दीपसत्रं च श्रीणि वर्षाणि कुञ्जरम् ।
 वपुष्य कुरुक्षेत्रे ह्यपहृता द्विजोत्तमा ॥१२०॥

परीक्षित के पुत्र पौरव वनमेजय ने दो अश्वमेध यज्ञों का आह्वरण करके
 इसके पश्चात् बाजसनेव को प्रवृत्त कराकर सब वनमेजय ब्रह्मत्रिसर्वा हो गया
 था ॥११६॥ मुख्य अश्वी की एक सब सव्या-अङ्गनिवासियों का एक जर्ब और
 मध्य देशों का एक सब इस तरह से वनमेजय त्रिसर्वा हुआ था । विपाद से
 ब्राह्मणों के साथ अभिसस्त होता हुआ क्षय को प्राप्त हुआ था ॥११६॥ उसका
 पुत्र घतानीक था जो बहुत बलवान् और सत्य विक्रम वाला था । इसके पश्चात्
 ब्राह्मणों ने उस पुत्र घतानीक को राज्य पर अभिषेक कर दिया था ॥११७॥
 घतानीक का पुत्र अश्वमेध दत्त बना वीरवान् हुआ था । अश्वमेध दत्त ने
 परशुरजय पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥११८॥ वह महान् यशस्वाला साम्प्रत बहुत
 धर्मात्मा अभिसाम कृष्ण है जिसके भूमिपर प्रकाशन करने पर तुम लोगो ने यह
 आहूत किया है । जोकि तीन वर्ष पवनत बना दुराचर एवं दुराप वह दीप सत्र
 है । हे द्विजोत्तमो ! दो वर्ष तक कुरुक्षेत्र में ह्यपहृती न हुआ था ॥११९ १२ ॥

योऽतु नविध्यमिच्छाम प्रजानां वै महामते ।

सूत साद्व नृनर्माव्य व्यतीत कीर्तित त्वया ॥१२१॥

यत मस्यास्यते शृत्वभुत्वत्स्थन्ति च ये नृपा ।

वर्षाप्रतोऽपि प्रबूहि नामतश्च व ता नृपान् ॥१२२॥

काल युगप्रमाणञ्च गुणदोषान् भविष्यत ।
 सुखदुःखे प्रजानाञ्च धर्मतः कामतोऽप्यत ॥१२३॥
 एतत्सर्वं प्रसङ्गवाच्यं पृच्छता ब्रूहि तत्त्वतः ।
 स एवमुक्तो मुनिभिः सूतो बुद्धिमता वर ।
 आचक्षते यथावृत्तं यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥१२४॥
 यथा मे कीर्तितं सर्वं व्यासेनाद्भुतकम्मणा ।
 भाष्य कलियुगञ्चैव तथा मन्वन्तराणि तु ॥१२५॥
 अनागतानि सर्वाणि ब्रूयतो मे निबोधत ।
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भविष्यन्ति नृपास्तु मे ॥१२६॥
 ऐमाश्चैव लघेदवाङ्मनः सौख्यमनाश्चैव पाप्मिणान् ।
 येषु सत्स्याप्यते क्षेत्रगैश्चाकवमिदं शुभम् ॥१२७॥
 तान् सर्वान् कीर्तयिष्यामि भविष्ये पठितान्मृपान् ।
 तेभ्य परे च ये चान्ये उत्पत्स्यन्ते महीक्षित ॥१२८॥
 क्षत्रा पारशवाः क्षूद्रास्तथा ये च द्विजातयः ।
 अग्न्याश्वाका पुलिन्दाश्च तूलिका यवनैः सह ॥१२९॥
 कर्कशाभीरलक्ष्मणा ये चान्ये म्लेच्छजातयः ।
 वर्षाग्रतः प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान्मृपान् ॥१३०॥

श्रुत्वा मे ने कहा—हे महान् मति वाले । अब हम जोग प्रजापति का
 आगे आने वाले भविष्यकाल सुनने की उत्कट इच्छा करते हैं । हे सूत । आपने
 अब तक तो जो होमया और होरहा है वह ही वर्णन किया है ॥१२१॥ जो
 कृत्स्न सन्निहित होगा और जो राजा लोग उत्पन्न होंगे । उन समस्त राजाओं को
 वर्षा से और नाम से बताइये ॥१२२॥ काल और युग का प्रमाण तथा होने
 वाले गुण एवं दोषों को बताइये । धर्म से और काम से प्रजापति के सुख तथा
 दुःखों को भी बताइये ॥१२३॥ यह सब प्रसंगमान करके पूछने वाले हमको आप
 कृपा करके तात्त्विक रूप से बताइये । बुद्धिमानों ने परम श्रेष्ठ इस तरह से
 मुनिगणों के द्वारा पूछे गये श्री सूतजी ने जैसा भी हुआ जैसा देखा और जिस
 प्रकार से सुना था वह कहना आरम्भ कर दिया था ॥१२४॥ श्री सूतजी ने

ब्रह्मा—अद्भुत काम करने वाले श्री व्यासजी ने जिस तरह से मुझसे यह सन कहा था । माय्य—इतिवृत्त और मन्तर जन सब श्रुताश्रितों को मुझसे जान लो । इसके प्रागे जो भूष होने उनको बताऊँगा ॥१२३ १२६॥ ऐतौ को—इक्ष्वाकुमौ को और सोम्य राजाओं को जिनमें यह क्षुम ऐश्वर्यजन क्षेत्र सम्पापति किया जाता है उन सब भविष्य के पटित राजाओं का मरण करूँगा । और उनके प्रागे जो अन्य राजा लोग उत्पन्न होंगे ॥१२७ १२८॥ पारश्व क्षत्रियों का समूह तथा ब्रूह और श्री द्विजातिवर्ण के अथ—क्षत्र—मुनि—द—यवनी के साथ सुनिक—कैवल्य—महीर—सर्वर और जो अन्य ज्योतिष् जाति वाले लोग इन समस्त भूषों को बर्णित तथा नाम से ज्ञातकरें ॥१२९ १३ ॥

अधिसामकृष्ण सौम्य साम्प्रत पौरवान्भूष ।
 सत्यन्विवाये वदामि भविष्ये तावतो भूषान् ॥१३१
 अधिसामकृष्णपुत्रो निवर्त्तने भविता किल ।
 गङ्गापत्तने सस्मिन्नगरे नागसाङ्गवे ।
 त्यक्त्वा च त सुवासश्च कौशाम्ब्या स निवस्यति ॥१३२
 भविष्यदुष्णस्तत्पुत्र उष्णाश्विनरथ स्मृत ।
 शुचिद्वयश्विनरथाद्वृत्तिमात्र शुचिद्वयात् ॥१३३
 सुपेणो ऽ महावीर्यो भविष्यति महायसा ।
 तस्मात्सुपेणाद्भविता सुतीर्थो नाम पार्थिव ॥१३४
 स च सुतीर्थोद्भविता त्रिचसो भविता तव ।
 त्रिचसस्य तु दायादो भविता च सुखीवच ॥१३५
 सुखीवचसुतश्चापि मान्वा राजा परिप्लुत ।
 परिप्लुतसुतश्चापि भविता सुनयो भूष ॥१३६
 मेघावी सुनयस्याथ भविष्यति नराधिप ।
 मेघाविन सुतश्चापि दण्डपाणिर्भविष्यति ॥१३७
 दण्डपाणेनिरामित्रो निरामित्राश्च क्षेमक ।
 पञ्चविंशतृषा ह्येते भविष्या पूषवर्जजा ॥१३८

अयिमांश दृष्टुं वह मह माप्स्यन्तीति ता राजा हे । उमो अत्र
 मे भविष्य मे उतने राजास्यो ता उरुण गर्भा ॥१३१॥ अयिमांश दृष्टुं ता
 पुत्र निर्वंरु मे होमा । नागम नामक उन नगर के गर्भा ते हाग घपट्टा होजाने
 पर वह उमका निवास त्याग करके रोमाग्नी मे निराग करेगा ॥१३२॥ उमका
 पुत्र उरुण होमा और उरुण से चित्रम्ब होमा । चित्रम्ब ता पुत्र शुचिद्रव होमा
 और शुचिद्रव से वृत्तिमान् होमा ॥१३३॥ सुमेण निष्पन्न ही मत्ताम् यमतामा
 होमा । उस सुमेण का आत्मज मुनीय नाम रागे राजा होमा ॥१-४॥ मुनीय
 से रुष का जन्म होमा और फिर उसमे पित्रक्ष हागा । पित्रक्ष ता दायार मुनी-
 बल नाम वाला होमा ॥१३५॥ मुनीबल ता पुत्र परिप्लुत नाम राजा होमा ।
 फिर परिप्लुत का पुत्र मुनय नाम राजा राजा होमा ॥१-६॥ मुनय का पुत्र
 मेधावी नामक राजा होमा और मेधावी का पुत्र दशदपासि नाम वाला जन्म
 ग्रहण करेगा ॥१३७॥ दशदपासि से निरामित्र होमा और निरामित्र से धेमद
 नाम वाला जन्म प्राप्त करेगा । ये पक्षीम राजा पूर वराज दोगे ॥१३८॥

आधनुषधवल्लोकोऽय गीतो विप्रैः पुराविदं ।

ब्रह्मदशस्य यो योनिर्गजो देवपितृकुल ॥१३९॥

क्षेमक प्राप्य राजान सस्था प्राप्स्यति वै कलौ ।

इत्येव पीरवो वशो यथावदनुकीर्तित ॥१४०॥

भीमत पाण्डुपुत्रस्य ह्यर्जुनस्य महात्मन ।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि इक्ष्वाकूणा महात्मनाम् ॥१४१॥

वृहद्वयस्य दायदो वीरो राजा बृहत्क्षय ।

तत क्षय सुतस्तस्य वत्सव्यूहस्तत क्षयात् ॥१४२॥

वत्सव्यूहात्प्रतिव्यूहस्तस्य पुत्रो दिवाकर ।

यश्च साप्रतमध्यास्त अयोध्या नगरी नृप ॥१४३॥

दिवाकरस्य भविता सहदेवो महायशा ।

सहदेवस्य दायदो वृहदक्षो भविष्यति ॥१४४॥

तस्य भानुरवो भाव्य प्रतीताश्च तत्सुत ।

प्रतीताश्च सुतश्चापि सुप्रतीतो भविष्यति ॥१४५॥

सहदेव सुतस्तस्य सुनक्षत्रञ्च तत्पुत्र ॥१४६॥

यहाँ पर पुरावेत्ता विप्रों के द्वारा अनुवक्ष का यह श्लोक गाना गया है जो ब्रह्मर्षि की शक्ति है वह वक्ष देवर्षियों के द्वारा शक्त होना है ॥१४१॥ यथावत् अनुकीर्तित वह भीरव अथ सेनक राजा को प्राप्त करके कनिष्ठपुत्र से सत्पा को प्राप्त करेगा ॥१४२॥ परम बुद्धिमान् महान् धामा वाक्ते पाण्डु के पुत्र अनुवक्ष का यह वक्ष है । अब इससे आये महामा इन्द्राकुमो के वक्ष का वक्ष्य कह पा ॥१४३॥ कृष्ण का चायाव भीर राजा कृष्णराज है फिर उससे पश्चात् उसका पुत्र वत्सगृह साथ से हुआ ॥१४४॥ वत्सगृह के प्रतिगृह और उसका पुत्र विनाकर हुआ है जो इस समय के अयोध्या नगरी का राजा है ॥१४५॥ विनाकर का पुत्र महान् मन्वन्ता सहदेव होया और सहदेव का उत्तराधिकारी पुत्र कृष्णराज होया ॥१४६॥ उस कृष्णराज राजा का पुत्र भानुरूप होया और उसका पुत्र प्रतीतास होया । प्रतीतास का पुत्र सुप्रतीत नाम जाता जन्म ग्रहण करेगा ॥१४७॥ उस सुप्रतीत का पुत्र सहदेव होया और सहदेव का पुत्र सुनक्षत्र जन्म लेगा ॥१४८॥

किन्नरस्तु सुनक्षत्राद्भविष्यति परतप ।

भविता चान्तरिक्षस्तु किन्नरस्य सुतो महान् ॥१४७॥

अन्तरिक्षात्सुपक्षस्तु सुपर्णाक्षिप्यमिन्नजित् ।

पुत्रस्तस्य भरद्वाजो धर्मो तस्य सुह स्मृत ।

पुत्र कुतक्षयो नाम धर्मिष्ठ स भविष्यति ।

इतक्षयतुलो ब्राह्मो तस्य पुत्रो रणक्षय ॥१४८॥

भविता सञ्जयश्चापि वीरो राजा रणक्षयात् ।

सञ्जयस्य सुत आनय आनयान्बुद्धोदमोऽभवत् ॥१४९॥

शुद्धोदनस्य भविता आनयार्थं राहुव स्मृत ।

प्रसेनजित्तो भाव्य शुद्रको भविता तत ॥१५०॥

दुद्रकात्सुनिको भाव्य क्षुनिवात्सुरध स्मृत ।

सुमित्र सुरवस्यापि भन्त्यत्र भविता नृप ॥१५१॥

एते ऐवाकवा प्रोक्ता भवितार कलौ युगे ।

वृहद्वलान्वये जाता भवितार कलौ युगे ।

शूराश्च कृतविद्याश्च सत्यमन्वा जितेन्द्रिया ॥१५२॥

सुनक्षत्र का पुत्र किन्नर नामधारी परमन्व होगा । और फिर किन्नर का पुत्र बृहत् ही महान् अन्तर्गिह होगा ॥१५७॥ अन्तर्गिह में सुपर्ण नामक पुत्र जन्म लेगा और सुपर्ण का पुत्र अभिशक्ति नामधारी होगा । उसका पुत्र भरद्वाज और उसमें यही पर चर्मा नामक पुत्र होगा । फिर चर्मा का दृढजय नाम वाला पुत्र मधुसूदन होगा । कृतवृज्य का पुत्र प्रात नामक होगा और इमना पुत्र रणवृज्य नाम वाला जन्म ग्रहण करेगा ॥१५८॥ रणवृज्य से मञ्जय नाम का और राजा होगा । मञ्जय का पुत्र धाक्य होगा और धाक्य से धुवोदन नाम वाला हुमा था ॥१५९॥ धुवोदन धाक्यार्थ में राहुन नाम में बड़े जाने वाला पुत्र होगा । उसमें फिर प्रमेनजित् होगा और उस प्रमेनजित् में धुद्रक होगा ॥१५०॥ धुद्रक का पुत्र क्षुत्तिक होगा और क्षुत्तिक में मुरघ नाम में कहा जाने वाला पुत्र जन्म पाएगा करेगा । मुरघ में मुमित्र नामक अन्त में होने वाला राजा होगा ॥१५१॥ ये इतने इन्द्राकु के वंश में होने वाले बताये गये हैं जोकि क्षत्री कलियुग में जन्म पाएंगे कर आमन करेंगे । ये सब बृहद्वल के वंश में जन्म ग्रहण करेंगे और कलियुग में ही होंगे ये सभी राजा धूर्वीर ये—कृतविद्य धर्मात् विद्या पड़े हुए—ये सब सत्य सन्धा प्रणिता वाले और इन्द्रियों को जीतने वाले ये ॥१५२॥

अतःनुवगस्तोकोऽय भविष्यजैरुदात्तहृत् ।

इन्द्राकूशामय वंश सुमित्रान्तो भविष्यति ।

सुमित्र प्राप्य राजान् मस्था प्राप्स्यति वै कलौ ।

इत्येतन्मानव क्षेत्रमैलख समुदात्तहृत् ॥१५३॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मागधैरान्वृहद्वयान् ।

जरासन्वस्य ये वजे सहदेवान्वये नृपा ॥१५४॥

अतीता वर्त्तमानाश्च भविष्याश्च तथा पुनः ।

प्राधान्यतः प्रवक्ष्यामि गदतो मे निबोधत ॥१५५॥

सग्रामे भारते तस्मिन् सहदेवो निपातितः ।
 सोमाभिस्तस्य तमयो राजर्षिः स निरिक्षणे ॥१५६॥
 पञ्चाशत् सयाष्टौ च समा राज्यमकारयत् ।
 श्रुत्वथवा चतुषष्टिसमास्तस्य सुतोऽभवद् ।
 अयुतायुस्तु पर्षद्वत्स राज्यवर्षाभ्यकारयत् ।
 समा शत निरामित्रो मही भुक्त्वा दिवङ्गतः ॥१५७॥
 पञ्चाशत् समा घटश्च सुकृतः प्राप्तवान्महीम् ।
 त्रयोविंश वृहत्कर्मा राज्यवर्षाभ्यकारयत् ॥१५८॥
 सेनाजित्साम्प्रत आरि एताश्च भुज्यते समा ।
 श्रुत्तज्जपस्तु वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ॥१५९॥
 महाबाहुमहाबुद्धिमहाभीमपराक्रमः ।
 पञ्चविंशत् वर्षाणि मही पालयिता नृप ॥१६०॥

यहाँ पर भविष्य के ज्ञाताओं के द्वारा यह अनुवचन श्लोक उवाहृत किया गया है कि इक्ष्वाकुजी का यह बंध सुमित्र के अंत तक ही होगा । सुमित्र राजा को प्राप्त करके कलियुग में सत्ता को प्राप्त करेगा । यह इतना देव का मानव उवाहृत किया गया है ॥१५६॥ इसके प्राये मागधेश बृहदशो का बहान कल गाँव को सहदेव के भ्रातर में अराधन के बंध में राजा ने ॥१५७॥ जो भ्रष्टीत होगये थीर को इस समय में वत्तमान हैं तथा जो भविष्य में राजा होने में इन सबको प्राप्ताय रूप से बसाऊँगा । बताने वाले सुमित्र इन सबका ज्ञान प्राप्त करो ॥१५८॥ उस भारत सग्राम में सहदेव निपातित होगया था । उसका पुत्र राजर्षि सोमाभि हुमा उमने निरि द्वय में बटकावन वर्ष पथ त राज्य किया था फिर जीवन्त रूप तक उसका पुत्र शतधरा नाम वाला हुआ । अयुतायु ने छद्मीत वर्ष राज्य किया था । निरामित्र सौ वर्ष तक राज्य करके दिवङ्गत हुमा था ॥१५९॥ पचास थीर की छप्पन वर्ष तक सुकृत ने इस भूमि को प्राप्त किया था । तेईस वर्ष बृहत्कर्मा ने राज्य शासन किया था ॥१६०॥ इस समय सेनानि इस भूमिशब्द को मोक्ष रहा है । श्रुतज्जप चालीस वर्ष तक भविष्य में

राज्य शासन करेगा ॥१२६॥ महान् वृद्धि वाना श्री महान् भीम पराक्रम
वाला महाबाहु नृप पैंतीस वर्ष तक भूमि का पालन करेगा ॥१२७॥

अष्टपञ्चाशत्त चाब्दान् राज्ये स्थास्यति वै शुचि ।
अष्टाविंशत्समा पूर्णा क्षेमो राजा भविष्यति ॥१२८॥
भुवतस्तु चतु पट्टीराज्य प्राप्स्यति वीर्यवान् ।
पञ्चवर्षाणि पूर्णानि धर्मनेत्रो भविष्यति ॥१२९॥
भोक्ष्यते नृपतिश्चैव ह्यष्टपञ्चाशत्त समा ।
अष्टात्रिंशत्समा राज्य सुव्रतस्य भविष्यति ॥१३०॥
चत्वारिंशद्दशाष्टौ च दृढसेनो भविष्यति ।
त्रयस्त्रिंशत् वर्षाणि सुमति प्राप्स्यते तत ॥१३१॥
द्वाविंशतिसमा राज्य सुचलो भोक्ष्यते तत ।
चत्वारिंशत्समा राजा सुनेत्रो भोक्ष्यते तत ॥१३२॥
सत्यजित्पृथिवीराज्य त्र्यशीति भोक्ष्यते समा ।
प्राप्येमा वीरजिह्वापि पञ्चात्रिंशद्भविष्यति ॥१३३॥
अरिञ्जयस्तु वर्षाणि पञ्चाशत्प्राप्स्यते महीम् ।
द्वात्रिंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथा ॥१३४॥

शुचि नाम वाला राजा अठ्ठावन वर्ष तक राज्य में स्थित रहेगा और
क्षेम नामधारी राजा अठ्ठाईस वर्ष तक होगा ॥१२८॥ वीर्यवान् भुवत चौसठ
वर्ष तक राज्य को प्राप्त करेगा । पूरे पाँच वर्ष तक धर्मनेत्र राजा रहेगा
॥१२९॥ अठ्ठावन वर्ष तक नृपति इस भूमि का उपयोग करेगा । अठ्तीस वर्ष
तक सुव्रत का राज्य होगा ॥१३०॥ चालीस दश और आठ वर्ष तक दृढसेन राजा
होगा । तेतीस वर्ष पर्यन्त फिर सुमति नाम वाला भूमि को प्राप्त करेगा ॥१३१॥
इसके उपरान्त बाईस वर्ष तक सुचल नाम वाला भूमि के शासन का उपभोग
करेगा । चालीस वर्ष तक सुनेत्र भूमण्डल का भोग करेगा ॥१३२॥ सत्यजित्
राजा तिरासी वर्ष पर्यन्त भूमि का भोग करेगा । फिर इस भूमि को प्राप्त करके
पैंतीस वर्ष तक वीरजित् राजा होगा । १३३॥ अरिञ्जय राजा पचास वर्ष तक

इस भूमिखण्ड पर शासन करेगा । ये बसीर राजा बृहद्रथ नाम वाले इस भूमि पर होने ॥१६७॥

पूरा वषट्पञ्चम व तेषां राज्यं भविष्यति ।

बृहद्रथेष्वतीतेषु वीतहोत्रेषु वर्तिषु ॥१६८

मुनिक स्वामिन हत्वा पुत्र समभिपेक्ष्यति ।

मिपता क्षत्रियाणां हि प्रचोतो मुनिको वसात् ॥१६९

स व प्रणतसामन्तो भविष्ये नयवर्जितः ।

त्रयोविंशत्समा राजा भविता स नरोत्तमः ॥१७०

चतुर्विंशत्समा राजा पालको भविता ततः ।

विंशत्ययुषो भविता मृष पञ्चाशती समा ॥१७१

एकविंशत्समा राज्यमजकस्य भविष्यति ।

भविष्यति समा विंशत्सुतो वर्तिवद्ध नः ॥१७२

षष्टाविंशच्छतं भाष्या प्रायोता पञ्च ते सुताः ।

हत्वा तेषां मघ कृत्स्नं शिशुनाको भविष्यति ॥१७३

वाराणस्यां सुनस्तस्य सप्राप्स्यति गिरिवज्रम् ।

शिशुनाकस्य वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ॥१७४

शकवणं सुतस्तस्य पटविंशच्च भविष्यति ।

ततस्तु विंशतिं राजा क्षेमवर्मा भविष्यति ॥१७५

अजातशत्रुभविता पञ्चविंशत्समा मृषः ।

चत्वारिंशत्समा राज्यं क्षत्रौजा प्राप्स्यते ततः ॥१७६

पूरे सौ वर्ष पयन्त उनका राज्य होगा । बृहद्रथो के व्यतीत ही जाने पर भीर वीर होगी को समाप्त होने पर मुनिक स्वामी को मारकर पुत्र का अभिषेक करेगा । क्षत्रियों को हटकर मुनिक मन्त्रपूजक राज्य को छीन लेगा ॥१६८ १६९॥ बहू नयवर्जित प्रणत समस्त भविष्य ये नरोत्तम तेईस वय तक राजा होगा ॥१७॥ फिर इनके उपरान्त पालक नाम वाला इस भूमि का राजा होगा । विंशत्ययुष नाम वाला पचास वय तक राजा होगा ॥१७१॥ इक्कीस वर्ष तक यहाँ पर अजक का राज्य होगा । फिर उसने पुत्र वर्तिवद्ध न का राज्य

बीस वर्ष तक रहेगा ॥१७२॥ वे पाँच प्राचीन पुन मष्टीय सी वष तरु होंगे
फिर उनके समस्त यम को ममाप्त कर विष्णु नाम का राजा होगा ॥१७३॥
उमका पुत्र बागलुमी मे विरिज को प्राप्त करेगा । जिधु नाक का राज्य वालीय
वर्ष तक होगा ॥१७४॥ उमका पुत्र शक वरु छतीस वर्ष पर्यन्त राज्य करेगा ।
फिर इसके उपरान्त क्षेम वर्मा बीस वर्ष तक राज्य शासन करेगा ॥१७५॥
पञ्चवीस वर्ष तक इसके पश्चात् अजात शत्रु नाम गरी राजा रहेगा । फिर वालीय
वर्ष पर्यन्त क्षत्रोज्ञा इन राज्य को प्राप्त करेगा ॥१७६॥

अष्टाविंशत्समा राजा विविशारो भविष्यति ।
पञ्चविंशत्समा राजा दर्शकस्तु भविष्यति ॥१७७॥
उदामी भविता तन्मास्त्रयस्त्रिजसमा नृप ।
स नै गुरवर राजा पृथिव्या कुसुमाङ्गयम् ।
मङ्गाया दक्षिणे कूले चतुर्वेन्दे कश्चिप्यति १७८
द्वात्रिंशत्समा भाष्यो राजा धी नन्दिदण्डन ।
अष्टाविंशत्समा महानन्दी भविष्यति ॥१७९॥
इत्येते भवितारो नै शैलुनाका नृपा दश ।
शालानि श्रीणि वर्षाणि द्विपट्यभ्यधिकानि तु ॥१८०॥
शैलुनाका भविष्यति तावत्काल नृपा परे ।
एतं सादृ भविष्यन्ति राजान क्षत्रवान्धवा ॥१८१॥
ऐश्वर्याकवाश्चतुर्विंशत्पाञ्चासा पञ्चविंशति ।
कालकास्तु चतुर्विंशत्तुर्विंशत्तु हेहया ॥१८२॥
द्वात्रिंशद् कलिङ्गास्तु पञ्चविंशत्तया शका ।
कुरवश्चापि पड्विशदष्टाविंशति मंचिला ॥१८३॥
सूरसेनास्त्रयोविंशद्दीतिहोत्राश्च विंशतिः ।
तुल्यकाल भविष्यन्ति सर्व एव महोषित ॥१८४॥
महानन्दिमुत्तश्चापि मङ्गाया कालसंवृत ।
उत्पत्स्यते महापथ सर्वसंश्रान्तरे नृप ॥१८५॥

वसुमित्र सुतो माध्यो दशवर्षाणि पाप्मिव ।
 ततो घ्न क समा द्व तु भविष्यति सुतश्च य ॥१९८॥
 भविष्यति समास्तस्मात्तिष्ठ एव भुक्तिदका ।
 राजा षोडशसुतश्चापि वर्षाणि भविता त्रय ॥१९९॥
 सतो घ्न विक्रमिष्यस्तु समा राजा तत पुन ।
 द्वाविंशद्भविता चापि समा भागवतो नृप ॥२००॥
 भविष्यति सुतस्तस्य क्षेमभू म समा दश ।
 दशते तुङ्गराजानो मोक्षयन्तीमा वसुधराय ॥२०१॥
 शत पूर्य दश द्व च तेभ्य नि वा शमिष्यति ।
 सपाधिबसुदेव नु वास्याप्तसन्नि नृपम् ॥२०२॥
 क्षेमभूमिस्ततोऽन्यश्च शृङ्ग पु भविता नृप ।
 भविष्यति समा राजा नव कण्ठायनस्तु स ॥२०३॥
 भूतिमत्र सुतस्तस्य चतुर्विंशद्भविष्यति ।
 भविता द्वादश समास्तस्मात्पारायणो नृप ॥२०४॥

सेनानी पुण्य मित्र मुहुरन् का उद्धार करके बाठ वर्ष तक सर्वत्र राज्य
 शासन करायेगा ॥१९८॥ पुण्यमित्र के पुत्र बाठ वर्ष तक राजा होंगे । उनमें
 जो सबसे बड़ा है वह साठ वर्ष तक राज्य का शासन करेगा ॥१९९॥ वसुमित्र
 पुन दश वर्ष तक इस भूमि का राजा होगा । इसके पश्चात् सुत शृङ्ग को वष
 तक शासन होगा ॥२००॥ इसके तीन भुक्तिदक राजा होंगे । राजा षोडश सुत
 तीन वर्ष तक रहेगा ॥२०१॥ इसके अनन्तर त्रिंशन्नि राजा होगा फिर भाग
 वत राजा बत्तीस वर्ष तक उपभोग करेगा ॥२०२॥ नामवत राजा का पुत्र
 क्षेम भूमि नाम वाला दश वर्ष तक इस भूमिपाल का शोण करेगा । ये दश
 मुङ्ग नामवादी राजा दश वसुधरा का सुमोदमोद करेंगे ॥२०३॥ पश्चात् एक
 सौ बारह वर्ष तक वह वसुधरा से व्यासनी पश्चात्पि सुदेव नृप की मङ्ग रहेगी
 ॥२०४॥ इसके पश्चात् एक नव देवभूमि नृप शृङ्गो म होगा । वह कण्ठायन
 राजा ही क्या तक रहेगा ॥२०५॥ उनका पुन भूतिमित्र होगा और वह भीनीच

वर्ष तक भूमि का शासन करेगा । उससे फिर नारायण नाम वाला राजा
बारह वर्ष तक भूमि का भोग करेगा ॥२०४॥

सुशर्मा तत्सृतश्चापि भविष्यति समा दश ।

चतुरस्तुङ्गकृत्यास्ते नृपाः कण्ठायना द्विजा ॥२०५॥

भाव्या प्रणतसामन्ताश्चत्वारिंशच्च पञ्च च ।

तेषां पथ्यायिकाले तु तरन्वा तु भविष्यति ॥२०६॥

कण्ठायनमघोदधृत्य सुशर्माण प्रसह्य तम् ।

शृङ्गाणां चापि यच्चिष्ट क्षययित्वा बल तदा ।

सिन्धुको ह्यन्धजातीय प्राप्स्यतीमा वसुन्धराम् ॥२०७॥

त्रयोविंशत्समा राजा सिन्धुको भविता त्वय ।

अष्टौ भातश्च वर्षाणि तस्माद्दश भविष्यति ॥२०८॥

धीसातर्काणिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै महान् ।

पञ्चाशत् समा षट् च सातर्काणिर्भविष्यति ॥२०९॥

आपादबद्धो दश वै तस्य पुत्रो भविष्यति ।

चतुर्विंशत् वर्षाणि षट् समा वै भविष्यति ॥२१०॥

भविता नेमिकृष्णस्तु वर्षाणां पञ्चविंशतिम् ।

ततः सप्तत्सर पूर्णं हालो राजा भविष्यति १११

उसका पुत्र सुशर्मा नामधारी दश वर्ष तक राजा होगा । हे द्विजकुम्भ ।

वे बार कण्ठायन मुङ्गकृत्य राजा होंगे ॥२०५॥ गैतालीस प्रणत सामन्त होंगे ।

उनके पथ्यायिकाल में तरन्वा होगा ॥२०६॥ कण्ठायन सुशर्मा को बलपूर्वक

उद्धृत पारके और शृङ्गों का जो भी कुछ क्षेप था उस बल को क्षीण करके

भा-प्र जाति वाला सिन्धु नामक राजा इस वसुन्धरा को प्राप्त करेगा ॥२०७॥

इसके अनन्तर वह सिन्धुकर्तेईस वर्ष तक राज्य का शासन ग्रहण होगा । फिर

भात भगारह वर्ष तक रहेगा ॥२०८॥ उसका महान् पुत्र धी सातर्काणि छप्पन

वर्ष पथ्यायिकाल करने वाला होगा ॥२०९॥ दश आपाद बद्ध उसका

पुत्र होगा । यह तीस वर्ष तक यहाँ भूमि का राजा होगा ॥२१०॥ फिर नेमि

कृष्ण नाम वाला पञ्चीस वर्ष तक राजा रहेगा । फिर पूरे एक वर्ष तक

'हाल'—इस नाम वाला राजा होगा ॥२११॥

पञ्च सप्तक राजानो भविष्यन्ति महाबला ।
 आर्य पुत्रिकयेणस्तु समा सोऽप्येकविंशतिम् ॥२१२॥
 सातकर्णिवयमेक भविष्यति नराधिप ।
 अष्टाविंशत् वर्षाणि शिवस्वामी भविष्यति ॥२१३॥
 राजा च गौतमीपुत्र एकविंशत्समा नृप ।
 एकोनविंशति राजा यज्ञध्री सातकण्यव ॥२१४॥
 पञ्चैव भविता तस्माद्विजयस्तु समा नृप ।
 दण्डध्री सातकर्णी च तस्म पुत्र समास्त्रय ॥२१५॥
 पुलोवापि समा सप्त अन्वेषाञ्च भविष्यति ।
 हृत्प्रेते व नृमास्त्रिसारध्या भोक्ष्यन्ति ये महीम् ॥२१६॥
 क्षमा शतानि चत्वारि पञ्च पञ्च वै त्रयैव च ।
 मध्याह्ना सन्ध्या पञ्च तेषा अशा समा पुन ॥२१७॥
 सप्तथ तु भविष्यन्ति दशमीरास्ततो नृपा ।
 सप्त गदमिनश्चापि ततोऽथ दस व शका ॥२१८॥
 यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषारास्तु चतुदश ।
 त्रयोदश गण्डाश्च भीमा ह्यष्टादश तु २१९॥
 मध्या भोक्ष्यन्ति वसुधा शते द्व च सत च व ।
 शतानि त्राण्यधीति च भोक्ष्यन्ति वसुधा शका ॥२२०॥

पञ्च सप्तक महाशु बलवान् राजा होने । एक पुत्रिकयेण होगा वह भी
 एक और बीस वर्ष तक राजा रहेगा ॥२१२॥ सातकर्ण एक ही वर्ष तक
 नराधिप होगा ; अठ्ठाईस वर्ष तक शिव स्वामी राजा होगा ॥२१३॥ गौतमी
 पुत्र नाम वाला राजा मनुष्यो पर इकतीस वर्ष पर्यन्त शासन करेगा । उग्रीव
 वय तक राजा यज्ञ धी और इसके अनन्तर सातकर्ण होगा ॥२१४॥ तबसे
 फिर से ही राजा होने । विजय-दण्ड धी और सातकर्ण इसके से तीन पुत्र
 होने ॥२१५॥ सात वर्ष तक पुलोवापि होगा और दूसरे का भी होगा । ये
 तीस अग्र राजा इस मही का योग करने ॥२१६॥ चार सौ मारह जग
 स ध्रो के समान पाँच भक्ष सन्धिव होने ॥२१७॥ सात ही दशमीरचतुप होने ।

सात गद भी होंगे फिर इसके पञ्चात् दश शक्र होंगे ॥२१८॥ आठ यवन राजा होंगे फिर चौदह तुपाद नाम वाले राजा होंगे । तेरह गरुड और उनके पञ्चात् अठारह मोर होंगे ॥२१९॥ तीन सौ वर्ष तक अन्ध जाति वाले लोग उम्र वसुधा का भोग करेंगे और फिर तीनसौ अस्सी वर्ष तक खर जाति वाले उन वसुधरा का भोग करेंगे ॥२२०॥

प्रसीतिश्च व वर्षाणि भोक्तारो यवना महोम् ।
 पञ्चवपशतानीह तुपाराणां मही स्मृता ॥२२१॥
 शतान्यद्वचतुर्थानि भवितारस्थयोदश ।
 गरुण्डा श्रेपलं साह्रं भाव्यान्त्याम्लेच्छजातय ॥२२२॥
 शतानि श्रीणि भोक्ष्यन्ति म्लेच्छा एकादशं व तु ।
 तच्छन्नेन च कालेन तत कोलिकिला वृषा ॥२२३॥
 ततः कोलिकिलेभ्यश्च विन्ध्यशक्तिर्भविष्यति ।
 समा पण्यवति ज्ञात्वा पृथिवी च समेष्यति ॥२२४॥
 वृषान् वै दिशकाश्चापि भविष्याश्च निबोधत ।
 शेषस्य नागराज्यस्य पुत्र स्वरपुरञ्जय ॥२२५॥
 भोगी भविष्यते राजा नृपो नागकुलोद्बह ।
 सदाचन्द्रस्तु चन्द्राशो द्वितीयो नखवास्तथा ॥२२६॥
 धनधर्मा ततश्चापि चतुर्थो विषजः स्मृत ।
 भूतिनन्दस्ततश्चापि वैदेक्षे तु भविष्यति ॥२२७॥
 अङ्गानां नन्धनस्यान्ते मधुनन्दिर्भविष्यति ।
 तस्य भ्राता यवीयास्तु नाम्ना नन्दियक्षा किल ॥२२८॥
 तस्यान्वये भविष्यन्ति राजानस्ते त्रयस्तु वै ।
 दौहित्र शिशुको नामपुरिकाया नृपोऽभवत् ॥२२९॥
 विन्ध्यशक्तिसुतश्चापि प्रवीरो नाम वीर्यवान् ।
 भोक्ष्यन्ति च समा पष्टि पुरी काञ्चनकाञ्च वै ॥२३०॥
 यक्ष्यन्ति वाजपेयैश्च समासवरदक्षिणैः ।
 तस्य पुत्रास्तु चत्वारो भविष्यन्ति नराधिपा २३१

विध्यमाना कुलेज्जीते नृपा व बाह्लिकास्त्रय ।

सुप्रतीको नमीरस्तु समा भोक्ष्यन्ति त्रिशक्तिम् ॥२३२॥

अस्सी वर्ष तक बचन सोच इस मही को भोग्ये । यहाँ पाँच सौ वर्ष तक तुसारी की यह भूमि कही जायगी ॥२२१॥ अठ्ठ वसुव सौ वर्ष तक तेरह महर्षि वृषतो के साथ होवे जो अय भोक्ष्य खाति वाले होवे ॥२२२॥ ग्यारह भोक्ष्य तीन सौ वर्ष तक इस भूमि का भोग करे । और उनके अन्तकाल में कोलिकित वृष होवे ॥२२३॥ फिर उन कोलिकितों से विध्य शक्ति होगा । छयानवे वर्ष तक पृथिवी को ज्ञान प्राप्त करके आवेगा ॥२२४॥ अठ वृषों को और दियको को कोकि आवे होने वाले हैं उसी भाँति समस्त लो । नागराज वेष का पुत्र स्वरपुरञ्जय नाम कुसका उग्रहन् करने वाला भोग करने वाला राजा होगा । अष्टाष्ट सषाचष्ट और दूसरा नमनात् है ॥२२५॥ इसके बाद धनधर्मा और बीषा विशाच कहा गया है । इसके पश्चात् भूतिगन्ध कोकि बवेश में होगा ॥२२७॥ अग्रे के न इन के अन्त में मनुमति राजा होगा । उसका छोटा भाई मन्वियस नाम वाला है ॥२२८॥ उसके अन्त में (बक्ष में) तीन राजा होंगे । धिष्टुक नाम वाला दीहित्र तुरिका में राजा होगा ॥२२९॥ विध्य शक्ति का पुत्र बीर्व नामा प्रवीर नामधारी होमा और साठ वर्ष तक काश्चनका पुरी का भोग करेगा ॥२३॥ व अष्ट वसिष्ठा देकर समाप्त करने वाले पात्रपेयी के द्वारा बजन करे । उसके बाद पुत्र नयधिय होवे ॥२३१॥ विध्यको के कुल के व्यतीस होवाने पर तीन माहन्तीक राजा होंगे । सुप्रतीक नमीर तो तीस वर्ष तक पृथ्वी का भोग करेगा ॥२३२॥

शक्यमा नाम वै राजा माहिषीना महीपति ।

पुष्पमित्रा भविष्यन्ति पट्टमित्रास्त्रयोदश ॥२३३॥

मेकलाया नृपा सप्त भविष्यन्ति च सत्तमा ।

कोमलायन्तु राजानो भविष्यन्ति महाबला ॥२३४॥

मेधा इति समास्याता बुद्धिमन्तो नवव तु ।

नैपद्या पाणिवा सर्वे भविष्यन्त्यामनुक्षयात् ॥२३५॥

नलवशप्रसूतास्ते वीर्यवन्तो महाबला ।

मागधाना महावीर्यो विश्वस्फानिर्मविष्यति ॥२३६॥

उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान्सोऽन्यान् वशान् करिष्यति ।

कैवर्त्तान् पञ्चकाश्र्वं व पुलिन्दात् ब्राह्मणास्तथा ॥२३७॥

स्थापमिष्यन्ति राजासो नानादेशेषु तेजसा ।

विश्वस्फानिमहासत्त्वो युद्धे विष्णुसमो बली ॥२३८॥

विश्वस्फानिनेरपति म्लीवाकृतिरयोच्यते ।

उत्सादयित्वा क्षत्रन्तु क्षत्रमन्यत् करिष्यति ॥२३९॥

वैवान् पितृभ्य विप्राभ्या तर्पयित्वा सकृत्पुन ।

जाह्नवीतीरमासाद्य शरीर यस्यते बली ॥२४०॥

सन्धस्य स्वशरीरन्तु शक्रलोक गमिष्यति ।

मधनाकास्तु भोक्ष्यन्ति पुरी चम्पावती नृपाः ॥२४१॥

राजपदा नाम वाला राजा महिषियो का महीपति होगे । पुष्पमिष होगे और तेरह पट्टमिष होगे ॥२३३॥ मेकता मे सात श्रेष्ठतन राजा होये । कोमला मे तो महाद् बम वाले राजा होये ॥२३४॥ मेम इस नाम से समाख्यात होने वाले तो बुद्धिमान् राजा होये । मनुष्य पर्वन्त सब र्वपथ पारिष होये ॥२३५॥ मे सब नल के वश मे उत्पन्न वाले महाद् बलवान् और वीर्य वाले राजा होये । मागधों में विश्व स्फानि नाम वाला महाद् वीर्य वाला राजा होगा ॥२३६॥ वह सनस्त पार्थिवों को उत्साहित करके अन्य धर्मों को करेगा । कैवर्त्तों को-पञ्चको को-पुलिन्दको तथा ब्राह्मणों को धर्मके देखो मे तेज से राजाधों को स्थापित करेगे । विश्वस्फानि महान् सर्व वाला और बुद्ध मे विष्णु के समान बली था ॥२३७-२३८॥ विश्वम्फानि जो राजा होश वह म्लीव के ख्यान आकृति वाला फहा जाता है । क्षत्र को उत्साहित करके अन्य क्षत्र को करेगा ॥२३९॥ यह बली वैवों को-पितरों को और ब्राह्मणों फिर एक बार तृप्त करके भस्त मे गङ्गा के तट पर पहुँच कर शरीर को त्याग करेगा ॥२४०॥ अपने शरीर का त्याग करके फिर इन्द्र के लोक को चला जायगा । जब तक राजा चम्पावती पुरी पर भोग करेगे ॥२४१॥

मयुराञ्च पुरी रम्या नागा भोक्ष्यन्ति सप्त वै ।
 मनुगङ्गा प्रयागञ्च साकेत मगधास्तथा ।
 एताञ्जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवज्रा ॥२४२॥
 निधान् यदुकाञ्च व शशीतान् कालतोपकान् ।
 एताञ्जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ति मण्डिवायजा ॥२४३॥
 कोशलाञ्च ध्रुपीष्ठाञ्च ताम्रलिप्तान् ससागरान् ।
 चम्पा च व पुरी रम्या भोक्ष्यन्ति देवरक्षिताम् ॥२४४॥
 कलिङ्गा महिषाश्च व महेन्द्रनिसयाश्च ये ।
 एताञ्जनपदान् सर्वान् पालयिष्यन्ति व गुह ॥२४५॥
 क्षीराह्म भक्ष्यकाश्च न भोक्ष्यते कनकाक्षय ।
 तुल्यकाल भविष्यन्ति सर्वे ह्य ते महीक्षित ॥२४६॥
 अल्पप्रसादा ह्यमृता महाक्रोधा ह्यधार्मिका ।
 भविष्यन्तीह यवना धमत कामतोऽप्यत ॥२४७॥
 नव मूर्द्धाभिपिक्तास्त भविष्यन्ति नराधिपा ।
 भृगवोऽपदुराचारा भविष्यन्ति नृपास्तु ते ॥२४८॥
 स्त्रीणां बलवन्मनव हत्वा च व परस्परम् ।
 भोक्ष्यन्ति कलिकेये तु वसुधा पारिवीरास्तथा ॥२४९॥

परम रम्य मयुरा नगरी को सात नाग उपभोग करेंगे । गङ्गा के साथ
 साथ प्रयाग-साकेत तथा मगध देशों को—इन जनपदों को सबको गुप्त वज्र में
 उत्पन्न होने वाले नृप जीव करेंगे ॥२४२॥ मण्डिवायज लोग निपन्न देशों की—
 यदुको को—शशीको को—काल तोपको को—इन समस्त जनपदों को भोग करेंगे
 कलिङ्ग—महिष और जो महेन्द्र निसय हैं वे कोशल देशों को—धाम्प्री पीण्डों को—
 ताम्रलिप्ता को सगरों के सहित तथा मुरम्य चम्पा नगरी जोकि देवों के द्वारा
 सुरक्षित है भोग करने इन समस्त जनपदों को गुह पालन करेगा ॥२४४ २४५॥
 कनक नाम वाला क्षीराह्म और मक्ष्यको का जीव करेगा । वे समस्त राजा
 तुल्य काल में ही होंगे ॥२४६॥ यहाँ पर धर्म से और काम ॥ अल्प प्रसाद वाले—
 भूटे—महान् क्रोध करने वाले और अधार्मिक यवन होंगे ॥२४७॥ वे राजा मूर्द्धा

भिषिक्त नहीं होंगे । ये समस्त नृप युग के दोषों से दुर्गन्ध वाले होंगे ॥२४८॥
ये समस्त राजा स्त्रियों का वलपूर्वक बल के द्वारा आत्म में हनन करके कलियुग
के क्षेप में वसुधा का भोग करेंगे ॥२४९॥

उदितोदितवशास्ते उदितास्तमितास्तथा ।

भविष्यन्तीह पर्यायि कालेन पृथिवीक्षित ॥२५०॥

विहीनास्तु भविष्यन्ति घम्भंत कामतोऽर्जंत ।

तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाचाराश्च सर्वज ॥२५१॥

विपर्ययेन वर्तन्ते नागयिष्यन्ति वै प्रजा ।

सुवधानृतरताश्चैव भवितारस्तथा नृपा ॥२५२॥

तेषा व्यतीते पर्यायि बहुस्थीके युगे सदा ।

तथातिलव भ्रश्यमाना आयूरूपवसथुर्त ॥२५३॥

तथा गतास्तु वै काष्ठा प्रजासु जगतीश्वरा ।

राजान् सम्प्रणश्यन्ति कालेनोपहृतास्तथा ॥२५४॥

कल्किनोपहृता सर्वे म्लेच्छा मास्यन्ति सर्वज ।

अधार्मिकाश्च तेऽत्यर्थ पापण्डाश्चैव सर्वज ॥२५५॥

प्रनष्टे नृपक्षव्ये च सन्ध्यादिलप्ते कलौ युगे ।

किञ्चिच्छिष्टा प्रजास्ता वै घम्भे नष्टेऽपरिग्रहा ॥२५६॥

समय के प्रभाव से राजा लोग उदितोदित बल वाले तथा उदितास्त-
मित यहाँ पर्याय में होंगे ॥२५०॥ ये समस्त काम से धीर घर्ष से विहीन होंगे ।
उनके द्वारा विदोष रूप से मिश्रित म्लेच्छों के समान आचार करने वाले सभी
प्रकार से दूषित जनपद हो जायेंगे ॥२५१॥ ये सभी विपरीत व्यवहार करते हैं
तथा हर प्रकार से प्रजाओं का नाश करेंगे । उस समय में राजा लोग लोभी
और मिथ्या में रति करने वाले हो जायेंगे ॥२५२॥ उनके पर्याय के व्यतीत हो
जाने पर भी उम समय में बहुत स्त्रियों वाले युग में क्षण से क्षण में आयु-
रूप-बल और श्रुत सभी भ्रश्यमान हो जायेंगे ॥२५३॥ इस प्रकार से प्रजाओं
के विषय में परम शीघ्र को प्राप्त हुए राजा लोग उस समय फालवश सब उप-
हृत होते हुए नष्ट हो जायेंगे ॥२५४॥ मग्न्य म्लेच्छगण कल्कि के द्वारा सब

भीर से उपहत होते । वे सभी परम अधार्मिक और सब तरह से पापएड युक्त होते ॥२३५॥ कलियुग के सच्चा स्तिष्ठ होने पर नृप—यह शब्द प्रणष्ट हो जायगा जो कुछ खोजी सी प्रजा सेप रहेगी वह भी धर्म के नष्ट हो जाने पर बिना परिग्रह वाली ॥२३६॥

असाधना हताश्वासा व्याधिशोकेन पीडिता ।

अनावृष्टिहताश्च न परस्परवधेन च ॥२३७

अनाथा हि परिशस्ता वार्तामुत्सृज्य दुःखिताः ।

त्यक्त्वा पुराणि ग्रामाश्च भविष्यन्ति वनौकस ॥२३८

एव नृपेषु नष्टेषु प्रजास्त्यक्त्वा गुहाणि तु ।

नष्टे स्नेहे वुरापन्ना अहस्नेहा सुदृक्मना ॥२३९

वर्णाश्रमपरिभ्रष्टा सङ्कुर चोरमास्थिताः ।

सरित्पवतसेविन्यो भविष्यन्ति प्रजास्तदा ॥२४०

सरित् सागरानूपान् सेवन्ते पवसानि च ।

अङ्गान् कलिङ्गान् वङ्गान् वाङ्मौरान् वाणिकीशालान् ॥२४१

ऋषिकान्तगिरिद्रोणी सश्रयिष्यन्ति मानवाः ।

कृत्स्न हिमवत पृष्ठं कूटं हि तवणाभ्रस ॥२४२

अरण्याभ्यभिपत्यन्ति ह्याभ्यां श्लेष्मज्जन सह ।

मृगमीमांविहङ्गं च द्वापदस्तद्युमिस्तथा ।

अधुशाकफलमू सवर्तयिष्यन्ति मानवाः ॥२४३

समस्त प्रजा साधनों से खूब-हताशास और व्याधि तथा शोक से परम पीडित-बर्षों के बिस्तुन ही अभाव होने के कारण हत तथा आपस में ही एक-दूसरो के वध करने में अनाथ-वयनीत-रोगी का त्याग करके अत्यन्त ही दुःखित प्रजाजन नगरों या तथा ग्रामों का त्याग करके घन में निवास करने वाले जंगली जसे हो जायेंगे ॥२३७ २३८॥ इस प्रकार से समस्त नृपों के नष्ट हो जाने पर प्रजा अपने अपने बरो को त्याग करके स्नेह के नष्ट हो जाने पर वुरापन्न-भ्रष्ट स्नेह और सुदृक्मनो से रहित हो जायेंगी ॥२३९॥ वहाँ तथा आश्रमों से परिभ्रष्ट होते हुए चोर सङ्कट वनस्था में आस्थित नदी तथा पर्वतों

के सेवन करने वाली उम समय ममस्त प्रजा हो जायगी । २६०॥ मनुष्य नदियों को-माखरी को-अनूपो को और पवतो को सेवन करते हैं । यज्ञ-वज्ञ-कविज्ञ कादमीर-काशि कोशलो को सेवन करते हैं ॥२६१॥ तथा मानव श्रृष्टिकान्त गिरि द्रोणी का सश्रय ग्रहण करेंगे । पूरा हिमवान् पर्वत का पृष्ठ भाग तथा धार समुद्र का तट और घरण्यो को धार्य लोग स्नेच्छो के साथ चले जायेंगे । और मानव मृग-मीन-बिहङ्ग तथा आपद तथा तक्षुओ से एव भु-शारु-फल-मूली से अपना उदरपूर्ति का निर्वाह करेंगे ॥२६२ २६३॥

चौर पर्याञ्च विविध वल्कलान्यजिनानि च ।

स्वयं कृत्वा विवत्स्यन्ति यथा मुनिजना स्तथा ॥२६४

बीजाक्षानि तथा निम्नेष्वीहन्त काष्ठशङ्कुभि ।

अजैडक त्वरोष्ट्रश्च पालयिष्यन्ति यत्नत ॥२६५

नदीर्घत्स्यन्ति तोयार्थं कूलमाश्रित्य मानवा ।

पायिवान् व्यवहारेण विवाधन्त परस्परम् ॥२६६

बहुमन्या प्रजाहीना शीचाचारविवविता ।

एव भविष्यन्ति नरास्तदावर्म्म्यं व्यवस्थिता ॥२६७

हीनाद्धीनास्तथा धर्म्मान् प्रजा समनुवर्त्तन्ते ।

आगुस्तदा त्रयोविंश न कश्चिदतिवर्त्तन्ते ॥२६८

दुर्वला विपयत्नाना जरया सपरिप्लुता ।

पत्रमूलफलाहाराश्चीरकुब्जान्जिनाम्बरा ॥२६९

चौर-पर्या (पत्ते) विविध प्रकार की पेड़ों की छाल और चमड़ों को स्वयं काट कर मुनिजनों की भाँति धारण करेंगे ॥२६४॥ बीजाक्षों को निम्न भागों काष्ठ तथा शकुओं से इच्छा करते हुए शर्वात् निकाल कर प्राप्त करने की चेष्टा करते हुए बकरी-मेढ-गधा ऊँटों को बड़े यत्न से पालेंगे ॥२६५॥ मानव जल के प्राप्त करने के लिए नदियों के किनारों के निकट आश्रय ग्रहण कर वास किया करेंगे । व्यवहार ऐसा होगा कि उसके द्वारा परस्पर में राजाओं को प्रियेय वाधा पहुँचायेंगे ॥२६६॥ अपने आपको बहुत कुछ भानने वाले-सन्तति से हीन और शीच (खुद्दि) और आचार में रहित अधर्म में पूर्ण रूप से व्यव-

स्थित रहने वाले ऐसे ही उस समय में मनुष्य हो जायेंगे । ॥२६७॥ उस समय में प्रजा हीन से भी होन बर्णों का समनुवर्तन करेंगे । उस समय में तीर्त वष की आयु भी कोई भी धार नहीं करवे अर्थात् परमायु इतनी बढ जायगी ॥२६८॥ मनुष्य उस समय में अत्यन्त कमजोर हो जायेंगे और वह ऐसा भीषण समय आवेगा कि सभी विषयो में विष और जरा से (बाढ बढ से) उपरिष्कृत होयें । पथ-फल और मूलों के आहार वाले होंगे तथा बीर-कटीर और कृष्णाश्विन के वस्त्र पाने हो जायेंगे ॥२६९॥

वृक्षयमभिलिप्सस्तस्मिन्प्रारिध्यन्ति वसुधरायाम् ।
 एतत्कालमनुप्राप्ता प्रजा कलियुगान्तके ॥२७०॥
 क्षीरो कलिमुने तस्मिन् दि-ये वषमहस्रके ।
 नि क्षेपास्तु भविष्यन्ति साह कलिमुनेन तु ।
 सप्त-ध्याये तु नि क्षेपे कृतं च प्रतिपत्स्यते ॥२७१॥
 यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिथ्यमृहस्पती ।
 एकरात्रे मरिष्यन्ति तदा कृतयुग भवेत् ॥२७२॥
 एष वषक्रम कृत्स्न कीर्तितो यो यथाक्रमम् ।
 भतीता वर्तमानाश्च तथवानागतान्च ये ॥२७३॥
 महादेवाभिषेकात् जन्म यावत्परिहित ।
 एतद्वपसहस्रन्तु न च पञ्चादशदुत्तरम् ॥२७४॥
 प्रमाणं च तथा चोक्तं महापद्मान्तरं च यत् ।
 भन्तरं तच्छतान्यष्टौ षट्त्रिंशच्च समा स्मृता ॥२७५॥
 एतत्कालान्तरं भाव्या भङ्गान्ता ये प्रकीर्तिता ।
 भविष्यस्तत्र सङ्ख्याता पुराणज्ञ धृतपिभि ॥२७६॥
 सप्तपयस्तदा प्राहुः प्रतीपे राज्ञि च शतम् ।
 सप्तविंश शतर्षाभ्या अघ्राणा वै त्वया पुन ॥२७७॥
 सप्तविंशतिपर्यन्ते कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले ।
 सप्तपयस्तु तिष्ठन्ति पयसिण शतं शतम् ।
 सप्तर्षिणा युगं ह्येतद्विषया सङ्ख्यया स्मृतम् ॥२७८॥

धरणी वृत्ति (रोजी) के लिये अत्यन्त लात्तायित होते हुए पृथ्वी पर विचरण किया करेंगे । कलियुग के अन्त में समस्त प्रजा ऐसा ममय प्राप्त करने वाले होंगे ॥२७०॥ दिव्य एक सहस्र वर्ष वाले कलियुग के क्षीण होजाने पर कलियुग के साथ ही सब नि शेष हो जायेंगे । सन्ध्याय के सहित नि शेष होजाने पर फिर कृतयुग की प्राप्ति होगी ॥२७१॥ जिस समय में अन्द्र भीम सूर्य तथा तिष्य भीम बृहस्पति एक ही दिन में भर जायेंगे तब कृतयुग का प्रारम्भ होगा ॥२७२॥ मैंने यह वक्त्र का कथ धाप लोगों के सामने यथाक्रम घण्टित कर दिया है । जो ध्येय हो चुके हैं और वर्तमान है तथा जो अनागत अर्थात् भविष्य में होने वाले हैं सबका पूरा वर्णन कर दिया है ॥२७३॥ अग्न को पण्डित महादेव के अभिषेक से जितना भी समय है वह एक सहस्र पचास वर्ष जानना चाहिये ॥२७४॥ इसका प्रमाण महापरायान्तर में कहा गया है वह अन्तर आठसौ छत्तीस वर्ष कहा गया है ॥२७५॥ यह कालान्तर में जो अग्रधान्न कहे गये हैं वे होंगे । वहाँ पर होने वाले श्रुतिपि पुराणों के आतामो के द्वारा सत्यात हुए हैं ॥२७६॥ उस समय में सप्तर्षियों ने वे प्रतीप राखा सी बहे हैं और आपने अग्नियों के सप्ताईस सौ होने वाले बताये हैं ॥२७७॥ सप्तर्षिपति परमेश्वर पूरे नक्षत्र मण्डल में परमेश्वर से सौ-सौ सप्तर्षिगण रहा करते हैं । यह युग दिव्य सत्या के द्वारा सप्तर्षियों का कहा गया है ॥२७८॥

सा सा दिव्या स्मृता पट्टिर्दिव्याह्लाध्रैव सप्तभि ।
 तेभ्य प्रवर्तते कालो दिव्य सप्तर्षिभिस्तु ते ॥२७९॥
 सप्तर्षिगणान्तु ये पूर्वा दृश्यन्ते उत्तरादिभि ।
 ततो मध्येन च क्षेत्र दृश्यते यत्सम दिवि ॥२८०॥
 तेन सप्तर्षयो मुक्ता ज्ञेया व्योम्नि शत समा ।
 नक्षत्राणामृषीणाम् योगस्यैतन्निदर्शनम् ॥२८१॥
 सप्तर्षयो भवायुक्ताः काले पारिक्षिते शतम् ।
 अत्राक्षे स चतुर्विंशे भविष्यन्ति मते मम ॥२८२॥
 इमास्तदा तु प्रकृतिव्यपित्यन्ति प्रजा भृशम् ।
 शत्रुतोषहता सर्वा धर्मतः कामतोऽर्जुन ॥२८३॥

श्रोतस्मात्तं प्रसिधिते धर्मे बलान्धये तदा ।

सङ्कुर दुर्बलात्मान प्रविपत्स्यन्ति मोहिता ॥२८४॥

ससक्ताश्च भविष्यति शूद्रा साद्ध द्विजातिभिः ।

ब्राह्मणा शूद्रवष्टार शूद्रा व मन्त्रयोनयः ॥२८५॥

बहु-बहु दिव्य पट्टि नहीं गई है और सत्तो ॥ इत्यदि विष्वाह कहे गये हैं । उन सत्तपियों के द्वारा विष्वाह प्रवृत्त होता है ॥२८६॥ सत्तपियों के पहिले उत्तर दिशा में जो दिक्पार्श्व होते हैं और उनके मध्य से जो दिव म लेव दिक्पार्श्व होता है ॥२८७॥ उसके आकाश में भी वर्षे वस्तु सत्तपिगण जागने चाहिये । और श्रुतियों का तथा नक्षत्रों का जो योग है उसका यही निर्वर्ण होता है ॥२८८॥ पारित्तिक काल में मन्त्र से वस्तु ॥ सत्तपिगण हैं । वह मेरे मत में बीबीसवें आश्राय में होते ॥२८९॥ उस समय वे प्रकृति बहुत अधिक प्रकाश को प्राप्त करेगी । वम से और कान से तथा घब से सभी प्रकाश प्रवृत्त (निष्पन्न) से उपवृत्त होगी ॥२९०॥ उस समय में शीत (बहिक) तथा स्मार्त बर्णों और प्राश्नियों के धर्मों के विशेष रूप से निमित्त होवाने पर दृष्टत आगम। वाले एक मोहको प्राप्त होवाने वाले मनुष्य सङ्कुराव का को प्राप्त हो जायगे ॥२९१॥ शूद्र लोग द्विजातियों के साथ उत्तम हो जायगे । ब्राह्मण लोग तो शूद्रपक्षा ॥ जायगे और शूद्र लोग मन्त्रयोनि वाले हो जायगे ॥२९२॥

उपस्थास्यन्ति तान् विप्रास्तथा वै वृत्तिसिप्पव ।

नव नव अस्यमाणा प्रजा सर्वा क्रमेण तु ॥२९३॥

क्षममेव भविष्यन्ति लोणक्षेपा युगक्षये ।

यस्मिन् कृष्णो दिव वातस्तस्मिन्नेव तदा दिने ॥२९४॥

प्रतिपन्न कलिबुगस्तस्म तद्गुणा निबोधत ।

सहस्राणां शतानीह क्षीणि यानुपसङ्गधवा ।

पट्टि चव सहस्राणि वर्षाणामुच्यते कलि ॥२९५॥

दिव्ये वपसहस्र तु उत्सङ्गाय प्रकीर्तितम् ।

नि क्षेपे च तदा तस्मिन् वृत्त वै प्रतिपत्स्यते ॥२९६॥

ऐस इक्ष्वाकुवशश्च सह भेदे प्रकीर्तिता ।

इक्ष्वाकोस्तु स्मृत क्षत्र सुमिश्रान्त विवस्वत ॥२६०॥

ऐस क्षत्र क्षेमकान्त सोमवशविदो विदुः ।

एते विवस्वत पुत्राः कीर्तिता कीर्तिवर्द्धनाः ॥२६१॥

अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानामताश्च ये ।

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चैवान्वये स्मृता ॥२६२॥

युगे युगे महात्मान समतीता सहस्रशः ।

बह्वर्वाभ्यामभेयानां परिसंस्था कुले कुले ॥२६३॥

विप्राणां अपनी वृत्ति के सातव में रहने वाले होते हुए उस समय में उन शूद्रों के समीप में जाकर स्थित होंगे । क्षण-क्षण में अपने कर्तव्य से भ्रष्ट होते हुए समस्त प्रजा जन क्रम से क्षय को प्राप्त होंगे जो भी उस युग के क्षय में क्षीण होने से शेष रह जायेंगे । जिस दिन में श्रीकृष्ण अन्तर्हित होकर दिव-लोक को गये उसी दिन और उसी समय में वसिष्ठ प्रसिद्ध होगया और उसकी सत्या को आप लोग जान ली । मानुष सस्या से कश्चिद्युग तीन सौ हजार अर्थात् तीन लाख साठ हजार वर्ष की कही जाती है ॥२६६-२७७-२८८॥ विषय में एक सहस्र वर्ष उसका सम्भ्यास कहा गया है । फिर उस समय उसके नि शेष में फलयुग प्राप्त हो जायगा ॥२८६॥ ऐस वश और इक्ष्वाकु का वश भेदों के सहित प्रकीर्तित किये गये हैं । विवस्वान् इक्ष्वाकु का क्षत्र सुमिश्र के अन्त तक कहा गया है ॥२६०॥ ऐस क्षत्रिय वश को सोमवश के ज्ञाता लोग क्षेमक के अन्त तक जानते हैं । ये विवस्वान् के कीर्ति बढ़ाने वाले पुत्र बहे गये हैं ॥२६१॥ अतीत अर्थात् जो पहिले हो चुके हैं, वर्त्तमान जो इन समय में मौजूद हैं और अनागत जो आगे भविष्य में होने वाले हैं ऐसे ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र वश में बहे गये हैं ॥२६२॥ युग-युग में महान् आत्मा वाले सहस्रो ही हुए हैं । नामों के अधिक होने से कुल-कुल में परि संस्था है ॥२६३॥

पुनश्चैता बहुत्वाच्च न मया परिकीर्तिता ।

वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन् निमिवश समाप्यते ॥२६४॥

एवापान्तु युगाख्याया यत् क्षत्र प्रपत्स्यते ।
 तथा हि कथमिष्यामि गदतो मे निबोधत ॥२६५
 देवापि पीरवो राजा ह्वाकाश्च व यो मत ।
 महायोगबलोपेत कलापश्चात्तमास्थित ॥२६६
 सुवर्चा सोमपुत्रस्तु ह्वाकास्तु भविष्यति ।
 एतो क्षत्रप्रणेतारो चतुर्विधो चतुयुगे ॥२६७
 न च विदो वृद्धो सोमवत्सस्यादिभविष्यति ।
 देवापिरसपत्नस्तु ऐलादिभविता नृप ॥२६८
 क्षत्रप्रावत्तको ह्य तो भविष्येते चतुयुगे ।
 एव सवत्र विज्ञ य सन्तानार्थं तु वक्षसम् ॥२६९
 क्षीणो वलियुगे तस्मिन् भविष्ये तु कृते युगे ।
 सप्तर्षिभिस्तु तं साध माद्य त्रेतायुगे पुन ॥२७०
 गोत्राणां क्षत्रियाणाञ्च भविष्येत प्रवत्तको ।
 क्षापरक्ष न तिष्ठन्ति क्षत्रिया ऋषिभि सह ॥२७१

बहुत होने के कारण से पुनवत्तो को मने नहीं कहा है । इस वेवस्त
 मन्वन्तर मे निमि का वध समाप्त होजाता है ॥२६५॥ धाने वाली बगाव्या मे
 जहाँ से क्षत्र प्रपत्सित होगा उसी प्रकार से उसको भी कहूंगा । वतलाने वाले
 मुजसे उसका आपसीग ज्ञान प्राप्त करें ॥२६५॥ देवापि पीरव राजा या जो
 ह्वाका का माना गया है । महा बल से युक्त और कलाप नाम मे आस्थित
 था ॥२६६॥ सुन्दर वर्ण वाला सोमपुत्र ह्वाका ॥ होगा । ये दोनो चतुयुग
 मे जो कि बीबीसवाँ है क्षत्रियो के प्रणेतार होये ॥२६७॥ बीसवें धन मे सोमवत्स
 का धारि नहीं होता । देवापि असपत्न अर्थात् बन्ध रहित है ऐलादि नृप होगा
 ॥२६८॥ ये दोनो क्षत्र के प्रावत्त चारो युगो मे हयेंगे । इस प्रकार ॥ सर्वत्र
 सन्तान के अर्थ मे वक्षस जानना चाहिए ॥२६९॥ जब वलियुग के क्षीण होजाते
 पर और कृतयुग के होने वाले होने पर आद्य त्रेता वग मे पुन उन सप्तर्षियो
 के साथ गोत्रो के और क्षत्रियो के मे दानो प्रवत्तक होये । क्षापरक्ष मे ऋषियो
 के साथ क्षत्रिय नहीं रहते हैं ॥२७० ३ १॥

काले कृतयुगे चैव क्षीणे त्रेतायुगे पुन ।
 बीजाश्रन्ते भविष्यन्ति ब्रह्मक्षत्रस्य वै पुन ॥३०२॥
 एवमेव तु सर्वेषु तिष्ठन्तीहान्तरेषु वै ।
 सप्तर्षयो नृपे साद्व सन्तानार्थ युगे युगे ॥३०३॥
 क्षत्रस्यैव समुच्छेद सम्बन्धो वै द्विजं स्मृतः ।
 मन्वन्तराणां सप्तानां सन्तानाश्च श्रुताश्च ते ३०४
 परम्परा युगानाञ्च ब्रह्मक्षत्रस्य चोद्भव ।
 यथा प्रवृत्तिस्तेषां वै प्रवृत्तानां तथा क्षय ॥३०५॥
 सप्तर्षयो विदुस्तेषां दोषायुष्माक्षयन्तु ते ।
 एतेन क्रमयोगेन ऐलवदावबन्धया द्विजा ॥३०६॥
 उत्पद्यमानास्तथा क्षीयमाणे कसी पुनः ।
 अनुयान्ति युगाख्या तु यावन्मन्वन्तरक्षय ॥३०७॥
 जामदग्न्येन रामेण सने निरवशेपिते ।
 कृते वयाकुला सर्वा क्षत्रियेवंसुधाधिपे ।
 द्विजक्षरणार्थं व कीर्तयिष्ये निबोधत ॥३०८॥
 ऐलस्येदवाकुनन्दस्य प्रकृति परिवर्तते ।
 राजान श्रेणिवद्धास्तु तथान्ये क्षत्रिया नृपा ॥३०९॥
 ऐलवशस्य ये ख्यातास्तथैवैश्याकवा नृपा ।
 तेषामेकशत पूर्णं कुसानामाभषेकिनाम् ॥३१०॥

कृतयुग का समय क्षीण होजाने पर फिर त्रेतायुग मे ब्रह्म क्षीर क्षत्र के बीज के लिये वे पुन होये ॥३०२॥ इस प्रकार से यहाँ पर सभी अन्तरो मे युग-युग मे सप्तर्षिगण नृपों के साथ रहते है ॥३०३॥ द्विजों के साथ क्षत्र का ही समुच्छेद सम्बन्ध कहा गया है । सात सात मन्वन्तरों के ये सन्तान घृत है ॥३०४॥ युगों की परम्परा और ब्राह्मण क्षत्रियों का उद्भव उनकी जिस प्रकार से प्रवृत्ति होती है उसी प्रकार से उनका क्षय होता है ॥३०५॥ वे सप्तर्षिगण उनके बीच भाग देने वाले थे । इस क्रम के योग से ऐल और ददवाकु के अन्धय द्विज है ॥३०६॥ त्रेता में उत्पद्यमान पुन कलियुग के क्षीय माण होने पर जब

तत्र मन्थनार का क्षय होता है अगारया का अमृगमन करत है ॥३७॥ जमदग्नि
के पुत्र परशुराम के द्वारा क्षत्रियो को निरवशेषित करने पर सभी वसुधा के
स्वामी क्षत्रियो के द्वारा बलकुल और दो बलवरण के उनको में सब बललाक ग
उत्तका प्राप्त करतो ॥३८॥ इक्ष्वाकु के पुत्र ऐस की प्रकृति परिवर्तित
होती है । येष्टिनः तथा भोग तथा धन्य क्षत्रिय नृप ॥३९॥ जो कि ऐस
वश के रवात के उसी प्रकार से इक्ष्वाकु के वश के मृप के । अभिवैक प्राप्त करे
वाले कुलो ॥ पूर्ण सत्या एकघत थी ॥३९॥

तावदेव तु भोजाना विस्तारो द्विगुण स्मृतः ।

अजते शिवाक क्षत्र चतुर्धा तद्यथादिशम् ॥३११॥

तेष्वतीता समाना ये भुवतस्ताभिबोधतः ।

घत न प्रतिविध्याना घत नागा घत हमा ॥३१२॥

धृतराष्ट्राश्च कषातमशीतिजनमेजया ।

गतश्च ब्रह्मदत्ताना शीरिष्ठा वोरिष्ठा घतम् ॥३१३॥

तत घत पुलोमाना इवेतकासकुशादयः ।

ततोऽपरे सहस्र न येष्टीता घतविन्ध्य ॥३१४॥

ईषिरे भारवमेभस्ते सर्वे नियुतवक्षिणः ।

एव राजपयोऽशीता घतसोऽथ सहस्रस्य ॥३१५॥

मनर्भवस्वतस्यास्मिन् वत्तमानेऽन्तरे तु ये ।

तेषा भिबोधतोऽपन्ना लोके सत्ततय स्मृता ॥३१६॥

न शक्य विस्तर तेषा सन्तानाना परम्परा ।

तत्पूर्वापरयोगेन वक्तुं शक्यतर्हि ॥३१७॥

अष्टाविंशत्युपलब्धास्तु गता वयस्वतेऽन्तरे ।

एता राजपिभि साद्य विष्टा यास्ता निबोधतः ॥३१८॥

उतना ॥ भोजो का विस्तार दुगुना कहा गया है । यह सब हीस के
जो यथा दिशा में चारों ओर के ॥३११॥ उनमें जो अतीत होयके और जो
ममान है उन्हें बतलाने वाले मुझ से बनी मति जान को । ही तो प्रतिविन्ध्यो
का था और एक ही नागा के तथा ही ह्य के ॥३१२॥ भुवगाह के एक ही ॥

तथा जनमेजय के अस्सी थे । ब्रह्मदत्तो के एक सौ थे तथा क्षीर और वीरियो के एक सप्त थे ॥३१३॥ इसके अनन्तर पुत्राग्रो के सौ श्वेत वास कुशादि थे । इसके पश्चात् दूसरे एक सहस्र थे जो अतविन्द व असीत हो चुके हैं ॥३१४॥ उन सब ने नियुक्त दक्षिणा वाले अश्वमेधो के द्वारा यजन किया था । इस प्रकार से सैकड़ों तथा सहस्रो ही राजपि गण अनीत हो चुके हैं ॥३१५॥ वैदव्यस मन्वन्तर में तो जो उत्पन्न हुए उनकी सन्तति शोक में कही गई है, उसका ज्ञान प्राप्त करलो ॥३१६॥ विस्तार से यह नहीं कहा जा सकता है । उनके सन्तानों की परम्परा तथा उसका पूर्वा पर योग यह सब सैकड़ों वर्षों में भी नहीं बतलाया जा सकता है ॥३१७॥ नैवस्यत अन्तर से अद्वाहस युगाख्या गत होगई । यह राजपियों के साथ जो सिद्ध है उसे जानलो ॥३१८॥

चत्वारिंशच्च ये चैव भविष्या सह राजभि ।

युगाख्याना विशिष्टास्तु ततो वैवस्वतक्षये ॥३१९

एतद् कथित सर्व समासव्यासयोगत ।

पुनश्च बहुत्वाच्च न क्षम्यन्तु युगै सह ॥३२०

एते ययातिपुत्राणा पञ्चविंशा विंशा हिता ।

कीर्तिताश्चामिता ये मे लोकान् न धारयन्त्युत ॥३२१

लभते च धरेष्यच्च दुर्लभानिह लौकिकान् ।

प्राप्नु कीर्ति धन पुत्रान् स्वर्गं चानन्त्यमश्नुते ॥३२२

धारणाप्नुष्वणाञ्च ते लोकान् धारयन्त्युत ।

इत्येष वो मया पादस्तृतीय कथितो द्विजा ।

विस्तरेणानुपूर्वी च किम्भूयो वर्त्तयाम्यहम् ॥३२३

जो चालीस राजाग्रो के साथ आने होंगे इसके पश्चात् वैवस्वत के क्षय में युगाख्याग्रो के वे विशिष्ट हैं ॥३१९॥ यह सब कुछ लक्षेप और विस्तार से मैंने कह दिया है । बहुत होने के कारण से पुन कहना युगों के साथ नहीं हो सकता है ॥३२०॥ ये विंशो के हित करने वाले ययाति के पुत्रों के पक्षीय हुए थे उन्हें मेरे द्वारा बतला दिया गया है और जो लोकों को धारण किया करते हैं ॥३२१॥ वे धरेण्यता को प्राप्त किया करते हैं और यहाँ पर लौकिक दुर्लभ

प्राप्तों को प्राप्त करते हैं । आयु—कीर्ति—धन—पुत्र—स्वर्ग और अनन्तता को भी प्राप्त किया करते हैं ॥३२२॥ बारण करने से तथा श्रवण करने से वे लोगों को बारण किया करते हैं । हे द्विजवृन्द ! यह मैंने तृतीय याद ॥३॥ दिया है जोकि विस्तार एवम् तथा आनुपूर्वी के सहित ही कह दिया है । अब पुन कथा मैं कहूँ ॥ ३२३ ॥

प्रकरण ६२—मन्वन्तर कथन

नि शेषेषु च सर्वेषु तदा मन्वन्तरेष्विह ।
अतोऽनेकयुगे तस्मिन् क्षीणे सहार उच्यते ॥१॥
सप्तैते भगवा देवा अन्ते मन्वन्तरे तदा ।
भुक्त्वा त्रैलोक्यमध्यस्था युगाख्या ह्य कसप्ततिम् ॥२॥
पितृभिर्मनुभिश्च व सा ॥६॥ सप्तर्षिभिस्तु वे ।
यजमानश्च व तेष्वन्ये तद्भ्रातृकाश्च व त सह ॥३॥
महर्लोक गमिष्यन्ति त्यक्त्वा त्रैलोक्यभीश्वरा ।
ततस्तेषु गतेषूढ क्षीणे मन्वन्तर तदा ।
अनाधारमिव सर्वं त्रैलोक्यं च भविष्यति ॥४॥
तत स्थानानि शून्यानि स्थानिमा सानि ते द्विजा ।
प्रभ्रव्यन्ति विमुक्तानि ताराश्चक्षुःप्रहैस्तथा ॥५॥
ततस्तेषु व्यतीतश्च त्रैलोक्यस्येश्वरेष्विह ।
सेन्द्राष्टयु महर्लोक यस्मिंस्ते कल्पवासिनः ॥६॥
जिताद्याश्च गणा ह्यत्र चाक्षुषान्ताश्चतुर्दश ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवास्तु च महौजसः ॥७॥
ततस्तेषु गतेषूढ साधोश्च नल्पवासिनाम् ।
समेत्य देवास्ते सर्वे प्राप्ते सञ्जने तदा ॥८॥

श्री सूतजी ने कहा—यहाँ उस समय सब मन्वन्तरो के नि शेष होजाने पर अनेक युग ॥ अतः म उक्त क्षीण होजाने पर सन्तर कहा जाता है ॥१॥

उस समय मन्वन्तर के अन्त में वे मात भार्गव देव हुए जो त्रैलोक्य के मध्य में स्थित होते हुए एक सप्तति अर्थात् इकहत्तर युगास्था का मात करने वाले थे ॥२॥ पितरगण—मनुवृन्द और मनुषियों के मात जो यज्ञा थे और जो अन्य उनके भक्त थे उनके मात इस त्रैलोक्य का त्याग करके महर्लोक में वे ईश्वर बने जायगे । इसके पश्चात् उनके ऊर्द्ध को बने जाने पर उस समय मन्वन्तर के अन्त होने पर यह समस्त त्रैलोक्य अनाचार हो जायगा ॥३-४॥ हे विज-गण ! तत्र स्थानियों के वे देव समस्त स्थान गून्ध होते हुए तारा पृथ्वी और ग्रहों के द्वारा विमुक्त होकर प्रकट हो जायगे ॥५॥ इनके अन्तर त्रैलोक्य के अन्त हो जाने पर जोकि इन्द्र के महिष ब्रह्म थे, वे सभी कल्प तक महर्लोक में बान करने वाले हैं ॥यहाँ पर जिताद्य और चातुपात्य जीवहगण हैं समस्त मन्वन्तरों में वे महान् जीव वाले देव थे ॥७॥ इसके पश्चात् उनके ऊपर बने जाने पर कल्प कामियों के सायोज्य को प्राप्त कर उस समय सकलम प्राप्त होने पर वे सब देव जो थे ॥८॥

महर्लोक परित्यज्य गणास्ते वी चतुर्दश ।

सशरीराश्च श्रूयन्ते जनलोक सप्तानुगा ॥९॥

एव देवेष्वतीतेषु महर्लोकाज्जन प्रति ।

भूताविष्ण्वग्निष्टेपु स्यावरान्तेषु चाप्युत ॥१०॥

शून्येषु लोकस्थानेषु महान्तेषु भूरादिषु ।

देवेषु च गतेषुर्द्ध सायोज्य कल्पवासिनाम् ॥११॥

सहस्रं तान्तानो ब्रह्मा देवर्षिपितृदानवान् ।

मस्यापयति वी नर्ग महद्दृष्ट्या युगक्षये ॥१२॥

तत्र युगमहन्तमहर्द्वन्त्राणो विदुः ।

नात्र युगमहन्तमहोरात्रविदो जनाः ॥१३॥

नैमित्तिक प्राकृतिको यच्चैवात्यन्तिकोऽर्ज्यत ।

त्रिविध मर्च्चभूतानामित्येव प्रतिसञ्चर ॥१४॥

ब्राह्मो नैमित्तिकन्तस्य कल्पदाह प्रलयम् ।

प्रविशेत्तु भूताना प्राकृतं करणञ्चय ॥१५॥

ज्ञानाच्चात्यन्तिक प्रोक्त कारणानामसम्भव ।

ततः सत्त्वस्य तान् ब्रह्मा देवास्त्रीसाक्ष्यवाप्तिन ॥१६॥

ग्रहरन्ते प्रकुश्ले सगस्य प्रलय पुन ।

सुपप्सुभगवान् ब्रह्मा प्रजा सहस्ते तदा ॥१७॥

वे सब देव महर्षियों का परित्याग करके सखरीर जी-ह्वण भगुनी के साथ जनलोक में गये ऐसा सुना जाना है ॥१६॥ इस प्रकार से महर्षियों से उन देवों के जनलोक के प्रति चले जाने पर सबसिद्ध भूतादि भीर स्थान रामों के साथ लोक स्वामी के एवं महान् भू प्रादि के भूय होजाने पर फिर उन देवों के ऊपर जाने पर कल्प पयस्त वास हुआ और उनको सामोख्य प्राप्त हुआ था ॥११॥ इसके उपरान्त उनको वही से सहृत करके ब्रह्माजी देवर्षि-पितृ तथा मानवी को युवलय में महर्षादि स सब को सत्वापित्त करते हैं ॥१२॥ वही एक सहस्र युग तक जो ब्रह्माजी का दिन कहा जाता है और रात्रि का युग सहस्र पयस्त होता है । इस प्रकार से ब्रह्मा के अहोरात्र को मनुष्य जानते हैं ॥१३॥ नमितिक-प्राकृतिक भीर जो अर्थ से आत्यन्तिक यह तीन प्रकार का समस्त प्राणियों का सम्भार होता है ॥१४॥ ब्रह्मा नमितिक होता है उसका नल्पहार प्रसवम होता है । प्राणियों के प्रत्येक सब में करण क्षय प्राकृतिक होता है ॥१५॥ भीर भाग आत्यन्तिक कहा गया है जो कारणों का प्रसम्भन होता है । इनके पश्चात् ब्रह्माजी त्रलोक्य वाली उन देवों को सहृत करके दिन के अन्त में सब का प्रलय किया करते हैं । सोने की इच्छा वाले ब्रह्मा उस समय में प्रजापति का सहार किया करते हैं ॥१६॥ १७॥

ततो युगसहस्रान्तो संप्राप्ते च युगस्यये ।

तत्रात्मस्था प्रजा वत्त प्रपेदे स प्रजापति ॥१८॥

तदा भवत्यनावृष्टिस्तदा सा शतवापिकी ।

तथा यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीतले ॥१९॥

तामेवात्र प्रसीदते भूमित्वमुपयान्ति च

सप्तऋग्मरयो भूत्वा ह्य दत्तिः द्विमावसु ॥२०॥

यसह्यरश्मिर्भगवान् पिवन्नम्भो यमस्तिभि ।
हरिता रश्मयस्तस्य दीप्यमानास्तु सप्तभि ॥२१॥
भूय एव विवर्तन्ते व्याप्नुवन्तो वन क्षणे ।
भोम काष्ठ घन तेजो भृशमद्भिस्तु दीप्यते ॥२२॥
तस्मादुदक सूर्यस्य तपतोऽति हि कथ्यते ।
नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या परिविध्यते ॥२३॥

इसके पश्चात् सहस्र युग के अन्त में युग क्षय के सम्प्राप्त होने पर वह प्रजापति वहाँ पर अपनी आत्मा में स्थित प्रजा के करने के लिये प्रस्तुत होते हैं ॥१८॥ उन समय में सौ वर्ष पर्वन्त घनावृष्टि हुआ करती है । इस प्रकार से अस्पृश्यार वाले जो जीव इस पृथ्वी तल में होते हैं वे यहाँ पर ही प्रलीन हो जाया करते हैं और भूमि में मिल जाया करते हैं । इसके उपरान्त विमानसु (सूर्य) सप्तरश्मि होकर उदित होता है ॥१९-२०॥ भगवान् सूर्य बहुत ही तीक्ष्ण किरणों वाले होते हैं । जिनको कोई सहन नहीं कर सकता है । वे अपनी किरणों के द्वारा जल का पान किया करते हैं । उमकी हरित रश्मियाँ प्रत्यन्त ही सप्तों के द्वारा ही दीप्यमान होती हैं ॥२१॥ क्षर्ष शर्ष वन में व्याप्त होते हुए फिर विवर्तित होती हैं । भूमि के काष्ठ, घन, तेज को बहुत ही भक्षण करते हुए दीप्त होते हैं ॥२२॥ इसमें तपते हुए सूर्य का उबक कहा जाता है । अनावृष्टि से सूर्य तपता है और नावृष्टि से परिविष्ट होता है ॥२३॥

नावृष्ट्या परिविन्वन्ति वारिणा दीप्यन्ते रवि ।
तस्मादपि पिबन् या वै दीप्यन्ते रविरम्बरे ॥२४॥
तस्य ते रश्मयः समं पिवन्त्यम्भो महाकुंवात् ।
तेनाहारेण सन्दीप्त सूर्यः सप्त भवत्युत ॥२५॥
ततस्ते रश्मयः सप्त सूर्यभूताश्चतुर्दिशम् ।
चतुर्लोकमिमं सर्वं दहन्ति शिखिनस्तदा ॥२६॥
प्राप्नुवन्ति च भाभिस्तु ह्यूर्ध्वं चाधश्च रश्मिभि ।
दीप्यन्ते आस्करा सप्त युगान्ताग्नि प्रतापिनः ॥२७॥

ते वारिणा च सदीप्ता बहुसाहस्ररश्मयः ।

क्ष समावृत्य तिष्ठन्ति निदहन्तो वसुधराम् ॥२८॥

ततस्तेषां प्रतापेन दह्यमाना वसुधरा ।

साद्वि नक्षर्त्वा पृथ्वीं बिस्नेहा समपद्यत ॥२९॥

दीप्ताग्निं सन्ततामिह चित्रामिह समन्ततः ।

अधश्चोर्ध्वञ्च त्रियकं च सख्यं सूर्यरश्मिभिः ॥३०॥

मावृद्धि से रश्मि परिबिम्बित होता है और बारि (जल) से दीप्त हुआ करता है । इससे जो जल का पान करती है उससे सूर्य अम्बर में दीप्त हुआ करता है ॥२४॥ उसी सात रश्मियों महाभन से जल का पान किया करती हैं । उस आहार से सदीप्त होने वाला सूर्य सप्त होता है ॥२५॥ इसके अनन्तर सात रश्मियाँ चारों दिशाओं में सूर्य भत होती हुई एक समय धिक्की (अग्नि रूप) के इस चतुर्लोक को सर्व को दग्ध किया करती है ॥२६॥ ऊपर और नीचे अपनी दीप्तिवश से रश्मियाँ समस्त प्राप्ति हो जाती है । प्रताप वाले सूर्य की मुगल्लि सप्त भास्कर दीप्यमान होते हैं ॥२७॥ ये बहु सङ्ख्य रश्मियाँ जल के द्वारा सन्निप्त हो जाया करती हैं । इस वसुधरा को जलाती हुई आकाश को आवृत करके रहा करती हैं ॥२८॥ इसके अनन्तर उनके प्रकट ताप से यह समस्त वसुधरा दह्यमान हो जाया करती है । परती के सहित नदी और समुद्र से युक्त तत् समस्त पृथ्वी बिना स्नेह वाली अर्थात् एकदम शुष्क हो जाती ॥२९॥ दीप्त-समस्त पती हुई — विभिन्न तेष से युक्त सूर्य की किरणों से तीक्ष्ण के भाग और ऊपर का भाग और तिरछे भाग सभी सङ्घट्ट होते हैं ॥३०॥

सूर्याग्निनां प्रवृद्धानां समृष्टानां परस्परम् ।

एकदममुपपातानामेकज्वालं भवत्युत ॥३१॥

सबलोकप्रणाशश्च सोऽग्निभूत्वा ह प्रण्वली ।

चतुर्लोकमिदं सर्वं निदहत्याहुतेजसा ॥३२॥

ततः प्रतीयते सख्यं जङ्गमं स्थावरं तथा ।

निवृत्ता निस्पृणा भूमिः क्लमपृष्ठसमा भवेत् ॥३३॥

अम्बगीपमिवाभाति सर्वं मारिपित जगत् ।

सर्वमेव तदाचिभि पूर्णं जज्वात्यने नभ ॥३४

पाताले यानि भूतानि महोदधिगतानि च ।

ततस्तानि प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ॥३५

इस प्रकार मे उठी हुई और तबपर मे मगृष्ट अर्थात् मिनी हुई धूम की अग्निओ का जोकि सभी मिलकर एक स्वरूप का प्राप्त हो गई है फिर गयी एक ही महान् ज्वाला का रूप हो जाता करता है ॥३१॥ यह मस्टनी इस प्रकार मे भीषण अग्नि का स्वरूप धारण करके पत्र मे ममस्त सीरी का प्रकृष्ट नाक किया करता है और इस क्षणोंको ममस्त को वीर्य ही तेज से निर्दग्ध कर देता है ॥३२॥ इसके पदनाम् यह ममस्त रवावर और जलम उग ममय प्रलीन हो जाता है । यह भूमि ऐसी हो जाती है कि इस पर एक भी वृक्ष नहीं रहता है तथा सुणो मे हीन धूम के पृष्ठ के समान गरुडम पट्ट सी होजाती है ॥३३॥ यह समस्त मारिपित जगत् अम्बगीप की भाति प्रलीन होता है । उस समय मे अग्निओ के द्वारा यह समस्त आकाश मस्टन परिपूर्ण रूप से जाज्वल्यमान हो जाता है ॥३४॥ पाताल मे जो प्राणी है और सहा समुद्र मे हैं वे भी उस समय प्रलीन हो जाते हैं और भूमिस्वर को प्राप्त हो जाया करते हैं अर्थात् भूमि मे मिलकर अपना अस्तित्व का देते हैं ॥३५॥

द्वीपाश्च पर्यतार्धं न वर्षाण्यथ महोदधि ।

सर्वं तद्भस्मसाञ्चक्रे सर्व्वार्त्मा पावकस्तु स ॥३६

समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च पातालेऽप्यथ सर्व्वे त ।

पिवन्नप समिद्धोऽग्नि पृथिवीमाश्रितो ज्वलन् ॥३७

तत सवत्तंक शैलानतिक्रम्य महास्तथा ।

लोकान् सहरते दीप्तो घोर सवत्तंकोऽनल ॥३८

तत स पृथिवी भित्त्वा रसातलमशोशयत् ।

निर्व्वह्य तास्तु पातालाग्न्यलोकमथादहत् ॥३९

अघस्तात्पृथिवी दग्धा ह्यूर्ध्वं स दहते दिवम् ।

योजनाना सहस्राणि ह्यमुताम्वर्तुवानि च ॥४०

उदतिष्ठच्छिन्वास्तरय बद्ध्वा सवत्कस्य तु ।
 गन्धर्वाश्च पिशाचाश्च समहोरगराक्षसान् ।
 तदा दहति सन्दीप्तो गोलक च व स्रव्यश ॥४१॥
 भूर्लोकन्तु भुवर्लोक स्वर्लोकश्च महस्तथा ।
 धीर दहति कासाग्निरेव लोकचतुष्टयम् ॥४२॥
 व्याप्तपु तेषु लोकेषु त्रियगूढध्वमथाग्निना ।
 तत्तज्ज समनुप्राप्त कृत्स्न जगदि शनैः ।
 अयोगुडनिभं स्रव्यं तदा ह्य व प्रकाशते ॥४३॥
 ततो गजकुलाकारास्तडिद्भिः समलकृता ।
 चस्तिष्ठन्ति तदा धीरा व्योम्नि सवत् का घना ॥४४॥

सर्वांगे उक्त पावक में द्वीप-पर्वत-वर्ष धीर महा समुद्र इन सबको भस्म सान् कर लिया था ॥४१॥ समुने से-नक्षियो से धीर पाताली से सब धीर से जल का पाग करते हुए समिद्ध हुआ वह अग्नि जलता हुआ पृथिवी में प्राप्ति होगया था । इसके अनन्तर वह महान् सवत्क अग्नि धनो का प्रति क्रमण करके प्रत्यक्ष धीर तथा दीप्त होता हुआ लोकों का सहार करता है ॥४२-४३॥ इसके पश्चात् वह इस पृथ्वी का भस्म करके रसावन में पतुचता है धीर उसने उसका सोपण कर दिया था । उन पाताल लोकों को निर्वाण करके उसके पश्चात् उसने नागलोक को भी जला दिया था ॥४३॥ नीचे के समस्त भाग में पृथ्वी को दह करके वह फिर ऊँच भाग में दिवलोक जला देता है । सत्रस अयुत धीर अनु व योजनो तक उस सवत्क अग्नि की बहुत सी धावारे उठ गई थीं । फिर वह गन्धर्वों को-पिशाचों को-महोरवों को धीर राजसों को उन समय मदीत होता हुआ जलाना है ॥४४॥ भूर्लोक-भुवर्लोक-स्वर्लोक धीर महर्लोक इन चारों लोकों को इन प्रकार से वह धीर कासाग्नि दग्ध कर दिया करता है ॥४२॥ त्रियं धीर ऊर्ध्व भाग में उन अग्नि के द्वारा उन लोकों में व्याप्त हो जाने पर वह तेज धीरे धीरे सम्पूर्ण इन अक्षु में प्राप्त हो जाना है । उन समय वह सब अयोगुड के समान प्रकाशित होने लगता है ॥४३॥

इसके पश्चात् हाथियों के समान आकार वाले विसृज्य में अङ्गुल उग समय
आकाश में परम घोर स्वरूप वाले मवत्तक मेघ उठ जाते हैं ॥८८॥

केचिन्नीलोत्पलप्यामा केचित्कुमुदमन्निभा ।

केचिद्द्रुपमकाशा इन्द्रनीलनिभा परे ॥८९॥

गङ्गबुन्दनिभाश्चान्ये जात्यञ्जननिभास्तथा ।

धूम्रवर्णा घना केचित्केचित्पीता पयोधरा ॥९०॥

केचिद्रामभवर्णाभा लाक्षारक्तनिभास्तथा ।

मन शिलाभास्त्वपरे कपोताभास्तथाम्बुदा ॥९१॥

इन्द्रगोपनिभा केचिदुत्तिष्ठन्ति घना दिवि ।

केचित्पुरवराकाशा केचिद्गजकुलोपमा ॥९२॥

केचित्पद्ममकाशा केचित्स्वल्पनिभा घना ।

कुण्डागारनिभा केचित्केचिन्नीलकुलोपमा ॥९३॥

उन मेघों में कुछ तो नील रंग के सहज प्याम होते हैं और कुछ कुमुद
के समान हुमा करते हैं । कुछ द्रुप के तुल्य हैं तो दूसरे इन्द्र नील के सहज
होते हैं ॥८९॥ अन्य कुछ और बुन्द के तुल्य हैं तो कुछ अञ्जन के समान होते
हैं । कुछ मेघ धूम्र वर्ण वाले होने हैं तो कुछ मेघ पीले हैं ॥९०॥ कुछ गम्भ
(गंभीर) के वर्ण जैसे वज्र वाले हैं तो कुछ नारंग के जैसे रक्त वर्ण वाले हैं ।
कुछ मैनविल के समान आभा से युक्त हैं तथा कुछ मेघ कपोल (चूल्हा) की सी
आभा वाले होते हैं ॥९१॥ कुछ बौदय इन्द्र गोप के तुल्य इन आकाश में उठते
हैं । कुछ पुरवरा के आकार वाले हैं तो कुछ गजों के समूह के समान होते हैं
॥९२॥ कुछ पर्वतों के समान हैं तो कुछ स्वल्प के सहज मेघ होते हैं । कुण्डा-
गार के तुल्य कुछ हैं तो कुछ मीन कुन के तुल्य होने हैं ॥९३॥

बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरतिनादिन ।

तदा जनधरा सर्वे पूज्यन्ति नभ स्थलम् ॥९४॥

ततस्ते जलदा घोरा नवीना भास्करात्मिका ।

सप्तधा सवृतात्मानस्तर्मणि समयन्त्युत ॥९५॥

ततस्ते जलदा धप मुञ्चन्ति च महोद्यमम् ।
 सुधोरमशिव नाशयन्ति च त पावकम् ॥५२॥
 प्रवृष्टम् तथात्यथ वारिभि पूज्यते जगत् ।
 अद्भिस्तेजोऽभिभूतश्च तदग्नि प्राविशत्यप ॥५३॥
 नष्टे चाग्नी वपश्चते पयोदा पाकसम्भवा ।
 प्लावयन्ति जगत्सुध बृहज्जलपरिस्रव ॥५४॥

बहुत से जलो वाले तथा धोर स्वरूप वाली और अति धोर निभाव करने वाले जलधर उस समय में जल के रत्न नर दिया करते हैं ॥५॥ इसके अनन्तर आत्यारामिक के नये मेक जिनका कि परम धोर स्वरूप है सात प्रकार से सवृत नामा वाले उस अग्नि को समन कर देते हैं ॥५॥ इसके उपरान्त वे जलधर महान् उद्यम वाली वर्षा का त्याग किया करते हैं अर्थात् अत्यन्त धोर से बरसते हैं और उस परम धोर सबज्जल उस पावक का नाश कर देते हैं ॥५॥ प्रकृष्ट रूप से वर्षा करने वाले अग्नि जलो के द्वारा यह वषट् पूरित हो जाता है । फिर वह तेजोऽभिभूत अग्नि जलो के द्वारा जल ही में प्रवेश कर जाता था ॥५॥ पाक से समुपन्न वे जलब दूध सौ बच तक बरसते हुए अग्नि को शान्त कर देने पर बृहत् जल के समूह के परिस्रवों के द्वारा इस समस्त वषट् को प्लावित कर देते हैं ॥५॥

धाराभि पूरयन्तीम शोचमाना स्वयम्भुवा ।
 धये तु सलिलौषस्तु वेलाप्रभिभवन्त्यपि ।
 साद्रिद्रीपान्तर पृथ्वी ह्यद्भि सखाचते तदा ॥५५॥
 तस्य वृष्ट्या च तोय तत्सम्ब हि परिमण्डितम् ।
 प्रविशत्युदघौ निप्रा प्रीत सूर्यस्य रश्मिभि ॥५६॥
 आदित्यरश्मिभि पीत जलमग्न पु तिष्ठति ।
 पुन पतति तद्भूमौ तेन पूर्यन्ति चाणवा ॥५७॥
 तत समुद्रा स्वा वेला परिप्रामन्ति सव्वक्ष ।
 पम्बताश्च विशीम्यन्त मही वाप्सु निमज्जति ॥५८॥

ततस्तु सहस्रोद्भ्रान्त पयोदास्तान्नभस्तले ।

सवेष्टयति घोरात्मा दिवि वायुः समन्ततः ॥५६॥

तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।

पूर्णं युगसहस्रे वै निक्षेप कल्प उच्यते ॥५७॥

अयाम्भसा वृत्ते लोके प्राहुरेकार्णव युधा ।

अथ भूमितल स्रज्वायुर्ध्वं कार्णवे तदा ।

नष्टे भावेऽवलीन तत्प्राज्ञायत न किञ्चन ॥५८॥

पार्थिवास्त्वथ सामुद्रा आपो हैमाश्च सर्व्वण ।

प्रसरन्त्यो यजन्त्येक सलिलाख्या भजन्त्युत ॥५९॥

स्वयम्भू के द्वारा प्रेरित हुए ये मेघ अपनी मूलसाधार भाग्यो के द्वारा इस जगत् को भर दिया करते हैं । अन्य तो अपने जल के घोषों के द्वारा बेला को भी अभिभूत कर देते हैं । उस समय में पर्वत और डीवों के घन्टों के सहित यह पृथ्वी जलो के द्वारा समाच्छादित हो जाया करती है ॥५५॥ और उसी युद्धि से हे द्विजगण ! परिमण्डित यह समस्त जल सूर्य की किरणों के द्वारा पान किया गये समुद्र में प्रवेश करता है ॥५६॥ सूर्य के द्वारा पीया हुआ यह जल मेघों में स्थित हो जाता है फिर वही जल यहाँ पर भूमि में पड़ता है उससे समुद्र भर जाया करते हैं ॥५७॥ इसके उपरान्त ये समुद्र अपनी बेला को सभी ओर से परिक्रान्त कर दिया करते हैं । तब पर्वत विशीर्ण हो जाते हैं और समस्त भूमि जल में डूब जाया करती है ॥५८॥ इसके पश्चात् सहसा उद्भ्रान्त वायु सभी ओर से ओर रूप धारण करके आकाश में उन मेघों को सवेष्टित कर लेता है ॥५९॥ उस समुद्र में समस्त स्थावर और जङ्गम के नष्ट हो जाने पर पूरे एक सहस्र युग में निक्षेप कल्प कहा जाता है ॥६०॥ इसके अनन्तर एकमात्र जल के द्वारा समस्त लोक के आवृत हो जाने पर कुछ एका-श्व कहा करते हैं और इस भूतल तथा आकाश को वायु जब एकाश्रय बना देता है तब उस समय में आव के नष्ट होने पर कुछ भी नहीं जाना जाता था ॥६१॥ पार्थिव-सामुद्र और हिम से होने वाले जल सभी ओर फैले हुए एक सलिलाख्या को प्राप्त किया करते हैं ॥६२॥

धामतागतिक चैत्र तदा तत्सलिल स्मृतम् ।
 प्रच्छाद्य तिष्ठति महीमण्यवास्थ च तज्जलम् ॥६३॥
 आभान्ति यस्मात्ता मामिमाश्च यस्मिन्महीतिपु ।
 भस्म सत्त्वमनुप्राप्य तस्मादग्नी निरुच्यते ॥६४॥
 नानात्वे च व शीघ्रे च धातुर्वै अर उच्यते ।
 एकार्णवे तदा यो व न शीघ्रास्तन ता नरा ॥६५॥
 तस्मिन् युगसहस्रान्त दिवसे ब्रह्मणो मत ।
 तावन्त कालमेव तु अवस्येकाणव जगत्
 तदा तु सत्त्वव्यापारा निवृत्त ते प्रजापत ॥६६॥
 एवमेकार्णवे तस्मिन्नष्टे स्थावर जङ्गमे ।
 तथा स भवति ब्रह्मा सहस्राक्ष सहस्रपात् ॥६७॥
 सहस्रशीर्षा सुमना सहस्रपात् सहस्रचक्षुर्वदन सहस्रवाक् ।
 सहस्रबाहु प्रथम प्रजापतिस्त्रयीपथे य पुरुषो निवच्यते ॥६८॥
 आदिस्थवर्णो भुवनस्य गोप्ता ह्यपूर्व्व एक प्रथमस्तुरापाट ।
 हिरण्यगर्भ पुरुषो महान् वै सपद्यत वै तमस परस्तात् ॥६९॥
 चतुर्भुगसहस्रान्त सर्जत सलिसप्सुत ।
 सुपुष्पुप्रकाशा स्वा रात्रि तु कुरुते प्रभु ॥७०॥

उन समय में वह जन धामतागतिक कहा गया है । अर्णव के नाम
 वाला वह जन इस भूमि को ढक कर स्थित रहता है ॥६३॥ क्योंकि वह भाग्यो
 के द्वारा भी—इस अश्व की व्याप्ति की गीतिप्रो में पाया युक्त होता है सबको
 अग्नि में धनु प्राप्त करता है इसलिये वह अग्नि कहा जाता है ॥६४॥ और
 नानास्व में एक शीघ्र में चरवाणु नहीं जाती है । उन समय में एकार्णव में जो
 शीघ्र नहीं है इसमें वह नर कहा गया है ॥६५॥ ब्रह्मा के युग सहस्र वाले उस
 णि के मन होने पर उस समय तक ही यह जगत् एकार्णव रहता है और तब
 प्रजापति के ममत्त व्यापार निवृत्त हो जाया करते हैं ॥६६॥ इस प्रकार से
 उन एक अणव में समस्त स्थावर और जङ्गम व नष्ट होने पर तब ब्रह्मा
 महस्र नेत्र और सहस्र चरणों काव होने हैं ॥६७॥ महस्र शीघ्र वाले सुमना—

सहस्र पादो से युक्त सहस्र चक्षु और मुखो से पूर्ण—सहस्र गान्—सहस्र बाहुयो वाला जमीपथ में प्रथम प्रजापति होता है जोकि पुरुष कहा जाता है ॥६८॥
 आदित्य के समान वरुण वाला—इस भुवन को गोता प्रथम तुरापाद् एक अपूर्व दी होता है । वह द्वितीय गर्भ पुरुष तम से परे महान् सम्पन्न होता है ॥६९॥
 एक सहस्र चांगे यूपो के धन्त के सब ओर से जल में प्युन में सोने की इच्छा करने वाला यह प्रभु प्रकाश होम उग अपनी राशि को किया करता है ॥७०॥

चतुर्विधा यदा वेते प्रजा सर्व्वण्डिमण्डिता ।
 पश्यन्ते त महात्मान काल मत्त महर्षय ॥७१॥
 जललोकविवर्तन्तस्तपसा लब्धचक्षुष ।
 भृश्रादयो महात्मान पूर्ण व्याख्यातलक्षणा ॥७२॥
 सत्यादीन् सप्तलोकान् वे ते हि पश्यन्ति चक्षुषा ।
 ब्रह्मण ते तु पश्यन्ति महाब्रह्मीषु राशिषु ॥७३॥
 कल्पाना परमेष्ठिष्वात्तस्मादाद्य स पठयते ॥७४॥
 स यष्टा सर्गमूताना कल्पादिषु पुन पुन ।
 एवमावेक्यित्वा तु स्वात्मन्येव प्रजापति ॥७५॥
 अथात्मनि महातेजा सर्गमादाय सर्गकृत् ।
 ततस्ते वक्षते रात्रि तमस्येकार्णवे जले ॥७६॥
 ततो रात्रिक्षये प्राप्ते प्रतिबुद्ध प्रजापतिः ।
 मन सिसृक्षया युक्त सर्गाय निदधे पुन ॥७७॥
 एष सलोके निवृत्ते उपशान्ते प्रजापती ।
 ब्रह्मनैमित्तिके तस्मिन् कल्पिते वे प्रसयमे ॥७८॥
 ऐहैवियोम सत्वाना तस्मिन् वे कृत्स्नञ् स्मृत ।
 ततो दग्धेषु भूतेषु सर्व्वेष्वादित्यरक्षिभिः ।
 देवपिम नृबर्ह्येषु तस्मिन् सङ्कलने तदा ॥७९॥
 गन्धर्वादीनि सत्वानि पिशाचान्तानि मर्ज्जय ॥
 मत्प्रादावप्रतप्तानि जनमेवाश्रयन्ति वै ॥८०॥

जिग नमय मे सर्गिण मण्डि चार प्रकार की प्रजा क्षयन करती है

तो सप्तपिण्ड उस महात्मा आत्मा जाने काल को देखा करते हैं ॥७१॥ बल लोक में विवत्तमान और तप के द्वारा नेत्रों की दृष्टि को प्राप्त करने वाले भृगु आदि महात्मा होते हैं जिनका पूव में सप्तपिण्डों की व्याख्या कर दी गई है । सत्य प्रभृति सातों लोकों को वे ही चक्षु के द्वारा देखा करते हैं । उन महा ब्राह्मी रात्रियों में वे ब्रह्मा को भी देखा करते हैं ॥७२॥ सप्तपिण्ड अपनी रात्रियों में सोये हुए काम को देखते हैं । क्योंकि का परममैत्री होने से वह घाघ पडा जाया करता है ॥७३॥ वह समस्त प्राणियों का कर्मों के आदि में पुन पुन पडा होता है । इस प्रकार से प्रजापति अपनी आत्मा में ही आबेशित होता है ॥७४॥ इसके अनन्तर महात्मा तेज बाक सबको आत्मा में लाकर सब कुछ के करने वाला इसके पश्चात् एकाग्र हो उस में जोकि एकदम अन्धकारमय है वहाँ रात्रि में वास किया करता है ॥७५॥ इसके उपरान्त उस रात्रि के क्षय हो जाने पर वह प्रजापति प्रति कुछ होता है और फिर सृजन करने की इच्छा से मनको युक्त करके पुन मन के लिये निश्चित किया करता है ॥७६॥ इस तरह से सलोक के निवृत्त होने पर और प्रजापति के उपश्रान्त होने पर तब ब्रह्म नैमित्तिक उस का उस के प्रसयम होने पर सत्त्वों का वेहो से विमोह होता है और उसको पूर्णरूप में कहा गया है । इसके पश्चात् सृष्टि की क्रियाओं के द्वारा समस्त प्राणियों के वाच हो जाने पर उस समय में मनुष्य ब्रह्म देवपितृ के उस सङ्कलन में गन्धर्व आदि जीव और पिशाचाश्च सब वस्त्व के आदि में अवलस होने हुए अम लोक का आश्रय लिया करते हैं ॥७७॥ ७८ ॥

तियम्योनोमि सत्त्वानि मारकेवानि यान्यपि ।

अने तान्युपपद्यन्ते यावत्सप्तवत् जगत् ॥८१॥

व्युष्टायान्तु रजन्या तु शृङ्गाणोऽम्बक्तयानये ।

आधन्ते हि पुनस्तानि सन्वभूतानि हृत्सन्ध ॥८२॥

अपयो मनवा देवा प्रजा सर्वाश्च भुविष्या ।

तेषामपीह सिद्धाना निधनोत्पत्तिरुच्यते ॥८३॥

यथा सूर्यस्य सः कर्जस्मिन्नुदयास्तमन स्मृतम् ।

तथा च मनिरोधश्च भूतानामिह दृश्यते ॥८४॥

आभूतसत्त्ववात्तस्माद्भूव ससार उच्यते ।

यथा सर्वाणि भूतानि जायन्ते हि वर्षास्त्विह ॥८५॥

स्थावरादीनि सत्त्वानि कल्पे कल्पे तथा प्रजा ।

यथात्तवृत्तुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ॥८६॥

दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्रह्मात्तरात्रिषु ।

प्रत्याहारे च सर्गे च गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥८७॥

निष्क्रमन्ते विशन्ते च प्रजाकार प्रजापतिषु ।

श्रद्धाणु सर्वभूतानि महायोग महेश्वरम् ॥८८॥

जो तिर्यक् योनि वाले जीव थे और जो नारकीय जीव थे उस समय में वे सभी सब प्रकार से मनु पापों वाले होते हुए बन्ध होयये थे । जब तक जगत् सन्तापित रहता है तब तक वे सभी सत्त्व जनलोक में उत्पन्न हुआ करते हैं ॥८१॥ अव्यक्त योनि ब्रह्मा के लिये रबनी के व्युष्ट हो जाने पर फिर वे समस्त प्राणी पूर्ण रूप से उत्पन्न होते हैं ॥८२॥ अविबन्धु-मनुष्य-देवता-प्रजा समस्त चारों प्रकार की—इन सबका और यहाँ पर सिद्धों का भी निश्चय होना तथा उत्पन्न होना कहा जाता है ॥८३॥ जिस तरह से इस लोह में सूर्य का उदय होना और अस्त होना कहा गया है—उसी तरह से प्राणियों का जन्म और निरोध दिखलाई देता है ॥८४॥ उस भूत सत्त्व से लेकर मन ससार कहा जाता है । जैसे समस्त प्राणी यहाँ वर्षा में उत्पन्न हुआ करते हैं ॥८५॥ जिस तरह ऋतु के समय में पर्यय होने पर अनेक प्रकार के ऋतु के बिह्व होते हैं उसी तरह कल्प-कल्प में स्थावर आदि सत्त्व और प्रजा हुआ करते हैं ॥८६॥ ब्रह्मा की आत्तरात्रियों में वे-वे ही प्रत्याहार में और सर्ग में ध्रुव और गति-मान् दिखलाई दिया करते हैं ॥८७॥ महान् योग वाले महेश्वर प्रजा के प्रकार वाले प्रजापति ब्रह्मा में समस्त प्राणी प्रवेश करते हैं और निष्क्रमण किया करते हैं ॥८८॥

संश्रष्टा सर्वभूतानां कल्याणेषु पुन पुन ।

व्यक्ताव्यक्तौ महादेवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥८९॥

है । उस स्थान वाले जल से भी तेरह पल होते हैं ॥११॥ मागध मान के हरा ही जल प्रस्थ का विधान होता है । ये चारों उदक प्रस्थ हैं और तालिक घट होता है ॥१२॥ छेद क्रिये हुए चार अशुल वाले चार हेममापी के समान दिन में और रात्रि में द्विनालिक मुहूर्त होता है ॥१३॥ सूय की गति विशेष से समस्त मनुष्यों में निश्चय हो पाँचवीं छ कत्ताघो का प्रविधान होता है ॥१४॥

तदहर्मानुप ज य मासत्रन्तु दशाधिकम् ।

सावनेन तु मासेन ह्यब्दोऽयं मानुष स्मृत ॥१०५॥

एतद्विष्यमहोरात्रमिति सास्त्रविनिश्चय ।

अह्नाज्जेन तु या सख्या मासस्वयनवारिकी ॥१०६॥

तथा बद्धमिदं ज्ञानं सज्ञा या ह्युपलभ्यताम् ।

कलानां सुपरीमाणात्काल इत्यभिधीयते ॥१०७॥

यवहर्षं ह्येव प्रोक्तं दिव्या बोटी तु तत् स्मृता ।

शतामात्रं सहस्राणि दशद्विगुणितानि च ।

मघतिश्च सहस्राणि तथैवान्यानि यानि तु ॥१०८॥

एतच्छ्रुत्वा तु श्रुपयो विस्मय परमाकुतम् ।

संस्थासम्भजनं ज्ञानमपृच्छन्तस्तदा ॥१०९॥

सप्तावतस्य कालस्तु मानुषेणैव सम्मतम् ।

मानेन श्रोतुमिच्छाम सखेपाथपदाक्षरम् ॥११०॥

तेषां श्रुत्वा स देवस्तु वायुर्नोकहिते रत ।

सखेपाद्विष्यन्त्युष्मान् प्रोवाच भगवान् प्रभु ॥१११॥

एतं रात्र्यहनी पूर्वं कीर्तिते त्विह गौनिके ।

सासा सख्याय वर्षाणि ब्रह्मा नभ्याम्यहं लये ॥११२॥

वह मानुष त्वि ज्ञानना चाहिये और नक्षत्र तो देख मरिचि वाला होता है । सावन मास से यह मानुष उन्मत्त कहा गया है ॥१३॥ ॥१॥ दिव्य महोरात्र होता है—ऐसा दास्य वा विनिश्चय है । इस दिन से जो सख्या है वह मास अयन श्रुतु और वर्ष की है ॥१४॥ उस समय वह बद्ध जान को सता है उसे उप नक्षित करो । कत्ताघो के सुपरीमाणा सवाल ऐसा श्रमसे कहा जाता है ॥१५॥

जो ब्रह्मा का दिन कहा गया है वह दिव्यकोटी नहीं गई है । जो सहस्र दश श्रीर
 दो गे गुणित होते हैं । और नव्ये सहस्र तथा जो अन्य है वे इस प्रकार के होते
 हैं ॥१०८॥ इसे ध्वरण करके ऋषिगण परम मन्दुत विम्बय को प्राप्त हुए यह
 सस्था गा सम्भजन ज्ञान ऐसा ही मन्दुत था । उस समय अन्तर को पूछा
 ॥१०९॥ ऋषियो ने कहा—सम्प्लावन होने का समय मानुष के द्वारा ही सम्मत
 है । हम मान से ध्वरण करने की इच्छा करते हैं जो कि सत्पैपार्थ पदाक्षत है
 ॥११०॥ लोफ के हित में रति रखने वाले उस वायुदेव ने समझी इस बात को
 सुगणर भगवान् प्रभु जो कि दिव्य नेत्रों वाले थे, सबेप से बोले ॥१११॥ ये
 राशि और दिन यहाँ लौकिक पहिले कीर्तित किये हैं । उनके वर्षाप्र की सख्या
 करके प्रथ दिन के क्षय में जो ग्राह्य है उसे बताऊँगा ॥११२॥

कोटिशतानि चत्वारि वर्षाणि मानुषाणि तु ।

द्वात्रिंशच्च तथा कोट्य सहस्रघाता सहस्रधया द्विजै ॥११३॥

तथा शतसहस्राणि एकोननवति पुन ।

आशीतिश्च सहस्राणि एष काल प्लवस्य तु ॥११४॥

मानुषाहमेष सहस्रघात कालो ह्याभूतसप्लव ।

सप्त सूर्यास्तिदाऽग्रेषु तदा लोकेषु तेषु वै ॥११५॥

महाभूतेषु तीयन्ते प्रजा सर्वाश्चतुर्विधा ।

रालिलेनाप्लुते लोके नष्टे स्यावरजङ्गमे ॥११६॥

विनिवृत्ते संहारे उपशान्ते प्रजापती ।

निरालोके प्रदग्धे तु नैवेन तु समावृत्ते ।

ईदवर्गाधिष्ठिते ह्यस्मिस्तदा ह्यकार्णवे तदा ॥११७॥

सावदेकार्णवो ज्ञेयो यावदासीदह प्रभो ।

रात्रिस्तु सलिनावस्था निवृत्ती चाप्यह स्मृतम् ॥११८॥

अहोरात्रस्तथैवास्य क्रमेण परिवर्त्तते ।

आभूतमप्लवो ह्येष अहोरात्र स्मृत प्रभो ॥११९॥

प्रैन्नोगये यानि सत्त्वानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ।

आभूतेभ्य प्रलीयन्ते तस्मादाभूतसप्लव ॥१२०॥

चारसौ कोटि आनुष वष तथा बत्तीस गोटि द्वय के द्वारा सत्त्वा मे स्रव्यात क्रिये गये है ॥११३॥ तथा सौ सहस्र नवासी और अस्ती सहस्र यह काल प्लव का होता है ॥११४॥ यह आभूत सप्तम काल मानुषात्म्य के द्वारा स्रव्यात क्रिया गया है । उस समय उन अन्नलोको मे सप्त सूर्य होते हैं ॥११५॥ आरौ प्रकार की समस्त प्रजा महाभूतो मे सोन होजाती है । जबकि लोक जल से घातुत होजाता है और स्वापर और अन्न सब गह हो जाते हैं ॥११६॥ सहार के विनिवृत्त होने पर और प्रजापति के उपधान्त होजाने पर बिना प्रकाश वाले प्रकृत रूप से जले हुए होने पर तथा रात्रि ॥ अन्धकार समावृत होने पर उस समय यह एकात्म्य केवल ईश्वर से अभिहित होता है ॥११७॥ इसका जब तक दिन रहता है तब तक यह एकात्म्य जानना चाहिये । जलकी समस्या ही रात्रि है और उसकी विवृति होजाने पर दिन कहा गया है ॥११८॥ उस प्रकार से इसका महोत्थान क्रम से परिवर्तित हुआ करता है । यह आभूत सप्तम प्रभु का महोत्थान ही कहा गया है ॥११९॥ ईशोस्य मे जो गति वाले भुव सत्त्व है वे भूभूतो से प्रतीन हो जाना करते हैं इस कारण से इसका नाम आभूत सप्तम ऐसा कहा गया है ॥१२०॥

अग्ने भूत प्रजानां तस्माद्भूत प्रजापति ।

आभूत प्लवते च तस्मादाभूतसप्तम ॥१२१॥

शाश्वते आमृतत्वे च शब्दे आमृतसप्तम ।

अतीता वक्ष्यमानाश्च तथैवानागता प्रजाः ।

दिव्यसहस्रा प्रसङ्गभाता ह्यपराधगुणीकृता ॥१२२॥

पराधद्विगुणाश्चापि परमायुः प्रकीर्तितम् ।

एतावान् स्थितिकालस्तु ह्यजस्येह प्रजापतेः ।

स्थित्यन्ते प्रतिसर्गस्य ब्रह्मण परमेष्ठिनः ॥१२३॥

यथा वायुप्रवेगेन दीपार्चिरुपशाम्यति ।

तथैव प्रतिसर्गेण ब्रह्मा समुपशाम्यति ॥१२४॥

तथा ह्यप्रतिसृष्टे महदादौ महेश्वरे ।

महत्प्रलीयतेऽप्यक्ते गुणसाम्भ ततो भवेत् ॥१२५॥

इत्येष च समाख्यातो मया ह्याभूतसप्लव ।

ब्रह्मनैमित्तिको ह्येष सप्रक्षालनसयमः ॥१२६॥

समासेन समाख्यातो भूयः किं वर्त्तयामि व ।

य इद धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णसः ।

कीर्त्तनाच्छ्रवणाच्चापि महती सिद्धिमाप्नुयात् ॥१२६॥

समस्त प्रजाओं के आने हुआ था इससे प्रजापति भूत है और आभूत सप्लवित होता है इस कारण से आभूत सप्लव इस नाम से इसे कहा जाया करता है ॥१२१॥ और साम्प्रतं समुत्पन्न सव्य मे आभूत सप्लव है । जो व्यतीत होगये है वे—वर्त्तमान मे रहने वाले और उसी प्रकार से अनागत अर्थात् भविष्य मे होने वाले समस्त प्रजा की अपराधं गुणिकृत विषय संख्या होते हैं ॥१२२॥ पराविगुण भी परमायु कही गई है । प्रजापति अथवा इतना ही स्थिति का काल होता है । प्रत्येक सर्व की स्थिति के अन्त मे परमेष्ठी ब्रह्म का स्थिति काल होता है ॥१२३॥ जिस तरह आयु के प्रवेग वाले ओके से दीपो की अग्नि (ली) उपशान्त होजाया करती है उसी प्रकार से प्रत्येक सर्व से ब्रह्मा भी उपशान्त होजाया करता है ॥१२४॥ तथा महावादि मे महेश्वर के अग्रति समुद्र होने पर महत् अथवात्त मे प्रलीन हो जाता है तब गुणों की साम्यावस्था होजाया करती है ॥१२५॥ इस तरह मैंने यह आभूत सप्लव समाख्यात कर दिया है यह सम्प्रक्षालन सयम ब्रह्म के निमित्त जाता होता है ॥१२६॥ मैंने यह संक्षेप से कह दिया है । अब आये आप लोगो को क्या बताऊँ ? इसे जो नित्य ही धारण किया करता है अथवा बार-बार श्रवण किया करता है । इसके कीर्त्तन करने से तथा श्रवण करने से महती सिद्धि को प्राप्त होता है ॥१२७॥

प्रकरण ६३—शिवपुर वर्णन

भमाधारणवृत्तस्तु हृतशेषादिभिर्द्विजैः ।

धर्मवर्णशेषिकैश्चैव ह्याचूरांसूक्ष्मदर्शिनः ॥१॥

ते देव सह तिष्ठन्ति महर्लोकनिवासिनः ।
 चतुर्दशते मनवः कीर्त्तिताः कीर्त्तिवधनाः ॥२॥
 प्रतीता वत्तमानाश्च तथवानागताश्च ये ।
 अपिर्मर्देवतश्च वः सह नः च वराक्षसः ॥३॥
 मन्वन्तराधिकारेषु जायन्तीह पुनः पुनः ।
 देवाः सप्तपथश्च वः मनवः पितरस्तथा ॥४॥
 सर्वे ह्यपि ज्ञयातीता महर्लोकः समाधिताः ।
 ब्राह्मणं क्षत्रियवैश्यर्षामिकं सहितं सुराः ॥५॥
 तस्तप्यकारिभिर्युक्तं यथावद्भिरदर्पितं ।
 वर्णाधमाणां धर्मेषु श्रौतस्मार्तेषु संस्थितं ।
 विनिवृत्ताधिकारास्ते यावन्मन्वन्तरक्षयः ॥६॥
 महर्लोकैति यत्प्रोक्तं मातरिष्वस्त्वया विभो ।
 प्रतिलोके च कस्तव्यमनेकः समधिष्ठिताः ॥७॥
 यावत्तश्च वः ते लोका दह्यन्ते ये न ते प्रभो ।
 एतन्मया कथय प्रोत्वा ८ । हि वेत्थ यथातथम् ॥८॥

श्री वायुदेव ने कहा—सप्तपथरुचि बरिष वाले हुत दीप जादि द्विजों के साथ तथा भम के वैशेषिक ब्राह्मण सूक्ष्म दक्षिणों के साथ धीर देवों के साथ वे महर्लोक के निवासी होते हुए रहा करते हैं । वे कीर्त्ति के बढ़ाने वाले चौबह मनु बताने गये हैं ॥१॥ २॥ प्रतीत—वत्तमान और अनागत जो हैं वे ऋषियों के—वदतो के और नःचवों के एव राक्षसों के साथ मन्वन्तरो के अधिभारों में भारम्भार उत्पन्न होते हैं । इसी तरह देव—सप्तपथरुचि—मनु धीर पितृवृन्द दुष्टा करते हैं ॥३॥ ४॥ सभी कथ से प्रतीत हुए महर्लोक में समाहित होते हैं । ब्राह्मण—क्षत्रिय और वश्यों के सहित सुर वहाँ आश्रय निवास करते हैं ॥५॥ तप्यों के करने वाले—यथा से युक्त—र्ष से रहित—युक्त—वर्णाधियों के धर्मों में तथा श्रौत एव स्मार्त धर्मों में से स्थित उनसे विनिवृत्त अधिभार वाले वे जब तक मन्वन्तर का समय होना है वहाँ रहा करते हैं ॥६॥ ऋषियों ने कहा—हे मातरिष्वन् । हे विभो ! आपने महर्लोक—यह कहा है और प्रतिलोक में बनेको

ने द्वारा कर्तव्य ने समधिष्ठित बताये हैं ॥७॥ हे प्रभो ! और जितने वे लोक है उनमें जो नहीं दस्य होत है—यह सब हमको बताइये और प्रेम के साथ धर्तुन कर्मों में यथोक्ति आप सभी मुझ ठीक-ठीक जानते हैं ॥८॥

एवमुक्तस्तथा वायुर्मुनिभिर्विनयात्मभि ।

प्रोवाच मधुर वाक्य यथातत्त्वेन तत्त्ववित् ॥९॥

चतुर्दशैव स्थानानि वसितानि महर्षिभि ।

लोकाभ्यानि तु यानि रयुर्बेषु तिष्ठन्ति मानवा ॥१०॥

सप्त तैश्च कृतान्याहुरकृतानि तु सप्त वै ।

भूरादयस्तु मन्त्रधाता सप्त लोका कृतास्त्विह ॥११॥

अकृतानि तु सप्तैव प्राकृतानि तु यानि वै ।

स्थानानि स्थानानि साह कृतानि तु निबन्धनम् ॥१२॥

पृथिवी चान्तरिक्ष च दिव्य यच्च मह स्मृतम् ।

स्थानान्येतानि चत्वारि स्मृतान्यार्णवकानि च ॥१३॥

क्षयातिशययुक्तानि तथा युक्तानि वक्ष्यते ।

यानि नैमित्तिकानि स्युस्तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवम् ॥१४॥

जनरतपञ्च सत्यम् स्थानान्येतानि व्रीणि तु ।

ऐकान्तिकानि सत्त्वानि तिष्ठन्तीहाप्रसयमात् ॥१५॥

अस्तानि तु प्रवक्ष्यामि स्थानान्येतानि सप्त वै ।

भूर्लोकः प्रथमस्तेषां द्वितीयस्तु भुव स्मृत ॥१६॥

मिना ने मुक्त आत्मा वाले मुनियों के हाग दस तरह कहे गये वायु देव मिनापुर नाम कीले यथोक्ति वे तत्त्वों के वेत्ता थे धरा यथा नरय ही उनके बचन भी थे ॥९॥ श्री वायु ने कहा—महर्षियों ने गौदह ही स्थानों का धर्तुन किया है जो कि सात—दस नाम ने प्रसिद्ध है और जिनमें मनुष्य निवास की स्थिति किया करते हैं ॥१०॥ उनमें सात तो कृत हैं और सात अकृत हैं । भूर्लोक सात नामों ने जो मन्त्रात् होते हैं वे ही सात लोक यहाँ कृत होते हैं ॥११॥ और अकृत तो सात ही होते हैं जो कि प्राकृत हैं । स्थानियों के साथ वे स्थान कृत हैं और निबन्धन होते हैं ॥१२॥ पृथिवी और अन्तरिक्ष और दिव्य जो

महर्लोक कहा गया है ये चार स्थान प्राणवक कहे गये हैं ॥१३॥ ये क्षयातिशय से युक्त होते हैं तथा मुख्य कहे जायेंगे । जो नैमित्तिक होते हैं ये आभूत सप्तव तक रहा करते हैं ॥१४॥ जन-वष और सत्त्व ये तीन स्थान हैं जहाँ पर आप्र समय से एकान्तिक सत्त्व बढा करते हैं ॥१५॥ ये सात स्थान व्यक्त हैं इनको मैं बताता हूँ—भूलोक उनमें प्रथम है दूसरा जो भुवर्लोक कहा गया है ॥१६॥

स्वस्तृतीयस्तु विज्ञयन्नतुर्थो मे मह स्मृत ।

जमस्तु पञ्चमो लोकस्तप षष्ठो विभाव्यते ॥१७॥

सत्त्वस्तु सप्तमो लोको निरालोकस्तस्य परम् ।

भूरिति व्याहृते पूष भूर्लोकश्च ततोऽभवत् ॥१८॥

द्वितीय भुव इत्युक्त अन्तरिक्ष ततोऽभवत् ।

तृतीय स्वरितृतीयुक्त दिव प्रादुर्बभूव ह ॥१९॥

व्याहारस्त्रिभिरेतस्तु ब्रह्मलोकमकल्पयत् ।

ततो भू पायिषो लोक अन्तरिक्ष भुवः स्मृतम् ॥२०॥

स्वर्लोको ऽत्र दिव ह्य तत्पुराणे निश्चय यतम् ।

भूतस्याधिपतिश्चाग्निस्ततो भूतपति स्मृत ॥२१॥

वायुमु वस्याधिस्पतिस्तेन वायुमु वपति ।

मव्यस्य सूर्योऽधिपतिस्तेन सूर्यो दिवस्पति ॥२२॥

महेतिव्याहृतेभव महर्लोकस्ततोऽभवत् ।

विनिवृत्ताधिकाराणा देवाना सव व क्षय ॥२३॥

जनस्तु पञ्चमो लोकस्तस्माज्जायन्ति व जना ।

तासा स्वाय भुवाधाना प्रजाना जननाज्जन ॥२४॥

तृतीय स्वर्लोक होता है और चतुर्थ महर्लोक जानने के योग्य कहा गया है । जनलोक पाँचवाँ होता है और छठा उपलोक होता है ॥१७॥ सत्त्वलोक नाम वाता सप्तम लोक होता है इसके आगे निरालोक होता है । भूल में भू—यह व्याहृत होने पर इसके ही भूलोक हुआ ॥१८॥ फिर दूसरा भुव—यह कहा गया वह अन्तरिक्ष भुव कहा गया है । तीसरा स्व—यह कहने पर दिव का प्रादुर्भाव हुआ वा ॥१९॥ इन तीन व्याहारों के द्वारा ब्रह्मलोक कल्पित हुआ

या । इसमें भू पार्थिव लोक है और भुव यह अन्तरिक्ष कहा गया है ॥२०॥
 और स्वर्लोक यह दिव है—ऐसा पुराण में निश्चय को प्राप्त हुआ है । भूत का
 अधिपति अग्नि है इसके पश्चात् भूत पति कहा गया है ॥२१॥ वायु भुव पति
 है । भव्य का अधिपति सूर्य होता है इससे सूर्य दिवस्पति कहा गया है ॥२२॥
 यह दस तरह व्यावृत्त होनेसे ही इस प्रकार में महर्षीक फिर हुआ था । विनिवृत्त
 अधिकार वाले देवों का वहाँ पर क्षय होता है ॥२३॥ जन पार्थवी लोक है
 वसुधै जन उत्पन्न हुआ करते हैं । उन स्यायम्भुवादि प्रजाओं के जनन से जन
 होता है ॥२४॥

यास्ता स्वायम्भुवाद्या हि पुरस्तात्परिकीर्तिता ।

कल्पदग्धे तदा लोके प्रतिष्ठन्ति तदा तप ॥२५॥

ऋभु सन्त्कुमाराद्या यम सन्त्यूद्धरेतस ।

तपसा भावितात्मानस्तत्र सन्तीति वा तप ॥२६॥

सत्येति ब्रह्मणः शब्द सत्तामात्रस्तु स स्मृतः ।

ब्रह्मलोकस्ततः सत्य सप्तम स तु भास्कर ॥२७॥

गन्धर्वाप्सरसो यक्षा गुह्यकास्तु सराक्षसा ।

सर्वभूतपिशाचाश्च नागाश्च सह मानुषे ।

स्वर्लोकवासिन सर्वे देवा भुवि निवासिन ॥२८॥

मरुतो मातरिश्वानो रुद्रा देवास्तथाश्विनौ ।

अनिकेतान्तरिक्षास्ते भुवर्लोकं न्या दिव्यलोकस ॥२९॥

आदित्या ऋगवो विश्वे साध्याश्च पितरस्तथा ।

ऋषयोऽङ्गिरसश्चैव भुवर्लोक समाश्रिता ॥३०॥

एते वैमानिका देवास्ताराग्रहनिवासिन ।

इत्येते क्रमशः प्रोक्ता ब्रह्मव्याहारसम्भवा ॥३१॥

भूर्लोकप्रथमा लोका महदन्ताश्च ते स्मृता ।

भारम्यन्ते तु तन्मार्गं शुद्धास्तेषा परस्परम् ॥३२॥

जो स्यायम्भुवादि पहिले कहे गये हैं कल्प के दग्ध होने पर उस समय
 लोक में तप को प्रतिष्ठित किया करते हैं ॥२२॥ ऋभु सन्त्कुमार आदि जहाँ पर

ये ऊर्ध्व रेता लोम हीते हैं जो तप के द्वारा वावित प्राप्ता वाले वहाँ पर हैं इससे तप कहा गया है ॥२६॥ सत्य-यह ब्रह्म का शब्द है और यह सत्तामात्र कहा गया है । इससे सत्य लोक जो है वह ब्रह्मलोक उत्तम है और वह भास्कर है ॥२७॥ गन्धर्व-अक्षरार्थ-यक्ष-बुद्धकराक्षसों के सहित-समस्त भूत और पिशाच नाग मनुष्यों के सहित ये सब देव स्वर्गों के निवास करने वाले हैं जोकि भूमि निवासी हैं ॥२८॥ मरुत-मातरिस्थान-यक्ष-देवता तथा अश्विनीकुमार होमों के अनिकेतान्तरिक्ष है और पितृ में स्थान वाले सब पुत्रही बय होते हैं ॥२९॥ आदित्य-ऋषु-विश्वेदेव-साध्य-पितर-ऋषिमण और अङ्गिरस में सब पुत्रगणों में समाधिष्ट होते हैं ॥३०॥ ये साराब्रह्म निवासी देव ब्रह्मानिक होते हैं । ये सब क्रम से ब्रह्म के व्याहार से उत्पन्न होने वाले कह दिये गये हैं ॥३१॥ सूर्गों प्रथम लोक है और यहदन्त में कहे गये हैं । परस्पर में उनकी सम्प्राप्ताओं से कुछ धारण किये जाते हैं ॥३२॥

शुभाद्याश्चाक्षुषान्ताम्र ये व्यतीता भुव धिता ।
 महर्लोकश्चतुषस्तु तस्मिंस्ते कस्यवासिनः ॥३३॥
 भूर्लोकप्रथमा लोका महदन्ता ये स्मृता ।
 तान् सर्वाद् सप्त सूर्यास्ते भर्क्षिर्भनिदहन्ति च ॥३४॥
 मरीचिः कश्यपो दक्षस्तथा स्वायम्भुवोऽङ्गिराः ।
 भृगु पुनस्तथ पुनह कतुरित्येवमाधम ॥३५॥
 प्रजाना पतय सर्वे वसन्ते तत्र तं सह ।
 नि सत्त्वा निममाश्च च तत्र ते ह्यूर्ध्व रेतसः ॥३६॥
 अमुं सनत्कुमाराद्या वराज्यास्ते तपोधनाः ।
 भग्यन्तराणां सर्वेषां सावर्णिनां चत स्मृताः ।
 चतुर्द शाना सर्वेषां पुनरावृत्तिहेतवः ॥३७॥
 योग तपश्च सत्यञ्च समाधाय तदात्मनि ।
 पठे काने निवर्त्तन्ते तत्तदाहविषयये ॥३८॥
 सत्यन्तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्भगियामिनाम् ।
 ब्रह्मलोक समाध्यातो ह्यप्रतीचातसक्षण ॥३९॥

पर्यासपारिभाष्येन भूर्लोक समिति स्मृत ।

भूम्यन्तर यदादित्यादन्तरिक्ष भुवः स्मृतम् ॥४०॥

शुक्राक्ष और वायुमान जो व्यतीत है वे भुज में धात्रित होत हैं ।
महर्लोक तो चौथा है उसमें वे बरप वासी रहते हैं ॥३३॥ भूर्लोक से प्रथम
लोक जो महवन्त कहे गये हैं उन सबको सप्त मुख धपनी अग्निगो के द्वारा निदग्ध
कर दिया करते हैं ॥३४॥ मरीचि-कश्यप-दक्ष-स्वायम्भुव-मङ्गिरा-भृगु-
पुनस्त्य-पुनहू और क्रतु इत्येवमादि हैं ॥३५॥ वे सब प्रजापति के पति हैं
और वहाँ पर वे उनके साथ रहते हैं । वे वहाँ नि सत्त्व और निमग एव ऊर्द्ध-
रैता होते हैं ॥३६॥ ऋषु और सन्तनुमार आदि वे सब सप्रेषण वैराग्य हैं ।
सर्वार्थ समस्त भव्यस्तरो के कहे गये हैं जो कि चौदहो लोकों के सब के पुत्रा-
वृत्ति होने के हेतु होते हैं ॥३७॥ उस समय में योग-सप और सत्य को आत्मा में
समाधान करके पक्ष काल में उस अह के विपर्यय में निवृत्त होजाते हैं ॥३८॥
सत्य ॥ सप्तम लोक है जो कि अपुनर्मांस गामिनी का लोक होता है । वह
अप्रतीभास लक्षण वाला ब्रह्मलोक कहा गया है ॥३९॥ पर्यास पारिभाष्य से
भूर्लोक समिति कहा गया है । भूमि के अन्तर में जो आदित्य से अन्तरिक्ष है
वह भुव कहा गया है ॥४०॥

सूर्यध्रुवान्तर यच्च स्वर्गलोको दिव स्मृत ।

ध्रुवाज्जनान्तर यच्च महर्लोकस्तदुच्यते ॥४१॥

विख्याता सप्तलोकास्तु तेषां वक्ष्यामि सिद्धय ।

भूर्लोकवासिन सर्वे ह्यन्नादास्तु रसात्मका ॥४२॥

भुवे स्वर्गे च ये सर्वे सोमपा आण्यपाश्च ये ।

चतुर्थे येऽपि वर्तन्ते महर्लोक समाश्रिता ॥४३॥

विज्ञेया मानसी तेषां सिद्धिर्वै पञ्चलक्षणा ।

सद्यश्चोत्पद्यते तेषां मनसा सर्व्वभीषितम् ॥४४॥

एते देवा यजन्ते वै यज्ञं सर्वं परस्परम् ।

अतीतान् वर्तमानान् च वर्तमानाननागतान् ॥४५॥

प्रथमानन्तरिक्षा ह्यन्तरा साम्प्रत पुन ।
 निवसतीत्यासम्ब षोऽष्टीते देवगणै तत ॥४६॥
 विनिवृत्ताधिकाराणा सिद्धिस्तेषान्तु मानसी ।
 तेषां तु मानसी अ या क्षुद्धा सिद्धिपरम्परा ॥४७॥
 उक्ता लोकाश्च चत्वारो जनस्यानुविधिस्तथा ।
 समासेन मया विप्रा भूमस्त वर्त्तयामि य ॥४८॥

श्रीर जो सूय प्रुवाण्तर मे है वह स्वय लोक दिन कहा गया है । प्रम
 से जगन्तर जो है वह महलोक कहा जाता है ॥४६॥ ये बात श्रीक विख्यात है
 प्रम उनही सिद्धियों को बताता है । मूर्त्तिक के निवास करने वाले सभी भग्न
 जाने वाले एसाभक्त होते हैं ॥४७॥ भुव मे श्रीर स्वय मे जो सब है ये सोम
 पान करने वाले श्रीर स्रज्य पान करने वाले होते हैं । नीचे मे जो रक्षा करते
 हैं जोकि महर्लोक को प्राप्य क्रिये हुए हैं ॥४८॥ उनकी पाँच लक्षणों वाली
 मानसी सिद्धि जानने के लो म है । उनके मन से जो भी कुछ अभीष्ट होता है
 वह तुरन्त ही उत्पन्न हो जाता है ॥४९॥ ये देव समस्त यमों के द्वारा परस्पर
 मे यजन किया करते हैं । जो अभीष्ट होयये है—जो वस्तमान है श्रीर जो
 यनापन्न है उन सभी को करते हैं ॥४९॥ प्रबन्धों को यन्त्रों के द्वारा यजन
 करते फिर साम्प्रतो के द्वारा यन्त्रों को करते हैं । फिर देवगण के प्रतीत होने
 पर आसम्बन्ध निर्वातित हो जाता है ॥४९॥ अब विनिवृत्त अधिकार वालों की
 मानसी सिद्धि हुआ करती है । उनकी शुद्ध सिद्धियों की परम्परा मानसी जाननी
 चाहिए ॥४७॥ चार लोक कह दिये गये हैं तथा हे विप्रवृत्त । जननी अनुविधि
 भी संक्षेप से मने बतला दी है मैं पुन उसको तुम्हारे सामने कहता हूँ ॥४८॥

मरीचि कश्यपो दसो वसिष्ठआह्निरा भृगु ।

पुलस्त्य पुलहश्चन ऋतुरित्येवमादय ॥४९॥

पूय ते सप्रसूयन्ते बह्वर्णो मनसा इह ।

तत प्रजा प्रतिष्ठाप्य जनमेवाभ्ययन्ति ते ॥५०॥

कल्पदाहप्रदीप्येपु तदा कालेषु तेषु व ।

भूरादिषु महान्तषु भृश व्याप्येव्यपाग्निना ॥५१॥

शिखा सवर्त्तका ज्ञेया प्राप्नुवन्ति सदा जना ।

यामादयो गणा सर्वे महर्लोकनिवासिनः ॥५२॥

महर्लोकेषु दीप्तेषु जनमेवाश्रयन्ति ते ।

सर्वे सूक्ष्मशरीरास्ते तत्रस्थास्तु भवन्ति ते ॥५३॥

तेषां ते तुल्यसामर्थ्यास्तुल्यभूतिवरास्तथा ।

जनलोके विवर्त्तन्ते यावत्सप्तवते जगत् ॥५४॥

ब्रुष्टाद्यान्तु रजन्या वै ब्रह्माणोऽव्यक्तयोनिनः ।

अहरादौ प्रसूयन्ते पूर्ववत्क्रमश्चस्तिवह ॥५५॥

स्वायम्भुवादयः सर्वे मरीच्यन्तास्तु सावकाः ।

वेदास्ते वै पुनस्तेषां जायन्ते निघनेष्विवह ॥५६॥

श्री वायुदेव ने कहा—मरीचि—रश्मय—वज्र—वसिष्ठ—भृङ्गिरा—भृगु—पुल-
स्त्य—पुनह घोर क्रतु इत्येवमादि लोग पहिले यहाँ ब्रह्मा के मन से उत्पन्न होते
हैं फिर ये प्रजापति को प्रतिष्ठापित करके जन का ही आश्रय लिया करते हैं ॥५२॥
५०॥ कल्पवाह के प्रदीप्त उन कालों में भू से घावि लेकर महान्त तक अग्नि के
अग्नी तरह व्याप्त हो जाने पर सवर्त्तका शिखा जाननी चाहिए जिसको कि
मनुष्य तथा ही प्राप्त किया करते हैं । यामादि समस्तगण जो महर्लोक के निवास
करने वाले हैं ॥५१-५२॥ ये महर्लोक के दीप्त होजाने पर जनलोक का आश्रय
ग्रहण कर लेते हैं । वहाँ पर वे सभी सूक्ष्म शरीर वाले होते हुए वहाँ ही अपनी
स्थिति किया करते हैं ॥५३॥ उनके वे तुल्य सामर्थ्य वाले और समान ही
भूतिपों को धारण करने वाले जब तक यह जगत् सप्तावित होना है जनलोक
में ही विशेष रूप से रहा करते हैं ॥५४॥ अव्यक्त योनि ब्रह्मा की रजनी के
ब्रुष्ट होजाने पर दिन के आदि में यहाँ पुन पूर्व की गति क्रम में उत्पन्न किया
करते हैं ॥५५॥ यह निघन होने पर समस्त स्वायम्भुवादि घोर मरीच्यन्त
साधक देव वे फिर उनके जन्म ग्रहण किया करते हैं ॥५६॥

यामादयः क्रमेणैव कनिष्ठाया प्रजापते ।

पूर्व पूर्व प्रसूयन्ते पश्चिमे पश्चिमास्तथा ॥५७॥

वाले व्यासजी के पुत्र श्रीर पुराणों के पूरा ज्ञाता सूतजी से कहा—॥७॥
 ऋषियुन्द बोले—ये बराब जिस आहार वाले जिन चरको वाले श्रीर जिस
 आशय वाले होकर रहते हैं श्रीर जितने समय तक ठहरते हैं वह हमसे ठीक ठीक
 कहिए ॥७॥

तदुक्तमृषिमिवाक्यं च त्वा लोकाद्यस्तत्त्ववित् ।
 सूत पीराणिको वाक्स्व विनयेनेदमब्रवीत् ॥७२॥
 सन प्राप्यन्त त सर्वे बुद्धिबुद्धतमात्र ये ।
 आभूत सप्तवास्तव वस तिष्ठन्ति त जना ॥७३॥
 सर्वे सूक्ष्मशरीरास्त विद्वांसो वनमूलय ।
 स्थितलोकास्थितत्वाच्च तया भूत न विद्यत ॥७४॥
 ऊरु सनत्कुमाराद्या सिद्धास्त योगधामिण ।
 स्याति नमिति की तया पम्ययि समुपस्थिते ॥७५॥
 स्थानत्यागे मनश्चापि युगपत्सप्रवर्तते ।
 ऊरु सर्वे तदाम्योऽस्य वराभाम्बुद्धबुद्धय ॥७६॥
 एवमेव महाभागा प्रणव सम्प्रविष्य ह ।
 ब्रह्मलोके प्रवर्तारस्तत्र श्री यो भविष्यति ॥७७॥
 एवमुक्त्वा तदा सर्वे ब्रह्मान्ते व्यवसायिन ।
 योजयित्वा तदा सर्वे वसन्ते योगधाम्निण ॥७८॥
 सनव सम्प्रलीमन्ते श्रान्ता दीपाचिपो यथा ।
 ब्रह्मकामभवन्त पुनरावृत्तिदुस्तमम् ॥७९॥
 लोक ॥ समनुप्राप्य सर्वे ते भावनामयम् ।
 ध्यानन्द ब्रह्मण प्राप्य हामृतत्वाय ते गताः ॥८०॥
 वराजैर्म्यस्तमबोद्ध मन्तरे पद्मपुष्पे तत ।
 ब्रह्मलोक समाख्यातो यत्र ब्रह्मा पुरोहित ॥८१॥

ऋषियों के द्वारा कहे हुए उस वाक्य को ध्यान कर लोगों के धर्म के
 तत्व को जानने वाले पीराणिक सूतजी विषय के साथ यह वाक्य बोले ॥७२॥
 वे सब श्री बुद्धि से बुद्धिमान थे वहाँ प्राप्त होते हैं श्रीर वहाँ पर वे अनुभवी वस

प्राप्त सत्त्व तक ठहरा करते हैं ॥२३॥ वे सब सूक्ष्म शरीर वाले विद्वान् और
 धन मूर्ति वाले हैं और स्थित लोक में आस्थित होने से उनका भूत नहीं होता
 है ॥७४॥ सनत्कुमार आत सिद्ध और योग धर्मा उनके धर्मा के समुपस्थित
 होने पर नैमित्तिकी स्वाति को कहते हैं ॥७५॥ स्थान के त्याग करने पर मन
 भरे एक ही साथ सप्रवृत्त होता है । उस समय बुद्ध बुद्धि वाले सब अन्धोम्य में
 वैराजो को कहते हैं ॥७६॥ इसी प्रकार से ही महाभाग प्रणव में सप्रवेश
 करके ब्रह्मलोक में प्रवर्तन करने वाले हमारा श्रेय होगा ॥७७॥ इस रीति से
 कहकर उस समय में सब ब्रह्मान्त में व्यवसाय करने वाले योजित करके तब
 सब योग धर्मा होते हैं ॥७८॥ वहाँ पर ही जैसे दीप की धर्विया शान्त होनाया
 करती हैं वे सम्प्रलीन हो जाते हैं ॥७९॥ वे सब उस भावनामय लोक को अनु-
 भास करके और ब्रह्म के आनन्द की प्राप्ति करके वे समुत्तव को प्राप्त हो जाया
 करते हैं ॥८०॥ वैराजो से उसी प्रकार से ऊर्ध्व में पद्ममुख अन्तर में ब्रह्मलोक
 स्पात है जहाँ कहा पुरोहित है ॥८१॥

ते सर्वे प्रणावात्सानो बुद्धशुद्धतपास्तथा ।
 आनन्द ब्रह्मण प्राप्यामृतत्वञ्च भजन्त्युत ॥८२॥
 इन्द्रं स्ते नाभिभूयन्ते भावत्रयविवर्जिता ।
 आधिपत्यं विना तुल्या ब्रह्मणस्ते महौजस ॥८३॥
 प्रभावविद्यैश्चर्य्यस्थितिर्वैराग्यदर्शनैः ।
 ते ब्रह्मलौकिका सर्वे गतिं प्राप्य विवर्तनीम् ॥८४॥
 ब्रह्मणा सह देवैश्च सम्प्राप्ते प्रतिसन्धरे ।
 तपसोऽन्ते क्रियात्मानो बुद्धावस्था मनीषिणः ।
 अव्यक्ते सप्रणीयन्ते सर्वे ते क्षणदिशिनः ॥८५॥
 इत्येतदमृतं शुक्रं नित्यमक्षयमव्ययम् ।
 देवर्षयो ब्रह्मसत्रं सनातनमुपासते ॥८६॥
 अपुनर्मार्गिणादीनां तेषां चैवोद्धरेतसाम् ।
 कर्माभ्यासकृता बुद्धिर्वेदान्तोष्पलक्ष्यते ॥८७॥

तत्र तेभ्यामिना युक्ता परा नाउमुपासते ।

हित्वा शरीर पाप्मानममृतत्वाय त गता ॥८८॥

ये सब प्रखर की आत्मा बात तथा बुद्ध एवं बुद्ध तब बात ब्रह्म के ध्यान का लाभ कर अमृतत्व का सेवन किया करते हैं ॥८८॥ तीनों भावों से विरजित वे ब्रह्म से अभिभूत नहीं हुआ करते हैं । देवपितृ के बिना महाद् भोज वाले ब्रह्मा के पुत्र ही जाते हैं ॥८९॥ प्रभाव-विजय-ऐश्वर्य-स्थिति-बराब शरीर बचाने से ये सब विरजितनी गति को प्राप्त कर ब्रह्मणीकित्व होजाते हैं ॥९०॥ ब्रह्मा और देवों के साथ प्रति सम्भार सम्प्राप्त करने पर तप के फल में क्रियात्मा और बुद्धावस्था वाले मनीषी ये सब अखण्डशी होने हुए अमृत में सम्मिलित हो जाते हैं ॥९१॥ देवपितृ इन अमृत-सुख-दित्य-अभय सनातन और अक्षय ब्रह्मण की उपासना किया करते हैं ॥९२॥ अपुनर्गति न गमन करने वाले ऊँच रीति उनकी वर्माभ्यास से की हुई बुद्धि वेदान्ती में उपलक्षित होती है ॥९३॥ वहाँ पर सम्प्राप्त करने वाले-युक्त वे पराकाष्ठा की उपासना करते हैं और पाप युक्त शरीर का त्याग करके अमृतत्व की प्राप्त होगये हैं ॥९४॥

वीक्षराणां जितक्रोधा सतत सत्यवादिनः ।

शान्ता प्रणिहितात्मानो दयावन्तो जितेन्द्रिया ॥९५॥

नि सङ्गा शुचयश्च न ब्रह्मसायुज्यया स्मृताः ।

अकामयुक्तये वीरस्तपोभिर्ह्यथकिंलिप्या ।

तेषामग्न शिनो लोका अप्रमेयसुखा स्मृता ॥९६॥

एतद्ब्रह्मपद दिव्य व्योम्नि दीप्त भास्वरम् ।

गत्वा न यत्र शोचन्ति ह्यमरा ब्रह्मणा सह ॥९७॥

करमादेय पराद्धश्च ब्रह्मण पर उच्यते ।

एतद्ब्र दितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ॥९८॥

शृणुष्व मे पराद्धश्च परिसंस्था परस्य च ।

एक दश सत्तमश्च सहस्रश्च ब्रह्मण्यथा ॥९९॥

विज्ञ यमासहस्रन्तु सहस्राणि दशायुतम् ।

एव शतसहस्रन्तु नियुत प्रोच्यते बुधैः ॥१००॥

तथा शतसहस्राणामर्बुद कोटिरुच्यते ।

अर्बुद दशकोट्यस्तु स्रग्ज कोटिगत विदुः ॥६५॥

सहस्रमपि कोटीना खर्वगाह्वर्मनीपिणः ।

दशकोटिसहस्राणि निखर्वमिति त विदुः ॥६६॥

वीतराग-क्रोध को जीतने वाले-पोह से रहित-सत्य बोलने वाले-धान्य
 लालित आत्मा वाले-दया से पूर्ण-द्वन्द्वियों को जीतने वाले-राग से हीन
 ॥ गुणि ब्रह्म सायुज्य को प्राप्त होने वाले कहे गये हैं । निष्काम नपों से युक्त
 ॥ धीर होते हैं वे उन तपों से पापों को दाय कर देने वाले हो जाते हैं उनके
 ॥ भ्रष्ट रहित धीर अप्रमेय युक्त से अन्विष्ट कहे गये हैं ॥६६-६७॥ यह
 ॥ स्थान परम दिव्य धीर व्योम मे आस्वर रहता है जहाँ पर जाकर ब्रह्मा के
 ॥ अप शीघ्र नहीं किगा करते हैं ॥६८॥ ऋषियों ने कहा—यह परार्द्ध किस
 ॥ कारण से है और यह पर कौन कहा जाता है । हम अब यह जानना चाहते हैं
 ॥ तो हे श्रेष्ठतम । यह हमसे कहो ॥६९॥ श्री सूतजी ने कहा—आप लोग मुझसे
 ॥ परार्द्ध के विषय में श्रवण करो और पर की परस्मय्या भी सुन लो । एक-दश-
 ॥ शत और सत्या से सहस्र तक जानना चाहिए ॥७०॥ वक्ष सहस्र का प्रयुक्त होता
 ॥ है । शत सहस्र का एक नियुक्त कुत्रो के द्वारा कहा जाता है ॥७१॥ उसी प्रकार
 ॥ से एक शत सहस्रों का अर्बुद कोटि कहा जाया करता है । दश कोटियों को
 ॥ अर्बुद कहते हैं और ती करोड़ को स्रग्ज कहा जाता है ॥७२॥ एक सहस्र
 ॥ कोटियों को मनीषीवश खर्व कहते हैं । वक्ष सहस्र करोड़ों को निखर्व कहते
 ॥ हैं ॥७३॥

शत कोटिसहस्राणा शङ्कुरित्स्त्रिभिधीयते ।

सहस्रन्तु सहस्राणा कोटीना दशधा पुनः ।

गुणितानि समुद्र वै प्राहुः सख्याविदो जनाः ॥७४॥

कोटीना सहस्रमयुतमित्यय मध्य उच्यते ।

कोटि सहस्रनियुक्ता स चान्त इति सञ्ज्ञित ॥७५॥

कोटिकोटिसहस्राणि परार्द्ध इति कोट्यन्ते ।

परार्द्धं द्विगुणश्चापि परमाह्वर्मनीपिणः ॥७६॥

शतमाहु परिदृढ सहस्र परिपथकम् ।
 विनयमयुत तस्मान्निभुत प्रभृत तत ॥१००
 धनु ॥ निरु दन्ध व स्रवु दन्ध तत स्मृतम् ।
 दवन्ध व नितवन्ध स्रष्टु पथ तयव च ॥१०१
 समुद्र मध्यमन्ध व पराद्ध मपर तत ।
 एवमष्टादशतानि स्थानानि गणनाविधौ ॥१०२
 शतानीति विजानीयात् सञ्चितानि महर्षिभि ।
 कल्पसरया प्रवृत्तस्य पराद्ध ब्रह्माण स्मृतम् ॥१०३
 तावच्छेषोऽपि कालोऽस्य तस्यान्ते प्रतिसृज्यत ।
 पर एव पराद्ध च सख्यात सख्यया मया ॥१०४

सो सहस्र करोड़ों को स्रु—इस नाम ॥ कहा जाता है । सहस्रों करोड़ों के सहस्र को फिर बसकर गुणित कर देने पर सख्या के वेता लोग उसे समुद्र इस नाम से कहते हैं ॥१००॥ कोटियों का सहस्र समत है—यह मध्य कहा जाता है । कोटि सहस्र निभुत जो है वह अत—इस सत्ता बाधा होता है कोटियों के कोटि सहस्र पराद्ध इस नाम से कहा जाता है । पराद्ध का दुगुना भी मनी मियों के द्वारा परत कहा जाता है ॥१०१॥ अत को परिदृढ कहते हैं और सहस्र को परिपथक कहते हैं । उससे प्रभृत जानना चाहिए और फिर नियत तथा प्रभृत होता है ॥१॥ धनु द—निरु द और स्रु द कहा गया है । दव—नितव और फिर स्रु तथा पथ कहा जाता है ॥१॥ १॥ समुद्र और मध्यम और इसके पश्चात् पराद्ध होगा है । इस तरह से इस गणना की विधि के बढाव स्थान होते हैं ॥१॥ २॥ शतानि—यह जानना चाहिए जोकि धनीयियों के द्वारा संज्ञा दाने हुए हैं । कल्प सख्या से प्रवृत्त उस ब्रह्मा का पराद्ध कहा गया है ॥१॥ ३॥ उतना उतका योग काल भी उसके अत से प्रति बृद्ध किया जाता है । यह पर और पराद्ध देने सख्या ॥ बिना हुआ किया है ॥१॥ ४॥

यस्मादस्य पर वीर्य परमायु परज्यपः ।

परा शक्ति परी धर्म परा विद्या परा धृति ॥१०५॥

पर ब्रह्म पर ज्ञान परमेश्वर्यमेव च ।

तस्मात्परतर भूत ब्रह्माणोजन्यन्न विद्यते ॥१०६॥

परे स्थितो ह्येष पर सर्वार्थेषु तत् परः ।

सख्यातस्तु परो ब्रह्मा तस्याद्वं तु पराद्वंता ॥१०७॥

सख्येय चाप्यसख्येय सतत चापि त त्रिकम् ।

सख्येय सख्यया दृष्टमपाराद्वं द्विभाष्यते ॥१०८॥

राशौ दृष्टे न सख्यास्ति तदसख्यस्य लक्षणम् ।

आनन्त्य सिकताख्येषु दृष्टवान् पञ्चलक्षणम् ॥१०९॥

ईश्वरैस्तत्प्रसख्यात धुब्धत्वादिब्यवृष्टिभिः ।

एव ज्ञानप्रतिष्ठत्वात् सर्वं ब्रह्मानुपश्यति ॥११०॥

एतच्छ्रुत्वा तु ते सर्वे नैमिषेयास्तपस्विनः ।

वाष्पपर्माकुलाक्षास्तु प्रहर्षाद्गदगदस्वरा ॥१११॥

पप्रच्छुर्मातरिश्वान सर्वे ते ब्रह्मवादिनः ।

ब्रह्मलोकस्तु भगवन् यावन्मात्रान्तरं प्रभो ॥११२॥

योजनाप्रेण सख्यातः साधनं योजनस्य तु ।

क्रोशस्य च परीमाणं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥११३॥

जिस कारण से इगकी पर बीर्य है—परम आयु—परम तप—परा शक्ति—पर धन—परा मित्रा—परा वृत्ति—परम ब्रह्म—परम ज्ञान और परम ऐश्वर्य होता है उससे परतर भूत होता है जोकि ब्रह्म से अन्यत् कोई नहीं है ॥१०५-१०६॥ पर मे स्थित यह पर है और समस्त शर्षों मे पर है उससे पर ब्रह्म सख्यात होता है और उसका अद्वं ही पराद्वंता होती है ॥१०७॥ सख्या करने के योग्य और सम्मान करने के भी योग्य सर्वदा उस निक को सख्या से सख्या करने के योग्य देखा है जो अपराद्व से निभापित किया जाता है ॥१०८॥ राशि के देखने पर सख्या नहीं है वह असख्य का लक्षण है । सिकता नाम वाली का पञ्च लक्षण वाला आनन्त्य देखा है ॥१०९॥ दिव्य दृष्टि वाले ईश्वरो के द्वारा धुब्ध होने से यह प्रसख्यात है । इस प्रकार से ज्ञान प्रतिष्ठ होने से सब ब्रह्म का अनुदर्शन करता है ॥११०॥ यह श्रवण कर वे सब नैमिषेय तपस्वी लोग वाष्पो

से आदुल ननो वाले प्रवृष्ट हृष से मन्द स्वर बाल हाथों से ॥१११॥ उन समस्त ब्रह्म बान्धियों ने वायुदेव से पूछा—हे प्रभो ! तू भगवान् ! ब्रह्मलोक जितना अन्तर्धान है वह योजनाव से सम्पादन किया क्या है । योजना का साधन और कोस का परीमाण उत्तम पूवन हम सोच सुनने की इच्छा करते हैं ॥११२ ११३॥

तथा तद्वचन श्रुत्वा मातरिभ्या विनीतवाक ।

उवाच मधुर वाक्य यथादृष्टं यथाक्रमम् ॥११४

एतद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व मे विवक्षितम् ।

अभ्यस्ताब्धस्तभागो यो महास्थूलो विभाप्यते ॥११५

दशव महता भागा भूतादि स्थूल उच्यते ।

दशभागाधिक चापि भूनादि परमाणुक ॥११६

परमाणु सुसूक्ष्मस्तु भावग्राह्यो न चक्षुषा ।

यदमेघतम लोके विज्ञेयं परमाणु तत् ॥११७

जालान्तरगतं जालोर्वत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।

प्रथमं तत्परमाणूनां परमाणुं प्रवक्षते ॥११८

अष्टांशं परमाणूनां समवायो यदा भवेत् ।

असरेणुं समाख्यातस्तत्पथरजं उच्यते ॥११९

असरेणुवच्च येऽप्यष्टौ रश्मरेणुस्तु स स्मृतः ।

तेऽप्यष्टौ समवायस्था जालाश्च तत्स्मृतं बुध ॥१२०

बालाग्राप्यष्टं लिप्ता स्यात्तू का तच्चाष्टकं भवेत् ।

यूकाष्टकं या प्रादुरङ्गं सन्तु यवाष्टकम् ॥१२१

उनके उस वचन का व्यवहार कर विनीत वचन वाले वायुदेव जसा भी देखा है उसे यथाक्रम से मधुर वाक्य कहने लगे ॥११४॥ वायु ने कहा—यह मैं आपको बतला दूंगा मेरे विवक्षित की आप सुनिये । अभ्यस्त भाग निश्चय ही महान् स्थूल विभापित होता है ॥११५॥ महलों के दश ही भाग हैं । भूतादि स्थूल कहा जाता है । दश भागों से अधिक भी भूतादि परमाणुक होता है ॥११६॥ परमाणु बहुत ही सूक्ष्म होता है और वह भावग्राह्य है चक्षु के द्वारा

प्राप्त नहीं होता है । जो लोक मे अश्रेष्ठतम होता है उसी को परमाणु जानना चाहिए ॥११७॥ भानु के जान के अन्तर्गत जो सूक्ष्म रज के कण दिम्बसाई देते हैं । प्रथम उसके प्रमाण वालों को परमाणु कहते हैं ॥११८॥ घाठ परमाणुओं का समवाय जब हो जाता है तो उसे प्रसरेणु इस नाम से समाख्यात करते हैं यह पद्मरज कहा जाता है । घाठ प्रसरेणुओं का रश्मरेणु कहा जाता है । घाठ रश्मरेणुओं का जब समवाय होता है तो बुधों के द्वारा बलाग्र कहा गया है ॥११९ (२०॥ घाठ बलाघाओं का एक जिष्ठा और घाठ जिष्ठाओं का एक यूका होती है । घाठ यूकाओं का एक यक्ष और घाठ यक्षों का एक अगुल होता है ॥१२१॥

द्वादशागुलपर्वारिणि वितस्तिस्थानमुच्यते ।
 रत्निद्वागुलपर्वारिणि विज्ञेयो ह्येकविंशति ॥१२२॥
 चत्वारि विंशतिर्ब्रज हस्त स्यादगुलानि सृ ।
 किङ्कुट्टिरत्निर्विज्ञेयो द्विचत्वारिंशदगुल ॥१२३॥
 पञ्चावत्यगुलम्ब्रज धनुराहुर्मनीषिण ।
 एतद्गव्यूतिसख्याया पादाना धनुष स्मृत ॥१२४॥
 धनुर्दण्डो युग नाली तुल्यान्येतान्यथागुलैः ।
 धनुषस्त्रिंशत नत्वमाहु सख्याविदो जना ॥१२५॥
 धनु सहस्रं द्वे चापि गव्यूतिरुपदिश्यते ।
 अष्टौ धनु सहस्राणि योजनन्तु विधीयते ॥१२६॥
 एतेन धनुषा चैव योजन तु समाप्यते ।
 एतत्सहस्रं विज्ञेय शककोशान्तरन्तथा ॥१२७॥
 योजनानान्तु सख्यात सख्याज्ञानविशारद ।
 एतेन योजनाग्रेण शृणुध्व ब्रह्मणोऽन्तरम् ॥१२८॥
 महीतलात्सहस्राणा क्षताद्दूर्ध्वं दिवाकर ।
 दिवाकरात्सहस्रेण तावद्दूर्ध्वं निशाकर ॥१२९॥
 पूर्णं शतसहस्रन्तु योजनाना निशाकरात् ।
 नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्ठात्प्रकाशते ॥१३०॥

द्राघ्य धनुषो के पर्वों का एक वितस्ति होता है । ओरि पर्वो मे द्वारा वितस्ति स्थान कहा जाता है । इसकीस धनुषा का एक पर्व जानना चाहिये ॥१२२॥ चौबीस धनुषो का एक हुस्त होता है । दो रात्रियो का जिसम बया सौस धनुष हुमा करते हैं एक निष्कृ होना है ॥१२३॥ अमानवे धनुष वाला जो होता है उसे मनीषी ओम एक धनु कहते हैं । यह गम्भूति सख्या म पादो का कहा गया है ॥१२४॥ दो धनुषद्वय वाला नीषी है जसे धनुषो के तुल्य है । तीनसी धनुषो का नव सख्या के विद्वान् जन कहते हैं ॥१२५॥ दो सहस्र धनुषो का एक गम्भूति कहा जाता है । याठ सहस्र धनुषो का एक योजन होता है ॥१२६॥ इस धनुष से योजन समाप्त किया जाता है । यह जब एक सहस्र हों तो शक क्रोशान्तर होना है ॥१२७॥ इसका मे शान रजने वाले परिणतो के द्वारा योजनो की सख्या की गई है । इस योजनात् से सख्या का अन्तर यथार्थ करो ॥१२८॥ महीतक से सौ सहस्र ऊपर दियाकर होता है । दियाकर से सहस्र ऊपर निधा कर होना है ॥१२९॥ निधाकर से ऊपर एक पूरे सौ सहस्र समस्त ताराग्रहों का गणन महान होता है ओरि प्रकाश करता है ॥१३॥

शत सहस्र सख्यातो मेरुद्विगुणित पुन ।
 प्रहान्तरमथककमूद्व्य नदात्रमच्छलात् ॥१३१॥
 ताराग्रहाणा सर्ज्वामथस्ताञ्जरते शुभ ।
 तत्स्योदूर्ध्वञ्जरते शुक्लस्तस्मादूर्ध्व च लोहित ॥१३२॥
 एतो बृहस्पतिओदूर्ध्व तस्मादूर्ध्व सनश्चर ।
 ऊद्व्य शतसहस्रान्तु योजनाना धनञ्जरात् ॥१३३॥
 समपिमण्डल कृत्स्नमुपरिष्ठात्प्रकाशते ।
 अविमिस्तु सहस्राणां शतदूर्ध्व विमान्यते ॥१३४॥
 योऽसौ तारामये दिव्ये विमाने ह्रस्वरूपके ।
 उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढिभूतो ध्रुवो दिवि ॥१३५॥
 प्रलोन्मस्य च उत्सेधो व्याख्यातो योजनमया ।
 मन्दन्तरेषु देवानामिध्या यन्त्र लौकिकी ॥१३६॥

वर्णाश्रमेभ्य इज्या तु लोकेऽस्मिन्या प्रवर्तते ।

सर्वेषा देवयोनीना स्थितिर्हतु स वै स्मृत ॥१३७

त्रैलोक्यमेतद्व्याख्यातमत ऊर्ध्वं निबोधत ।

ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यस्मिन्ते कल्पवामिन ।

एकयोजनकोटौ सा इत्येव निश्चय गतम् ॥१३८

श्री महर्षि सत्या ने येरु त्रिगुणिन बनाया गया है । यहाँ सा एक-तरफ से ऊपर मक्षत्र मण्डल में स्तुत होना है ॥१३७॥ समस्त सागरप्रभों के नीचे के भाग में पृथ्वी रहता है । उसके ऊपर ध्रुव है और उसने ऊपर लोहित वर्ण करता है ॥१३८॥ उससे ऊपर बृहस्पति और उसमें ऊपर धर्मेस्वर होता है । धर्मेस्वर से श्री महर्षि योजन ऊपर मक्षत्रियों का मण्डल हुआ करता है जोकि पूर्ण रूप से प्रमाणित हुआ करता है । ऋषियों ने श्री महर्षि ऊपर ह्रस्वस्वरकृत दिव्य सागरमय विमान में जो यह भेदिभूत उत्तानपाद राजा का पुत्र ध्रुव धिप में प्रकाशित होता है ॥१३३-१३४-१३५॥ मैंने यह त्रैलोक्य का उत्तम (ऊँचाई) व्याख्यात कर दिया है अर्थात् गुनामा बतला दिया है जोकि योजनो द्वारा होता है । मन्वन्तरों में जहाँ पर ही लोहिकी देवी की इज्या होती है ॥१३६॥ जो इज्या यहाँ लोह में वर्णाश्रमों में प्रवृत्त हुआ करती है । समस्त ऐव योनि वालों की वह ही स्थिति का हेतु बतलाया गया है ॥१३७॥ मैंने यह इन तरह त्रैलोक्य की व्याख्या करदी है अब हमने आगे समझलो । ध्रुव से ऊपर महर्षि है जिसमें कि वे कल्पवामी रहते हैं । वह एक कोटि योजन है यही प्रकार निश्चय किया गया है ॥१३८॥

द्वे कोट्यौ तु महर्लोकास्मिन्ते कल्पवासिन ।

यत्र ते ब्रह्मण पुत्रा दक्षात्ता साधका स्मृता ॥१३९

चतुर्गुणोत्तगद्गर्ध्वं जन लोकात्तप स्मृतम् ।

वैराजा यत्र ते देवा भूतदाहविर्ब्रजिता ॥१४०

पद्गुणान्तु तपोलोकात्सत्यलोकान्तर स्मृतम् ।

अपुनर्मर्गकामाना ब्रह्मलोक स च्यते ॥१४१

यस्मात् न्यवसे भूयो ब्रह्माणं स उपासते ।
 एककोटियोजनां पञ्चासन्नियुतानि तु ॥१४२॥
 ऊर्ध्व भागस्ततोऽर्धस्य ब्रह्मासावात्पर स्मृत ।
 चतुरध्वं व कोट्यस्तु नियुता पञ्चपष्टि च ॥१४३॥
 एषोऽर्धशप्रचारोऽस्य गत्यन्तश्चापर स्मृत ।
 प्र वाग्रमेतद्व्याख्यात योजनाश्चाद्यथाश्रुतम् ॥१४४॥
 अधोगतीनां वक्ष्यामि भूतानां स्थानकल्पनाम् ।
 गच्छति धोरकर्मणि प्राणिनो यत्र नम्मति ॥१४५॥
 नरको रौरवो रोध सूवरस्ताल एव च ।
 सप्तकुम्भो महाबाल गवतोऽप्य विमोचन ॥१४६॥
 कुम्भी च कुम्भिभ्यश्च लालाभक्षो विजयन ।
 अथ शिरा पूयबहो रुधिराधस्तमैव च ॥१४७॥
 तथा बतरणं कृष्णमसिपत्रवन तथा ।
 अग्निज्वालो महाधोर सदसोऽप्य अभोचन ॥१४८॥
 तमश्च दृग्गुसूत्रश्च लोहप्राप्यसिजस्तथा ।
 अप्रतिष्ठोऽप्य वीक्ष्यमनरता ह्य दमादय ॥१४९॥

ब्रह्मलोक से दो कोटि ऊपर जहाँ से रथ पयन्त वात करने वाले हैं श्री
 जहाँ ब्रह्मा के पुत्र बल प्रावि वाचक कहे गये हैं ॥१३९॥ जनलोक से चतुर्गुण
 ऊपर तपोलोक गताया गया है जहाँ पर बराब देव रहते हैं जोकि भूत बाह
 रहित रहा करते हैं ॥१४॥ तपोलोक से बह गुण ऊपर सत्यलोक का प्रान्त
 होता है । जो अपुनर्मरको का ब्रह्मलोक कहा जाता है ॥१४१॥ जहाँ से कि
 कोई भी ज्यवन नहीं किया करता है और वह ब्रह्मा की उपासना किया करता
 है । एक करोड़ योजना और पचास नियुत ऊपर उससे अरुण का भाग है व
 ब्रह्मलोक से भी पर कहा गया है चार कोटि और बैसठ नियुत है ॥१४२॥ १४३
 इसका यह अर्धार्ध प्रचार अपर गत्यन्त कहा गया है । ॥१४४॥ जसा भी सुना गय
 ॥ योजनाप्र से मुवाच की व्याख्या करती गई है ॥१४५॥ अब अधोगति वाले
 प्राणियों की स्थान कथना की जतलाता है । जहाँ पर धोर कर्म करने वाले

प्राणीगण अपने कर्मों के द्वारा जाया करते हैं ॥१४४-१४५॥ नरको के नाम ये हैं— रौरव—रोध—भूशङ्ख—ताल—भक्तकुम्भ—महाज्वाल—अवल- विमोचन—वृषी—वृषि-भक्त—लालाभक्त—विश्वमन—अविभिन्न—पृथक्—रघिगघ—रैतरण—वृष्ण—अभि-पन्न-वन—अग्निज्वाल—महघोर—सदश—अभोजन—तम—कृष्णमूत्र—लोह—अग्निज—अप्र-तिष्ठ—वीर्यश्व उस प्रकार से ये नरक होते हैं ॥१४६॥ १४६॥

तामसा नरका सर्वे यमस्य विषये म्विता ।

येषु कुङ्कतकर्माण पतन्तीह पृथक्पृथक् ॥१५०॥

भूमेरवस्ताले सर्वे रौद्रवाद्या प्रकीर्तिता ।

रौरवे कूटसाक्षी तु मिथ्या यश्चाभिगमति ।

क्रूरग्रहे पक्षवादी ह्यस्तस्य पतते नर ॥१५१॥

रोधे गोघ्नो भूशङ्ख च ह्यग्निदाता पुरस्य च ।

सूकरे ब्रह्महा मज्जेत्सुराप स्वर्णतस्कर ॥१५२॥

ताले पतेत्क्षत्रियहा हत्वा वैश्यश्च दुर्गतिम् ।

ब्रह्महत्याश्च यः क्रूरश्चिश्च स्यादगुरुतल्पग ॥१५३॥

सप्तकुम्भी स्वसागामी तथा राजभटश्च यः ।

तप्तलोहे चाश्ववणिकतथा बन्धनरक्षिता ॥१५४॥

साध्वीविक्रमकर्ता च यस्तु भक्त परित्यजेत् ।

महाज्वाले दुहितर स्नुषा गच्छति यस्तु वै ॥

ये समस्त तामस नरक यमराज के देण में स्थित होते हैं । उन नरको में जो पाप कर्मों के करने वाले पृथक् होते हैं वे अपने अपने कृत कर्मों के अनुसार पृथक् पृथक् पतित होते हैं ॥१५०॥ वे सब नरक भूमि के नीचे भाग में रौरव आदि होते हैं । जो कूटसाक्षी अर्थात् भूठी गवाही देने वाला है और सर्वथा मिथ्या बोलता है वह क्रूरग्रह रौरव नामक नरक में मिथ्यावादी तथा पक्ष में बोलने वाला जाकर गिरता है ॥१५१॥ रोध नामक नरक में गौ की हत्या करने वाला तथा भूशङ्ख काटने करने वाला और नगर में आग लगाने वाला जाया करता है । ब्रह्मण का वध करने वाला सूकर में गिरता है । सुगमन करने वाला और स्वर्ण का चुराने वाला ताल नाम वाले नरक में गिरता है । क्षत्रिय

का हवन करने वाला तथा वध की दुवति करने वाला और जो ब्रह्महत्या करता है एवं जो गुरुपत्नी का गमन करता है वह तप्तकुम्भ नरक में जाता है । स्वसा का गमन करने वाला और जो राजघट होता है वह और धम्भी का बेचने वाला तथा बन्धन रक्षिता ये सब तप्तसोह नामक नरक में पतन प्राप्त किया करते हैं ॥१५२ १५३ १५४॥ स्वाम्भी के विषय वरम वाला और भक्त का परित्याग कर देता है तथा पुत्री एवं स्तुपा का गमन किया करता है वह महा ज्वाल नाम वाले नरक में गमन करके पापी के पक्ष में भीषण है ॥१५५॥

वेदो विभीषत येन ईद दूषयत च य ।

गुरुश्च वादमयन्ते वाक्क्रोशस्ता ड्यन्ति च ॥१५६॥

प्रमम्यगामी च नरो नरक शबल व्रजेत् ।

विमोहे पतिते चोरे भयादा यो भिनत्ति च ॥१५७॥

दुरध्व क्रुशते यस्तु कीटलोह प्रपद्यते ।

वेवचाह्वयविद्व द्वा गुरुणाचाप्यपूजक ।

रत्न दूषयते यस्तु कृमिमक्ष्य प्रपद्यते ॥१५८॥

पम्यन्नाति य एकोऽप्यो ब्राह्मणी सुहृद मुतात् ।

जालाभक्षे स पतति दुग्धे नरके गत ॥१५९॥

काण्डकर्ता कुसालश्च निष्कहर्ता विक्रिस्वक ।

भारामेष्वग्निदाता य पतते स विशसने ॥१६०॥

असत्प्रतिग्रही यश्च तन्वाभ्याज्ययाजक ।

नक्षत्रर्जीविशो यश्च नरो गच्छत्यधोमुखम् ॥१६१॥

बिसरे द्वारा वेदो का विक्रय किया जाता है और जो वेदो को दूषित किया करता है तथा गुरुणा का भी अपमान करता है एवं वाक्क्रोशो के द्वारा जो हाड़ना किया करते हैं एवं अन्नभ्या गमन करते हैं वे सभी शबल नामक नरक में जाया करते हैं । और विमोह नाम के पतित होते हैं और जो भयानक को सोढते हैं वे भी उषी नरक में जाते हैं ॥१५६ १५७॥ जो दुरध्व करता है वह कीटलोक नरक में जाता है । वेवो-ब्राह्मणों का डूब करने वाला तथा गुरुओं की पूजा न करने वाला और जो रत्न को दूषित किया करता है वह कृमिमक्ष्य

नामक रत्न में प्राप्त हुआ है ॥११८॥ जो एक धन्य राजागो श्री गुरु
की पुत्री का उपासक बनता है वह दुष्टों से बचता है और अनेक नामक रत्न का धारक
होता है ॥११९॥ राजेश्वरी-कुम्हार-निष्ठ राजा गुरु रत्न प्राप्त करता है तथा
विदित है कि वह रत्न का नाम है 'गुरु' नाम से प्राप्त करने वाला व्यक्ति जो होता है वह
विगत नाम धारण करने वाला है ॥१२०॥ अथ गुरु के प्रतिपद का नाम
प्राप्त होकर उनी शक्ति से जो राजा के समान है उगाया जाता है राजा नाम
तथा रत्न के द्वारा जो जीवित करता है अथवा गुरुक वशतिना मनुष्य
होता है वह समोदर नामक रत्न में जाता है ॥१२१॥

श्री गुरु च नाम च साक्षा गन्ध मन्त्रितान् ।

एवमादीनि विक्रीणुषोऽपि पूययन् पतन् ॥१२२॥

यः कुम्हारानि वदन्ति मार्जान्मूरगाश्च तान् ।

पक्षिणाश्च मृगाश्चान्मोक्षयेत् नरकं वजेत् ॥१२३॥

प्राजीविको माहिषवस्तथा चक्रध्वजी च यः ।

अक्षोपजीविको विप्रः प्राकृतिग्राम याजकः ॥१२४॥

अथारवाही गन्धः कुण्डाशी सोमविहारी ।

सुरापो मन्मथश्च तथा च पशुघातकः ॥१२५॥

विशः (श्वः) स्ता महिषादीना मृगहन्ता सर्वत्र च ।

पर्यकारश्च मूषी च यश्च स्थान्मित्रघातकः ।

चिरान्ध्रे पतन्त्येते एवमाहुर्मनीषिणः ॥१२६॥

श्री (गुरु)-गुरु-नाम-गन्ध-मन्त्र (भुवनविषय पदार्थ)-रत्न और निम्न

की एक इस प्रकार की वस्तुओं को देने वाले व्यक्ति और पूरा वह नामक
नरक में जाकर गिरता है ॥१२२॥ जो मूर्खों को बच करता है तथा मार्जारी
की और सूकरों को-पक्षियों को-मृगों को तथा छानों को बच किया करता है
वह भी इसी नरक में गिरता है ॥१२३॥ आजीविक-माहिषिक और जो चक्र-
ध्वजी होता है-जो रक्षकों से उपजीविका करने वाला विप्र है तथा प्राकृति एवं
ग्राम याजक होता है-अथारवाही दाह करने वाला-विष देने वाला-कुर्यादशी-
सोम का विषय करने वाला-मदिश पीने वाला-मैत्र भक्षण करने वाला-

एवमपि क्रम से ॥ ब्रह्मन् विष्टे हृष्ट नरको वा समग्र सो । भूमि के नीच के भाग य सात ही नरक बहे सब है ॥१७६॥ वे अथ तामिस्तकाणि अधम के स्रुत है । रोग्य और बहा पीरक उगम प्रथम है ॥१७७॥ इसके नीच फिर भी अन्य चीनस्तक कहा गया है । तीसरा काल मूय हुआ है जो महा हृदि विधि कहा गया है ॥१७८॥ अग्रनिह घोषा और पाँचवाँ अवीची नाम वाला होता है । उनमें जोह पृथ स्तम जो अविधेय है सागर्वा होता है ॥१७९॥ घोर होने से पीरक कहा गया है और साम्प्रक बहल कहा गया है । मुग्धावृण ली कीतास्मा होता है उसके नीच अधम तप होना है ॥१८०॥ सर्व विद्वत्तम कहा गया है । बाल सून यह पाण्ड्य है । अग्रतिष्ठ ये स्थिति नहीं है उसमें मुग्धावृण भ्रम होता है ॥१८१॥ अवीचि नरक बारण्ड कहा गया है यही वह अग्न पीडित करता है । उससे भी मुग्धावृण बर्गों के सब के बारण्ड जोह नामक नरक होता है ॥१८२॥

तथाभूतो क्षरीरत्वादविधिभ्यस्तु स स्मृतः ।

पीड्यध्वघ्रासङ्गादप्रतीवारलक्षण ॥१८३॥

ऊर्ध्व क्षैलमितास्ते तु निरालोकाश्च ते स्मृताः ।

दुःखोत्पत्त्यस्तु सर्वेषु ह्यधमस्य निमित्ततः ॥१८४॥

ऊर्ध्व लोके समावेतो निरालोको य तावुमी ।

भूटाङ्गारप्रमाणश्च शरीरी भूतनायक ॥१८५॥

उपमोगसमर्थस्तु सर्वो जायति कर्मभिः ।

दुःख प्रकथञ्चोभस्व तपु सर्वेषु च स्मृतः ॥१८६॥

यातनाभ्याप्यसक्येया नारकाणां तथा स्मृताः ।

तत्रानुभूयत दुःख क्षीणे कमणि च पुनः ॥१८७॥

तियग्योनो प्रसूयन्त कमधेये गत ततः ।

देवाश्च नारकाश्च व ह्यूर्ध्व चाध्व सस्थिता ॥१८८॥

धर्माधमनिमित्तेन सर्वो जायन्ति मूर्त्तयः ।

उपमोगार्थमुरपत्तिरोपपत्तिककमतः ॥१८९॥

पदगन्ति नारकान्देवा ह्यधोवचनान् ह्यधोगतान् ।

नारकाश्च तथा देवान् सर्वान्पश्यत्यधो भुवान् ॥१९०॥

अनग्रभूलता यस्माद्वारणाश्च स्वभावतः ।
 तस्माद्दूर्ध्वमधोभावो लोकालोके न विद्यते ॥१६१॥
 एषा स्वाभाविकी सञ्ज्ञा लोकालोके प्रवर्तते ।
 अथाग्रवन्पुनर्वायु बाह्यागा सत्रिणस्तदा ॥१६२॥
 सर्वेषामेव भूतानां लोकालोकनिवासिनाम् ।
 ससारे ससरन्तीह यावन्त प्राणिनश्च तान् ॥१६३॥
 सङ्क्षयया परिसङ्क्षयाय ततः प्रब्रूहि कुरुत्मज ।
 श्रुत्वा तद्वचः श्रुत्वा मास्तौ वायममब्रवीत् ॥१६४॥

तथा भूत शरीर होने से विविध ५४ कहा गया है । पीठबन्ध और बंध के सातह होने से अग्रतीकार लक्षण वाला होता है ॥१६३॥ ने ऊपर में जैल को गये हुए तथा बिना आलोक वाले कहे गये हैं । अधर्म के निमित्त होने से सब में दुःख का उत्कर्ष हुआ करता है ॥१६४॥ ऊर्ध्व भाग में ये जीवों के समान होते हैं तथा ये जीवों निराशोक होते हैं । और कूटाकार प्रमाणों से शरीरी मूष नामक होता है ॥१६५॥ उपशोष में समष्टि कर्मों से तुरन्त ही होते हैं । उन सब में दुःखों का प्रकर्ष और उन्नता कहे गये हैं ॥१६६॥ नरकों में होने वाली पातनाएँ अमल्य कही गई हैं । वहाँ पर फिर क्षीण कर्म में दुःख का प्रशुभ किया जाता है ॥१६७॥ इसके पश्चात् नरकों के शेष रहने पर जीवतमा तिर्यक् मोक्ष में जन्म सिद्धा करते हैं । देवगण और तान्कीगण ऊपर और नीचे के भागों में सरिपत होते हैं ॥१६८॥ धर्म और अधर्म के निमित्त होने से तुरन्त भूतिमा उपपन्न ही जाती हैं । औपपत्तिक कर्म से उपशोष करने के लिये उत्पत्ति होती है ॥१६९॥ देवगण प्रवीणत और नीचे की ओर मुख करने वाले तान्की प्राणिमों की देखा करते हैं । और तान्की समस्त देवों की ओर मुख किये हुए देखते हैं ॥१७०॥ जिस कारण से अनग्रभूलता और स्वभाव से चारण होती है सबसे लोकालोक में ऊर्ध्वभाव तथा अधोभाव नहीं होता है ॥१७१॥ लोकालोक में यह स्वाभाविकी सञ्ज्ञा होती है । इसके अनन्तर उस समय में शत्रु करने वाले प्राणिमों ने फिर वायुदेव कहा—॥१७२॥ श्रुत्वा तौ ने कहा—लोकालोक के निवास करने वाले सभी प्राणिमों में से वहाँ ससार में जितने प्राणी समस्त

विभु होने के कारण वह भोग की अग्नि वाला प्रभु ब्रह्म के अनुग्रह में रत रहते हैं। वे लोक विग्रह होकर सहायता दिया करते हैं ॥२१७॥ उस ईश्वर के धरर ध्रुव-अव्यय-अहम औपसर्गिक परम मायामय यमात्र स्थापन हैं ॥२१८॥ महेश्वर देव माया से मुक्त हैं और माया के द्वारा ही सब कुछ किया करते हैं। देवों का उच सहार भी इसी प्रकार दिया करते हैं। उसका प्रमाण अथ कहा जा रहा है। मैं बिस्तार के साथ उसे पालुपूर्वी से कहता हूँ। आप लोग उसे मुझसे जान लें। इस भूलोक से ब्रह्मलोक जमीनवा मोटि तथा पद्मह नियुग योगनो से मुक्त कहा जावा करता हूँ ॥२१९॥२२॥ इस ब्रह्म लोक से भी ऊपर एक करोड़ पचास नियुग योजन आगमताशु स्थित है ऐसा कहा गया है ॥२२१॥ यह इनसे ऊपर समन करने वाला प्रकार है और वहाँ गति का अन्त होता है ऐसा बताया गया है। परस्पर से गुणों के आप्यम जो है वे निष्प हैं और अपरिस्तरयेव होते हैं ॥२२२॥ प्रसव के वम वाली जो प्रकृतियाँ हैं वे परम सूक्ष्म हैं जिनमें अचिक्ता ब्रह्म ही सत्ता वाला क्षेत्र उत्पन्न होता है ॥२२३॥

तासु प्रकृतिमसूक्ष्ममधिष्ठातृत्वमव्ययम् ।

अनुत्पाद्य परधाम परमाणु परसेयम् ॥२२४॥

अक्षयश्चाप्यनुहृद्यश्च अमूर्तिमूर्तिमानसौ ।

प्रादुर्गमस्तिरोभाव स्थितिश्च बाप्यमुपह ॥२२५॥

विधिरन्यरनीपम्य परमाणु महेश्वर ।

सतेजा एष तमसो य परस्तात्प्रकाशक ॥२२६॥

यदण्डमासीत्सौवर्णं प्रथमन्त्वोपसर्गिकम् ।

बृहत् समतोवृत्तमौश्वराढ्यवजायत ॥२२७॥

ईश्वरदाद् बीजनिर्मद क्षेत्रज्ञो बीज इष्यते ।

यानि प्रकृतिमाचष्टे सा च नारायणात्मिका ॥२२८॥

विभुर्लोकस्व सृष्टयश्च लोकसंस्थानमेव च ।

सप्तिसय स तन्वा च लोकपालमहात्मन ॥२२९॥

पुरस्ताद्व्रतानोक्तस्य च्यवत्तद्विनिवृत्तम् ।

तयोर्मध्ये पुर दिव्य स्थान मरय मनोगमम् ॥ २३०

तद्विग्रहवत् स्थानमीश्वरस्यागितीजम् ।

क्षिप्र नाम पुर तत्र क्षत्रम् जन्मभीरुताम् ॥ २३१

उक्त प्रकृति प्राप्ति गुरु मय अत्यन्त भविष्यन्ता होता है । यह पुर-
मात्र परमेश्वर परमात्म मनुष्यात्म के साम्य होता है ॥२२८॥ यह क्षम में रहित-
कटा करने के अथोक्त स्थित भूति प्राप्त और यह भूतिप्राप्त है जिसका
कारिणी और तिरोभाव तथा स्थिति भी एक प्रकार का अनुभव ही होता
है ॥२२९॥ यह पुरमात्र भवेद्यत्र भक्तों के द्वारा अनुभव विधि होता है । यह
उक्त पुरमात्र प्रकाश करने वाला वेद से युक्त होता है ॥२३०॥ जो यह प्रथम
पौरुष तत्र श्रीगणेशक भक्त होता है । सभी और में वृत्त और पुरमात्र
यह ईश्वर से उत्पन्न हुआ था ॥२३१॥ ईश्वर में वीज का निर्भय होता है ।
जो क्षेत्र होता है वही वीज होता है । प्रकृति को वन वीज को भावना करने
पानी मोनि प्रकाश जाता है और यह भी मायात्म के रूप में बली होती
है ॥२३२॥ विष्णु ने मोनि की वृत्ति के निम्न लोक सम्मान किया है मोनि के
भावा उक्त पुरमात्र के क्षेत्र से ही का निर्माण होता है ॥२३३॥ अतः पहले
ज्ञाता होता है और फिर प्रकाश का अन्त है । इन दोनों के साथ में पुर जिसका
मनीषा पुरमात्र दिया रहस्य होता है ॥२३४॥ अतः विनिवृत्त वीज पाते विग्रहप्राप्ति
उक्त ईश्वर का रक्षण है । यह क्षिप्र नाम पावा पुर है वीज पुरमात्र पर जन्म
मरण के भय से भी न भीषी की रक्षा होती है अतः वही क्षिप्र नाम अन्त
क्षेत्र है ॥२३५॥

राक्षसाणां क्षत भूयै योजनानां द्विजोत्तमा ।

अत्यन्तरं तु विरतीर्णं महीगण्डतरस्थितम् ॥ २३६

मध्याह्नाह्निकप्रकाशेन पञ्चोदयमिविना ।

क्षताकीर्णभेन महता प्राकारेणाबन्धयन्ता ॥ २३७

द्विरक्षतुर्भि रौवर्ण्यं कृत्वापामविभूषितं ।

तपनीयनिर्भे शुभ्रैर्मणि सुकृतवेष्टनम् ॥ २३८

तन्वावाणे पुर रम्य दिव्य घष्टादिनान्तिम् ।
 न तत्र जमते मृत्युन तपो न जरा धमा ॥२३५॥
 न हि तस्म परस्यान्यरूपमा कतु महति ।
 सहस्राणां शत पूरा योजनानां दिना दश ॥२३६॥
 तत्पर गोवृषाङ्गस्य तेजसा याप्य तिष्ठति ।
 भावेन मनसो भूमिर्विन्यस्ता वनकामयी ॥ २३७॥
 रत्नवालुकया तत्र विन्यस्ता गुग्गुमेऽधिकम् ।
 शारदेन्दुप्रकाशानि बालसूयनिभानि च । २३८॥
 अक्षय्यं च ताक्षक रक्तानि सौवर्णानि तथैव च ।
 रथचक्रप्रमाणानि मासमरकतप्रभ ॥ २३९॥
 सौकुमारेण स्येण गन्धिनाप्रतिमेन च ।
 तत्र दिव्यानि पद्मानि वनेपूषवनेषु च ॥ २४०॥
 भृङ्गपत्रनिकाशानि तपनीयानि धानि च ।
 अक्षय्यं कृष्णाक्षं रक्तानि सुकुमारास्तराणि च ॥ २४१॥
 घातपत्र प्रमाणानि पङ्कज सवृतानि च ।
 भूय सप्त महानद्यस्तासां भामानि बोधत ॥ २४२॥
 वरा वरेभ्या वरदा वरार्हा वरवर्णिनी ।
 वरमा वरभद्रा च रम्यास्तस्मिन्पुरोत्तमे ॥ २४३॥
 पद्मोत्पदलोमिथ केनास्तावत्सर्वविग्रहम् ।
 जल मण्डपप्रस्थमावहन्ति सरित्वरा ॥२४४॥

हे द्विजोत्तमो । वह सी सखल योजनो से पूर्ण है । उससे आदर एवं परम
 निस्तीर्ण महीमण्डल वसित होता है ॥२३२॥ भव्याह्न के सूर्य के प्रकाश
 का भी अभिमदन करने वाला वहा तेज का प्रकाश है । इसका सुवर्ण का
 विशाल प्राकार होता है जो भूय के वनस वीर्य है ॥२३३॥ सुवर्ण निर्मित
 चार उससे द्वार हैं जो कि मुक्तमो की भाषामो से समस्त कृत हैं । सोने के
 समान परम भास्वर ज्यों से मनी अति वेष्टित है ॥२३४॥ वह पुर भयान्त
 रम्य आवास ये है जो कि घष्टानाद से निनास्ति एव अति दिव्य है । वहा

पर मृत्यु-ताप-जरा और श्रम ये कोई भी नहीं पहुँच सकते हैं । ऐसा अन्य कोई भी पुर या स्थल नहीं है जिसकी उपमा इस पुर को दी जा गके अर्थात् सारासा यह है कि यह अत्यन्त अनुपम है । दसो दिशाओं में यह सी सृष्टि मोबन तक फैला हुआ है ॥२३६॥ वह पुर गोवृषाङ्ग के दिवा तेज से व्याप्त होता हुआ सन्स्थित रहता है । मन के भाव के द्वारा वहा कनकामयी भूमि विम्वस्त की गई है ॥२३७॥ रत्नों की बासुका के द्वारा वह और भी अधिक शोभा से शोभित है । बाल सूर्य के समान क्षारदोय चन्द्र के प्रकाश वाले आधे पक्ष और आधे रक्त सुवस्त्र निर्मित जैसे वन और उपवनो में पशु हैं जिनका प्रमाण रम के चक्र के समान है और सरवत माणिकी प्रभा के तुल्य उनको नाह हैं । परम लीङ्गुमार रूप है और अप्रतिम गन्ध से युक्त हैं ऐसे दिवा पशु महा पर हैं ॥२३८॥॥२३९॥॥२४०॥ ऋग पत्र के तुल्य जो तपनीय ये वे आधे कृष्ण और आधे रक्त थे और सुकोमल अन्तर वाले थे ॥२४१॥ आतपम (धन) के प्रमाण वाले तथा पशुओं से सञ्चुत थे । अब सात जो महा नदिया हैं उनके नामों को समझ लो ॥२४२॥ महा नदियों के नाम ये हैं— वरा-वरेष्वा-वरवा-वराही-वर वाणिनी-वरमा और वरभद्रा । ये सात महानदी उस उत्तम पुर में परम रम्य हैं ॥२४३॥ ये श्रेष्ठ नदिया मणिदल के समान प्रति स्वच्छ जल के प्रवाह वाली थी वह जल पद्मोत्पल दलों से उग्मिथ था और फेन आदि आवर्त्तों के स्वरूप से युक्त था ॥२४४॥

न तु ब्रह्मर्षयो देवा नासुरा पितरस्तथा ।

न सत्वन्मयेऽप्रमेयस्य विदुरीशस्य तत्पुत्रम् ॥ २४५

तत्र ये ध्यानमव्यग्रा सुयुक्ता विजितेन्द्रिया ।

पश्यन्तीह महात्मान पुरन्तद्गोवृषात्मन ॥२४६

मध्ये पुरवरेन्द्रस्य तस्याप्रतिमतेजस ।

सुमहान्मेखसाङ्काशो दिव्यो मद्रश्रिया वृत ॥ २४७

सहस्र पाद प्रासादस्तपनीयमय शुभ ।

अनुपमेयै रत्नैश्च सर्वतः स विभूषित ॥२४८

स्फटिकेभ्य इत्यङ्गानिर्वन्द्य सामसप्रभ ।

बालसूयप्रभश्च व सौवर्ण्यस्मान्निसप्रभ ॥ १४८

राजतेभ्योऽपि सुसुभ इन्द्रनीलमय सुभ ।

रत्नैव चमयश्च व इत्येव सुमहाहित ॥ १४९ ॥

इस के उस परम सुन्दर पुर की महाविन्देव समुद्र पितर तथा
 अन्य कोई भी नहीं जानते हैं क्यों कि इस स्वयं समुद्र है अर्थात् प्रभा के
 विषय नहीं है ॥ १४८ ॥ उस मोक्षदाता प्रभु के सम पुर की ऐसे ही महा
 धारमा जाने ही पुरव देखते हैं जो ज्ञान में सदा सम्पन्न रहते हैं सुसुप्त और
 निश्चित हृदयों वाले होते हैं ॥ १४९ ॥ उस परम रमणीय अद्वैत पुर के
 मध्य में समर्पित होने वाले सब ईश्वर का भद्रभी से कृत अतिविषय और
 सुमिश्रित मेघ के सहा सहजसाह प्रसाद हैं जो परम सुभ एवं सुवर्ण के समान
 हैं । वह प्रसाद (भद्र) अनुरम रत्नों के द्वारा सभी ओर सुमिश्रित
 हैं । १५० ॥ १५१ ॥ अज्ञान के तुल्य स्फटिक मणि और सोम के सहा प्रभा
 वाली वसुधैव कुटुम्बकम् वा । मातृभूय अर्थात् माता काशीन सूर्य
 की प्रभा वाली तथा अग्नि के समान प्रभा से युक्त एवं सुवर्ण की और राजत
 (चांदी की) वस्तुओं के वह मिश्रित वा और सुभ इन्द्र नील मणिओं से
 सुन्दर बोभा से युक्त ही रह्य वा । हारी से अति परम हृदय एवं सोमा से
 सम्पन्न वह पुर वा ॥ १५१ ॥ १५२ ॥

जसञ्च विविधाकारवीं व्यङ्गिरविवासितयु ।

चन्द्ररश्मिप्रकाशानि पताकामिरतयुताम् ॥ १५३ ॥

स्वमघटानिनास्त्रञ्च नित्यप्रमुदितोत्सव ।

किसराख्यानवीनाश्च सञ्च्यञ्चकारराजितै ॥ १५४ ॥

परिवारसमन्तात्तु हेमपुष्पोदकप्रभै ।

यथा हि मेघसमेवो हेमशृङ्गविराजते ॥ १५५ ॥

चाभीकरमयीमिस्तु पताकामिस्तथा पुरम् ।

एव प्रसादराजोऽयं भूमिकामिविराजते ॥ १५६ ॥

वसन्तप्रतिमा यत्र अम्बकम्प निवेजने ।

लक्ष्मीः श्रीञ्च वपुर्माया कीर्ति शोभा मरस्वती ॥२५५॥

देव्या वै सहित्वा ह्येता रुग्मन्धममन्विता ।

नित्या ह्यपरिसङ्घघाता परस्परगुणाश्रया ।

भूषण सर्वस्ताना योन्य कान्तिविलासयो ॥२५६॥

कोटिघत भङ्गाभागा विभज्यात्मानमात्मना ।

भगवन्त महात्मान प्रतिमोदन्त्यतन्त्रिता ॥२५७॥

विभिन्न आकार जाने जन्मे मे सर्वात् जगज्जगो मे वह युक्त या जोकि
हीनमान थे । जन्ममा की क्रियाओं के मुख्य प्रकाश वाली पद्माकाशो मे वह पुर
रूपलङ्घित होकर था ॥२५१॥ मुखग क बने हुए घण्टा वहाँ पर थे जिनकी
अभिया मे मदा ही प्रमुक्ति उत्पन्नो वाला रहता है । क्रिया मे वहाँ अभिवाम
थे जो सङ्घाकाल के भेषों के समान शोभा जाने और हेम पुष्पोदक की प्रभा
से समुक्त परिचाय जाने वहाँ चारो ओर रहा करते थे । जिस तरह मेह निम्न-
राज हो उसी भाँति वह मुखग के शिरगो मे युक्त विराजमान है ॥२५२-२५३॥
मुखग की पद्माकाशो मे वह पुर जिस तरह मुखोभित था उसी भाँति यह प्रमाद
राज भी भूमिकाओं से विभूषित था । २५४॥ जहाँ पर भगवान् अम्बक के
निवेदन (आलय) मे वसन्त की प्रतिमा वाली लक्ष्मी-श्री-वपुर्माया-कीर्ति-
शोभा-मरस्वती रूप-वायश्म एवं गन्ध से समन्वित थे सब देवी के महित वहाँ
समवस्थित थी । ये नित्य तथा अपरिमङ्गल (अगणित) थीं जोकि परस्पर मे
गुणो की आनार थी । ये वसन्त प्रकार के रत्नों की भूषण तथा कान्ति और
विलास की मोनिर्या थी ॥२५५-२५६॥ ये महान् भाग वाली आत्मा से आत्मा
की विभजन करके सङ्को कण्ठ थी जोकि अतन्त्रित होकर सर्वात् प्रति समाहित
होती हुई महान् तम भगवान् को प्रतिमोहित किया करती है ॥२५७॥

ताभा सहस्रशस्त्रान्या पृष्ठत परिचारिका ।

रूपिण्यश्च श्रिया युक्ता सर्वा कमललोचना ॥२५८॥

लीलाविलाससमुक्तं भविरेतितमनोहरं ।

गणस्ता सह मोदन्ते वीलार्थ पावकोपमे ॥२५९॥

स्थित है ॥२६६॥ बामाश करने मोचर होने वाले अपनेश करते हुए मुखाभिन
रहे हैं । आपका निर्घोष महान् बैरव हैं और बल के द्वारा अप्रतिम (अनुपम)
शोज वाले हैं । दशरथ बहुत जोरि परम विचित्र है अत्यधिक शोभा दे रहा
है । भगवान् महेश्वर का विजय विद्वत् की आमा ने समान एवं प्रमोद प्रामुख
जोकि शत्रुघो का एकदम नाश कर देने वाला है । उसकी शान्ति से मन्त्र बामु
है जा-वत्पमान है ॥२७ २७१॥

असिश्च मौजसा अस्तु शीतरश्मि शशी तथा ।

तेजसा वपुषा कात्या देवेशस्य महात्मन ।

शुशुभेऽभ्यधिक तत्र वेद्यामग्निगिप्ता इव ॥२७२॥

स्थित पुरस्ताद् देवस्य कातकीम्भमयो महान् ।

शुशुभे इधिर भीमासोदक सकमण्डमु ॥२७३॥

असिमावेश्य चाङ्ग पु पाण्डुराम्बर चारिणी ।

उरध्रस्त्रवेन महता मौक्तिकेन विराजिता ।

चतुष्टु जा महाभागा विजया सौकसम्मता ॥२७४॥

वेद्या प्राय प्रतीहारी धीरिवाप्रतिमा परा ।

विभ्राजती स्थिता चव कृत्वा देवस्य चाञ्चलिसु ॥२७५॥

तस्या पृष्ठानुगाभ्याया क्षियोऽस्त्ररोमुणाविता ।

ता फलत्रभिनव कान्तस्फटिष्ठन्ति शङ्कुरम् ॥२७६॥

सबलक्षणसम्पन्ना वावित्र रुपवृ हिता ।

उपगायन्ति देवेश गणा मधवमोत्तम ॥२७७॥

अम्पुन्नतो महोरस्क क्षर-वेधसमद्युति ।

शोमत नन्दमानश्च शोपतिस्तस्य वेधमनि ॥२७८॥

भगवान् महेश्वर शोजस्त्रियो से परम श्रेष्ठ है और असि के आयुध को
धारण किये हुए है तथा शीत किरणों वाला चन्द्र भी विराजमान है । तेज और
वपु तथा कान्ति से महान् आत्मा वाले देवों के स्वामी महेश्वर वहाँ पर देवी से
प्रभि की शिखा के समान अत्यधिक शोभा से मन्त्र हो रहे थे ॥२७२॥ भग
वान् महेश्वर देव के जाने एक सुख का निर्मल महान् परम सुन्दर तथा जल

से भरा हुआ एक कमण्डलु स्थित है जिसकी एक अत्यद्भुत शोभा हो रही थी ॥२७३॥ अपने अङ्गो मे अग्नि को धारण किमे हुए तथा पाण्डुर वरुण के वस्त्र धारण करने वाली एवं महान् मोक्षियों के उत्सृष्ट से विराजित—चार भुजाओं वाली महान् भाग वाली लोक सम्मता विजया वहाँ पर विद्यमान है ॥२७४॥ यह देवी की सर्व प्रथम प्रतीहारी है जोकि अनुपम दूसरी श्री के ही तुल्य है । यह शिव के ग्रामे अङ्गलि करके अति विभ्राजमान होती हुई सस्थित रहा करती है ॥२७५॥ उसके पृष्ठ भाग मे अनुगमन करने वाली अग्न्य ज्वाला हैं जोकि अस्त-प्राप्तों के गुण से युक्त हैं । ये सब अभिनव एवं अति कान्त वाद्यादि के द्वारा भगवान् शङ्कर का उपस्थान किया करती हैं ॥२७६॥ समस्त शुभ लक्षणों से सम्पन्न तथा अनेक वाक्त्रियों से उपवृद्धित गन्धर्वों की योनिर्वा एवं गण भगवान् देवेश का उपगमन किया करते हैं ॥२७७॥ भगवान् गोपति अपने वेश मे परमानन्द करते हुए सोमित होते हैं । अत्यन्त उन्नत धापका कलेवर है तथा विशाल वक्ष स्थल है और सरस्कास के मेघ के समान धापके शरीर की कान्ति है ॥२७८॥

स्कन्धश्च सपरीवार पुत्रोऽस्याभितवीर्यवान् ।
रक्ताम्बरधर श्रीमान्वराम्बुजदलेक्षण ॥२७९॥
तस्य शास्त्रो विशास्त्रश्च नैगमेयश्च चाष्टवान् ।
व्यपेतव्यसनाक्रूरा प्रजाना पालने रता ॥२८०॥
तौ साढ्वं स महावीर्यं शोभते शिखिवाहन ।
व्यालक्रीडनकंस्तत्र क्रीडते विश्वतोमुख ॥२८१॥
ये नृपा विबुधेन्द्राणा काञ्चनस्य प्रदायिन ।
ये च स्वायतना विप्रा गृहस्था ब्रह्मवादिन ॥२८२॥
गूढस्वाध्याय तपसस्तथा चैवोञ्छन्वृत्तय ।
एते समासदस्तस्य देवेशस्य च सम्मता ॥२८३॥
मन्वन्तराप्यनेकानि व्यवर्तन्त पुन पुन ।
श्रूयता देवदेवस्य भविष्याश्चर्यमुत्तमम् ॥२८४॥

सुविस्मित होते हुए ऋषियो ने जोकि वसिष्ठात्म भ रहा करत थे और तपस्वर्या करने वाले थे वायुदेव से कहा—॥२६२॥ इ भवन् । आप तो सम्पूर्ण प्राणियों के भी प्राण स्वरूप है—सर्वत्र वसने करने वाले है तथा शत्रु है । यह कृपा कर हमको बताइये कि वे सिंह महापुत्र कौन हैं और वे वहाँ मनुत्पन्न हुए हैं और उनका क्या स्वस्म है ? ॥२६३॥ वे सिंह किस क्षपराज से भूता के प्रभविष्णु अर्थात् समुत्पन्न करने वाले समर्थ स्वामी ने अस्मिन्व पाद्यो से पुनः पुनः उन्हें सवद्ध कर रक्खा था ? ॥२६४॥ उन तापस ऋषियो के इस वचन का भवण कर वायुदेव यह वाक्य कहा था । भवान् वास्या वाले ईश्वर ने अपने देह से व्यतीत (प्रसंग) करके उन्हें जो रक्खा था वे क्रोध है और उनका विप्रह सिंह का है अर्थात् वे सिंह के शरीर को धारण करने वाले हैं ॥२६५॥

भूतानामभय दत्त्वा पुरा बद्धाग्निबन्धने ।

यज्ञभागनिमित्त च ईश्वरस्याज्ञया तदा ॥२६६॥

तेषां विमानमुक्तं न सिंहेभ्यः केन लीयताम् ।

देव्या मन्यु इत आत्वा हतो दक्षस्य स क्रतुः ॥२६७॥

नि सृता च महादेव्या महाकाली महेश्वरी ।

आत्मन कम्मसाक्षिण्या भूत साह तदानुग ॥२६८॥

स एष भगवान्क्रोधो दद्यात्सकृत्तालयः ।

वीरभद्रोऽभमेवाहमा देव्या मन्युप्रमाञ्जन ॥२६९॥

तस्य वैश्व सुरेन्द्रस्य सबन्धुह्यतमस्य वै ।

सन्निवेशस्त्वनोपम्यो मया च परिकीर्तित ॥३०॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि ये तत्र प्रति वासिनः ।

गम्ये पुरवरणं स्ते तस्मिन्बहावभूमिषु ॥३१॥

नानारत्नविचित्रेषु पताकावहृतेषु च ।

सर्वकामसमृद्धेषु वनोपवनशोभिषु ॥३२॥

राजतेषु महातेषु शातभौममयेषु च ।

संख्याप्रसन्निकाशेषु कलासप्रतिमेषु च ॥३३॥

समस्त भूतो को प्रभय प्रदान करके पहिले वे अग्नि बन्धन से बद्ध किए गये थे । उस समय वेगा बन्ध के भाग के भित्ति से हों ईश्वर की भाज्ञा से किया गया था ॥२६६॥ उन्ही गिहो मे से विधान से मुक्त एक सिंह ने जगदम्बा देवी के क्रोध को जान कर खीला ही से दक्ष प्रजापति का बहू भक्तु (पक्ष) हत (विध्यस्त) किया था ॥२६७॥ उस समय मे महादेवी से महेश्वरी महाकाली गिहो भी जो आत्मा के कर्म की साक्षिणी देवी के अनुपामी भूतो के साथ घर्षागान हुई थी ॥२६८॥ वही बहू भगवान् कौब है जो स्र के निवास स्थान मे अपना आलय रखने वाला था । वह अप्रमेय आत्मा वाला वीरभद्र नामधारी था जोकि जगन्मनी देवी के क्रोध का प्रभार्जन करने वाला था ॥२६९॥ उस समये गुह्यतम सुरेन्द्र का वेष तथा समका अनीपम्य सन्निवेश होने तुमको पता दिया है ॥२७०॥ अब इसके आगे वहाँ पर वैहायस भूमि मे जो परम रम्य श्रेष्ठ समपुर मे प्रतिष्ठापी है इसे मे तुमको बतलाता हूँ ॥२७१॥ वहाँ के निवास निजम नामा प्रकार के घरों से विविध बने हुए है । उनमे बहुत-सी पतारारो लगी हुई है और समस्त कामनाओं की समृद्धियों से वे सम्पन्न है । या अनेक धन एवं उपधानों की शोभा से समुत् है ॥२७२॥ उनमे कुछ राजत धर्मात्त चौदी से निर्मित हैं तथा बहुत से विज्ञान सुबल भय है । वे रज्जुकास के मेघों का समूह हैं और कौलाम के ही गुरुतया तुल्य है ॥२७३॥

इ टी शब्दादिभिर्भागैर्भवस्थानुसारिण ।

प्रासादवर पुष्पेषु तेषु मोदन्ति सुव्रता ॥२७४॥

ब्रह्मघोषैरधिरता कथाश्च विविधा शुभा ।

गीतवादित्रघोषाश्च सस्तवाश्च समन्तत ॥२७५॥

सहस्राश्च वमलुला नानामयकृतास्तथा ।

एवमादीनि वर्तन्ते तेषा प्रासादमूर्द्धनि ॥२७६॥

सहस्रपाद प्रासादस्तपनीयमय शुभ ।

अनीपम्यैर्वन्दे रत्ने सर्वत परिभूषित ॥२७७॥

स्फटिर्ब्रह्मन्द्राङ्गार्जोद्वयमणिसम्प्रभे ।

वालगूर्यमयैश्चाप सौवर्णैश्चाग्निसम्प्रभे ॥२७८॥

श्रियाविता कुम्हलिनो मुक्ताहारविभूषिता ।

तेजसोऽभ्यधिका देवी सर्वा सर्गदर्शिन ॥३१८॥

विभज्य बहुधात्मान जरामृत्युविर्वजिता ।

क्रीडते विविधभर्गैर्भोगान् प्राप्य सुदुलभान् ॥३१९॥

सब के सब के नखानार के मुख वाले हैं और विद्वत्स्व-कपर्दी-नील
 कण्ठ वाली-उत्पल ग्रीवा से युक्त-सीधण दाबो बाल तथा तीन नेत्री वाले हैं
 ॥३१८॥ सभीके भक्तक पर साधे चन्द्रमा से उज्ज्वल बना हुआ है और बड़ा तथा
 भरतक पर मुहुट शिव के ही समान धारण करने वाले हैं । सभी के दश भुजाएँ
 हैं—सब महान् वीर हैं और पचास की युग व वाले हैं ॥३१९॥ वे सब भग
 वान् सब के सातौवम को प्राप्त होने वाले भक्त धारण सूर्य के समान तेज से
 युक्त हैं और सबने पीठपर ही के चक्र धारण कर रखे हैं । उन सब के हाथों में
 भगवान् सब की ही भाँति विनाश वगुण लगा हुआ है । सबके बाहुन भी गोचर
 होते हैं ॥३२०॥ सब भी से सम्बन्धित होते हैं और सभी ने नानो में कुरङ्ग
 धारण कर रखे हैं । उन सब भक्तों ने मोक्षियों के हार धारण कर अपने आप
 को विभूषित बना रक्खा है । वे सब देवी से भी अधिक तेज वाले हैं । समस्त
 भक्त भी वही निवास करते हैं सर्वत्र एवं सर्वदर्शी होते हैं । भर्मात् सभी कुछ
 मृत-मविध्य वस्तुमान के जानने वाले और सब कुछ को प्रत्यक्ष भी भाँति देखने
 वाले हैं ॥३२१॥ व सब अपनी प्राप्ति की अनेक प्रकार से विभक्त करके सन्निवृ
 त्त करती हैं और वृद्धता तथा मृत्यु से रहित होते हैं । वे विविध प्रकार के
 भावों के द्वारा क्रीडा निभा करते हैं और परम सुदुलभ योगों को प्राप्त करके
 आनन्दवादन करते हैं ॥३२२॥

स्वच्छ-वसतय सिद्धा सिद्धैर्भोग्यविभोषिता ।

एकादशाना ख्दाया कोठ्योजेकमहात्मनाम् ॥३२०॥

एभि सह महात्मा हि देवदेवी महेश्वर ।

भक्तानुकम्पी भगवा-मोदते पार्श्वतीप्रिय ॥३२१॥

नाहन्तेपातु ख्दाया भवस्य च महात्मन ।

नानात्वमनुपश्यामि सत्यमेतद्दृशीमि व ॥३२२॥

मातरिश्वाऽब्रवीत्पुण्यामित्येतामीश्वरोऽयुत ।

अथ ते ऋषय मर्वे दिवाकरममप्रभा ।

श्रुत्वेमा परमा पुण्या कथा त्रयम्बकी तत ॥३२३॥

भृशश्चानुग्रह प्राप्य हर्षं चंपाप्यनुत्तमम् ।

सम्भावयित्वा चाप्येना वायुमूचुर्महाबलम् ॥३२४॥

समीरण महाभाग ह्यस्माकं च त्वया विभो ।

ईश्वरस्योत्तम पुण्यमष्टमन्त्वीपमगिकम् ॥३२५॥

तस्य स्थानं प्रमाणं च यथावत्परिकीर्तितम् ।

यो गन्धेन समृद्धं वै परमं परमात्मन ॥३२६॥

महादेवस्य माहात्म्यं दुर्विज्ञेयं सुरैरपि ।

स्वेन माहात्म्ययोगेन सहस्रस्यामिर्ताजम ॥३२७॥

स्फुटन्द गति वाले मिट्टे और अन्य मिट्टी के द्वारा विशेष रूप से
 चोरीत किये हुए हैं । अनेक महात्माओं एकादश रुद्रों की कीर्तियाँ हैं ॥३२०॥
 इनके साथ महात्मा देवों के देव महेश्वर जो भस्त्रों पर दया करने वाले पार्वती
 के प्यारे भगवान् प्रसन्न होते हैं । ६११॥ मैं तो उन रुद्रों को महात्मा मम का
 नामात्थ वेदता हूँ यह मैं आपसे बिल्कुल मत्थ कहता हूँ ॥३२२॥ मातरिश्वा
 अर्थात् वायुदेव ने इस पुराण कथा को कहा था और ईश्वर ने कहा था । इसके
 अनन्तर दिवाकर के समान प्रभा वाले वे ऋषिगण सब इस परम पुण्य कथा
 को जो कि त्रयाम्बिकी है, सुनकर और बहुत ही अनुग्रह प्राप्त करके तथा
 अनुपम हर्ष प्राप्त करके और हमका बहुत आदर करके महान् बलवान् वायु
 से बोले ॥३२३-३२४॥ ऋषियों ने कहा—हे समीरण ! हे महाभाग ! हे
 विभो ! आपने हमको ईश्वर का उत्तम अष्टम औपमगिक ज्ञानके स्थान को और
 प्रमाण को यथावत् बतलाया है । जो परमात्मा के गन्ध से परम समृद्ध
 है ॥३२५-३२६॥ महादेव का माहात्म्य देवों के द्वारा भी दुर्विज्ञेय है अर्थात्
 अमिर्ताज वाले सहस्र का अपने माहात्म्य के योग से सुरों के द्वारा भी
 फटिना से जानने के योग्य है ॥३२७॥

यस्य भक्त्यसमाहा ह्यनुवम्पायमेव च ।

ब्राह्मणस्या स्वयं जुष्टा या साप्रतिमत्तालिनी ॥३२८॥

ज्योत्स्नया व्याप्य ख चन्द्र विद्यस्ता विश्वस्पर्धन ।

विभूतिर्भजतेऽत्यथ देवदेवभ्य वदमनि ॥३२९॥

महादेवस्य तुल्याना रक्षागानु महात्मनाम् ।

तत्सर्व निश्चितेनेद वचनादभृतनिस्त्रयम् ॥३३०॥

अपीत्वा सत्सु सर्वस्य भवत्यास्माभिस्तु सुव्रता ।

नास्ति किञ्चिद्विज्ञ यमव्यञ्चवानुगामिन ।

प्रश्न देववर प्राण यथावदुच्यतुमहसि ॥३३१॥

स ब्रह्मवाच भगवान्कि भूया वक्तव्याम्यहम् ।

किं मया नव वक्तव्यं तद्वदिष्यामि सुव्रता ॥३३२॥

आदित्या पारिपास्वैवा सिंहा व क्रोधविक्रमा ।

वशानरा भूतगणा व्याघ्राश्च वानुगामिन ॥३३३॥

आभूतसप्तमे घोरं सर्वप्राण भृता शये ।

किमवस्था भवत्येते तप्तो ब्रूहि यथावदत् ॥३३४॥

अनुत्तमा के लिए ही जिसके भक्तों में समूह का आभाव होता है ।

श्री ब्राह्मणस्त्री के द्वारा स्वयं सेवित है वह अप्रतिमतालिनी होती है ॥३२८॥

ज्योत्स्ना से आकाश को व्याप्त करके चन्द्र में विद्यस्त विष्णु के रूप को धारण

करने वाली विभूति देवी के देव के चर में बहुत ही अभिमान प्राप्त

है ॥३२९॥ महारमा घड़ी के तुल्य महादेव का वह सब निमित्त के द्वारा वक्ता

से समृद्ध का निस्त्रय है ॥३३०॥ हृदय भक्ति से सब का पाप न करके सुन्दर

कृत वाले है । अनुगमन करने वाले को सब कुछ भी न जानने के योग्य नहीं

है । है देववर । है प्राण । इस प्रश्न को यथावत् आप बोलने के योग्य है ॥३३१॥

श्री सुतजी ने कहा—वह भगवान् बोले कि सब आये फिर मैं क्या व्यवहार

करू ? और मुझे क्या कहना चाहिए । है सुव्रत वालों यह कहूँगा ॥३३२॥

श्रुतियों ने कहा—आदित्य—पारिपास्वैव—सिंह के क्रोध विक्रम है वशानर—

भूतगण घोर अनुवासी व्याघ्र घोर आभूत सप्तम में समस्त प्राणधारियों के

धय हो जाने पर ये गृष्ट जिन अवस्था वाले होते हैं हमें आप यथार्थवत् हमको बोलें ॥३३३-३३४॥

एते ये वै त्वया प्रोक्ता सिंहव्याघ्रमणौ सह ।

ये चान्ये सिद्धिसम्प्राप्ता मातरिश्वा जगद ह ॥३३४

इदञ्च परम तत्त्व समाख्यास्यामि शृण्वताम् ।

विज्ञातेश्वरसद्भावमव्यक्त प्रभव तथा ॥३३५

तत्र पूर्वगतास्तेषु कुमारो ब्रह्माण सुता ।

सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातन ॥३३६

बोद्धुश्च कपिलस्तेषामामुरिश्च महायशः ।

मुनि पञ्चशिखश्चैव ये चान्येऽप्येवमावय ॥३३७

ततः काले व्यतिक्रान्ते कल्पानां पर्यये गते ।

महाभूतविनाशान्ते प्रलये प्रत्युपस्थिते ॥३३८

अनेकसङ्ख्यकोट्यस्तु या प्रसन्ना महेश्वरी ।

शब्दादीन्विषयान्भोगान्स्तस्यस्याष्टविधमयात् (?) ॥३३९

प्रविश्य सर्गभूतानि ज्ञानयुक्तेन तेजसा ।

गैहायपदमव्यय भूतानामनुकम्पया ॥३४०

तत्र यान्ति महात्मान परमाणु महेश्वरम् ।

सरन्ति सुमहावर्त्ता जन्ममृत्यूवका नदीम् ॥३४१

ततः पश्यन्ति सर्वाणि पर ब्रह्माणमेव च ।

देव्या गै सहिता सप्त या देव्यः परिकीर्तिता ॥३४२

यत्तत्सहस्रं सिंहानामादित्यानां तथैव च ।

गैश्चानरभूतमव्ययवाध्राश्चैवानुगामिन ॥३४३

ये सब आपने सिंह व्याघ्र गणों के साथ बताये हैं और जो अन्य सिद्धि को सम्प्राप्त होने वाले हैं वायुदेव ने जिनको कहा था । इस परम तत्त्व को कहूँगा, आप सुनिये । विज्ञान ईश्वर सद्भाव और अव्यक्त प्रभाव को भी कहूँगा ॥३३५-३३६॥ वहाँ पर उनमें ब्रह्मा के पुत्र कुमार पूर्वगत हैं जो सनक-सनन्द और तृतीय सनातन हैं ॥३३७॥ उनमें बोद्धु-कपिल और महान् यश

वाला भ्रातुरि और पञ्चसिद्ध मुनि और जो अन्य इसी प्रकार हैं ॥३३८॥
 इसके पश्चात् काल के ध्वनिकान् होने पर तथा नस्या के पश्यत के गत होने
 पर महाभूता के विनाश हो जाने पर तथा प्रलय के प्रत्युपस्थित होने पर अनेक
 लक्षों ॥ जोटियाँ और प्रलय बहेष्वागी अन्नादि विषयो को तथा भोगों को
 सत्य के अष्टविधस्य से ज्ञान से युक्त सब के द्वारा समस्त भूतो में प्रवेश करके
 प्राणिपदी पर अनुकम्पा करने से अन्ध बहामस पद को प्राप्त होते
 हैं ॥३३९ १४॥ वहाँ पर महान् भास्वा वाले परमाणु महेश्वर में बसे जाते
 हैं और महान् वाक्तों वाली तथा ज्ञान और शक्ति के ज्ञान वाली नदी की पार
 किया करते हैं ॥३४०॥ हमके अनन्तर बड़ा महादेव को तथा परब्रह्म का
 दर्शन किया करते हैं । देवी के साथ साथ को देखते हैं जो देवियाँ कीर्ति
 की गई हैं । जो वह सिद्धों तथा भावियों का सहस्र हैं तथा अनुगमन करने
 वाले भवनागर भूत अथवा व्याघ्र हैं उनको भी देखते हैं ॥३४१ ३४२ ३४३॥

अनुच्छेद ६४—प्रत्याहारि पुन सृष्टि वर्णन

प्रत्याहार प्रवक्ष्यामि परस्यान्ते स्वयम्भुव ।
 ब्रह्मण स्मितकाले तु क्षीणे तस्मिस्तदा प्रभौ ॥१॥
 मयेद कुरुतेऽन्मात्म सुसूक्ष्म विश्वमीश्वर ।
 अव्याक्तावसते व्यक्त प्रत्याहारे च कृत्स्नम् ॥२॥
 पर तदनुकल्पानामपूर्णे कल्पसङ्क्षये ।
 उपस्थिते महाधारे ह्यप्रस्थिते तु नस्त्यचित् ॥३॥
 अन्ते द्रुमस्य सम्प्राप्ते पश्चिमस्य मनोस्तदा ।
 अन्ते कलियुगे तस्मिन्क्षीणे सहार उच्यते ॥४॥
 सम्प्राप्ते तदा धृते प्रत्याहारे ह्युपस्थिते ।
 प्रत्याहारे तदा तस्मिन् भूतत मात्रसङ्क्षये ॥५॥

अथाग्निं सवतो व्याप्तं प्रादत्ते तज्जलन्तदा ।
 सवमापूय्यतऽर्चिभिस्तदा जगदिदं धनं ॥११॥
 अर्चिभिः सन्ततं तस्मिंस्तिग्मगुद्वमघस्ततः ।
 प्योत्तिपोऽपि गुणं रूपं वायुरर्चितं प्रवाचनम् ।
 प्रलीयते तदा तस्मिन्दीपाचिरिव भास्ते ॥१२॥
 प्रनष्टं रूपतन्मात्रे हृतस्पो विभावसु ।
 उपशाम्यति तेजो हि वायुना धूयते महत् ॥१३॥
 निरालोके तदा लोके वायुभूतं च तजसि ।
 सतस्तु मूलमासाद्य वायुः सम्भवमात्मनः ॥१४॥
 ऊर्ध्वं चाधश्च तिर्यक् च द्यौषवीति दिक्षो वशः ।
 वायोरपि गुणं स्पष्टमावाशं प्रसतं च तत् ॥१५॥
 प्रशाम्यति तदा वायुः सन्तु तिष्ठत्यनाकृतम् ।
 अरूपमरसस्पर्शमगन्धं न च भूतिमत् ॥१६॥

जलो के अन्दर जो गुण होता है वह उस तेज के लीन होजाया करता है । तब अन्त में उस तन्मात्रा के सख्य होने से अल नष्ट हो जाया करता है ॥१॥ तेज के द्वारा सहरण जाने अल तेज के स्वरूप को ही प्राप्त कर लिया करते हैं । अलिल के अस्त हो जाने पर सभी ओर तेज ही फैलताई दिया करता है ॥१॥ इसके पश्चात् सभी ओर व्याप्त तेज स्वरूप अग्नि उस जल को उस समय ग्रहण कर लेता है । धीरे धीरे वह समस्त जगत् सब अग्निमी से पूरित हो जाता है ॥११॥ तब ऊपर-नीचे धीरे-धर-धर अग्निमी फैल जाने पर ज्योति का जो प्रकाश कभी मुख है उस वायु का जाता है और वह सब प्रसीन हो जाता है जैसे वायु के छोके में दिने की ही नष्ट हो जाया करती है ॥१२॥ रूप तन्मात्रा के प्रनष्ट हो जाने के बाद बिना वस्तु नष्ट कर वाला हो जाया करता है । तेज वायु के द्वारा उपशान्त होता है तथा वायु भी शून्य बहा करती है ॥१३॥ तेज के वायु स्वरूप हो जाने पर वह समस्त लोक प्रकाशहीन निरालोक हो जाया करता है । इसके पश्चात् वह वायु भी अपने उत्पत्ति स्थान भूत को प्राप्त होकर ऊपर नीचे ओर तिरछा दश दिशाओ

को सम्पित किया करता है । उन वायु का जो स्पर्श गुण है उसे आलस
प्रसवित करता है ॥१८-१५॥ तब यह प्रसवित हो जाता है और अनावृत
मानस में रहा करता है । स्प-स्पर्श स्पर्श और गन्ध तथा रस से रहित
होता है ॥१६॥

सदमापूरयन्नावे सुमहत्तत्प्रकाशते ।

परिमण्डलस्तत्सुपिरमाकाश शब्दलक्षणम् ॥१७॥

शब्दमात्र तदाकाश सर्वमावृत्य तिष्ठति ।

तन्तु शब्दगुणस्तस्य भूतादि प्रसते पुन ॥१८॥

भूतेन्द्रियेषु युगपद् भूनादो सस्थितेषु वै ।

अभिमानात्मको ह्येष भूताविस्तामस स्मृत ॥१९॥

भूतादि प्रसते चापि महान्वं बुद्धिलक्षण ।

महानात्मा तु विज्ञेय सकल्पो व्यवसायक ॥२०॥

बुद्धिर्मनश्च लिङ्गञ्च महानक्षर एव च ।

पर्यायवाचकै शब्दैस्तमाहुस्तत्त्वचिन्तका ॥२१॥

सम्प्रतीनेषु भूतेषु गुणसाम्ये तमोमये ।

स्वात्मग्येव स्थिते चैव कारणे लोककारणे ॥२२॥

विनिवृत्ते तदा सर्वे प्रकृत्यावस्थितेन वै ।

तदाद्यन्तपरोक्षत्वाददृष्टत्वाच्च कस्यचित् ॥२३॥

अनाद्यथानादबोधत्वावज्ञानाब्जामिनामपि ।

आगतामतिकृत्वाच्च ग्रहणं तत्र विद्यते ॥२४॥

भावग्राह्यानुमानाच्च चिन्तयित्वेदमुच्यते ।

स्थिते तु कारणे तस्मिन्नित्ये सदसदात्मिके ॥२५॥

अनिर्देश्या प्रवृत्तिर्वै स्वात्मिका कारणे न तु ।

एव सप्तादयोऽभ्यस्तात्क्रमात्प्रकृतयस्तु वै ॥२६॥

सबको नादों के द्वारा आपूरित कर वह सुमहत् प्रकाशित होता है ।
परिमण्डल सुपिर आकाश का शब्द मुख ही लक्षण वर्णित स्वल्प होता है ॥१७॥
उन समय शब्द मात्र वह आकाश सबको आवृत करके स्थित रहा करना है ।

उसके उस सब गुण को भूतादि धन लेते हैं ॥१८॥ भूतेन्द्रियों के एक साथ भूतादि में मस्तिष्क होने पर अविमानात्मक यह भूवादि ठामस कहा गया है ॥१९॥ और बुद्धि लक्षण वाला महान् भूतादि को भी बस लेता है । महान् स्वरूप वाला व्यावसायिक सकृत्स्य जन्मना चाहिए ॥२॥ तत्त्व के विगतक लोग बुद्धि-मन-चिह्न-महान् और अंतर इन पर्याय वाचक शब्दों से उसको कहते हैं ॥२१॥ तनोमय गुणों के साम्य में भूतों के सम्पत्तीन होने पर और सौधों के कारण को अपनी प्राप्ता में ही स्थित होने पर उस समग्र में सब के विषय रूप से निवृत्त हो जाने पर प्रकृति के अवस्थित होने से किसी के प्रादुर्भाव परीक्षा होने के कारण से—और महत् होने से—प्रवाक्यात होने से—सर्वोच्च होने से तथा क्षान्ति को भी अज्ञान से एक अनात्मिक होने से यह ग्रहण नहीं होता है ॥२२ २३ २४॥ और भाव ब्रह्म प्रवृत्त से यह सोचकर कहा जाता है । उस मित्य छद्म और अल्प स्वरूप वाले कारण के स्थित होने पर कारण में निश्चय ही स्वात्मिक प्रवृत्ति अनिर्हस्य होती है । इन प्रकार के सम्पत्त ज्ञान में अज्ञान प्रकटित होती है ॥२५ २६॥

प्रस्थाहारे तथा सर्वे प्रविशन्ति परस्परम् ।
 मेनेवमावृतं सव मण्डलन्तु प्रसीयते ॥२७॥
 सप्तद्वीपसमुद्रान्त सप्तधोक सप्तवतम् ।
 उदकावरणं यच्च ज्योतिषा सीयते तु तत् ॥२८॥
 मत्तजस आवरणमाकाशं असते तु तत् ।
 यद्वायव्यं आवरणमाकाशं असते तु तत् ॥२९॥
 अकाशावरणं यच्च भूतादिर्असते तु तत् ।
 भूतादि असते चापि महान् बुद्धि लक्षण ॥३०॥
 महान्त असतेऽन्यत्तु गुणसाम्यं तत् परम् ।
 एतौ सहारविस्तारी ब्रह्मात्मकी तत् पून ॥३१॥
 सृजते असत् च व विचारान्धमस्यमे ।
 सहारकावधारणा ससिद्धा ज्ञानिनस्तु ये ॥३२॥

गत्वा जलस्रवीभावे स्थानेष्वेव प्रसयमान् ।

प्रत्याहारे विद्युज्यन्ते क्षेप्रज्ञा कर्मणः पुनः ॥३३॥

सावर्त्यवेद्यम्यकृतसयोमोज्जादिभापस्तयो ॥३४॥

एव सर्गेषु विज्ञेय क्षेत्रज्ञे ज्विह ग्राह्यणा ।

ब्रह्मविच्छेदव विज्ञेय क्षेत्रज्ञानात्पृथक्पृथक् ॥३५॥

उप नमय मे सय के प्रत्याहार मे परस्पर मे प्रवेक क्रिया करते हैं जिससे यह प्रावृत्त समस्त स्रष्टा प्रतीत होता है ॥२०॥ सत द्वीप समुद्रो के घनत सप्त पर्वतो के सहित सत लोक और जो भी कुछ ज्योतिषो का आधार है वह सब भीन हो जाता है ॥२१॥ जो तैजस्य आधार है उसे आभास अगित तार लेता है । जो मातृय आधार है उसे आभास बन लेता है ॥२२॥ और जो आभास का आधार है उसे भूतादि बन लेता है । बुद्धि के स्वरूप बाबा महार भूतादि को प्रस लेता है ॥२३॥ इसी प्रकार गुणों की समस्त स्वरूप अव्यक्त महाम को बन लेता है । ये ब्रह्मा और अव्यक्त के सहार तथा विस्तार उनके पीछे होते हैं ॥२४॥ सय के सय मे विचारो को गुणन करता है तथा प्रगता है । सहार कार्य के करण गणिज जो जानी होते हैं अतः मे कवी भाव मे जाकर इन रवानो मे प्रसयगो को क्षेत्रज्ञ फिर करणो मे प्रत्याहार मे विद्युत हो जाते हैं ॥२५-२६॥ जो अव्यक्त है वह क्षेत्र कहा जाता है और जो ब्रह्म है उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं । इन दोनों का अर्थात् अव्यक्त और ब्रह्म का सार्वभौम तथा वैद्यम्य कृत स्रष्टादिमान् सयोग होता है ॥२७॥ इस प्रकार से क्षेत्रज्ञ सर्गो मे जानना चाहिए । और महा ब्राह्मण क्षेत्रज्ञ से पृथक् पृथक् ब्रह्मविद् ही जानना चाहिए ॥२८॥

विषयाविषयत्वञ्च क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः स्मृतम् ।

ब्रह्मा तु विषयो ज्ञेयोऽविषय क्षेत्रमुच्यते ॥२९॥

क्षेत्रज्ञाविति क्षेत्र क्षेत्रज्ञार्थं प्रचक्षते ।

बहुत्वाच्च धारीराणां धारीरी बहुधा स्मृत ॥३०॥

अब्रह्मा ब्रह्मराज्येव ज्योतिर्वज्ज व्यवस्थित ।

राजसी तामसी चव सात्त्विकी चव वृत्तय ।
गुणमात्रा प्रवृत्तत पुरुषाधिष्ठितास्त्रिधा ॥५४॥
ऊर्ध्व देवात्मक सत्त्वमघोभागात्मक तम ।
तयो प्रवृत्तक मध्ये इहैवावत्त क रज ॥५५॥

इस प्रकार से यह स्वयम्भू का प्राह्मन प्रतिपद्य कह दिया गया है ।
समस्त प्राणिमो के प्रसवम म करण विद्यमान होते हैं ॥५४॥ हे द्विमनुष्य ।
यह ही तत्त्वो का करणो के साथ सवम है । और धामलक सत्त्व प्रसवम मही
कहा गया है ॥५७॥ श्री सूनसी ने कहा—वन भवम उप—भान तथा शुभ
सत्त्व और धनुत ऊर्ध्व भाव और अधोभावा—भुक्त तथा दुःख—त्रिय और अत्रिय
यह सब प्रमाण किम हुए का गुणमात्रात्मक कहा गया है । और उस समय से
बिना इन्द्रियो वाले ज्ञानियो का जो भी कुछ शुभ तथा शकुन है वह भी गुण
मात्रात्मक होता है ॥५४ ५६॥ वह सब प्रकृति मे पुण्य और पाप प्रतिष्ठित हीना
है । और देहधारियो के स्वभाव मे योग्यवस्था विविक्त होती है ॥५॥ जे पुत्रो
का पुण्य और पाप जो प्रकृति मे प्रतिष्ठित है । अन्तुगण जो उही प्रकृत मे
स्थित पुण्य और पापों को जीत लेते है जोकि पुनर्देह मे तथा देहान्तर मे होते
है ॥५९॥ अन्तुमो के जर्म और प्रथम दोनो गुणमात्रात्मक होते हैं । यहाँ पर
करणो के द्वारा अन्तुमो के कार्य के होने से ज्ञात जाया करते हैं ॥५९॥ सुषेन
जेनजो मे स्थित गुण प्रसोक्त हो जाया करते हैं । जेन मे और प्रतिपद्य मे सत्ता
मे अन्तुगण समुक्त और निमुक्त होते हैं और करणो के साथ सम्बन्ध किय
करते हैं ॥५९॥ राजसी—तामसी और सात्त्विकी वृत्तियो पुरुषो म अधिष्ठित
गुणमात्रा तीन प्रकार से प्रवृत्त होनी है ॥५४॥ ऊर्ध्व मे देवात्मक सत्त्व है और
अधोभागात्मक तम है । उन दोनो के मध्य मे प्रवृत्तक यहाँ पर ही आवत्तक
रजोगुण होना है ॥५५॥

इत्येव परिवृत्त ते त्रय स्रोतागुहात्मका ।

लोकेषु सवभूताना तत्र काम विज्ञानता ॥५६॥

अविद्याप्रत्ययारम्भा भारजना हि मानव ।

एतास्तु गव्यस्तिक्ष्ण शुभा पापात्मिका स्मृता ॥५७॥

तम साभिभवाब्जन्तुर्यायातव्य न विन्दति ।
 अतस्तद्दर्शनात्मोऽप त्रिविध वध्यते तत ॥५८॥
 प्राकृतेन बन्धेन तथा वैकारिकेन च ।
 दक्षिणाभि स्तृतीयेन बद्धोऽत्यन्त विवर्त्तते ॥५९॥
 इत्येते वै त्रय प्रोक्ता बन्धा ह्यज्ञानहेतुका ।
 अनित्ये नित्यसज्ञा च दु स्ते च सुखदर्शनम् ॥६०॥
 अस्वे स्वमिति च ज्ञानमशुचौ क्षुचिनिश्चय ।
 येषामेते मनोदोषा ज्ञानदोषा विपर्ययात् ॥६१॥
 रागद्वेषनिवृत्तिश्च तज्ज्ञान समुदात्ततम् ।
 अज्ञान तमसो मूल कर्मण्यफल रज ।
 कर्मजस्तु पुनर्देहो महादु स्त प्रवर्त्तते ॥६२॥
 श्रोत्रजा नेत्रजा चैव त्वम्बिह्वाघ्राणतस्तथा ।
 पुनर्भवफरी दु स्ता कर्मणा जामते तु सा ॥६३॥

इस प्रकार से ये तीन स्रोत गुणात्मक लोको में समस्त प्राणियों के परिवर्त्तित होते हैं । इसको विशेष रूप से जानने वाले को नहीं करना चाहिए ॥५९॥ मानसो के द्वारा अविद्या प्रत्यय आरम्भ आरब्ध किये जाया करते हैं । ये तीन गतिर्मा शुभ और पापात्मिका कही गई हैं ॥५७॥ तमोगुण से अभिभव होने से मनु यायातव्य की प्राप्ति नहीं होता है । इसके पश्चात् वह उत्तम वर्णन के न होने से तीन प्रकार का बद्ध होता है ॥५८॥ प्राकृत बन्ध से तथा वैकारिक बन्ध से और तीसरे दक्षिणाभि से बद्ध हुआ अत्यन्त विवर्त्तित होता है ॥५९॥ ये तीनों बन्ध अज्ञान के हेतु वाले कहे गये हैं । अनित्य में नित्य होने की सज्ञा और दु स्त में सुख का देखना यह मनोदोष है ॥६०॥ जो अपना नहीं है उस अस्व में अपना है ऐसा ज्ञान रखना तथा अशुचि में शुचि अर्थात् पवित्र होने का निश्चय कर लेना जिनके ये मनोदोष और विपर्यय से ज्ञान दोष होते हैं ॥६१॥ राग तथा द्वेष की निवृत्ति यह ज्ञान कहा गया है । अज्ञान तम का मूल होता है । कर्म द्वय का फल रज होता है । फिर कर्म से उत्पन्न होने वाला देह होता है और महा दु स्त प्रवृत्त होता है ॥६२॥ श्रोत्र से जन्म लेने वाली—नेत्रो से

उत्पन्न होने वाली तथा त्वना जिह्वा और घ्राण अर्थात् नासिका से पुनर्जम करने वाली दुःख स्वरूपा वह कर्मों की उत्पन्न होनी है ॥६३॥

सतृष्णोऽभिहितो बालः स्मृतः कर्मणः फलम् ।

तलपालीकवज्जीवस्तत्रैव परि वसतः ॥६४॥

तस्मात्स्थूलमनर्थानामज्ञानमुपदिश्यतः ।

तः शक्तमवधार्यैकं ज्ञानं यत्नं समाचरेत् ॥६५॥

ज्ञानाद्विजयतः सर्वं स्वागाद्बुद्धिर्विरज्यतः ।

वीराग्याश्चक्षुःश्रवणं चापि क्षुब्धं सत्त्वेन मुच्यतः ॥६६॥

अतः ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि रागं भूतापहारिणम् ।

अभियज्ञाय यो यस्माद्विषयोऽप्यवगात्मानम् ॥६७॥

अनिष्टमभियज्ञं हि प्रीतितापविपादनम् ।

दुःखक्षामे न तापञ्च सुखानुस्मरेण तथैव ॥६८॥

इत्येव वीपयो रागं सम्भूत्या कारणं स्मृतम् ।

ब्रह्मावी स्यादवरान्तं । ससारे ह्याभिप्रोतिके ।

अज्ञानपूर्वकं तस्मादज्ञानं तु विवर्जयेत् ॥६९॥

यस्य चाप न प्रमाणं शिष्टाचारं तच्चैव च ।

वणाश्रमविरोधी यः शिष्टाशास्त्रविरोधकः ॥७०॥

एष मार्गो हि निरधितियम्योनी च कारणम् ।

तियम्योनिगतश्च यः कारणं स निरुच्यते ॥७१॥

विविधा मातना स्वाने तियम्योनी च यदि वक्षे ।

कारणे विषये चैव प्रतिघातस्तु सर्वज्ञः ॥७२॥

अनश्नन्त्यन्तु तत्सर्वं प्रतिघातात्मकं स्मृतम् ।

इत्येव तावन्ती वृत्तिभूतावीना चतुर्विधा ॥७३॥

अपने किसे हुए कर्मों के फलों से बाल सतृष्ण बड़ा गया है । तैल पालीकवज् जीव वहाँ पर ही परिचित होना है ॥६४॥ इससे अन्तर्जन्म का स्थूल अज्ञान ही उपदिष्ट होता है । उस एक को चकत समझ कर ज्ञान में यत्न करना चाहिए ॥६५॥ ज्ञान से सबकी विजय होती है और ज्ञान से विरजित

होती है तथा ब्रह्म से शुद्धि हाती है श्रीग को शुद्ध होता है वह मत्त्व से मुक्ति प्राप्त किया करता है ॥६६॥ इससे आगे भूताप के हरण करने वाले राग को वक्तलाऊंगा । जो जिससे अवश्य आत्मा वाले का विषय अभिपन्न के लिये होता है ॥६७॥ अनिष्ट अभिपन्न निश्चय ही श्रुति ताप का विपाद करने वाला होता है । दुःख साध में ताप तथा सुखानुस्मरण नहीं होता है ॥६८॥ यह वषय राग सम्भूति का कारण कहा गया है । प्रह्ला से आदि में स्वावरो के अन्त में इस आधिभौतिक ससार में अज्ञान पूवक सब है इसलिये अज्ञान का त्याग करना ही चाहिए ॥६९॥ जिनके लिये ऋषियों के द्वारा कहा हुआ प्रमाण नहीं होता है पर्याप्त कोई प्रमाण के रूप में नहीं माना जाता है और शिष्टाचार भी नहीं होता है । जो बखों और आधर्मो का विरोध करने वाला होता है तथा जो शिष्टो के निर्मित शास्त्रो का विरोध करने वाला होता है ॥७०॥ यह मार्ग निरभि और निर्वक् योनि में कारण बना करता है । वह तिर्यक् योनि गत कारण कहा जाया करता है ॥७१॥ छे प्रकार के तिर्यक् योनिगत कारण कहा जाया करता है ॥७१॥ छे प्रकार के तिर्यक् योनि के स्थान में अनेक प्रकार की यातनाएँ होती हैं । कारण और विषय में अब ओर से प्रतिपाद होता है ॥७२॥ इस प्रकार से वह समस्त अर्नव्य प्रतिपाद के स्वरूप बाजा कहा गया है । यह प्राणियों की तामसी वृत्ति चार प्रकार की होती है ॥७३॥

सत्त्वस्वमात्रक चित्त यथा सत्त्वप्रदर्शनात् ।

तत्त्वानां च तथा तत्त्व दृष्ट्वा वै तत्त्वदर्शनात् ॥७४॥

सत्त्वक्षेत्रज्ञानात्त्वमेतज्ज्ञानार्थदर्शनम् ।

नानात्वदर्शनं ज्ञानं ज्ञानाद् योगमुच्यते ॥७५॥

तेन वदस्य वै वन्द्यो मोक्षो मुक्तस्य तेन च ।

ससारे त्रिनिवृत्ते तु मुक्तो लिङ्गेन मुच्यते ॥७६॥

नि सन्वन्धो ह्यचेतन्य स्वात्मन्येवावतिष्ठते ।

स्वात्मव्यवस्थितश्चापि विरूपाक्षेन लिख्यते ॥७७॥

इत्येतत्प्रमाणं प्रोक्तं समासाज्ज्ञानमोक्षयो ।

अ चापि विविधं प्रोक्तो मोक्षो वै तत्त्वदर्शनि ॥ ७८॥

पूव वियोगो ज्ञानेन द्वितीयो रागसंशयात् ।
 लिङ्गाभावात्तु कवत्स्य कवस्यात्तु निरञ्जनम् ॥७८॥
 निरञ्जनत्वाच्चन्द्रस्तु ततो नेता न विद्यते ।
 तृध्यासयात्तृतीयस्तु व्याख्यात मोक्षकारणम् ॥७९॥
 निमित्तमप्रतीपाते इष्टशब्दादिसंशयो ।
 अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम् ॥८०॥

केवल सत्य न स्थित रहने वाला जिस जिस प्रकार से सत्य से वशान
 से होता है उसी प्रकार से सत्य को देखकर सत्य वशान से सत्यो का होता है
 ॥७८॥ सत्य वीजको का जानास्य होता है और यह ज्ञानाच वशान है । ज्ञानाच
 के वशान को जान करके हैं और उस ज्ञान से योग वशान होता है जोकि योग
 कहा जाता है ॥७९॥ उससे जो ब्रह्म होता है उसका वचन होता है और जो
 सबसे मुक्त होता है उसका मोक्ष हुआ करता है । संसार के विविधता होने पर
 मुक्त लिङ्ग से छुटकारा पा जाया करता है ॥८०॥ नि सम्म च सर्वात् सम्मच्च
 से रहित अचरम प्रकृती आत्मा ने ही अवस्थित हुआ करता है । और स्वात्म
 अवस्थित ही विक्रमस्य के द्वारा निष्ठा जाता है ॥८१॥ यह इतना ही संशय
 से ज्ञान और मोक्ष का मध्यम कहा गया है । वह मोक्ष भी सत्यो के देखने वाले
 पुत्रो के द्वारा तीन प्रकार का कहा गया है ॥८२॥ प्रथम नाम के साथ वियोग
 । दूसरा पद के समय से होता है लिङ्ग के अभाव से कवत्स्य होता है और
 कवत्स्य से तो निरञ्जन होता है ॥८३॥ निरञ्जन होने से शुद्ध होता है फिर
 नेता नहीं होता है । तृष्ठा के समय से तीसरा होता है जोकि मोक्ष का कारण
 व्याख्यात किया गया है ॥८४॥ इष्ट शब्द आदि स्वरूप वाले प्रप्रतिपात ने
 निमित्त होता है । इसके पाठ रूप होते हैं जोकि मयाक्रम प्राकृत होते हैं ॥८५॥

क्षेपज्ञश्च वसन्त्यन्ते गुरुमानात्मकानि तु ।

अत उर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वराम्य दोषदर्शनात् ॥८६॥

दिव्ये च मानुषे च विषये पञ्चतत्त्वतो ।

अमद पौनःपुन्यं कर्तव्यो दोषदर्शनात् ॥८७॥

तापप्रीतिविपादाना कार्यन्तु परिवर्जनम् ।
 एव वैराग्यमास्थाय शरीरी निर्ममो भवेत् ॥८४
 अनित्यमशिव दुःखमिति बुद्धयानुचिन्त्य च ।
 विशुद्ध कार्यकरण सत्त्वाभ्येति तरान्तु य ॥८५
 परिपक्वपायो हि कृत्स्नान्दोषान्प्रपश्यति ।
 तत प्रयाणरूपां हि दोषैर्नैमित्तिकैस्तथा ॥८६
 कृन्मा प्रकुपित काये तीव्रवायुसमीकित ।
 स शरीरमुपार्श्रित्य कृत्स्नान्दोषान्कलङ्कितं वै ॥८७
 प्राणस्थानानि भिन्दन् हि कृन्न्वन्मर्मण्यतीत्य च ।
 शैत्यात्प्रकुपितो वायुरुद्ध्वन्तु क्रमते तत ॥८८
 स चाय सर्वभूताना प्राणस्थानेष्ववस्थित ।
 समासात्सकृते ज्ञाने सकृतेषु च कर्मभ्यु ॥८९
 स जीवोऽनन्यविश्रान्त कर्मभि स्वे पुराकृतै ।
 श्रष्टाङ्गप्राणवृत्तीर्बै स विध्यावयते पुन ॥९०
 शरीरं प्रजहसो वै निरुच्छ्वासस्ततो भवेत् ।
 एव प्राणैः परित्यक्तो मृत इत्यभिधीयते ॥९१

गृह्यमानात्मक क्षेत्रज्ञो मे प्रब सज्जित होते हैं । अब इससे प्रागे बोध वर्णन से वैराग्य को बतसाऊंगा ॥८२॥ दिव्य शरीर मानुष पञ्च सक्षर विषय से बोध वर्णन से प्रवेष्ट्य अनभिपङ्क करना चाहिए ॥८३॥ ताप-प्रीति शरीर विपादी का परिवर्जन करता चाहिए । इस प्रकार से वैराग्य में आस्थित होकर यह शरीर वागी निगम हो जाता है । अर्थात् इस शरीरी को ममता से रहित हो जाना चाहिए ॥८४॥ बुद्धि के द्वारा दुःख अनित्य अशिव है इस प्रकार से अनुचिन्तन वार्त्ते जो विशुद्ध कार्य का करना है वह सत्त्व की प्राप्ति करता है ॥८५॥ फिर परिपक्व कयाय जाता होकर समस्त दोषों को देख लेता है । प्रयाण करने के समय में निश्चय ही नैमित्तिक दोषों से काया में प्रकृति कृन्मा होते हुए तीव्र वायु में समीरित हो जाता है वह शरीर में उपाधित होकर समस्त दोषों को छुड़ कर देता है ॥८६-८७॥ प्राण के स्थानों को भेदन करता

हुषा शीर कर्मों को खेदन करता हुषा धावे चन्द्रर शस्य से प्रनुपित होने वाला वायु ऊर्ध्व भाग को फिर कान्त किया करता है ॥८८॥ शीर यह वह समस्त प्राणिमो के प्राण स्थानों में अवस्थित रहा करता है । खलेप से ज्ञान के सवृत हो जाने पर शीर समस्त कर्मों के सवृत होने पर वह जीव पुरा कृत धर्मान् पहिले जन्म में किये हुए अपने कर्मों से धनम्यधिष्ठान हो जाता है । फिर अष्टाङ्ग प्राण वृत्ति काका वह निष्वावमित हो जाता है ॥८९॥ ॥ शरीर को प्रकृष्टता से त्यागता हुषा वह फिर बिना उच्छ्वासो जाता होता है । इस रीति से प्राणों के द्वारा परित्यक्त होने वाला मृत इस नाम से कहा जाता है ॥९०॥

यथेह लोके खद्योत नीयमानमितस्तत ।
 रज्जन तद्वधे यत्तु मेता मेता न विद्यत ॥९१॥
 तृप्याक्षयन्तुतीमस्तु व्याख्यात मोक्षमक्षणम् ।
 शब्दाद्य विषये दोषविषये पञ्चलक्षणम् ॥९२॥
 अप्रद्वंद्वोऽयं निष्पञ्च प्रीतितापविवर्जनम् ।
 वराग्यकारणं ह्यत प्रवृत्तीनां तयस्य च ॥९३॥
 अष्टौ प्रकृतयो ज्ञया पूर्वोक्ता न यथाक्रमम् ।
 धर्म्यक्ताद्यास्तु विज्ञा या भूनास्ता प्रकृतलया ॥९४॥
 वर्णाश्रमाचार्युक्ता सिद्धा धारवाविरोधिनः ।
 वर्णाश्रमाणां धर्मोऽयं देवस्थानेषु कारणम् ॥९५॥
 ब्रह्मादीनि पिशाचान्तान्यष्टौ स्थानानि देवता ।
 ऐश्वर्यमणिमाद्य हि कारणं ह्यष्टलक्षणम् ॥९६॥
 निमित्तमप्रतिघात इष्टे शब्दादिलक्षणम् ।
 अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम् ॥९७॥

जिस प्रकार से यहाँ लोक में इधर तधर से जाया गया खद्योत (जुगुन) रज्जन होता है शीर उसके बंध होने पर मेता मेता नहीं रहता है ॥९१॥ तृप्या का दाय तीमरा मोक्ष का लक्षण व्याख्यात किया गया है । शब्दादि विषय में पञ्चलक्षणों वाले दोष विषय में अप्र प धर्मविषय प्रीति और ताप का विव

जंन होना ये बैराग्य के कारण और प्रकृतियों के लय के कारण होते हैं ॥६३-६४॥ पूव मे कथित की हुई घाठ प्रकृतिमा क्रम के अनुसार जानलेनी चाहिये । अव्यक्त आदि प्रकृति लय भूतान्त होते हैं ॥६५॥ शिष्ट जो होते हैं वे वर्यों और आश्रमो के वर्मों से युक्त हुआ करते हैं तथा वे शास्त्रो के भी विरोध न करने वाले होते हैं । चार वर्यों और चारो आश्रमो का यह धर्म देवो के स्थानो मे कारण होता है ॥६६॥ ब्रह्मा से आदि लेकर पिशाचो के अव्यक्त घाठ स्थान देवता होते हैं । ऐश्वर्य तथा अणिमा आदि अष्ट लक्षण वाला कारण होता है ॥६७॥ शब्दादि लक्षण अष्ट मे जो अप्रतिघात होता है वह निमित्त होता है । ये आठ अवस्थाक्रम आठ प्राकृति रूप होते हैं ॥६८॥

क्षेत्रज्ञेष्वनुसज्यन्ते गणमात्रात्मकानि तु ।

प्रावृट्काले पृथक्त्वेन पश्यन्तीह न चक्षुषा ॥६९

पश्यन्त्येवविध सिद्धा जीव दिव्येन चक्षुषा ।

आश्रित्य भ्रानपानञ्च योनी प्रविशतस्तथा ॥७०

तिर्य्यगूर्ध्वमधस्ताञ्च धावतोऽपि यथाक्रमम् ।

जीवप्राणास्तथा लिङ्ग कारणञ्च चतुष्टयम् ॥७१

पर्यायवाचकं शब्दैरेकार्थं सोऽभिलिख्यते ।

अव्यक्ताव्यक्ते प्रमाणोऽयं स वै रूपं तु कृत्स्नम् ॥७२

अव्यक्तान्तं गृहीतं च क्षेत्रज्ञाधिष्ठितञ्च यत् ।

एव ज्ञात्वा धुचिभूत्वा ज्ञानाद् विप्रमुच्यते ॥७३

नष्टञ्च यथा तत्त्वं तत्त्वानां तत्त्वदर्शनम् ।

यथेष्ट परिनिर्व्याप्तिं भिन्ने देहे सुनिवृत्ते ॥७४

गुण मात्रात्मिक क्षेत्रज्ञो मे अनुसज्जित होते है । प्रावृट् अर्थात् वर्षा के समय मे यहाँ पर पृथक्त्व होने मे वेध के द्वारा नहीं देखते है ॥६९॥ इस प्रकार वाले जीव को मित्र लोभ दिव्य चक्षु के द्वारा देखा करते है । श्वाश्रित्य और श्वाय के पान वाला तथा तिर्यग् योनियो मे प्रवेश करता हुआ ऊपर और नीचे की ओर दीडता हुआ भी यथाक्रम जीव प्राण तथा लिङ्ग यह चार कारण है ॥७०-७१॥ एक ही अवस्था होने वाले पर्याय वाचक शब्दो से वह अभि-

लिखित किया जाता है । व्यक्त और अव्यक्त में यह प्रमाण है और यह पूर्यतया रूप होता है ॥१२॥ जो अव्यक्त के अन्तर्गत रहण किया हुआ है और क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित है इस चेति से ज्ञान प्राप्त करने और शुचि होकर निस्वय ही ज्ञानसे प्रकृत रूपसे मुक्त होजाता है ॥१३॥ जैसे ही तत्त्व और तत्त्वों का तत्त्वदर्शन नष्ट होता है वह भिन्न निवृत्त देह में स्थित होता है और वह ज्ञाता जाता है ॥१०४॥

मिथ्यते करणश्चापि ह्यव्यक्ताज्ञानिनस्ततः ।
 मुक्तो गुणशरीरेण प्राणाद्य न तु मयः ॥१०५॥
 नाव्यक्शरीरमादत्त दम्बे बीजे यथाकुर ।
 जीविकं सवससाराद्वीजसारीरमानस ॥१०६॥
 नानाशुद्धाश्चुद्धा प्रकृति सौज्ण्यसते ।
 प्रकृतिं सत्यमित्याहुर्विकारोज्जृप्तमुच्यते ॥१०७॥
 तत्सद्भावोज्जृप्तं ज्ञेयं सद्भाव सत्यमुच्यते ।
 अनामरूपक्षेत्रज्ञानामरूपं प्रवसते ॥१०८॥
 यस्मात्क्षेत्रं विज्ञानाति तस्मात्क्षेत्रज्ञं उच्यते ।
 क्षेत्रप्रत्ययतो यस्मात्क्षेत्रज्ञं शुभं उच्यते ॥१०९॥
 क्षेत्रज्ञं स्मर्यते तस्मात्क्षेत्रं तत्त्वैर्विभाष्यते ।
 क्षेत्रत्वप्रत्ययं दृष्टं क्षेत्रज्ञं प्रत्ययी सदा ॥११०॥
 क्षयणात् न रणाच्चैव क्षतत्राणास्तथैव च ।
 भोज्यत्वाद्विषयत्वाच्च क्षेत्रं क्षेत्रविदो विदुः ॥१११॥
 महदाद्यं विरोपान्तं सचक्षुष्यं विनाशकम् ।
 विकारलक्षणं तद्वत् साक्षरक्षरमेव च ॥११२॥
 तमेव च विकारान्तु यस्मात् क्षरते पुनः ।
 तस्माच्च कारणाच्चैव क्षरमित्यभिधीयते ॥११३॥

इसके अनन्तर जो अव्यक्त जानी होता है उसका कारण भी मिथ्यमान होता है । गुण शरीर प्राणाद्य के सभी प्रकार से मुक्त होता है ॥१२॥ फिर वह मुक्त हुआ प्राणी अव्यक्त शरीर को चारण नहीं किया करता है जिस तरह

रीज के साथ ज्ञान पर फिर उगमें अकृन् नहीं होते हैं। सभी जीति में यज्ञीयात्मा रीज बागीर मानस गगान में चतुर्वज्र ज्ञान ग बुद्ध हुआ वह प्रकृति का अनुवर्तन किया करता है। मत्स्य का प्रकृति बहते है और जो विकार होता है वह अनुवर्त करता जाना है ॥१०६-१०७॥ उगका गङ्गाव अनुवर्त जानना चाहिये और गङ्गाव गत्य गङ्गा जाना है। अनाम रूप जाने क्षेत्रज्ञ का नाम रूप गङ्गा जाना है ॥१०८॥ जिनमें क्षेत्र तो जानते हैं उगम वह क्षेत्रज्ञ रुहा आया करता है। जिस क्षेत्र के प्रत्यय में क्षेत्रज्ञ शुभ कहा जाता है ॥१०९॥ उगम क्षेत्रज्ञ का स्मरण किया जाता है। उग ज्ञाताओं के द्वारा विज्ञेय रूप में गङ्गा आया करता है। क्षेत्रज्ञ का प्रत्यय ज्ञेय रूप होता है तो क्षेत्रज्ञ गगना प्रत्ययी होता है ॥११०॥ क्षयण ग और उगम में ही तथा क्षम प्राण में शोच्य होने से और विज्ञेय के होने में क्षेत्र के ज्ञेता जो क्षेत्र जानता है ॥१११॥ महर्षि में पाच और विज्ञेय के अन्त गग विज्ञेय गगन होना है। वह निष्पत्य ही विकार लक्ष्म माक्ष क्षेत्र ही होता है ॥११२॥ फिर उग ही विकार को जिनमें वह क्षम होता है और उगही कारण ग क्षम क्षम स्थिति हुआ करता है ॥११३॥

गुग्गुत्तमोहभावा भोज्यमिष्टमिवीयते ।

अचंतत्वाद् विषयस्तद्धि धर्मविभु स्मृत ॥११४॥

न क्षीयते न क्षरति विकारप्रसृतस्तु तत् ।

अक्षर तेन चाप्युक्तमक्षीणत्वात्तत्त्वं च ॥११५॥

यस्मात्पृथगुच्यते च तस्मात्पुरुष उच्यते ।

गुग्गुत्तमिको यस्मात्पुण्येत्यमिवीयते ॥११६॥

पुण्य कथयन्नाय कथन्तज्ज्ञैर्विभाष्यते ।

गुद्धो निरक्षनाभामा ज्ञानाज्ञानविवर्जित ॥११७॥

अग्नि नारतीति गोऽन्या वा बद्धो मुक्तो यत स्थितः ।

नैहैतिज्ञान्तमिहं द्यगूक्तमस्मिन् विद्यते ॥११८॥

गुद्धत्वात् तु द्येयो वेत्तृष्टत्वात्सामदर्शन ।

आत्मप्रत्ययकारी माग्नूनश्चापि हेतुकम् ।

भारभालगनुमान्य चिन्तयन् प्रमुच्यते ॥११९॥

यदा पश्यति ज्ञातार गाताथ दसनात्मकम् ।

दृश्यादृश्येषु निर्द्वेष्य तदा तद्बुद्धर वरम् ॥१२०॥

सुख-५ स धीर मोह के भाव मोह इस नाम से कहे जाते हैं । ध्येय के होने से जो विषय है वह ही ध्येय विषय कहा जाता है ॥११४॥ वह विचार का प्रसृत न तो क्षीय होता है और न क्षर हो होता है और उस ही रीति से उससे प्रसीय होने के कारण से बलर ऐसा कहा गया है ॥११५॥ जिससे वह पुरी में अनुमान विद्या करता है उस कारण है वह पुरय ऐसा कहा जाता करता है । पुर प्रत्यक्ष जिससे होता है वह पुरय इस नाम से बोला जाता करता है ॥११६॥ पुरय कही इसके अन्तर उसके ज्ञाताओं के द्वारा वह बुद्ध निरञ्जनाभास धीर ज्ञान तथा अज्ञान से रहित को विभाजित किया जाता है ॥११७॥ है और नहीं है—इससे कहा वह ज्ञेय है वह एवं मुक्त गया हुआ स्थित है । अन्य निर्द्वेषिकान्त निर्द्वेष्य भूत नहीं होता है ॥११८॥ बुद्ध होने से वह वेद्य नहीं है और वह होने से समवेत होता है । आत्मा वा प्रत्यय कारी होता है । सारगुण हेतु भाव ज्ञान एवं अनुमान वा विस्तार करता हुआ मोह को प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥११९॥ जब जिस समय ज्ञातार्थ दसनात्मक जाता है तब तब समय दृश्यादृश्यो निर्द्वेष्य उसका वह बड़ा होता है ॥१२॥

एव ज्ञातार स विज्ञाता तत धर्मात् नियच्छति ।

कार्ये च कारणे च बुद्धबाधौ यौतिके तदा ॥१२१॥

सप्रयुक्तो विमुक्तो वा जीवती वा मृतस्य च ।

विज्ञाता न च दृश्येत पृथक्त्वेनेह स वस्तु ॥१२२॥

स्वेनात्मानं समात्मानं कारणमात्मा नियच्छति ।

प्रकृती कारणे च स्व मयेवोपतिष्ठति ॥१२३॥

अस्ति नास्तीति सोऽप्यो वा दृष्टानुमेति वा पुन ।

एतत्त्वं वा पृथक्त्वं वा क्षत्रजपृथ्वेति वा ॥१२४॥

आत्मवान् स निरात्मा वा चेतनोऽचेतनोऽपि वा ।

वर्त्ता वा सोऽववर्त्ता वा मोक्ता वा मोक्ष्यमेव वा ॥१२५॥

यज्ज्ञात्वा न निवर्तन्ते क्षेत्रज्ञे तु निरञ्जने ।

अवाच्य तदनाख्यानादग्राह्यत्वाद्देहेतुनि ॥१२६॥

इस प्रकार से वह विक्षेप रूप से ज्ञान रखने वाला फिर भ्रांति को प्राप्त किया करता है । कार्य में और कारण में तथा बुद्धि प्रादि भौतिक में उस समय संप्रयुक्त अथवा विद्युक्त होता हुआ, जीवित का अथवा मृत का विजाता यहाँ सब प्रकार के पृथक्त्व होने से दिखाई नहीं देता है ॥१२१-१२२॥ काश्यात्मा वह अपने से आत्मा को और उस आत्मा को प्राप्त करता है । प्रकृति में और कारण में अपनी ही आत्मा में उप तिष्ठमान होता है ॥१२३॥ है और नहीं है—यह अथवा वह अन्य है—यहाँ अथवा परमोक में है—एकत्व है अथवा पृथक्त्व है—क्षेत्रज्ञ है अथवा पुच्छ है—वह आत्मवान् अथवा निर्गुण है—चेतन है अथवा अचेतन है—वह कर्त्ता है किम्बा वह भवर्त्ता है—वह भोक्ता अथवा भोग्य ही है—यह जानकर क्षेत्रज्ञ निरञ्जन में निवृत्त नहीं होते हैं । अपितु उसने अनात्मन होने में तथा अग्राह्य होने से यह कहने योग्य नहीं है ॥१२४-१२५-१२६॥

अप्रसक्तममचिन्त्यत्वादवाप्यत्वाच्च सर्वश ।

नाभिलिम्पाति तत्तत्त्व सम्प्राप्य मनसा सह ॥१२७॥

क्षेत्रज्ञं निर्गुणं शुद्धं शान्ते क्षीणे निरञ्जने ।

अपे(यै)तमुत्तु से च निरुद्धं शान्तिभागते ॥१२८॥

निरात्मके पुनस्तस्मिन्वाख्यावाक्यो न विद्यते ।

एतौ सहारविस्तारी व्यक्ताव्यक्ती तत पुन ॥१२९॥

सृजते असते चैव अस्त पर्यवतिष्ठते ।

क्षेत्रज्ञाधिष्ठित सर्वं पुन सर्वं प्रवर्तते ॥१३०॥

अधिष्ठानप्रवृत्तेन तस्य ते बुद्धिपूर्वकम् ।

साधर्म्यबैधर्म्यकृतसयोगो विधितस्तयो ।

अनादिमान् स सयोगो महापुरुषश्च स्मृत ॥१३१॥

यावत्तु सर्गप्रतिमर्गकालस्तावच्च तिष्ठति सुसन्निरुध्य ।

पूर्वं हितव्ये तदबुद्धिपूर्वं प्रवर्त्तते तत्पुरुषाथमेव ॥१३२॥

एषा निसर्गप्रतिसमपूर्व प्राधानिकी चेश्वरकारिता च ।

अनाद्यनन्ता ह्यभिमानपूर्वक विलासय ही जगदभ्युपति ॥१३३॥

इत्येष प्राकृत सगस्तृतीयो हेतुतत्त्वः ।

उक्तो ह्यस्मिस्तदात्वनन्त कविमिस्तत्प्रमुच्यते ॥१३४॥

अविद्य होने से और सब प्रकार से अवाप्य होने से अग्रतत्त्व है । मनके साथ उस तत्त्व को सम्प्राप्त करके वह अभिविज्ञान नहीं होता है ॥१३७॥ जेजज-शुद्ध-मिथु-ए-शान्त-कील-चिरञ्जन य शुद्ध और शुद्ध अविज्ञान होते हुए निवृत्त होकर शान्ति को प्राप्त होजाते हैं ॥१३८॥ वह निरात्मा होता है इसलिये उसमें फिर कुछ भी बाध्य तथा अवाप्य नहीं रहता है । ये सहार और विस्तार तथा व्यक्त और अव्यक्त फिर सृजन करता है और प्रजन करता है और प्रस्त होता हुआ पदस्थित रहता है । जेजज में अभिविज्ञान सभी फिर प्रवृत्त होता है ॥१३९॥ १३ ॥ अभिविज्ञान प्रवृत्त होने से उसके बुद्धिपूर्वक सावम्य और अधम्य से किया हुआ संयोग उन दोनों का विधि से वह अनादिमान् संयोग होता है और महापुरुष के जायमान कहा गया है ॥१४०॥ और ब्रह्मता सब तथा प्रतिसर्ग का काम है वतना शुद्धमिथु होकर रहता है । पहिले हितव्य में वह अशुद्धि पूर्वक प्रवृत्त होता है और पुरुषात् ही होता है ॥१४१॥ यह निश्चय और प्रतिसम पूर्वक प्राधानिकी ईश्वर कारिता है जो अनाद्यनन्त वाली अभिमान पूर्वक विलास करती हुई जगत् की प्राप्त होती है । यह हेतु तत्त्व वास्तव तृतीय प्राकृत सर्ग है जोकि कहा गया है उसमें अत्यन्त रूप से कवियों के द्वारा प्रमुक्ति प्राप्त की जाती है ॥१४४॥

प्रकरण ६५—सृष्टि वर्णन

सूत सुमहन्त्याख्यान भवता परिकीर्तितम् ।

प्रजानां मनुजि साद्य देवानामृषिभि सह ॥१॥

पितृग धवभूताना पिशाचोरगरक्षसाम् ।

माना दानवाना च यसाणामेव पक्षिणाम् ॥२॥

अत्यद्भुतानि कर्माणि विविमान्वर्म्मनिश्चय ।

विचित्राश्च कथायोगा जन्म चाभ्युत्तमम् ॥३॥

तत्कथ्यमानमस्माकं भवता दलक्षण्या गिरा ।

मन कणसुख सोते प्रीणात्पाभूतसम्भवम् ॥४॥

एवमाराध्य ते सूत सत्कृत्य च महर्षय ।

पप्रच्छुः सन्निरुण सर्वे पुन सर्गप्रवर्त्तनम् ॥५॥

कथं सूत महाप्राज्ञ पुन सर्गं प्रपत्स्यते ।

बन्धेषु सम्प्रलीनेषु गुणसाम्ये तमोमये ॥६॥

विकारेन्ध्रविसृष्टेषु ह्यव्यक्ते चात्मनि स्थिते ।

मप्रवृत्तौ ब्रह्मणस्तु महासायुज्यगैस्तदा ।

कथं प्रपत्स्यते सर्गैस्तन्न प्रश्नं हि पृच्छताम् ॥७॥

ऋषियो ने कहा—हे सूतजी ! महान् आत्मान का वर्णन किया है जिसमें मनुष्यो के साथ प्रजाओ का तथा ऋषियो के साथ देवों का पूरा वर्णन है । इस आत्मान में पितृ-गन्धर्व-भूत-पिशान-उरग-राक्षस-दैत्य-दानव-यक्ष और पक्षियों के अरदभूत कर्मों का वर्णन भी किया गया है । इसमें आपने विधि से पुक्त धर्म का भी निदधय बताया है । इसमें विचित्र कथाओ के योग है तथा श्रेष्ठतम अभ्युत्तम जन्म का भी वर्णन किया है ॥१-२-३॥ हे सोते ! आपतो अपनी प्रतीक दलक्षण सुन्दर वाणी से मन तथा कानों को परम सुख सप्रभुषण करते हुए सभी कुल का वर्णन करके समस्त प्राणिमो को प्रसन्नता प्रदान किया करते हैं ॥४॥ इस प्रकार से उन महर्षियो ने सूतजी का समाराधन एवं भली भाँति सत्कार करके पुन उन सत्रधारियो ने सर्ग के प्रवर्त्तन के विषय में उनसे पूछा था ॥५॥ हे सूतजी ! आपतो महान् परिद्व्य हैं । यह सर्ग फिर कैसे होगा क्योंकि समस्त बन्ध जब प्रलीन होजाते हैं और इस तमोमय में गुणों की समता होजाया करती है ? समस्त विकार तो उस समय में विसृष्ट रहते ही नहीं हैं क्योंकि यह अव्यक्त आत्मा में ही स्थित होजाया करता है । महान् सयुज्य को प्राप्त होने पर ब्रह्म की प्रवृत्ति उस समय में होती ही नहीं है फिर यह सर्ग कैसे होता है ? हम सब यही आपसे पूछना चाहते हैं सो आप कृपा करके वर्णन कर दीजिये ॥६-७॥

एवमुक्तं स्ततः सूतस्तदासीं सोमहपण ।
 व्याख्यातुमुपचक्राम पुनः सगप्रवत्तनम् ॥८॥
 अहं वो वत्तं विष्यामि यथा सगं प्रपत्स्यते ।
 पूर्ववत्स तु विज्ञं यं समासात्तं निबोधन् ॥९॥
 दृष्टं चवानुमेयं तव वक्ष्यामि युक्तितः ।
 तस्माद्वाचो निवत्तन्ते ह्यग्राण्य मनसा सह ॥१०॥
 अभ्यक्तवत् परोक्षत्वाद् ब्रह्मणं तद्दुरासदम् ।
 विकारं प्रतिसदृष्टं गुणसाम्ये निवत्तते ॥११॥
 प्रधानं पुरुषाणाञ्च साधर्म्येणैव तिष्ठति ।
 धर्माधर्माभ्यां प्रलीयेते धर्म्यक्तो प्राणिना सदा ॥१२॥
 सत्त्वभावात्मको धर्मो गुणसत्त्वे प्रतिष्ठितः ।
 तमोभावात्मकोऽधर्मो गुणे तमसि तिष्ठति ॥१३॥
 अधिभागवत्तावेतौ गुणसाम्यस्थिताः कुभौ ।
 सबकार्ये बुद्धिपूर्व प्रधानस्य प्रपत्स्यते ॥१४॥

इस प्रकार से महाविषयो के द्वारा जब सूतजी से कहा गया तो वे सोम
 हपण पुनः सग की प्रकृति का वर्णन करने का आरम्भ करने लगे थे ॥८॥
 हे ऋषियो ! मैं आप सबको बतलाता हूँ कि वह सग किस प्रकार से प्रकृत
 हुआ करता है । यह पूरा भी भक्ति ही जानने के योग्य है । अतः यहाँ पर
 अतीव संक्षेप में इसे समझाना ॥९॥ यह दृष्ट तथा अनुमान करने के योग्य है ।
 मैं युक्ति से सबको बतलाता हूँ । यहाँ से मन के साथ बाधों भी निवृत्त हो
 जाया करती है और निरी की भी पड़ना नहीं होवे ॥१०॥ अध्यक्त की ही
 भाति वह परोक्ष वस्तु है और उसका दृष्ट करना अत्यन्त कठिन है । गुणों
 की साम्यावस्था प्रति सदृष्ट ही जाने पर वह विचारों से पुनः निवृत्त होती
 है ॥११॥ पुरुषों के साधर्म्य से ही प्रधान स्थित होता है । प्राणियों के धर्म
 और अधर्म धर्म्यक्त होकर सदा प्रतीत हो जाया करते हैं ॥१२॥ सत्त्वभावा
 त्मक एक धर्म गुण सत्त्व में प्रतिष्ठित रहता करता है । तमोभावात्मक अधर्म
 तमोगुण में स्थित रहता करता है ॥१३॥ वे दोनों गुण-साम्य में स्थित रहने

हुये उस समय में विनाश से रहित होते हैं । प्रचान के समस्त कार्य में बुद्धि पूर्वक ही प्रवृत्त होंगे ॥१८॥

अबुद्धिपूर्व क्षेत्रज्ञ अधिष्ठास्यति तान् गुणान् ।

एव तानभिमानेन प्रपत्स्येत पुरस्तदा ॥१९॥

यदा प्रवर्तितव्यन्तु क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः ।

भोज्यभोक्तृत्वसम्बन्ध प्रपत्स्येते युतामृभौ ॥२०॥

तस्माच्छरणमव्यक्त साम्ये स्थित्वा गुणात्मकान् ।

क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं तच्च विपश्य भजते तु तत् ॥२१॥

तस्य प्रपत्स्यते व्यक्त क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः ।

क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं तत्त्वं विकार जनयिष्यति ॥२२॥

महदाद्य विक्षेपान्तं चतुर्विंशगुणात्मकम् ।

क्षेत्रज्ञस्य प्रधानस्य पुरुषस्य प्रपत्स्यते ॥२३॥

ब्रह्माण्डे प्रथमं सोऽयं भविता चेश्वर पुनः ।

ततो ज्ञेयस्य कृत्स्नस्य सर्वभूतपति शिव ॥२४॥

ईश्वर सर्वभूतानां ब्रह्मा ब्रह्ममयो महान् ।

भावि देव प्रधानस्यानुग्रहाय प्रवक्ष्यते ॥२५॥

यह क्षेत्रज्ञ विना ही बुद्धि के योग किए हुए उस समय उन गुणों में अधिष्ठित रहा करता है । इस प्रकार से उस समय में उन गुणों को पहले प्रवृत्त कराया जाता है ॥१९॥ जिस समय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ इन दोनों को प्रवृत्त करना होता है तो ये दोनों ही भोज्य और भोक्ता इसके सम्बन्ध की प्राप्ति किया करते हैं ॥२०॥ इसके कुछ स्वरूपों को साम्यावस्था में स्थित करके वह क्षरण अभ्यक्त क्षेत्रज्ञ में अधिष्ठित होता है और वही अब विपमावस्था को प्राप्त होते हैं तो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों का व्यक्त स्वरूप हो जाता है । क्षेत्रज्ञ में अधिष्ठित सब विकार को उत्पन्न किया करता है ॥२१-२२॥ महत्तत्त्व से आरम्भ करके निमेष के अन्त पर्यन्त और चौबीस गुणों के स्वरूप वाला क्षेत्रज्ञ पुरुष का और प्रचान का रूप हो जाया करता है ॥२३॥ इस ब्रह्माण्ड में वह प्रथम होता है । इसके अनन्तर फिर ईश्वर होता है । इसके

पश्चात् इस सम्पूर्ण ज्ञान (जानने के योग्य) का समस्त भूतो का त्वाभी शिव होता है ॥२०॥ समस्त भूतो का ईश्वर महान् ब्रह्मण्य ब्रह्मा है । वह प्रधान के अनुग्रह के लिये आदि देव कहा जायगा ॥२१॥

अनाद्यो स्वयमुत्पन्नाद्युभौ सूक्ष्मौ तु सौ स्मृतौ ।

अनादिसयोगमुतौ सव क्षत्रज्ञमेव च ॥२२

अबुद्धि पूर्वकं वृत्तौ मशको तु वरी तथा ।

अप्रत्ययमनाद्यं च स्थिताबुद्धनमप्यस्य ॥२३

प्रवृत्त पूर्वतः पूर्व पुनः सर्वं प्रपत्यत ।

अज्ञागुणं प्रवत्तन्त रजः सत्त्वतमात्मकम् ॥२४

प्रवृत्तिकाले रजसाभिपन्नमहत्त्वभूतादिविशेष्यताश्च ।

विशयता चेन्मित्रयताश्च यान्ति बुणावसाने पतिभिर्मनुष्या ॥२५

सत्पाभिष्यमिनिस्तस्य ध्यायिनः सन्निमित्तकम् ।

रजः सत्त्वतमा व्यक्ता विधर्मणि परस्परम् ॥२६

आद्यन्तः सप्रपत्यते क्षत्रतज्ज्ञास्तु तवशः ।

ससिद्धकाव्यकरणा उत्पद्यन्तः अभिमानिनः ॥२७

सर्वं सत्त्वा प्रपद्यन्तः ह्यव्यक्तात्पुनरपि च ।

प्रसूत या च सुबहा साधिकाऽप्यसाधिका ॥२८

ये दोना अनाद्य है और स्वयमुत्पन्न होने वाले है तथा सूक्ष्म कहे गये हैं एव अनादि सयोग से युक्त है यह सब क्षेत्रज्ञ ही है ॥२२॥ ये अबुद्धि पूर्वक उस समय मशक बर है तथा अप्रत्यय एव अनाद्य बदक ने स्थित रहा करते हैं ॥२३॥ पूर्व से श्री पूष सर्व के प्रवृत्त होने पर ये यक्त प्रवृत्ति को प्राप्त होने वाले होते हैं । अज्ञागुणों के द्वारा रजः सत्त्वतमात्मक होकर प्रवृत्त होने हैं । ॥२४॥ प्रवृत्ति के काल में रजोगुण से धर्मिण्य महत्त्व भूतादि विशेष्यता तथा विशेषता और दृष्टियता की अनुष्य बुद्धों के अवसान में पतिपों के साथ प्राप्त होते हैं ॥२५॥ सत्त्व के अविष्यायी उसके सन्निमित्तक ध्यायी हैं । व्यक्त रजः-सत्त्व और तम परस्पर में विधर्मा होते हैं ॥२६॥ आदि और अन्त में सब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ हो जाते हैं । सविद्ध कार्य के कारण अभिमान वाले

उत्पन्न होने हैं ॥२७॥ समस्त मत्व पहले ही अव्यक्त से प्रतिपन्न होते हैं ।
जो कि मुखामाधिक्य और अन्त्याधिक्यो का प्रसव करती है ॥२८॥

ससरन्तस्तु ते सर्वे स्थानप्रकरणे सह ।
कार्य्याणि प्रतिपत्स्यन्ते उत्पद्यन्ते पुन पुन ॥२९॥
गुणमात्रात्मकाश्चैव धर्माधर्मा परस्परम् ।
आरप्सन्तीह बान्धोऽन्य धरेणानुग्रहेण च ॥३०॥
सर्वे तुल्याः प्रसृष्टार्थ सर्गादौ यान्ति विक्रियाम् ।
गुणास्तत्प्रतिधावन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥३१॥
गुणास्ते यानि सर्वाणि प्राक् दृष्टे प्रतिपेदिरे ।
तान्मेव प्रतिपद्यन्ते सृष्टमाना पुन पुनः ॥३२॥
हिंसाहिंसे मृदुक्लूरे धर्माधर्मावृत्तानृते ।
तद्भाविता प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥३३॥
महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु भूतिषु ।
विप्रयोगाश्च भूतानां गुणैर्मय सप्रवर्तते ॥३४॥
इत्येव को मया ख्यात पुनः सर्व समासत ।
समासादेव बक्ष्यामि ग्रहाणोऽप्य समुद्भवम् ॥३५॥

वे सब सख स्थान और प्रकरणों के साथ यहाँ ससरण करते हुए पुन -
पुन उत्पन्न होते हैं और कार्य्यों की प्राप्ति किया करते हैं ॥२९॥ यहाँ पर वे
सब परस्पर में गुणमात्र स्वरूप भाँके धर्म और अधर्म को धर तथा अनुग्रह से
आरम्भ किया करते हैं ॥३०॥ सब सुख हैं और प्रसृष्ट होने के लिये सर्व के
आदि विक्रिया को प्राप्त हुआ करते हैं । उनके प्रति गुण धावन किया करते हैं ।
जो-जो जिसकी स्वता है वे गुण सृष्टि में पूर्व जो वे उन सबको प्राप्त हो जाते
हैं और वे ही सृष्टमान होते हुए पुन पुन प्रतिपन्न होते हैं ॥३१-३२॥ हिंस्र-
अहिंस्र, मृदु-क्लूरे, धर्म-अधर्म, और आवृत्त तथा अवृत्त में तत्त्व भावों से भावित
होते हुए जो जिसकी स्वता है प्रपन्न हुआ करते हैं ॥३३॥ इन्द्रियार्थ भूतियों में
और महाभूतों में नानात्व होता है । भूतों के विप्रयोग गुणों से आवृत्त हुआ करते

है ॥३४॥ ॥ मैंने सबसेन से पुन सग का बलन कर दिवा है । अब सबेन से ही ब्रह्म का समुद्रव कहूँगा ॥३५॥

अव्यक्तात्कारणात्तस्मान्नित्यात्सदसदात्मकात् ।

प्रधानपुरुषाम्यान्तु जायते च महेश्वर ॥३६॥

स पुन सम्भावयिता जायते ब्रह्मसन्निभ ।

सृजते स पुनलोकानभिमानगुणात्मकान् ॥३७॥

महङ्कारस्तु महत्तस्तस्माद्भूतानि चात्मन ।

युगपत् सम्प्रवर्तन्ते भूतान्येवेन्द्रियाणि च ।

भूतमेवात्र भूतस्य इति सग प्रवर्तत ॥३८॥

विस्तरावयवरत्तया यथाग्रस यथाधृतम् ।

कीर्तित वा यथा पूव तवबाम्भुपधायताम् ॥ ३९॥

एतच्छ्रुत्वा नमिषेयास्तदानीं लोकोत्पत्तिं न व्ययञ्च ।

तस्मिन् सन्नेश्वभृष प्राप्य शुद्धा पुण्य लोकमृषमः प्राप्नुवन्ति ॥४०॥

यथा भूय विधिवददेवतादीनिष्ट्वा चबावभृष प्राप्य शुद्धा ।

स्मरत्वा वेदानामुपोस्त कृतार्थापुण्यास्तोकाभ्याप्य यथेष्ट चरिध्ययः ॥४१॥

एत त नमिषेया इष्ट्वा सुष्ट्वा च न तदा ।

जग्मुर्भावभृषस्नाता स्वर्गं सर्वे तु सविन ॥४२॥

सत् श्रीर भवत् स्वस्म नामे तथा नित्य उस अव्यक्त कारण से श्रीर

प्रधान पुरुषो से महेश्वर सन्तुपन्न होते हैं ॥३६॥ वह फिर सम्भावयित ब्रह्मा

संज्ञा बाणा होता है श्रीर वह प्रविमान गुणात्मक लोको का धृजन किया करता

है ॥३७॥ महर्ष उत्प से महङ्कार उत्पन्न होता है श्रीर उस महङ्कार से भूतो की

समावाये उत्पन्न होती है श्रीर फिर एक ही साथ भूत तथा इन्द्रियां समुत्पन्न

हुआ करते हैं । भूतो से भूतो के जेद होते हैं—इस प्रकार से यह सग प्रवृत्त

हुआ करता है ॥३८॥ उनका विस्तरावय मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार श्रीर

जैसा कुछ सुना था उसके अनुसार मुझ्दारे सामने कह दिया है । जैसा पहिले

कहा था वसा ही इसे समझ लेना चाहिये ॥३९॥ नमिषारक्ष के निवास करने

वाले श्रुतियो ने उस समय यह अवल करके जिससे लोको की उत्पत्ति—

सन्धिति और उपसर्गति की उम सत्र में अवभृथ को—प्राप्त करके शुद्ध होने वाले ऋषिगण परम पुण्य लोक को प्राप्त होते हैं ॥४०॥ जिन प्रकार से आप लोग त्रिंश-विधान के माघ देवता आदि का यजन करके और अवभृथ को प्राप्त करके शुद्ध हुए घ्रायु के अन्त में देहों का परित्याग करके जिनके द्वारा सभी अर्था की प्राप्ति करनी गई है और सफल हो चुके हैं फिर परम पुण्य लोकों की प्राप्ति करके यथेष्ट विचरण करेंगे ॥४१॥ ये सब नैमिषारण्य वासी मुनिगण यजन और मृजन करके उम समय में अवभृथ स्नान करने वाले सब सभी स्वर्ग लोक को चले गये थे ॥४२॥

विप्रास्तथा सूयमपि चेष्टा बहुविधैर्मखै ।
 घ्रायुषोऽन्ते ततः स्वर्गं गन्तारोऽथ द्विजोत्तमा ॥४३॥
 प्रक्रिया प्रथमे पादे कथावस्तुपरिग्रह ।
 अनुपद्म उपोढात उपसहार एव च ॥४४॥
 पञ्चमेतच्चतुष्पाद पुराण लोकसम्मतम् ।
 उवाच भगवान् साक्षाद्वायुलोकहिते रत ॥४५॥
 नैमिषे सत्रमासाद्य मुनिभ्यो मुनिसत्तमा ।
 तत्प्रसादादसदिग्ध भूतोत्पत्तिलयानि च ॥४६॥
 प्राधानकीमिमा सृष्टि तथैवैश्वरकारिताम् ।
 सम्यग्विदित्वा मेधावी न मोह्यधिविगच्छति ॥४७॥
 इदं यो ब्राह्मणो विद्वानितिहास पुरातनम् ।
 शृणुयान्छ्रावयेद्वापि तथाध्यापयतेऽपि च ॥४८॥
 स्थानेषु स महेन्द्रस्य भोदते आश्रयती समा ।
 ब्रह्मसामुज्यगो भूत्वा ब्रह्मणा सह मोक्ष्यते ॥४९॥

हे विप्रोत्तमो ! हे विप्रगण ! इसी प्रकार से भी आप लोग भी बहुत प्रकार के मन्त्रों के द्वारा यजन करके घ्रायु के अन्त में स्वर्गलोक में चले जाओगे ॥४३॥ पुराण के प्रथम पाद में कथा वस्तु का परिग्रह होता है और फिर अनुपद्म—उपोढात तथा उपसहार होता है ॥४४॥ इस प्रकार से यह पार पादो वाला पुराण लोक सम्मत होता है । लोक-हित में रत रहने

बाने भगवान् वासुदेव ने साक्षात् यह कहा है ॥४३॥ धर्मिण क्षेत्र मे मुनिगण
 से किये हुए सत्र को प्राप्त करके हे मुनि धन्यो ! वहाँ उनके प्रसाद से सन्देह
 रहित हो जाता है और भूतो की उत्पत्ति तथा तब यह प्राचीनकी अर्थात्
 प्रधान से होने वाली सृष्टि तथा ईश्वर के द्वारा कवाई ॥ सृष्टि का भली भाँति
 ज्ञान प्राप्त करके मेधावी पुरुष फिर कभी मोह को प्राप्त नहीं होता है ॥४६
 ४७॥ कोई विद्वान् ब्राह्मण इस पुरातन इतिहास का अवलोकन करता है अथवा
 किसी को अवलोकन कराता है वा इसे को पढा देता ॥ वह फिर महेश्वर के स्थानो
 मे अनेक वर्षों तक मोह प्राप्त किया करता है तथा ब्रह्म सायुज्य को प्राप्त करने
 वाला होकर ब्रह्मा के साथ मोक्ष को प्राप्त हो जायगा ॥४८ ४९॥

तथा कीर्तिमता कीर्तिं प्रजेषाना महात्मनाम् ।

प्रथम्यमृषिबीशाना ब्रह्मभूयाव गच्छति ॥५०॥

धर्म्य यथास्ममावुच्य पुण्य वैदग्ध्य सम्भसम् ।

कुष्माण्ड पामनेमोक्त पुराणं ब्रह्मवादिना ॥५१॥

मन्वन्तरेश्वराणां च य कीर्तिं प्रथयेदिमाम् ।

देवतानामृषीणाञ्च भूरिद्रविणतजसाम् ।

स सौम्यं ध्यते पाप पुण्यञ्च महद्वाप्नुयात् ॥५२॥

यश्चेद ध्यायेद्विद्वान्सदा पशुणि पशुणि ।

धूतपाप्मा अतस्वर्गो ब्रह्मभूयाव कल्पते ॥५३॥

यश्चेद ध्यायेच्चन्द्राद् ब्राह्मणान्पादमन्तव ।

भक्षय सावकामीय पितृ स्तद्धोपतिष्ठति ॥५४॥

यस्मात्पुरा ह्यनन्तीद पुराण तेन चोच्यते ।

निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपाप प्रमुच्यते ॥५५॥

तथैव त्रिषु वर्णेषु ये मनुष्या प्रधानतः ।

इतिहासमिमं श्रुत्वा धर्मादि विदधे मतिम् ॥५६॥

मावन्त्यस्य शरीरेषु रोमकूपाणि सवक्ष ।

ठावत्कोटि सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ।

ब्रह्मसायुज्यगो भूत्वा दवस सह मोदते ॥५७॥

उन कीर्ति बाल महान्मा प्रजाओ के ईश और पृथिवी के रक्षामियों की कीर्ति का विस्तार करने हुए वह ब्रह्म भूष अर्थात् ब्रह्म के ही स्वल्प प्राप्त करने के लिये हो जाता करता है ॥१०॥ ब्रह्मजानी श्रीकृष्ण द्वैपायन के द्वारा कथित यह पुराण परम सत्य है तथा अति पुण्यमय है । यह आयु के प्रदान करने वाला—यश बढ़ाने वाला और वेदों के ज्ञान सम्पन्न है ॥११॥ मन्वन्तरो के ईश— अधिक इन्द्रिया तथा तेज बाले देवता और ऋषि वन कीर्ति को जो प्रदित किया करता है वह सब प्रकार के पापों में मुक्त हो जाता है पर महान् पुण्य को प्राप्त किया करता है ॥१२॥ जो विद्वान् इनको पूर्व—पूर्व पर इनका श्रावण करता है वह पापों को नष्ट करने वाला और स्वर्ग को भी जीत लेने वाला ब्रह्म के गृहण ही होजाता है ॥१३॥ जो जो इनको श्राद्ध में अन्न का दाव ही ब्राह्मणों को श्रमण इत्यादि दे वह अत्यन्त नमस्त कामनाओं से पूर्ण पितरों को कर्मात्म्य भी यज्ञों पर उपरिबल हुआ करता है ॥१४॥ जिसके द्वारा यह पुराण पहिले कहा जाता है और जो इनके निष्कृत को जानता है वह सम्पूर्ण पापों में प्रमुक्त होजाता है ॥१५॥ इनी प्रकार से तीनों वर्णों में प्रधानतया जो भगुप एव गुणीत पुराण का श्रवण करके वर के लिये अपनी मति करता है समये गरीब में जितने रोगों के छिद्र होने हैं उतने ही सफल कोटि वर्ष पर्यन्त यह दिवनीक में रहकर मोक्ष प्राप्त किया करता है ॥१६॥

सर्वपापाह्वर पुण्य पवित्रञ्च यश्चस्त्वि च ।

ब्रह्मा ददी शास्त्रमिदं पुराणं मातरिश्वने ॥१७॥

तस्माज्ज्ञानमा प्राप्तं तस्माच्चापि बृहस्पति ।

बृहस्पतिस्तु प्रोवाच मयि तदमन्तरम् ॥१८॥

सविता मृत्यवे प्राह मृत्युश्चेन्द्राय वै पुन ।

इन्द्रश्चापि वसिष्ठाय सोऽपि माररवताय च ॥१९॥

सायस्यतस्त्रिधाग्ने च त्रिधामा च शरद्वते ।

शरद्वतस्त्रिधाग्ने सोऽन्तर्गिषाय दत्तवान् ॥२०॥

वपिरो चान्तरिक्षो वै सोऽपि त्रय्यारुणाय च ।

यम्यान्तो घनञ्जये च प्रदारकृतञ्जये ॥२१॥

कृतञ्जयात्तुल्यो भरद्वाजाय सोऽप्यथ ।

गौतमाय भरद्वाज सोऽपि नियन्तरे पुन ॥६३

नियन्तरस्तु प्रोवाच तथा वाचश्रवाय च ।

स ददौ सोमशुष्माय स ददौ तृणविन्दवे ॥६४

अतस्त पापी वा हरण करने वाला—परम पुण्यमय—वभिन्न और महा है परिपूर्ण वाच ब्रह्माग्नी ने वायुदेव के लिये प्रदान किया था ॥६३॥ उक्त वायु देव है इसे उचना कवि ने प्राप्त किया था और भागवत युक्त से इसकी प्राप्ति बृहस्पति ने की थी । फिर बृहस्पति ने उचिता देव को इसको बताया था और इसके अनन्तर सविता ने मृत्यु देव को कहा था । मृत्युदेव ने चन्द्रदेव को बताया था । इन्द्रदेव ने वसिष्ठ मुनि को कहा था तथा वसिष्ठ ने सारस्वत को बताया था ॥६४॥ सारस्वत ने विधामा को इसे बताया था और फिर विधामा ने चारङ्गम् को इसको बताया था । चारङ्गम् ने निषिध को और निषिध ने इसका ज्ञान अन्तरिक्ष को दिया था । अन्तरिक्ष ने बर्षा को इस पुराण का ज्ञान प्रदान किया था और बर्षा ने अम्याकण को बताया था अम्याकण ने अनन्जय को और अनन्जय ने कृतञ्जय को इसका ज्ञान दिया था ॥६५॥ कृतञ्जय से तुण्जय ने प्राप्त किया था तथा तुण्जय से भरद्वाज मुनि ने इसे पाया था । भरद्वाज ॥ गौतम की प्रदान किया और नियन्तर को प्रदान किया था । नियन्तर ने इसका ज्ञान वाचश्रव को प्रदान किया था । उसने फिर इसे सोमशुष्म को दिया था । सोमशुष्म ने तृणविन्दु को प्रदान किया था ॥६६॥

तृणविन्दुस्तु दत्ताय दश प्रोवाच शक्तये ।

शक्ते पराशरश्चापि अभस्वाः श्रुतवादिनम् ॥६७

पराशरीकृतुखस्तस्माद्दत्त पायन प्रभु ।

दत्त पायनात्पुनश्चापि मया प्राप्त द्विजोत्तमा ॥६८

मया वै तत्पुन प्रोक्त पुनश्चामितबुद्धये ।

इत्येव वाचा ब्रह्मादिभूतणा समुदाहृता ॥६९

नमस्कार्याश्च गुरव प्रयत्नेन प्रनीपिभि ।

अथ मन्त्रस्यमायुष्य पुण्य सर्वाधिसाधकम् ॥७०

पापघ्न नियमेनेद श्रोतव्य ब्राह्मणो मदा ।

नाशुचो नापि पापाय नाप्यसवत्मरोपिते ॥६६॥

नाथदधानाविदुषे नापुत्राय कथञ्चन ।

नाहिताय प्रदातव्य पवित्रमिदमुत्तमम् ॥७०॥

अव्यक्त च यस्य योनिं वदन्ति व्यक्त एह कालमनार्गतञ्च ।

वर्हि वक्त्र चन्द्र सूर्यो च नेत्रे दिक्षु श्रोत्रे घ्राणमादृश्व वायुम् ॥७१॥

बाह्यो वेदाश्चान्तरिक्ष शरीर क्षिति पादौ तारका रोमकूपान् ।

सर्वाणि चाङ्गानि तथैव तानि विद्यास्सर्वा यस्य पुच्छ वदन्ति ॥७२॥

त देवदेव जनन जनाना सम्बन्धेषु लोकेषु प्रतिष्ठितञ्च ।

वर वराणां वरश्च महेश्वर ब्रह्माणमादि प्रयतो नमस्ये ॥७३॥

पृष्ठविन्दु ने इसको दक्ष को श्रवण कराया था । दक्ष ने शक्ति को दिया

था । तथा शक्ति से गर्भ में ही दिक्ता पराशर ने इसका श्रवण किया था ॥६४॥

पराशर से जातुकण ने तथा जातुकर्ण से हंपायन ने इसका ज्ञान प्राप्त किया

था और हे द्विजोत्तमो ! हंपायन महर्षि से भुम्हे इसके ज्ञान प्राप्त करने का

मौभाग्य मिला था ॥६६॥ वासपायन ने कहा—मैंने फिर इस पुण्य रत्न का

ज्ञान प्रमित बुद्धि पुत्र को प्रदान किया था । इसी प्रकार से यह ब्रह्मादि गुरु

वर्ण के द्वारा वाणी से यह पुण्य कहा गया है । मनीषियों को समस्त गुरु वर्ण

गो शत्रु प्रथम प्रणाम करना चाहिए यह पुण्य परम वस्तु है—यथा तथा वायु

के प्रदान करने वाला परम पुण्यमय और मध्यस्थ सर्वों का साधक है ॥६७-६८॥

यह पुराण पापों के नाश करने वाला है । ब्राह्मणों को इसका श्रवण

निश्चय पूर्वक सर्वदा करना चाहिए । यह परम पवित्र एवं अस्तुत्तम पुण्य है ।

इसका श्रवण अशुचि-पापी और ऐमा जो एक वर्ष से कम पास में रहा हो

कभी भी उसका श्रवण नहीं कराना चाहिए । जो ब्रह्मानु न हो—विद्वान् न हो

तथा पुत्र रहित हो एवं अहित हो उसे किसी भी प्रकार से इसका श्रवण नहीं

कराये ॥६९-७०॥ जिसकी योनि अव्यक्त है तथा वेद को व्यक्त और काल को

अन्तर्गत कहते हैं । वर्हि को मुख-चन्द्र और सूर्य को नेत्र—दिशाओं को श्रोत

तथा वायु गी घ्राण कहा गया है । वेदों को जिसकी वाणी तथा अन्तरिक्ष की

शरीर—सिति को चरण एवं तारको को रोमकूप बताया गया है । उसके अन्य भी सम्पूर्ण शरीर भी उसी प्रकार के जानने चाहिए और सभी जिसके पुत्र कहे जाते हैं उस देव को जो धनो का जन्म स्थान है और सब लोको में प्रतिष्ठित है । यरो में भी वरदान ॥३१-३२ ३३॥

प्रकरण ६६—व्यास सशय वर्णन

सूत सूत महाभाग स्वया भगवता सता ।
 व्यासप्रसादाभिमतसास्त्रसम्बोधनेन च ॥१॥
 ब्रह्मादशपुराणानि सेतिहासानि ज्ञानय ।
 उपक्रमोपसंहार विधिनोक्तानि कृत्स्नय ॥२॥
 पुराणीष्वेयु बह्वो धर्मास्ते विनिरूपिता ।
 रागिणाश्च विरागाणां यतीना ब्रह्मचारिणाम् ।
 गृहस्थानां वनस्थानां स्त्रीशूद्राणां विशेषतः ॥३॥
 ब्राह्मणक्षत्रियविद्या ये च सङ्कुरजातय ।
 गङ्गाद्या मा महानद्यो यज्ञप्रस्तुतपांसि च ॥४॥
 अनेकविधदानानि यमाश्च नियम सह ।
 योगधर्मा बहुविधा सांख्या भागवतास्तथा ॥५॥
 भक्तिमार्गा ज्ञानमार्गा चैराभ्यानि लनीरजा ।
 उपासनाविधिभोक्त कमसंशुद्धिचेतसाम् ॥६॥
 ब्राह्म शक वध्यन् च सौर शाक्त स्याहृतम् ।
 यद दशनानि चोक्तानि स्वभावनिमतानि च ॥७॥

शौनक आदि ऋषियो ने कहा—हे सूतजी ! आप तो महान् भाग धारि हैं आपने भगवान् व्यास देव से सभी भक्ति ज्ञान पुरुष परम उनकी कृपा के प्रसाद ॥ इस शास्त्र का अध्ययन किया है हे निष्याय ! आपने ब्रह्मादश पुराण

रहता है ॥८॥ यह नही जाना जाना है कि व्यास भगवि अथवा आपने इसमें कुछ गौरव किया है । यहाँ पर आप हमारे लक्ष्य का क्षेत्र कीविए क्योंकि पूर्ण पौराणिक है ॥९॥ श्री गुरुजी ने कहा—हे धीनक ! आप ध्यान धुवक भवण करो मैं इस सुकुलभ प्रश्न का उत्तर देता हूँ । अति गोप्य तम वस्तु आख्येय नही होती है ॥१॥ पराशर मुनि के पुत्र महर्षि व्यास देव ने समस्त वेदों के अर्थ से अटित पौराणिकी तथा का सम्पादन करके फिर विश्व में चिन्तन किया था ॥११॥ मैंने यहाँ तथा आश्रमों के पालन करने वाले लोगों के धर्म को भली भाँति कथन किया है और वेद के अविरोध रखते हुए बहुत प्रकार के मुक्ति के मार्गों का भी निरूपण कर दिया है ॥१२॥ सूत्र के निर्णय में और ईश्वर और ब्रह्म का भेद निरस्त किया है और भुवि से मुक्त विचार द्वारा परब्रह्म का निरूपण किया है ॥१३॥ परब्रह्म सत्त्व है और परमात्मा ही परम पद होता है जिसके शक्त करने के लिये ही ब्रह्मण्य से आदि भेदर जानप्रत्यक्ष एवं अति के मत कहते हैं ॥१४॥

आचरन्ति महाभक्ता आरणाञ्च धृषग्विषाम् ।
 प्रासन प्राणुरोमञ्च प्रत्याहारञ्च आरग्या ॥१५॥
 ध्यान समाधिरेतानि ममञ्च नियमं सह ।
 अष्टाङ्गानि यद्वचञ्च चरन्ति मुनिपुङ्गवा ॥१६॥
 यत्पर्यं कर्म कुर्वन्ति वेदाङ्गाभावनतत्परा ।
 परापराधिया सम्भग निष्कामा कलिसोशिता ॥१७॥
 मण्डपे निराकर्त पापाचरणमात्मन ।
 गङ्गादितीष्वर्थाणि निवेज्यते क्षुब्धव्रता ॥१८॥
 तद्वद्वा परम शुद्धमनाचन्तमनामयम् ।
 नित्यं सवत्रग स्थाणु कूटस्थ कूटवजितम् ॥१९॥
 सर्वेन्द्रियचराभास प्राकृतेन्द्रियवजितम् ।
 दिक्कालाद्यनवच्छिन्न नित्य चिमात्रमव्ययम् ॥२०॥
 अध्यास्त सपञ्चन विश्रमेतत्प्रकाशते ।
 विश्रस्मिन्नपि चान्वेति निर्विकारञ्च रज्जुवत् ॥२१॥

महान् पश्चित्त लोभ धारणा री १५६ प्राप्ता रा ध्याचरण विद्या करने हैं । मुनियो मे श्रेष्ठ लोभ यम धोर नियमो क मय ध्यामन-प्राणमय-प्रत्याहार-पाणा-ध्यान-ममाधि-इन भाठ धाना को जिनके निय विद्या करते है ॥१५-१६॥ वेद की केवल ध्याना मे ही परायण रहने जाने परायण री बुद्धि म फलिलोक्ति धीर निरुद्ध होते हूय भली भाँति जिनके निय कय विद्या करते हैं ॥१७॥ जिनके ज्ञप्ति (ज्ञान) के निये बुद्धि जन बादे होकर ध्यानी ध्यामा के पाप के धारणा को निराकरण करने के निये गन्ता बादि महाद नीवी का ध्याचरण धीर मेहन किया करते हैं ॥१८॥ यह ब्रह्म परम शुद्ध धादि-धन्त से रहित-धनामय-निरय-मय मे रहन धाना-ध्यानु-कूटस्थ-कूटस्थित-सर्वेन्द्रिय पराभाग-प्राकृत इन्द्रियो से वञ्चित-दिक्षा धीर बाल धादि ने धन-वञ्चित-निरय-विन्मात्र अर्थात् ज्ञान स्वरूप-अन्यय धीर मपयत् प्रध्यामन है जिसमे यह विश्व प्रकाशित होता है धीर इन विश्व म भी निरिहार गज्जु री भाँति धनुगमन विद्या करता है ॥१९-२० २१॥

सम्यग्विचारित यद्वत्प्रेमोपिबुदुबुदोदरम् ।

तथा विचारित ब्रह्म विश्वस्मान्न पृथग्भवेत् ॥२२

सर्वं ब्रह्मैव नानात्वं नास्तीति निगमा जगु ।

यस्माद्भवन्ति ब्रह्माण्डकोटयो न भवन्ति च ॥२३

यवुन्मेपनिमेषाभ्या जगता प्रलयोदयो ।

भवेता या परा भक्तिर्यदावास्तथा स्थिता ॥२४

यदिमस्मिन् यतश्चेद येनेद यदिद स्मृतम् ।

यदजानात्मनोद्भाति यस्मिन् ज्ञाते जगन्न हि २५

असत्यं यच्चैव दुःखमनस्त्विति निरूपितम् ।

विपरीतमतो यद्वै भव्विदानन्दमूत्तिकम् ॥२६

जीवे जाग्रति विश्वारूप स्वप्ने यत्तजस स्मृतम् ।

सुषुप्ती प्राज्ञसज्ञ तत्सर्वावस्थासु सस्मृतम् ॥२७

यच्चक्षुषा चक्षुरथ श्रोत्राणा श्रात्रमस्ति च ।

त्वक् त्वचा रसन तस्य प्राण प्राणस्य यद्विदु ॥२८

गोलोकवासी भगवानक्षरात्पर उच्यते ।
 तस्मादपि पर कोऽसी गीयत श्रुतिमि सदा ॥३८॥
 उद्दिष्टो वेद वचनविशेषो ध्यायत कथम् ।
 श्रुतवार्थोऽयथा बोध्य परतस्त्वक्षरादिति ॥३९॥
 अत्यर्थं सशयापन्नो व्यास सत्यवतीसुत ।
 विचारयामास चिर न प्रपेदे यथातथम् ॥४०॥
 विचारयन्मपि मुनिर्नापि वेदार्थनिश्चयम् ।
 वेदो नारायण साक्षाद्यत्र मुह्यन्ति सूरय ॥४१॥
 तथापि महतीमाप्ति सता हृदयतापिनीम् ।
 पुनर्विचारयामास क वज्रामि करोमि किम् ॥४२॥
 पश्यामि न जगत्स्थितिमस्तस्मिन् सर्ववक्त्रनम् ।
 अक्षात्वाऽयत्तम लोके सन्देहविनिवृत्त कम् ॥४३॥

इस प्रकार से विचार (केवल ज्ञान स्वरूप) पुरुषों से रहित तथा भेद
 से रहित ब्रह्म में जो कि गोलोक की सत्ता वाले में कृष्ण दीप्यमान होता है—
 ऐसा ब्रह्म भगवत् किया है ॥३८॥ इससे परे कुछ भी निगम और धारणों में भी
 नहीं है । जोभी निगम परात्पर सत्ता से भी परे गोलोक में मिल्य निवास करने
 वाले भगवान् है—ऐसा कहा जाता है । श्रुतियों के द्वारा सदा जससे भी परे
 यह कौन है—यह सदा नामा जाता है ॥३९॥ वेद के वचनों के द्वारा जो
 उद्दिष्ट है वह विशेष कहे जाना जाता है अथवा परतोऽक्षरात् इस श्रंश का
 अर्थ का अर्थ जगत् प्रकार से जानना चाहिये । इस प्रकार से सत्यवती के
 आत्मन्य व्यासदेव ने इस शक्ति के अर्थ में सद्यः की प्राप्त होकर अधिक समय तक
 विचार किया था किन्तु लोभी ब्रह्मण अर्थ की प्राप्त नहीं होसके थे ॥४०॥ ३९
 ४०॥ भी सुग्रीव ने कहा—इस तरह बहुत समय तक विचार करते हुए भी
 व्यास मुनि वेद के अर्थ का निश्चय नहीं कर सके थे । वेद तो साक्षात् नारायण
 भगवान् का स्वरूप है वहीं पर बड़े २ महामनीषी भी मोह को प्राप्त होजाया
 करते हैं ॥४१॥ सत्पुरुषों के हृदय में ताप पहुँचाने वाली बड़ी भारी भांति
 (पीडा) को वे प्राप्त होकर फिर विचार करने लगे थे कि अब इस हृदय के

सशय को निवारण करने के लिये मैं जिसके गभीर में जाऊँ और गया उपाय करूँ ॥४२॥ इस जगत् में मैं ऐसा मन्त्र और मन्त्र कुछ को देगने वाला किसी को भी नहीं देखता हूँ । इस तरह अन्य किसी को भी लोक में हम अपने सदेह को निवृत्त कर देने वाला न देखकर उन्होंने तपस्या करने का ही निर्णय किया था ॥४३॥

मेरो कुहरिणी गत्वा चचार परम तप ।
यत्र कार्तस्वरस्फूर्जज्योत्नामूर्त्तिरन्तरजा ॥४४॥
सदा प्रवाघते दिध्वस्तमस्ताम दृगन्तुदम् ।
चकास्ते यत्र परम कान्तारमतिमुन्दरम् ॥४५॥
नानाद्रुमनताकुञ्जकूजत्पक्षिनिनादितम् ।
क्षुत्पिपासाभयक्रोधतापग्लानिविवर्जितम् ॥४६॥
जलाशयैर्बहुविधै पद्मिनीत्यष्टमण्डितै ।
जातरूपशिलानदतटसञ्चारपक्षिभि ॥४७॥
युक्तमम्भोज पवनै सेव्यमान समन्तत ।
शिवैरध्यासितम्भार्वाहिरै सत्त्वै समुष्कृतम् ॥४८॥
निर्जन दिव्यलसिकाप्रियस्रष्टविराजितम् ।
शुकै पारायतै र्हैरुन्मदमत्तकोकिलम् ॥४९॥
उत्पतत्पद्मरजसा पाटलामोददिङ्मुखम् ।
तत्रापि काञ्चनी दिव्या गुह्या परमशोभना ॥५०॥

फिर व्याम मुनि ने मेव पर्वत की गुफा में जाकर परम उग्र तप किया था जहाँ पर सुवर्ण की स्फुरित ज्योत्स्ना के समूह से निरन्तर पूर्ण प्रकाश रहता है ॥४४॥ और सदा ही नेत्रों को पीड़ा देने वाला आरों और फैला हुआ अन्धकार का समुदाय प्रकाशित होता है । जहाँ पर वन अत्यन्त सुन्दर स्वरूप से प्रकाशित होता रहता है ॥४५॥ उस वन में अनेक प्रकार के वृक्ष तथा लताएँ सुशोभित हैं और उन पर पक्षियों का कलरव हुआ करता है जोकि बहुत ही श्रुति प्रिय है । वह वन मूल-म्यास-भय-क्रोध-ताप और ग्लानि से रहित हैं ॥४६॥ वहाँ बहुत से अनेक प्रकार के सुन्दरतम जलाशय हैं जिनमें कमलिनी

क समूहा की सुपथा छार्द हुई है और सुवख की खिलाओ स उनके सटो का निर्माण हो रहा है तथा नहा अनेक पक्षियों का सन्धार बराबर होता रहा करता है ॥४७॥ वह वन पक्षियों की मिथित वायु से सेव्यमान है तथा बस्याए प्रव भावो मे युक्त और हिसक जीवो से रहित है ॥४८॥ वहाँ एकदम निजन स्थान है और वह परम दिव्य लताओ के द्वारा अत्यन्त शाभावमान है जहाँ धुक और पारावत अत्यन्त सुन्दर है और मत्त कोकिलो की मधुर ध्वनि अथवा गोबर हुआ करती है ॥४९॥ सभी खिलाओ मे पक्षो की घराण उड़कर फली हुई पाटलवख एव सुगन्ध दिलाई देती ॥ और घ्राण को परम मानोव प्राप्त होता है । उसमे भी सुवख की एक अत्यन्त दिव्य और अथिक बोधा से युक्त गुफा है ॥५॥

ता प्रविष्य जिताहारो जितचित्तो जितासन

सस्मार वेदाभ्युत्तरेकाग्रमना मुनि ॥५१॥

अथी जगाम धारदा धतस्य स्मरतोऽप्य हि ।

प्राबुरासस्ततो वेदाभ्युत्तरेकाग्रमना ॥५२॥

स्फुरत्पद्मलासाक्षा जटामुकुटधारिण ।

कुशमुष्टिकराम्भोजा मृगस्वङ्ग मण्डितासका ॥५३॥

स्वर षोडशमि कलूष भवना प्रणवान्तरा ।

बन्धवगोद्मववर्णो पञ्चावयवपाणय ॥५४॥

पद्मदक्षजराणा वामपाणास्तवगत ।

तेषामन्तस्थवर्णाभी तेषा कुक्षिद्वयात्मकी ॥५५॥

नामिनिद्रा कान्तपृष्ठा मोदरा यरजबोत्कचा ।

अग्निदत्ताश्वचिरा धराग्रीवा मृतासका ॥५६॥

अन्तस्थसर्पिसंस्थाना वैद्यरीवाग्निज्जम्बिता ।

अपश्य मधुरामेषा हृदयाम्भोजकल्पिताम् ॥५७॥

हरेभगवत सत्तादाविर्भावस्थिती हि सा ।

काशीमपश्यद् भूमध्य भालामाधारसंस्थिताम् ॥५८॥

उक्त विरि मुफा मे व्यास भुनि ने प्रवेष्टा द्रिया या शीर आहार-वित्त तथा धासन को जीव कर वहाँ पर भुनि ने अत्यन्त एकाग्र मन उनके चारों वेदों के धर्म का भली भाँति समझ लिया था ॥११॥ इस प्रकार से स्मरण करते हुए भुनि को तीन सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे । इसके अनन्तर महा चारों वेशों का प्राधुर्भात्र हुआ था जिसका दर्शन चरम सुन्दर था ॥१२॥ ये चारों मूर्तिनाम् वेद कमल के समान सुन्दर जेबों से युक्त थे तथा गस्तक पर बड़ा एक गुच्छ धारण करने वाले थे । उनके हस्त कमलों में पुष्पागो का पुष्प था और कान्धे पर मुगझला पड़ी हुई थी ॥१३॥ पीठ पर स्वरो से उनके मुख पर लगे थे जिसके मध्य में प्रसन्न था । कर्णों और शिरों से उत्पन्न होने वाले धर्मों के द्वारा उनकी नाँवों प्रमत्त और हाथ थे ॥१४॥ ज वर से उनकी दाहिना चरण था और तब से घाम पाद की रचना थी । उनकी दोनों बुद्धिमां अन्त हस (य र ल य) पक्षों से युक्त थी ॥१५॥ नाभि निद्रा बाले-कान्त (सुन्दर) गृध्र (पीठ) वाले-मोहर तथा गर लय कथ (वेश) चारों थे । अग्नि दक्षा से अस्पर्श रत्नि-धरा की मोक्ष (करण) वाले और कम्पों वाले थे ॥१६॥ अन्तस्थी से रत्निबो के सन्ध्याम से उमन्वित थे तथा वैष्णवी यात्री से विष्णुभिन्न होने वाले थे । इनके हृदय कमल से वरिष्ठ सधुरा को व्यास भुनि ने देखा था ॥१७॥ वह भधुरा भगवान् हरि की साक्षात् परिभाष होने की स्थली थी । भृगुदिगों के मध्य में आगत है तबित साधा स्वर्गिणी को तथा काशीपुरी का देगा था ॥१८॥

लिङ्गदेवो ततः का-बीमवन्ती नाभिमण्डले ।

कण्ठस्था द्वारकामेवा प्रयाग प्रास्या तथा ॥१९॥

सव्यापसव्यमोस्तेषां गङ्गाऽपि यमुना नदी ।

मध्ये सरस्वती साक्षाद् गयाक्षेत्रं तथानने ॥२०॥

हनुम्रीर्वाभिष्यमत प्रयासक्षेत्रमुत्तमम् ।

सद्यर्थाभिषमेतेषां अहारवर्धनं ददर्श ह ॥२१॥

पीण्डवर्धननैपालपीठं नयनयोयुं मे ।

पीठं पूरुषाविरिनाम ललाटे समहस्यत ॥२२॥

कण्ठे च मधुरापीठ काञ्चीपीठ कटिस्मितम्

जालन्धर तथा पीठ स्तनदेशेष्वदृश्यत ॥६३॥

भृगुपीठ वरुणदेशे ह्ययोध्या नासिकापुटे ।

बह्मरथ स्थित ब्राह्म क्षम सीमन्तसीमनि ॥६४॥

तिब्ब देश में काञ्चीपुरी जो घोर नामि मण्डल में धवन्तीपुरी की
देखा था । जह्ण देश में सस्थित द्वारका को तथा प्राणों में नमन करने वाले
प्रयाग का दर्शन किया था ॥६३॥ उन देशों में जाई घोर दाहिनी घोर में
गङ्गा तथा यमुना नदी को देखा था । उनके मध्य में सरस्वती नदी भी घोर
मुल के देश में साक्षान् गया क्षेत्र था ॥६४॥ ठोड़ी घोर सीमा (गरदन) के
मध्य में रहने वाला उत्तम प्रभास क्षेत्र था । इनके बह्मरथ में बदर्यायम था
जिसका स्पष्ट तप व्यास मुनि ने बखन किया था ॥६५॥ दोनों देशों में पीएड
वर्षन नेपाल पीठ का घोर लताड में पुण्ड्र मिर्लिमन वाला पीठ देखा था ॥६६॥
कण्ठ में मधुरा पीठ तथा कटि प्रदेश में काञ्ची पीठ था । तथा जालन्धर पीठ
स्तन देश में बिलाई किया था ॥६७॥ कण्ठ देश में भृगुपीठ और नासिका देश
में अयोध्या पीठ था । बह्मरथ में ब्राह्म पीठ था और सीमान्त की सीमा में
क्षम पीठ था ॥६८॥

शक्त जिह्वाय धिपणु गीष्णव हृदयाम्बुजे ।

सीर बहु प्रदेशस्थ वीरुञ्छायासु सङ्गतम् ॥६९॥

क्षीत्रामणि कण्ठदेशे पशुमघमयोरसि ।

माजपेय कटितटे ह्यग्निहोत्र तथानने ॥७०॥

अश्वमेध कटितटे नरमेधमघोदरे ।

राजसूय शिरोदेशे आकसम्भ तथाऽधरे ॥७१॥

ऊर्ध्वोष्ठ दक्षिणाम्बिन्ध गाहपत्य मुखान्तरे ।

हव्य श्रुती मन्त्रमेदास्तथा रोमस्ववस्थितान् ।

भृत्यरिव महाराज पुराणन्यायमिधित ॥७२॥

सहिताभिन्न तत्रैव पृथक्पृथक्नुपासितान् ।

क्षम ज्ञानापासनाभिजनानुपह्वारवान् ॥७३॥

दृष्ट्वा सुविस्मितमना मुनि कृष्णो बभूव तान् ।

ब्रह्मतेजोमयान्दिव्यास्तपतोऽर्कानिव च्युतान् ।

ज्वलतोऽग्नीनिबोदकान्कोटीन्दुसमदर्शनान् ॥७०॥

शाक्त पीठ बिह्वा के अग्र भाग में स्थित था तथा हृदय कमल में
संस्थित पीठ था । सोर पीठ चण्ड प्रदेश में स्थित था तथा बौद्ध छायागो में
संस्थित था ॥६५॥ कण्ठ प्रदेश में सौत्रामणि जल में पशुबन्ध-कटितट में बाण
पेय तथा आनन में अग्नि होय था ॥६३॥ कटितट में अश्व मेघ-उदर में नरमेघ
शिरोदेश में राजसूय तथा अक्षर में आवसथ्य था ॥६७॥ ऊपर के मोष्ठ में
वशिष्ठाग्नि-मुख के अन्दर में बाह्यपथ अग्नि-भूति में (कान में) हृष्य तथा
रोमो में अवस्थित मन्त्र वेदो को देखा था । न्याय मिश्रित पुराणो में इस
भाति लेखित थे जैसे भूयो के द्वारा कोई यहाराज हो ॥६८॥ संहिताओं के
और तन्त्रों के द्वारा पृथक् २ समुपासित एवं कर्म, ज्ञान और उपासनाओं के
द्वारा जलो पर अनुग्रह करने वाले उन वेदो को देख कर कृष्ण हृष्यायन मुनि
अत्यन्त विस्मित मन वाले हो गये थे । वे ब्रह्म तेज से परिपूर्ण-परम दिव्य-सूर्य
■ समान तपे हुए - जलती हुई अग्नि के तुल्य उदक एवं करोड़ों अश्वों के
समान विजलान्ति देने वाले थे ॥७६-७०॥

वचन्दे सहस्रोत्थाय दण्डवत्पतितो मुनि ।

कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहमित्तीरमन् ॥७१॥

ने अथ ने सफल जन्म अथ मे सफल मन ।

अथ मे सफलश्चायुर्धर्मवन्तोऽस्तिगोचरा ॥७२॥

अलौकिक लौकिकश्च यत् किञ्चिदपि विद्यते ।

न तद्वोऽविदितं वेद्यं भूतं भव्यं भवञ्च यत् ॥७३॥

न प्रवृत्तिफला गुण दर्शयन्तोऽपि तान्सदा ।

यदृच्छाकरसङ्कोचविघ्नानायेह रागिण्याम् ॥७४॥

प्रपञ्चस्यापि मिथ्यात्वे ब्रह्मत्वे वा विधीतरौ ।

न मृषारामविषयी तत्सङ्कोचविधिक्षयी ॥७५॥

अतो लोकहितनू न परमाय निरूपणे ।

स्वोक्ता स्वर्गादिविषया नश्वरा इति निदिता ॥७६॥

अधिकारिविभेदेन कमज्ञानोपदेशत ।

ज्ञात सव जगन्नून अन्वद्वह्यात्समूर्तिमि ॥७७॥

इस प्रकार के स्वल्प वाले उनका बखान प्राप्त कर व्याप्त मुनि सहसा उठ कर खड़े हो गये और दहड की आति पड़ कर उनकी बहना की बी तथा व्याप्त मुनि अपने मुँह से दण्डवत् प्रणाम करते हुए यह कहते जा रहे थे—मैं कृताय होगया—मैं सफल होगया और पूरा अनौरव नाका हो गया हूँ ॥७६॥ आज मेरी सम्पूर्ण आयु सफल हो गई कि आज मेरी प्राप्ति के समस्त में प्रत्यक्ष रूप से गोचर होकर हैं ॥७७॥ आपके लिए कुछ भी अधिकार नहीं है । भूत-मन्य और वस्तुमान सभी आपकी भेद है ॥७८॥ उन सब की सबदा ईकते हुए भी आप लोग प्रवृत्ति फल वाले नहीं हैं । क्यों कि इस ससार में रागी पुण्य यहन्ना कर सङ्कोच से निधान करने वाले होते हैं ॥७९॥ इस प्रयत्न के निष्पत्ति होने पर भी तथा ब्रह्मत्व में विधि निषेध उसके सङ्कोच विधि और जय नृपाराज के विषय नहीं हैं ॥८०॥ अतएव लोकहितों के द्वारा परमाय के निरूपण में अपने से कहे हुए स्वर्गादि के विषय नाशवान् हैं इस लिए निश्चित होते हैं ॥८१॥ सम्यक् ज्ञान की मूर्ति वाले आपने अधिकारी के भेद से कम और ज्ञान के उपदेश के द्वारा इस सम्पूर्ण जगत् की निश्चय ही रक्षा की है ॥८२॥

अतोऽहं प्रष्टुमिच्छामि भवन्तश्च तृप्तासव ।

कमणा फलमादिष्टं सर्वं कामकषेतसाम् ॥८३॥

ईशापितधिया पु सा कृतस्यापि च कमण ।

चिताशुद्धिस्ततो ज्ञान भोक्षश्च सदनन्तरम् ॥८४॥

भोक्षो ब्रह्म वयमित्येव सन्निधानन्दमेव यत् ।

सव समाप्पते तस्मिन्नाते यद्धि कृताकृतम् ॥८५॥

यश्चि सङ्ग विदाकाश ज्ञानरूपमसंवृतम् ।

निरीहमवच श्रुद्धमगुण व्यापक स्मृतम् ॥८६॥

विकारेषु विनश्यत्सु निर्विकार न नश्यति ।
यथान्वतमसा व्यासलोफस्य रविरोजसा ॥८२॥
लोहस्येव मणिस्तद्वदरणिश्चानले यथा ।
यदाभासेन सा सत्ता प्रतिपद्य विजृम्भते ॥८३॥
जीवेश्वरादिरूपेण विश्वाकारेण चाप्यहो ।
तस्यामपि प्रलीनाया कूटस्थश्च यदेकलम् ॥८४॥
भवद्भिरेव निर्णीतं तत्तथैव न सहाय ।
तथापि मम जिज्ञासा वर्तते केवलं तद्वदि ॥८५॥
अतोऽपि परमं किञ्चिद्वर्तते किल वा न वा ।
तद्वदन्तु महाभागा भवन्तस्तत्त्वदर्शना ॥८६॥

यदि आप भेरे ऊपर कृपाशु है तो मैं आपसे शय यह ही पूछना चाहता हूँ कि कर्मों का फल आदिष्ट किया है और कामना से पूर्ण चित्त वालों का सगं बताया है । ईश्वर में समर्पित बुद्धि वाले मानवों के किये हुए कर्म से भी चित्त भी बुद्धि होती है फिर इसके अनन्तर ज्ञान होना है और इसके पश्चात् मोक्ष होता है ॥७८-७९॥ मोक्ष ब्रह्म के साथ ऐक्य को ही कहा जाता है जोकि सत्-चित् और आनन्द स्वरूप है । जो भी कुछ कृत तथा प्रकृत है वह उसके ज्ञात करने पर सभी कुछ समाप्त हो जाता है ॥८०॥ जो सङ्ग रहित-निवा-काश-ज्ञानस्वरूप वाला-असकृत-निरीह-अवल-भुङ्ग-विना गुण वाला और व्यापक कहा गया है ॥८१॥ समस्त विकारों के विनष्ट होजाने पर भी वह विकार रहित है अतएव नष्ट नहीं होता है । वह तो इस प्रकार है जैसे अम्प-कार से व्यास सोऊ के लिये धोख से रवि होता है ॥८२॥ लोहे को मणि की भाँति और अनल में अरणि के समान वह होता है । जिसके आभास से वह सत्ता को प्राप्त होकर विजृम्भित है ॥८३॥ वह जीव और ईश्वर के स्वरूप में विद्व का आकार होता है । इसके भी प्रलीन होजाने पर एक कूटस्थ रहता है ॥८४॥ यह मभी कुछ आपने निर्णय किया है और वह उही प्रकार का ही है, आपके इस कथन में कुछ भी शक्य नहीं है । तो भी भेरे हृदय में केवल एक जिज्ञासा होती है ॥८५॥ वह जिज्ञासा यही है कि इससे भी

माने कुछ है या नहीं है। है महान् माय बालो ! माय यही कृपा कर मुझे बनाइये क्योंकि बाप तो तत्त्वों के पूर्ण गाता है ॥८६॥

यन्मूत्रं फलमेवेह जनुषो मे वृत्तायता ।

एव श्रुवन्तममथ ध्यात् सत्यवतीसुगम् ।

साधु साध्विति सङ्कीर्त्य प्रस्यूतु निगमा वच ॥८७॥

साधु साधु मह्यप्राज्ञा विष्णुरात्मा शरीरिणाम् ।

अजोऽपि जन्म मम्यद्य लोकानुब्रह्मभीहसे ॥८८॥

अन्यथा ते न घटते सत्तारकम्मन्मन्मन् ।

प्रस्पृष्टो मायया देव्या कदाजिज्ञानगूहया ॥८९॥

विभीषि स्वेच्छया रूप स्वेच्छयम निगूहसे ।

अस्मत्सम्मत् एवार्थो भवता सम्प्रदर्शित ६०

पुराणेष्वितिहासेषु सूत्रेष्वपि च भक्त्या ।

अक्षर ब्रह्म परम सबकारणकारणम् ॥९१॥

तस्मात्समोऽप्यात्म भावतया पुण्यस्य गन्धवत् ।

रसबद्धा स्थित रूपमेवेहि परम हि तत् ॥९२॥

अनुभूत तदस्माभिर्जाते प्राकृतिके तये ।

अक्षरात्परतस्तस्माच्छत्पर देवतो रस ।

न च तत्र मय शक्ता साध्यातीते तदात्मका ॥९३॥

यहाँ इसका अर्थ करना ही मेरे जीवन का फल है और इसके करने से मेरे जन्म की सफलता होगी। इस प्रकार से जोनने वाले सचरहित सत्यवती के पुत्र व्यास मन्त्रि से साधु-साधु (अच्छा-अच्छा)—यह कहकर निगमों (वेदों) ने वचन कहे थे ॥८७॥ वेदों ने कहा—बहुत अच्छा है यदि महान् प्राज्ञ है और शरीर धारियों के विष्णु आत्मा हैं। बाप प्रजमा होकर भी जन्म धारण कर लोगों के अनुग्रह की इच्छा करते हैं ॥८८॥ अन्यथा बापको हम सत्तार का कर्म बचन चटित नहीं होता है। ज्ञान से गूढ़ माया देवी से अस्पष्ट बाप अपनी ही इच्छा से स्वरूप की धारण करते हैं और स्वेच्छा ॥ ॥ उसे निगूहित किया करते हैं। हमारे मन्मन जो धन है वही बापने भी प्रदर्शित

दिया है ॥८६-८७॥ पुत्रागो मे—दत्तागो मे और गुरो मे भी एक ही प्रकार
 ग नहीं बताया गया है । अथर्व वर्य उदा है और मत्र चारुगो का भी कारण
 है ॥८७॥ आर्या स्वर्ग्य उनके भी आर्य भावना मे पुत्र की गन्ध की भाँति
 अथर्व रम के समान वर वर्य रूप स्थित रहता है—अमा उग जान मो ॥८७॥
 प्राकृतिका गय के छोडा पर दमन अनुभव दिया है । उग अथर्व मे गये वेधन
 वर्य ही होता है । अथर्वरूप हय पालीव उगमे पहुँचने का समय नहीं
 है ॥८७॥

प्रकरण ६७—गया माहात्म्य

अत ऊर्ध्वं प्रयस्यामि गयामाहात्म्यमुत्तमम् ।
 यत्कूटवा मर्त्यपापेभ्यो मुच्यते नात्रमशय ॥१॥
 मनकार्यं मर्महाभर्मर्देषपि गच्छ नाश्व ।
 सनत्कुमार पप्रच्छ प्रगुम्य विधिपूर्वकम् ॥२॥
 सनत्कुमार मे यूहि तीर्थं तीर्थोत्तमोत्तमम् ।
 सार्वक मर्वभूताना पठता शृण्वता तथा ॥३॥
 यद्ये तीर्थं वर पुण्य श्राद्धादौ सबतारकम् ।
 गयातीर्थं सर्वदेहे तीर्थभ्योऽयधिकं शृणु ॥४॥
 गयागुरुस्तपसि ब्रह्मणा कृतवर्द्धत ।
 प्राप्तस्य तस्य विगतिं विस्तारं चर्मो ह्यधारयत् ॥५॥
 सप्त ब्रह्माऽऽरुगेऽपि स्थितश्चापि गदाधर ।
 पद्गुतीर्थादिरूपेण निश्चलार्थमहर्निशम् ।
 गयागुरुस्य विप्रेन्द्रब्रह्मार्चं देवता मह ॥६॥
 कृतयज्ञो ददौ ब्रह्मा ब्राह्मणेभ्यो गृहादिकम् ।
 श्वेतकल्पे तु वागहे गयायागमकारयत् ॥७॥
 गयानाम्ना गया न्याता क्षेत्र ब्रह्माभिकारितम् ।
 काश्चिन्ति पितर पुत्रान्नरकाद्भय भीरव ॥८॥

भागे कुछ है या नहीं है । है महान् भाग वालो ! आप यही कृपा कर मुझे बनाइये क्योंकि आप तो तत्त्वों के पूर्ण ज्ञाता हैं ॥८६॥

यच्छ्रुत्वा फलमेवेह जनुषो मे कृतायता ।

एव श्रुत्वा तमनघ व्यास सत्यवतीसुतम् ।

साधु साध्विति सङ्कीर्त्य प्रत्युक्तु निगमा वच ॥८७॥

साधु साधु महाप्राप्ता विष्णुरात्मा शरीरिणाम् ।

अजोऽपि जन्म भव्यस्य लोकानुग्रहमीहसे ॥८८॥

अन्यथा ते न भटते ससारकम्मबन्धनम् ।

अस्पृष्टो मायया देव्या कदाजिज्जानबूहया ॥८९॥

विमपि स्वेच्छया रूपं स्वेच्छयैव निगूहसे ।

अस्मत्सम्मत एवार्थो ममता सम्प्रदर्शित १०

पुराणेष्वितिहासेषु सूत्रेष्वपि न न कदा ।

अक्षर ब्रह्म परम सवकारणकारणम् ॥९१॥

तस्मात्प्रमोड्यात्म भावतया पुष्पस्य गन्धवत् ।

रसवद्वा स्थित रूपमेवेहि परम हि तत् ॥९२॥

अनुभूत तदस्माभिजति प्राकृतिके लये ।

अक्षरात्परतस्तस्माद्यत्पर देवलो रस ।

न च तत्र यय क्षता शब्दातीति तदात्मकाः ॥९३॥

यहाँ इसका अवलोकन करना ही मेरे धीरे धीरे का फल है और इसकी वजह से मेरे धर्म की सफलता होगी । इस प्रकार से बोसने वाले अक्षरहित स पवती के पुत्र व्यास महर्षि से साधु-साधु (धन्यवाद-धन्यवाद)—यह कहकर निगमों (वेदों) ने बंधन कहे थे ॥८७॥ वेदों ने कहा—बहुत धन्यवाद है आप महार्द्र प्राप्त हैं और शरीर धारियों के विष्णु धारमा हैं । आप अबमा होकर भी जन्म धारण कर लोको के अनुग्रह भी इच्छा करते हैं ॥८८॥ धन्यवाद आपकी हम ससार का कर्म बन्धन भटित नहीं होना है ज्ञान से बूढ़ भाया देवी से धरपट्ट आप अपनी ही इच्छा से स्वल्प को धारण करते हैं और स्वेच्छा से ही उसे निगूहित किया करते हैं । हमारे सम्मत को वचन है वही आपने भी प्रदर्शित

क्रिया है ॥८६-९०॥ पुण्यो मे—दतिहागो मे और मुनो मे भी एक ही प्रकार से नहीं बताया गया है । अक्षर परम ब्रह्म है और सब कारणों का भी कारण है ॥९१॥ आत्मा स्वरूप उसके भी आत्म भावना से पुण्य की गन्ध की भाँति अथवा रस के समान वह परम रूप स्थित रहता है—ऐसा उम ज्ञान को ॥९२॥ प्राकृतिक लय के होजान पर हममें अनुभव किया है । उस प्रक्षर से परे मेवल रग ही होता है । ज्योत्स्नक हम ज्योत्स्नीत उममे पहुँचने की समर्थ नहीं है ॥९३॥

प्रकरण ६७—गया माहात्म्य

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि गयामाहात्म्यमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्रशयः ॥१॥
सनकाद्यैर्महाभागैर्देवैः । स नारदः ।
सनत्कुमारः प्रपञ्चः प्रणम्य विधिपूर्वकम् ॥२॥
सनत्कुमार मे ब्रूहि तीर्थ तीर्थोत्तमोत्तमम् ।
तारक सर्वभूतानां पटता शृण्वता तथा ॥३॥
ब्रह्मे तीर्थवर पुण्य श्राद्धादी सर्वतारकम् ।
गयातीर्थं सर्वदेशे तीर्थभ्योऽप्यधिकं शृणु ॥४॥
गयासुरस्तपस्तेने ब्रह्मणा कृतयेर्जितः ।
प्राप्तस्य तस्य गिरसि क्षिता धर्मो ह्यधारयत् ॥५॥
तत्र ब्रह्माऽऽरोहणं स्थितश्चापि गदाधरः ।
फलुतीर्थादिरूपेण निष्प्रलार्थमहर्निशम् ।
गयासुरस्य विप्रेन्द्रब्रह्मार्चं देवसौ सह ॥६॥
कृतयज्ञो धृवी ब्रह्मा ब्राह्मणेभ्यो गृहादिकम् ।
भेतकल्पे तु वाराहे गयायायमकारयत् ॥७॥
गयानाम्ना गया स्याता क्षेत्रं ब्रह्माभिकारितम् ।
काक्षन्ति पितर पुत्राश्चरकाद्भ्य भीरवः ॥८॥

प्रागे कुछ है या नहीं है । है महान् भाग वाली ! आप यही कृपा कर मुझे बनाइये क्योंकि आप तो तत्त्वों के पूर्ण ज्ञाता हैं ॥८६॥

यच्छ्रव फलमेवेह जनुषो मे वृताधता ।

एव ब्रुवन्तमनघ व्यास सत्यवतीसुनम् ।

साधु साध्विति सङ्कीर्त्य प्रत्युक्तु निगमा वच ॥८७॥

साधु साधु महाप्राज्ञा विष्णुरात्मा शरीरिणाम् ।

अजोऽपि जन्म मम्यद्य लोकानुग्रहमीहसे ॥८८॥

अन्यथा ते न घटते ससारकर्मबन्धनम् ।

अस्पृष्टो मायया देव्या कदाजिज्ञानगूहया ॥८९॥

किमपि स्वेच्छया रूप स्वेच्छयव निगूहसे ।

अस्मत्सम्मत धर्माद्यो भवता सम्प्रदक्षित १०

पुराणेष्वितिहासेषु सूत्रेष्वपि च न कथा ।

अक्षर ब्रह्मा परम सवकारणकारणम् ॥९१॥

तस्यात्मनोऽप्यात्म भावतया पुण्यस्य गणवत् ।

रसबद्धा स्थित रूपमेवेहि परम हि तत् ॥९२॥

अनुभूत तदस्माभिर्जति प्राकृतिके सवे ।

अक्षरात्परतस्तस्माद्यत्पर केवलो रस ।

न च तत्र वयं शक्ता शब्दातीते तदात्मकाः ॥९३॥

भर्मा इत्या अवलम्ब करना ही मेरे जीवन का फल है और इसके करने से मेरे धर्म की सफलता होगी । इस प्रकार से बोलने वाले अक्षरहित सत्यवती के पुत्र व्यास महर्षि से साधु-साधु (प्रशंसा-अभ्युक्ति)—यह कहकर निगमों (वेदों) ने वचन कहे थे ॥८७॥ वेने ने कहा—बहुत अच्छा है आप महान् प्राज्ञ हैं और शरीरधारियों के विष्णु आत्मा हैं । आप अवन्मा होकर भी जन्म पागल कर लोगों के अनुग्रह की इच्छा करते हैं ॥८८॥ अन्यथा आपको हम ससार का कर्म बन्धन घटित नहीं होगा है ज्ञान से गूह माया देवी से अस्पृष्ट आप अपनी ही इच्छा से स्वरूप की वारण करते हैं और स्वेच्छा से ही उसे निगूहित किया करते हैं । हमारे सम्मन जो धर्म है वही आपने भी प्रदर्शित

क्रिया है ॥८६-६०॥ पुनरागो मे—इतिहासों मे और मूत्रों मे भी एक ही प्रकार से नहीं बताया गया है । अक्षर परम ब्रह्म है और मव वारणों का भी कारण है ॥६१॥ आत्मा स्वरूप उसके भी आत्म मानना मे पुण्य की कथा की भाँति अथवा रस के ममान वह परम रूप म्रियत रहता है—ऐसा उसे जान लो ॥६२॥ प्राकृतिक लय के होजान पर हमने अनुभव किया है । उस अक्षर मे परे केवल रस ही होता है । शब्दात्मक हम समझतीत जयमे पहुँचने को समर्थ नहीं हैं ॥६३॥

प्रकरण ६७—गया माहात्म्य

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि गयामाहात्म्यमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्रमशय ॥१॥
सनत्कुमारं म्याहाभागेदैवपि स च नारद ।
सनत्कुमार पप्रच्छ प्रणम्य विविपूर्वकम् ॥२॥
सनत्कुमार मे ब्रूहि तीर्थ तीर्थोत्तमोत्तमम् ।
तारक सर्वभूताना पठता शृण्वता तथा ॥३॥
वक्ष्ये तीर्थवर पुण्य श्राद्धादी मवंतारकम् ।
गयातीर्थ सर्वदेशे तीर्थेभ्योऽप्यधिक शृणु ॥४॥
गयासुरस्तपस्तेपे ब्रह्मणा कृतवेर्षित ।
प्राप्तस्य तस्य गिरसि शिला धर्मो ह्यधारयत् ॥५॥
तत्र ब्रह्माऽकरोद्याग स्थितश्चापि गदाधर ।
फलगुतीर्थदिरूपेण निश्चलार्थमहर्निशम् ।
गयासुरस्य निप्रेन्द्रब्रह्मार्थदेवतै सह ॥६॥
कृतयज्ञो ददौ ब्रह्मा ब्राह्मणेभ्यो गृहादिकम् ।
अेतकल्पे तु वाराहे गयायागमकारयत् ॥७॥
गयानाम्ना गया स्याता क्षेत्र ब्रह्माभिकाक्षितम् ।
काक्षन्ति पितर पुत्राञ्जरकाद्भ्य भीरव ॥८॥

वायुदेव ने कहा—इसके आगे मैं अब समुत्तम गया वा माहात्म्य बताता हूँ । जिसका धनरा कर मानव समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है । इससे कुछ भी सशय नहीं है ॥१॥ सूतजी ने कहा—सन्कादि महात्माग वालों से युक्त देवर्षि नारद ने सनत्कुमार से विवि के साथ प्रणाम करके पूछा था ॥२॥ नारदजी ने कहा—हे सनत्कुमार ! मुझे आप समस्त तीर्थों में सर्वोत्तम जो तीर्थ हो उसे बताओ । जो समस्त प्राणियों वा पाल या अन्न करने पर उत्तार करने वाला हो ॥३॥ सनत्कुमार ने कहा—मैं समस्त तीर्थों में श्रेष्ठ परम पुण्यमय घोर धात्र आदि में सबको उत्तार देने वाला गया तीर्थ को बताता हूँ । यह गया तीर्थ है घोर सब देव में सम्पूर्ण तीर्थों से भी अधिक है । इसका तुम लोग अन्न करो ॥४॥ ब्रह्मा के द्वारा प्राप्त गयासुर ने क्रतु के लिये उपवचनों की थी । प्राप्त होने वाले उसके शिर पर धर्म से क्षिप्त की कारण किया था ॥५॥ वहाँ पर ब्रह्मा ने प्राण किया था और यथाधर भी वहाँ पर स्थित थे । पाशु तीर्थ आदि के स्वरूप से यह अहर्निश निमग्न अन्न वाला था । विप्रग्र ब्रह्मादि देवों के साथ यज्ञ करने वाले ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को यह प्राणि प्रदान किये थे । भारद्वाज स्वेन कल्प में गया प्राण कराया गया था ॥६७॥ ब्रह्मा के द्वारा अभिकल्पित यह क्षेत्र गया के नाम से गया—यह क्यात हुआ था । पितृगण पुत्र नरक के भय से भीत होते हुए इसकी इच्छा किया करते हैं ॥८॥

गया मास्यति य पुत्र स नक्षता भविष्यति ।

गयाप्राप्तं सुत दृष्ट्वा पितृणामुत्सवो भवेत् ।

पद्मपामपि जस स्पृष्ट्वा सोऽस्मभ्य किं न दास्यति । ६

गयां गत्वाभ्रान्ता य पितरस्तेन पुत्रिण ।

पक्षत्रयनिवासी च पुनात्यासप्तम कुलम् ।

नो चेत्सचदगाह वा सप्तरात्रि त्रिरात्रिकम् ॥१०

महावत्पट्टित पाप गयां प्राप्य विनश्यति ।

पिण्ड दद्याच्च पित्रावेरात्मनोऽपि तिलविना ॥११

ब्रह्महत्या मुरापान स्तेय मुष्कन्धनागम ।

पाप तत्सङ्गजं नव गयाध्यायाद्दिनयति ॥१२

आत्मजोऽन्यजो चापि गयाभूमौ यदा तदा ।

यच्चाप्ना पातयेत्पिण्डं त नयेद् ब्रह्म आश्वतम् ॥१३॥

ब्रह्मज्ञान गयायाद् गोगृहे मरणं तथा ।

वास पु मा कुरुक्षेत्रे मूर्तिर्गया चतुर्विधा ॥१४॥

जो पुत्र गया को मायेगा वह ही हमारा बाता अर्थात् उद्धार करने वाला होता । गया में प्राप्त होने वाले अपने पुत्र को देखकर पिता को बहुत ही उन्मत्त होता है अर्थात् क्या आत्मा दुःखी करता है । अपने पैरों में भी जल हो स्पृश करने वह हमको क्या नहीं दया ॥१६॥ जो गया में जाकर अपने दादा माता को दान करने वाला है अनुमत्त उसी में पुत्र वाले दुःखी करते हैं । जो तीन पक्ष तक यहाँ निराग्न करने माना होता है वह अपने माता कुम्भों को पवित्र कर दिया करता है । अथवा पन्द्रह दिन तक माता रात्रि पश्चात् अथवा तीन रात्रि तक ही यहाँ निवास करने में गया में प्राप्त होकर रहने वाले का महाकृत्य कृत पाप भी विगण्य हो जाता करता है । जो के बिना भी अपने पितृमण्डल को वहाँ जो दिया करता है वह ब्रह्म हत्या-गुणपात-स्वयं (गोरी)-गुरु पत्नी का गमन और सहाय्य में समुत्पन्न सम्पूर्ण पाप गया के आश्वत से नष्ट हो जाते हैं ॥१०-११-१२॥ आत्मज जो मा अन्यज भी जो जिन-हिमी भी गमन में गया की भूमि में जिनके नाम से पिण्ड का पतन करता है वह उसको दायरत दह्य को प्राप्त करा देता है ॥१३॥ ब्रह्म का ज्ञान-गया का आश्वत-गो के गद में मृत्पु और कुरुक्षेत्र में मिश्रण में चार प्रकार की पुण्यों की श्रुति बताई गई है ॥१४॥

ब्रह्मज्ञानेन किं कार्यं गोगृहे मरणेन किम् ।

वासेन किं कुरुक्षेत्रे यदि पुत्रो गया व्रजेत् ॥१५॥

गयाया सर्वकालेषु पिण्डं दद्याद्विचक्षणः ।

अधिमासे जन्मदिने चास्तेऽपि गुरुशुक्रयो ॥१६॥

न त्यक्तव्य गयायाद् सिहस्थेऽपि बृहस्पतो ।

तथा देवप्रभादेन प्रहतेषु जगोषु च ।

पुन कर्माधिकारी च आश्वतुद् ब्रह्मलोकभाक् ॥१७॥

के ऋण से मुक्त हो जाया करता है ॥२७॥ जो छिर में श्राद्ध करता है वह अपने सौ कुलो का उद्धार किया करता है । जब वह घर से गया को बलना प्रारम्भ करता है उसी समय से पितरों के स्मरणोद्घरण का कार्य प्रारम्भ करता है और उसके एक २ कदम चलने में स्वयं का शोषान बन जाता है ॥२८॥

पदे पदेऽश्वमेधस्य यत्फलं वञ्छतो गयाम् ।

सत्फलं च भवेन्नूनं समयं मात्रं संशयः ॥२९॥

पायसे नापि चरणां सकृन्ना पिष्टकेन वा ।

सत्कुलं फलसूत्राद्यं नयायां पिष्टपातनम् ॥३०॥

तिलकल्केन सडेन गुडेन सघृतेन वा ।

केवलेन च दध्ना वा ऊर्ज्ज्वेन मधुनाऽथ वा ॥३१॥

पिण्याकैः सघृतं च पितृभ्योऽन्नयमित्युत ।

इष्यते वातव भाग्यं हविष्यान्नं मुनीरितम् ॥३२॥

एकतः सम्भवस्तूनि रसवन्ति मधूनि हि ।

स्मृत्वा गदाधराडं प्र य० न फल्गुतीर्थान्बु वैकत ॥३३॥

पिष्टासन्नं पिष्टदानं पुनः प्रत्यवनेजनम् ।

दक्षिणां चान्नं सङ्कुत्पस्तीषथाद्ध्ययं विधिः ॥३४॥

मावाहनं न विगम्यो न दोषो हृष्टिसम्भवः ।

सकारण्येन कृतं न्य तीर्थं श्राद्धं विचक्षणः ॥३५॥

गया को गमन करने वाले के एक-एक पद में अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है । इनको सम्पूर्ण कन अवश्य ही मिलता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२९॥ पायसे से—चूड़-सालू-सत्कुल और कंक-मूलादि के द्वारा गया में पिष्ट का पातन करना चाहिए ॥३०॥ तिलों का कल्क—मूँठ-गुड़ और घृत प्रयोग केवल नहीं वा ऊर्ज्वेन मधु के द्वारा पिष्ट का पातन करे । पिण्याक तथा सघृत खाँड पितरों को बड़ा लाभ होता है । मधुना श्रुत का मुनीरित हविष्यान्न भाग्य में यजन किया जाता है ॥३१॥ ३२॥ एक और रखवाली समस्त वस्तुयें तथा मधु बने और गदाधर के चरण कमल का स्मरण करके एक और फल्गु तीर्थ का जब रखे ॥३३॥ पिष्टदान पिष्टदान और फिर

प्रत्यवने जन—दक्षिणा घोर घघ का सङ्कल्प करे—यह ही तीर्थों के आदो मे विधि होती है ॥३४॥ वहाँ पर न तो कोई आवाहन ही होता है और न दिग्बन्ध किया जाता है । दृष्टि से उत्पन्न होने वाला भी दीप बहा नहीं होता है । विचक्षण पुष्पो को काश्यप के सहित तीर्थ आद्र करना चाहिए ॥३५॥

अन्यथावाहिता काले पितरो यान्त्यमु प्रति ।

तीर्थं सदा वसन्त्येते तस्मादावाहन न हि ॥३६॥

तीर्थंश्चादध प्रयच्छद्भि पुष्पं फलकाङ्क्षिभि ।

काम क्रोध तथा लोभ त्यक्त्वा कार्य्यं क्रियाऽनिशम् ॥३७॥

ब्रह्मचार्य्यकमोजी च भूशायी सत्यवाचस्तुचि ।

सर्व्वभूतहिते रक्त स तीर्थफलमश्नुते ॥३८॥

तीर्थान्पितृसरन्धीर पापण्ड पूर्व्वतस्त्यजेद् ।

पाप ह स च विज्ञेयो यो भवेत्कामकारत ॥३९॥

तीर्थेषु ये नरा धीरा कर्म कुर्व्वन्ति तदगता ।

यदा ब्रह्मविदो वैद्य वस्तु चानन्यचेतस ।

प्रविशन्ति परेशाख्य ब्रह्म ब्रह्मपरायणा ॥४०॥

यास्ते वैतरणी नाम नदी त्रिलोक्यविश्रुता ।

साऽवतीर्णं गयाक्षेत्रे पितृणा तारणाय वै ।

स्नातो गोदो गैतरण्या त्रि सप्तकुलमुद्धरेत् ॥४१॥

तथाऽक्षयवट गत्वा विप्रान्सन्तोषयिष्यति ।

ब्रह्मकल्पितान्विप्रान्हव्यकव्यादिनाऽर्चयेत् ।

तैस्तुष्टंस्तोपिता सर्व्वं पितृभि सह देवता ॥४२॥

गयाया न हि तत्स्थान यत्र तीर्थं न विद्यते ।

सान्निध्यं सर्व्वतीर्थाना गयातीर्थं ततो वरम् ॥४३॥

मीने मेवे स्थिते सूर्य्यं कन्याया कामुं के घटे ।

दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयाया पिङ्गपातनम् ॥४४॥

मकरे वत्तं माने च ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययो ।

दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयाश्चादध सुदुर्लभम् ॥४५॥

गयाया पिण्डदानं यत्फलं लभत नर ।

न तच्छ्रवणं भया वन्तु कल्पकोटिघातरपि ॥४६॥

बन्ध स्थानो न भ्राताहन् निहृष्ट ही पितृगण आढ करने वाले के समीप आया करते हैं किन्तु तीर्थ में तो ये सर्वदा ही निवास किया करते हैं अतएव वहाँ इनका आवाहन नहीं किया जाता है ॥३६॥ तीर्थों में आढ देने वाले पुरुष जो फल की आकांक्षा रखते हैं उनको वाम-श्रीर और शीर का त्याग करके ही निरन्तर आढ की क्रिया करनी चाहिए ॥३७॥ ब्रह्मचारी-एक बार भोजन करने वाचा-भूमि पर समय करा वाचा-सत्यवता-पवित्र तथा समस्त प्राणियों के हित में रति रखने वाला पुरुष तीर्थ के फल को प्राप्त किया करता है ॥३८॥ तीर्थों का अनुसरण करने वाले और पुरुष को जलन के पहुँचने ही से पापदण्ड का त्याग करना चाहिए । जो कामता की भावना से किया जाता है वही पापदण्ड समझना चाहिए ॥३९॥ जो पुरुष परम धीर होकर वहाँ तीर्थों में पहुँच कर अपना तीर्थोपेत कम किया करते हैं जिस तरह ब्रह्म के ज्ञाता भोग प्रमत्त विस्त होते हुए ज्ञान के मोक्ष वस्तु में ब्रह्म में जो कि परिचास्य है ब्रह्म पराधर्य होकर प्रवेश किया करते हैं उसी भाँति तीर्थों के सेवो की भी करना चाहिए ॥४॥ जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध बरतरी नदी है वह गया के शीर में पितरों के तारने के लिए प्रयत्नीय हो जाती है । शीर प्रपातों का ज्ञान करने वाला बरतरी में स्नान करके अपने इनकीस कुलो का उद्धार कर देता है ॥४१॥ उसी भाँति अक्षय पर जाकर विप्रों को सन्तोष देना चाहिए । ब्रह्म कल्पित विप्रों को हृष्य ब्रह्मादि स जपन करे । तुष्ट हुए उनके द्वारा समस्त देवगण पितरों के साथ लोहित हो आया करते हैं ॥४२॥ गया में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है वहाँ कोई तीर्थ न विराजमान हो । वहाँ गया में तो सभी तीर्थों का सामिप्य होगा है अतएव वह परम धन्य तीर्थ है ॥४३॥ शीर-मेघ-व्याघ्र-वन और कुम्भ पर सूर्य के स्थित होने पर गया में जाकर पिण्ड का पावन करना तीनों लोकों में दुर्लभ कार्य होता है ॥४४॥ मगर के बस मान होने पर तथा चन्द्र एवं सूर्य के ग्रहण के समय में गया में आढ करना तीनों लोकों में परम दुर्लभ कार्य है ॥४५॥ गया में पिण्ड दान करने से जिस फल की

प्राप्ति मानव किया करता है उसको मैं क्या कोटि शत के समक में भी वर्णन नहीं कर सकता हूँ ॥८६॥

यज्ञश्रुते गयो राजा बहन्ने बहुदक्षिणम् ।
यत्र द्रव्य समूहाना सख्या कर्तुं न शक्यते ॥८७॥
प्रशसन्ति द्विजास्तप्ता देशे देशे सुपूजिता ।
गय विष्णवाद्यस्तुष्टा वर ब्रूहीति चाब्रुवन् ॥८८॥
गयस्तान्प्रार्थयामास हर्षाभजसाञ्च ये पुरा ।
ब्रह्मणा ते द्विजा पूता भवन्तु ऋतुपूजिता ॥८९॥
गयापुरीति मन्त्राग्ना स्याता ब्रह्मपुरी यथा ।
एवमस्तु वर दत्त्वा चान्तर्दंष्ट्रु सुरा ॥९०॥

सन्तुष्टुमार जी बोले—नागदजी । किसी समय राजा गय ने बहुत धन और बड़ी-बड़ी दक्षिणाओं वाले इतने यज्ञ किये कि उनमें शक्य होत वाले द्रव्य की सख्या की गणना कर सकना सम्भव नहीं ॥८७॥ देश-देश के ब्राह्मण भली प्रकार पूजे जाकर और पूर्ण तृप्त होकर वहाँ से गये और सबत्र राजा गय की प्रशंसा करते रहे । राजा के इस महान् पुण्य काय से सन्तुष्ट होकर विष्णु आदि देवगणों ने गजा से वर माँगने की कहा ॥८८॥ राजा ने उनसे प्रार्थना की कि यदि आप वर देना चाहते हैं तो गया के जिस ब्राह्मणों को प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने क्षाप दिया था उन्हें उसे मुक्त कर दीजिये और वे यज्ञों में पूजित होकर पवित्र हो जायें ॥८९॥ यह गया पुरी मेरे नाम पर ब्रह्मपुरी की तरह पवित्र और विख्यात हो जाय । देवगण 'ऐसा ही' कहकर उनकी प्रार्थनाओं को स्वीकार करके अन्तर्धाम प्रोगये ॥९०॥

यत्र तत्र स्थितो देवा ऋपयोऽपि जितेन्द्रियाः ।

आद्य मदाघर व्यायन्क्वाद्दपिण्डादिदानत ॥९१॥

कुलाना शतमुद्धृत्य ब्रह्मलोक नयेत् पितृन् ।

गया गयो गया दित्यो गायत्री च मदाघर ॥९२॥

गया गयासुरञ्चैव पढेते मुक्तिदायका ।

गयास्थानमिद पुण्य य पठेत्सतत नरः ॥९३॥

ऋणुयाच्छ्रद्धया यस्तु स याति परमा गतिम् ।
 पाठयेद्वा गयास्थान विप्रेभ्य पुण्यकृत्तर ॥५४
 गयाध्याद कृत तेन कृत तेन सुनिश्चितम् ।
 गयाया महिमानच्च ह्यभ्यसेच्च समाहित ॥५५
 तेनेष्ट राजसूयेन अश्वमेधेन नारद ।
 लिखेद्वा लेखयेद्वापि पूजयेद्वापि पुस्तकम् ।
 तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मी सुप्रसन्ना भविष्यति ॥५६

इस पुरी में स्नान-स्नान पर ब्रह्मतापों के बहिरिक्त जितेन्द्रिय ज्ञप्ति भी
 बिराजमान है । यदि महाधर देव का ध्यान करके यहाँ ध्याद और पिएडदान
 करने वाला सौ पीड़ियों का उद्धार करके उनकी स्वर्ग का अधिनापि बना देता
 है । गयागम गयादिस्थ गायत्री महाधर गया और गयाधुर—ये छ गया
 में मुक्ति प्रदान करने वाले हैं । इस पुण्यदायक गयास्थान को जो व्यक्ति सदा
 पढ़ता रहता है ॥५२ ५३ ५४॥ अथवा जो पुण्यशास्त्री इसे श्रद्धापूर्वक सुनता
 है और ब्राह्मणों से इसका पाठ कराता है वह निश्चय स्वर्ग से गया ध्याद
 करता है । जो मनुष्य अन्त करण से महासीध गया की महिमा का चिन्तन
 करता है हे नारद वह मानो राजसूय और अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान ही कर
 लेता है । जो गयास्थान की पुस्तक को स्वर्ग लिखता है अथवा दूसरे से लिखाना
 है या पुस्तक की पूजा करता है । उसके घर में लक्ष्मी की स्थिर और प्रसन्न
 रहती है ॥५४ ५५ ५६॥

वायुपुराण का चतुर्थ खण्ड (उपसंहार) में गयामाहात्म्य समाप्त

॥ वायु पुराण समाप्त ॥